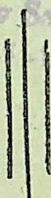
शिव पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल हिन्दी भाष्य सहित)



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन,
२० स्मृतियों और १८ पुराणों
के भाष्यकार

●

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)

श्री शिव पुराण

(द्वितीय खण्ड)

[सरल भाषानुवाद सहित-जनोपयोगी संस्करण]

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट दर्शन
२० स्मृतियां और १८ पुराणों
के प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशकः

डॉ चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब,
बरेली ।



सम्पादकः

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





संशोधित जनोपयोगी संस्करण १९७२



मुद्रकः

चन्द्रशेखर शर्मा

शेखर प्रिन्टलैण्ड, मथुरा



मूल्य :

सात रुपये पचास पैसे

श्री शिवपुराण के दूसरे खण्ड की

विषय-सूची

३–शत रुद्र संहिता

४–कोटि रुद्र संहिता

५–उमा संहिता

६—कैलास संहिता

४--वायुसंहिता (पूर्व भाग)

वायु संहिता (उत्तर भाग)

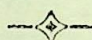
॥ समाप्त ॥

काल काल महात्रास विध्वंसकरमुत्तमम्
शैवं पुराणं परमं शिवेनोक्त पुरामुने ।।
जन्मोन्तेर भवेत्पुण्यं महद्यस्य सुधीमतः ।
तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतो मुने ।।
पठनाच्छ्रणादस्य भक्तिमान् नर सत्तम : ।
सद्यः शिवपद प्राप्ति लभते सर्वसाधनात् ।।

यह भगवान शिव के द्वारा कहा गया परमोत्तम शिवपुराण भयंकर समय रूपी महाप.ं का नाश करने वाला है। जिसने जन्म जन्मान्तर में अनेक प्रकार के क्षेष्ठ पुण्य किये हों उसी महाभाग्यशाली व्यक्ति की रुचि इस महापुराण के श्रवण करने को होती है। इसके पढ़ने और सुनने से मनुष्य ऐसा भक्तिभाव सम्पन्न हो जाता है जिससे उसे शिव साधन रूप परमपद की शीघ्र ही प्राप्ति होती है।

श्री शिव पुराण

(द्वितीय खण्ड)



॥ शिव का अश्वत्थामा के रूप में अवतार ॥

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम् ।१
बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरंशतो मुने ।
भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान् ।२
धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिःसर्वशास्त्रवित् ।
बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ।३
धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः ।
वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ।४
कौरवाणां स आचार्य्या आसीत्स्वबलतो द्विज ।
महारथिषु विख्यातः षटसु कौरवमध्यतः ।५
साहाय्यार्थं कोवारणां स तेपे विपुलं तपः ।
शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थं द्रोणाचार्यो द्विजोत्तम ।६
ततः प्रसन्नो भगवांच्छंकरो भक्तवत्सलः ।
आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम ।७

नन्दीश्वर ने कहा हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार । अब आप सब में व्याप्त रहने वाले परमेश प्रभु शिव का 'अश्वत्थामा'-इस नाम से होने वाले उत्तम अवतार की कथा श्रवण करो ।।१। हे मुने ! महा मनीषा से सम्पन्न देवगुरु बृहस्पति के अंश में भरद्वाज ऋषि के द्वारा द्रोण-इस नाम वाला एक अयोनिज पुत्र उत्पन्न हुआ।२।यह द्रोण संसार के समस्त धनुषधारियों में परम श्रेष्ठ अद्भुतवीर, विप्रर्षि, समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता, कीर्तिसम्पन्न महान् तेजस्वी और सभी शस्त्रास्त्रों के चलाने की विधि का जानने वाला हुआ था ।३। बुद्धिशाली द्रोण वाण विद्या का पारङ्गत पण्डित-वेदार्थ ज्ञान का धुरन्धर विद्वान् एक से-एक अद्भुत कर्मों के करनेवाला अपने कुल का वर्द्धक वरिष्ठ परम प्रसिद्ध था ।४। हे द्विजवर्य ! यह महाबलवान् द्रोण कौरव कुल का आचार्य और छै महारथियों में अत्यन्त प्रसिद्ध थे ।५। ब्राह्मणों में अत्युत्तम द्रोणाचार्यने कौरव कुल की सहायता करनेकेलिए एकमहावीर पुत्रके उद्देश्य को लेकर शिवके प्रीत्यर्थ उग्र तपस्या की ६। द्रोणके तप से मुनि सत्तम! भक्तों पर कृपा रखने वाले भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य के समक्ष में प्रकट हो गये ।७।

तं दृष्ट्वा स द्विजो द्रोणास्तुष्टावाशु प्रणम्य तम् ।
महाप्रसन्नहृदयो नतकः सुकृताञ्जलिः ।८
तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शङ्करः प्रभु।
वरं ब्रूहीति चोवाच द्रोणं तं भक्तवत्सलः ।९
तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्नतः ।
स्वांशजं तनयं देहि सर्वजियं महाबलम् ।१०
तच्छ्रुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति ।
अभूदन्तर्हितस्तात कौतुकी सखकृन्मुने ।११
द्रोणोऽपगच्छत्स्वं धाम महाहृष्टो गतभ्रमः ।
स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्तं सकलं मुदा ।१२

अथावसरमासाद्य द्ररुः सर्वान्तकः प्रभः ।
स्वांशने तनयो जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः ।१३
अश्वष्थामेति विख्यातः स बभूव क्षितौ मुने।
प्रवीरः कञ्जपत्राक्षः शत्रुपक्षक्षयङ्कर ।१४

भगवान् शिवका दर्शन कर ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्य ने हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ जोड़ते हुए नम्र भावनासे शिवको प्रणाम किया।८ द्रोण की स्तुति से तथा घोर तपश्चर्यासे भक्तवत्सल शिव ने प्रसन्नता पूर्वकद्रोणसे कहा-'जो चाहो वरदान माँगों।९। शिवके ऐसे आनन्दप्रद वचनोंको सुनकर द्रोणाचार्य ने नम्रता से प्रार्थना की कि सभी के द्वारा अजेय और अतुल बल शाली अपने ही अंश से उत्पन्न होने वाले पुत्र का वर दीजिये ।।१० हे तात हे मुनिवर द्रोणाचार्य की इस प्रार्थना को सुनकर शिव ने कहा ऐसा होगा।'बस इतना कहनेके उपरान्त कौतुक करनेवालेसुखदायी शिवअंतर्धान होगये ।११।तबतो आचार्य द्रोण का संशय मिट गया और अत्यन्त प्रसन्नता के साथअपने निवास स्थानपर पहुँचकर शिवसे प्राप्त इस वरदानका समस्त वृत्तान्त अपनी पत्नी को कह सुनाया ।१२। इसके अन्तर समय आने पर जगत्के संहारक प्रभु शिव अपने अंशसे आचार्य द्रोणके यहाँ महाबलशाली पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए।१३। हे मुनिराज ! वह कमल दलके तुल्य सुन्दर नेत्र वाले और शत्रुओं के बलके नाश करने वाले महाबली शङ्कर संसारमें अश्वत्थामा—इस नाम से विख्यात हुए ।।१४।।

यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च ।
सहायकृद्बभूवाथ कौरवाणां महाबलः ।१५
यमाश्रित्य महावीरं कौरवाः सुमहाबला ।
भीष्मादयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम् ।१६
यद्भयात्पाण्डवाः सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः ।
आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः ।१७

कृष्णोपदेशतः शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् ।
प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ।१८
अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने ।
तथापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ।१९
विनाश्य पाण्डवसुताञ्शिक्षितानपि यत्नतः ।
कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्य्यबलः परैः ।२०
पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम् ।
रथेनाच्युतवतं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत् ।२१

इस महान् बलशाली अश्वत्थामा ने महाभारत के युद्ध में अपने पिता की आज्ञा से बड़ी ख्याति के साथ कौरव कुल के पक्ष की सहायता की थी ॥ १५ ॥ इसी महावीर अश्वत्थामा का आश्रय पाकर पराक्रमी कौरव और पितामह भीष्म आदि सभी देवों के द्वारा भी अजेय हो गये थे ॥ १६ ॥ जिस के भय होने के कारण बड़े भारी शूरवीर तथा परम विद्वान् पाण्डव कौरवों के जीत लेने में एकदम असमर्थ हो गये और प्रायः नष्ट भ्रष्ट से हो गये थे ॥ १७ ॥ तब भगवान् श्री कृष्ण के उपदेश को प्राप्त कर अर्जुन ने भगवान् शिव की अत्यन्त उग्र तपस्या की और उनकी कृपा से अनेक अमोघ अस्त्र प्राप्त कर कौरवों पर विजय प्राप्त की ॥१८॥ हे मुनीन्द्र ! अश्वत्थामा ने साक्षात् भगवान् शङ्कर के अंश से उत्पन्न होकर कौरवों की भक्ति के वश में आकर संग्राम में अपने प्रताप का वैभव दिखलाया था ॥ १९ । महान् बलशाली कृष्ण आदि शत्रुओं के द्वारा भी बड़े यत्न के साथ शिक्षा लिये हुए पाण्डवों के पुत्रों को अश्वत्थामा से मार गिराने पर भी उसकी बल-शक्ति को हटाया न जा सका था ॥२०॥ अपने मृत पुत्रों के शोक से अत्यन्त व्याकुल अर्जुन को श्री कृष्ण के साथ रथ पर सवार होकर, दौड़कर आते हुए देखकर अश्वत्थामा भाग गया ॥ २१ ॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्य्यसृजत्स हि ।
ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् ।२२

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोऽर्जुनः क्लेशसंयुतः ।
उवाच कृष्ण विक्लान्तो नष्टतेजा महाभय ।२३
किमिदं स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेद्म्यहम् ।
सर्वतोमुखमायाति तेजश्चद सुदुःसहम् ।२४
श्रुत्वार्जुनवचश्चेद स कृष्णः शैवसत्तमः ।
दध्यौ शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरान् ।२५
वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्मस्त्रं महोल्बणम् ।
न ह्यस्यान्यतम किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ।२६
शिव स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुं भक्तरक्षकम्।
येन दत्त हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्यकर परम् ।२७
जह्यस्त्रतेज उन्नद्धं त्वं तच्चैवास्त्रतेजसा ।
इत्युक्त्वा च स्वय कृष्णः शिवं दध्यौ तदर्थकः ।२८

उस समय भागकर जाते हुए भी अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिर नाम वाला अस्त्र अर्जुन पर छोड़ दिया था कि जिसके परम प्रचण्ड तेज का प्रकाश समस्त दिशाओं में प्रकट हो गया ।२२। उस वक्त प्राणों पर आई हुई उस विपत्ति को देखकर अर्जुन भय से व्याकुल हो उठा और उसके तेज से दुःखित होकर उसने श्रीकृष्ण से कहा ।२३। अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह कहाँ से किसका अति दुस्सह तेज सब ओर से चला आ रहा है और क्या है ? मैं इसको अभी तक नहीं समझ पा रहा हूँ ।२४। नन्दीश्वर ने कहा—उस समय कातर अर्जुन के इन खेद भरे वचनों को सुनकर पार्वती के सहित शङ्कर का ध्यान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा ।२५।—हे अर्जुन ! तुम जानते हो, यह आचार्यवर द्रोण के आत्मज अश्वत्थामा के द्वारा छोड़ा हुआ अत्यन्त तीव्रतम ब्रह्मास्त्र है संसार में इसके समान अन्य कोई भी अस्त्र इतना महान् घातक नहीं है।२६।अब तुम्हारा यही कर्त्तव्य है कि बहुत शीघ्र अपने प्रभु और भक्तवत्सल शिवजी का आदर सहित ध्यान-स्मरण करो। उन्होंने तुम्हें भी समस्त कार्य पूर्ण करने वाला महान् अस्त्र प्रदान किया हैं।२७।अब तुम अपने उसी शैव अस्त्र से इस ब्रह्मास्त्र के तेज का निवारण कर सकते हो।

यह कहते हुए श्रीकृष्ण भी स्वयं इनकी रक्षा के लिये श्री शिव का मन में ध्यान करने लगे ।२८।

तच्छ्रुत्वा कृष्णवचनं पार्थः स्मृत्वा शिवं हृदि ।
स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रं ततो मुने ।२९
यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघश्चाप्रतिक्रियम् ।
शैवास्त्रतेजसा सद्यः समशाम्यन्महामुने ।३०
मंस्था मा ह्येतदाश्चर्यं सर्वचित्रमये शिवे ।
यः स्वशक्तयाऽखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यज ।
अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः ।३१
शैवं न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने ।३२
अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपाण्डवम् ।
उत्तरागर्भगं बाल नाशितुं मन आदधे ।३३
ब्रह्मास्त्रमनिवार्य्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् ।
उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः ।३४

हे मुने ! इस प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आज्ञा पाते ही शिव के चरणों का स्मरण अपने मनमें किया और उनको प्रणाम करते हुए जल का स्पर्श करके शिवके द्वारा प्रदत्तशैवास्त्र को छोड़ दिया । ९। हे महामुने ! ब्रह्मशिर अस्त्र का तेज यद्यपि कभी भी निष्फल होने वाला नहीं थातो भी उस शैवास्त्र के तेज के द्वारा वह उसी समय शान्त हो गया था ।३०। इस प्रकारकी अत्यन्त विचित्र लीलाओंके दिखाने वाले श्रीशिव के विषयमें कभी भी आश्चर्य नहीं समझना चाहिए । वेपरम अजेयहैं और अपनी अजित एवं अपरिमित शक्तिके द्वारा इस समस्त ससारकीउत्पत्ति तथा नाश कियाकरते हैं।३१।हे मुनीश्वर ! उस वक्त शिव की अंश शक्ति से समुत्पन्न अश्वत्थामा ने शिव की इच्छा को जानकर सन्तुष्ट होते हुए उस शैवास्त्र का छेदननहीं किया ।३२। इसके अनन्तर आचार्य द्रोण के आत्मज अश्वत्थामाने समस्त संसार को पाण्डवहीनकर देने की इच्छासे उत्तरा के गर्भमें रहनेबालेबालक के संहार करने का विचार मन में स्थिर किया ।३३। इसके अनन्तर अश्व-

त्थामा ने परम कान्तिसे युक्त तथा अन्य किसी भी अस्त्रने न हटाये जानेकी शक्ति रखने वाले उस ब्रह्मास्त्रका उत्तरा के गर्भपर प्रहार करदिया।३४।

ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा ।
कृष्ण तुष्टाव लक्ष्मीश द्रह्यमाना तदस्त्रतः ।३५
ततः कृष्णः शिवं ध्यात्वा हृदा स्तुत्वा प्रणम्य च ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ।३६
स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा ।
सुदर्शनेन तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया ।३७
स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेणा ह ।
कृष्णेन चरितं ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत् ।३८
ततः स कृष्णः प्रीतात्मा पाण्डवान्सकलानपि।
अपातयत्तदध्रयोस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् ।३९
अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च ।
नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामाऽनुगृह्य च ।
इत्थं महेश्वर स्तात चक्रे लीलां परां प्रभुः ।
अवतीर्य्य क्षितो द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम ।४१
शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ।४२
अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितः शङ्करप्रभोः ।
सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः ।४३
य इदं श्रृणुयाद् भक्त्या कीर्त्येद्वा समाहित।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टमन्ते शिवपुरं व्रजेत् ।४४

इस ब्रह्मास्त्र के तेज से अत्यन्त व्याकुल मन वाली अर्जुन के पुत्र की भार्या उत्तरा जलकर भस्मीभूत होती हुई लक्ष्मी पति भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी।३५।उत्तरा की स्तुति से सावधान होकर श्रीकृष्ण ने मन में शिवका प्रणामपूर्वक ध्यान एवं स्तवन करतेहुए यह समझ लियाकियह

पाण्डव कुल के पूर्ण विनाश करने के लिये अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र का प्रभाव है ।३६। उस समय श्रीशिव की ही आज्ञा से श्रीकृष्ण ने इन्द्र द्वारा अपनी सुरक्षा के लिये प्राप्त सुदर्शन चक्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा की, जिस सुदर्शन चक्र का भी अति दुस्सह तेज था ।।३७।। यह समस्त चरित्र समझकर शिव के परम भक्त श्रीकृष्ण ने उत्तरा के गर्भ को शिवाज्ञा से अपना ही रूप बना दिया तो वह ब्रह्मास्त्र शनैःशनैः शान्त हो गया ।३८। इसके पश्चात् शिव के परम भक्त श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर सब पाण्डवों को अश्वत्थामा की प्रसन्नता प्राप्त करके के लिये उसके चरणों में प्रणिपात के लिये गिरने की प्रेरणा दी ।३९। इससे आचार्य द्रोण के पुत्र शिव के अंशावतारी अश्वत्थामा बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण पर कृपा करके उन्हें अनेक उत्तम वरदान भी दिये ।४०। हे तात ! हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से जगत् के प्रभु शिव ने अश्वत्थामा के रूप में अवतीर्ण होकर पृथ्वीतल में अनेकानेक अति अद्भुत लीलाएँ दिखलाई थीं ।४१। महान् बल तथा प्रबल पराक्रम वाले अश्वत्थामा का अवतार ग्रहण करने वाले शिव त्रिभुवन को परम सुखदायी अब तक भी गङ्गा के तट पर विराजमान हैं ।४२। मैंने यह शिव के अश्वत्थामा नाम वाले अवतार का चरित्र आपको सुना दिया, यह समस्त सिद्धियों का दाता और भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाला है ।४३। जो भी कोई मनुष्य इस पावन चरित्र को चित्त को सावधान करके सुनता है तथा भक्ति की भावना से इसका कीर्तन करता है । वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि प्राप्त कर अन्तिम काल में भगवान् शङ्कर के लोक चला जाता है ।४४।

।। द्वादश ज्योतिर्लिंगावतार का वर्णन ।।

अवताराञ्छृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्पराम् ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै परमोत्तमकान्मुने ।१
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करः ।
वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ।२
सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुन ।

उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ।३
वैद्यनाथश्चिताभूमो नागेशो दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ।४
अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः ।
सर्वानन्दकर पुंसा दर्शनात्स्पर्शनान्मुने ।५
तत्राद्यः सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयङ्करः ।
क्षयकुष्टादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ।६
शिवावतारः सोमेशो लिङ्गरूपेणा सस्थित ।
सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा ।७

नन्दीश्वर ने कहा-हे मुने ! अब आप मुझ से सब में व्यापक रहने वाले ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप वाले बारह उत्तम अवतारों की की कथा सुनिये ।१। इन अवतारों के पीठ-स्थान इस प्रकार से हैं-हिमाचल पर केदारनाथ, डाकिनी में श्री भीमशङ्कर, काशीपुरी में विश्वनाथ, गौतमी नदी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर, सौराष्ट्र देश में सोमनाथ स्वामी हैं । श्री शैल में मल्लिकार्जुन का स्वरूप है, उज्जयिनी में महाकालेश्वर, ओङ्कार में अमरनाथ, चिताभूमि में वैद्यनाथ भगवान्, दारुक वन में नागेश्बर, सेतुबन्ध में श्री रामेश्वर तथा शिवालय में घुश्मेश्वर अवतार है ।२-३-४। हे मुने ! परमेश भगवान् शिव के ये उक्त द्वादश अवतार हुए हैं । जिनके दर्शन एवं स्पर्श करने से मनुष्यो को परम आनन्द तथा सुख-सौभाग्य का लाभ होता है ।५। हे मुनिवर ! इन सब में प्रथम श्री सोमनाथ चन्द्रदेव के दुःख का नाश करने वाले हैं । इनके अर्चन करने से कुष्ठ और क्षय रोग का सर्वथा नाश हो जाता है ।६। श्री सोमनाथ इस पावन नाम से होने वाला अवतार सोराष्ट्र देश में हुआ था जो कि वहाँ लिङ्ग के स्वरूप में विराजमान है । इनका सर्वप्रथम पूजन चन्द्रदेव ने ही किया था ।७।

चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशम् ।
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।८
सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम् ।
दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्ति मुक्ति च विन्दति ।९

मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारः शङ्करस्य वै ।
द्वितीयः श्रीगिरौ ताम भक्ताभीष्टफलप्रदः ।१०
संस्तुतो लिङ्गरूपेण सुतदर्शनहेतुतः ।
गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने ।११
ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं तद्दर्शनात्पूजनान्मुने ।
महासुखकरं चान्ते मुक्तिदं नात्र संशयः ।१२
महाकालाभिधस्तातावतारः शङ्करस्य वै ।
उज्जयिन्यां नगर्य्यां च बभूव स्वजनावनः ।१३

वह चन्द्र कुण्डके नाम से एक जलाशयहै । चतुर लोग वहाँ उस कुंड में स्नान करके समस्त रोगों से मुक्ति पा जाया करते हैं।८।श्रीसोमनाथ का लिङ्ग स्वरूप साक्षात् श्रीशिवकेआत्मरूप है । इस महाङ्गिके दर्शनसे पापों से छुटकारा पाकर मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति कर लेतेहैं ।९। हे तात!भगवान् शङ्कर का द्वितीय अवतार मल्लिकार्जुन नाम वालाहै और वह श्रीगिरि पर्वत पर विराजमान हैं तथा अपने भक्तजनों के मनचाहेफल प्रदान किया करते हैं ।१०।हे मुनिवर ! पुत्रके मुख को देखने के लिये वहाँ लिङ्ग के स्वरूपमें ही भगवान् शिव की स्तुति की गई थी।वहांसे फिरशिव प्रसन्नता के साथ कैलाश पर्वत के अपने निवास स्थानको चले गये हैं।११। हे मुने ! यह ही द्वादश अवतारों में द्वितीय ज्योर्लिङ्ग है । इसके दर्शन से महान् सुख और जीवन के अन्तिम काल में निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त होता है ।१२। हे मुनिराज ! हे तात ! अपने परिवार की रक्षा करने के लिये उज्जयिनी में महाकालेश्वर नाम वाला शिव का अवतार हुआ है ।१३।

दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम् ।
उज्जियिन्यां गतं विप्रद्वेपिणं सर्वनाशनम् ।१४
वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम् ।
भस्मसाकृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम् ।१५

तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्ल्लिङ्गस्वरूपतः ।
देवैः स प्रार्थितोऽतिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः ।१६
महामालाह्वयं लिङ्ग दृष्ट्वाऽभ्यर्च्य प्रयत्नतः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ।१७
ओंकारः परमेशानो धृतः शम्भो परात्मनः ।
अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः ।१८
विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिङ्गोत्पार्थिवान्मुने ।
प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ।१९
देवैः संप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदो लिङ्गरूपो वै भक्तवत्सल ।२०
प्रणवे चैव ओंकारनामासील्लिंगमुत्तमम् ।
परमेश्वरनामाऽऽसीत्पार्थिवश्च मुनिश्वरः ।२१

महाकालेश्वर शिव ने उज्जयिनी में वेद एवं विप्रों से द्वेष करनेवाले आये हुए दुरात्मा दूषण नाम वाले दैत्य को एक हूँकार से ही नष्ट करदिया था। यहाँ वह वेद-विप्रके पुत्र का वध करने के लिये आया था जोकिरत्न माल देश में भगवान् शङ्कर के ध्यान में सर्वदा निरत रहा करता था।१४।१५। उसी समयमें दैत्य का संहार कर भक्तवत्सल शिवदेवगण से प्रार्थित होनेपर महाकालेश्वर नाम से ज्योतिर्लिङ्ग के स्वरूप में उज्जयिनीनगरीमें विराजमान हुए हैं।१६।उज्जयिनीमें स्थित महाकालेश्वरके दर्शनका महान् फल होता है । जो इस ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन तथा सयत्न समर्चनकरताहै, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथ पाकर अन्त में निश्चय ही पर गतिकोप्राप्तकिया करता है।१७।शङ्कर का चतुर्थ अवतार ओङ्कारनाथ नाम वालाहै । यहभी भक्तोंके समस्त अभीष्ट फलों के प्रदान करने वाले हैं और अन्त में सद्‌गति दिया करते हैं ।१८। हे मुनिवर ! ओङ्कारनाथ पार्थिव लिङ्ग के अनुसार सविधि भक्तिपूर्वकसंस्थापित महादेव ने प्रकट होकर विन्ध्यके मनोरथोंको पूर्ण किया ।१९।देवताओं से प्रार्थना किये जाने पर वहाँ शिव ने अपने दो

स्वरूप धारण किये थे। भक्तों पर प्रेम करने वाले लिङ्ग रूप में विराजमान शिव भुक्ति-मुक्ति के देने वाले हैं ।२०। हे मुने ! ओङ्कार नाम प्रणव में सर्वोत्तम लिङ्ग है और वहाँ परमेश्वर नाम वाले पार्थिवा रूप में प्रकट हुए हैं ।२१।

भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेया योऽपि ष्टोर्टचितो मुने ।
ज्योतिर्लिगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ।२२
केदारेशोऽवतारस्तु पञ्चमः परमः शिवः ।
ज्योतिर्लिगस्वरूपेण केदारे सस्थितः स च ।२३
नरनारायणा रव्यौ यावतारौ हरेमुने ।
तत्प्रार्थितः शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ।२४
ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसज्ञकः ।
भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि ।२५
अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः ।
सर्वकामप्रदस्तात सोऽवतारः शिवस्य वै ।२६
भीमशङ्करसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोर्महाप्रभोः ।
अवतारो महालीलो भीमासुरविनाशनः ।२७
सुदक्षिणाभिध भक्तङ्कामरूपेश्वरं वृषम् ।
यो ररक्षाभ्दुतं हत्वाऽसुरं त भक्तदुःखदम् ।२८
भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां सस्थितः स्वयम् ।
ज्योतिर्लिङ्गाय्वरूपेण प्राथितस्तेन शङ्करः ।२९

हे मुने ! शङ्कर के इस स्वरूप के दर्शन तथा पूजन से भक्तों के सभी अभीष्टफल प्राप्त होतेहैं। मैंने-तुम्हारे सामनेइस महान्दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन सुना दिया है।२।शिव का पञ्चम ज्योतिर्लिङ्ग केदारेश्वर के नाम से अवतीर्ण होकर केदारनाथ नामक स्थान में विराजमान है ।२३। हे मुनिवर ! भगवान् विष्णु के नर ओर नारायण नाम वाले अवतारों द्वारा हिमाचल पर शिव की प्रार्थना की गई थी।२४।इनके पूजित ही शिव केदारनाथ नाम से विख्यात हुए हैं । इनके दर्शन तथा अर्चनसे भक्तजन के सभी अभीष्ट पूर्ण हो जाते हैं ।२५। हे तात ! यह शङ्कर का अवतार सबका स्वामी एव

समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला है और इस खण्ड का प्रभु है ।२६। महाप्रभु शङ्कर का षष्ठ अवतार भीमशंकर नाम वाला है जो अनेक लीलाओं के करने वाला तथा भीमासुर का वध करने वाला था ।२७। शिवभक्तों को सताने वाले इस दैत्य का वध कर कामरूप देश के सुदक्षिण नाम वाले राजा की भगवान् शिव ने इस अवतार में रक्षा की थी ।२८। तभी से शिव भीमशंकर इस नाम से विख्यात होकर डाकिनी में अपने भक्त सुदक्षिण नृप से स्तुति किये जाने पर स्वयं लिङ्गरूप में वहाँ विराजमान हो गये ।२९।

विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः ।
सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने ।३०।
पूजितः सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्ण्वादिभिः सदा ।
कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ।३१।
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः ।
स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ।३२।
काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः ।
निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ।३३।
त्र्यम्बकाख्योऽवतारो यः सोऽष्टमो गौतमीतटे ।
प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः ।३४।
गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः ।
स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया ।३५।
तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शादर्शनाच्च महेशितुः ।
सर्वे कामाः प्रसिध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो ।३६।
शिवानुग्रहतस्तत्र गंगानाम्ना तु गौतमी ।
संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शंकरप्रिया ।३७।

हे मुने ! शिवका सप्तम अवतार काशी में विश्वेश्वर इस नाम से हुआ था जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्वरूप है और भुक्ति-मुक्ति का प्रदान करने वाला है ।३०. उस समय भगवान् विष्णु आदि समस्त देवगणने उनकी स्तुति की । वह कैलाशके स्वामी यहाँ भैरव के एक रूप से स्थित हुए ।३१। और

एक अन्य ज्योतर्लिगके स्वरूप से वहाँ विराजमान हैं जो मुक्ति प्रदान करने वाले स्वयं सिद्ध स्वरूप एवं अपनी पुरी के प्रभु हैं।३२। काशीपुरी तथा वहाँ के स्वामी भगवान् विश्वनाथ की भक्तिभाव से अर्चना करने वाले और उनके पावन नाम का जप करने वाले पुरुष कर्म बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष पद के अधिकारी हो जाते हैं ।३३। शिव का त्र्यम्बक-इस नाम वाला अष्टम अवतार गौतम ऋषि की प्रार्थना से गौतमी नदी के तट पर हुआ है ।३४। शशि शेखर शिव गौतम मनिकी प्रेम-भक्ति और कामनासे समन्वित प्रार्थनाके होने के कारण ही ज्योतिलिंगके सहित अचल होकर वहीं विराजमान हुएहैं ।३५ यहाँ पर भगवान् शिवके दर्शन और स्पर्श न करने से मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनायें परिपूर्ण हो जाती हैं और अन्त समय में मोक्षपद प्राप्त होता है ।३६। गौतम मुनिकी उत्कृष्ट प्रीतिके कारणही शंकरभगवान्की कृपासे वहां गौतमी गंगा के नाम वाली परम प्रसिद्ध एवं अति पावन नदी स्थित रहती है।३७।

वैद्यनाथवतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः।
आविर्भूतो रावणार्थ बहुलीलाकरः प्रभुः ।३८।
तदानयनरूप हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः ।
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः ।३९।
वंद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये ।
दर्शनात्पूजनाद् भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि ।४०।
वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम् ।
पठतां शृण्वतां चारि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ।४१।
नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः ।
अविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदः सदा ।४२।
हत्वा दारुकनामानं राक्षसं धर्मघातकम् ।
स्वभक्त वैश्यनायं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम् ।४३।

शिव का नवम अवतार वैद्यनाथ के नाम वाला हुआ है जो लकेश्वर रावणके हित सम्पादनके लिये नाना प्रकारकी लीलायें प्रकट करने वाले थे ।३८। शिवभक्त रावण उन्हें अपने साथलिये जानेकी इच्छाकर रहा था तब

उस समय बहाना करके चिता भूमि में वे ज्योतिर्लिंग के स्वरूप से स्थितहो गये ।३९। उस स्थान पर भगवन् शिव वैद्यनाथेश्वरके नामसे सर्वत्र विख्यात होगये जिनके भक्तिपूर्वक दर्शन करनेपर तथा पूजन करनेपर अपनीपूर्ण भक्ति एवं मुक्ति वे प्रदान करते हैं ।४०। हे मुनीश्वर ! वैद्यनाथेश्वर शङ्कर अपने इस अनुशासनयुक्त महात्म्य को पठन एवं श्रवण करने वाले पुरुष का भुक्ति तथा मुक्ति दोनों ही प्रदान किया करते हैं ।४१। भगवान् का दशम अवतार नागेश्वर नाम से प्रसिद्ध है जो अपने भक्तजनोंको अर्थ और दुष्टजनोंको दण्ड देने के लिये ही प्रकट हुए थे ।४२। इस अवतार में शिव ने दारुक दैत्यका बध कर सुप्रिय नाम वाले अपने परम भक्त एक वैश्य की रक्षा की थी ।४३।

लोकानामुपकारार्थ ज्योतिर्लिगस्वरूपधृक् ।
सन्तस्थौ साम्बिकः शंभुर्बहुलीलाकरः परः ।४४।
तद् दृष्टवा शिवलिंगं तु मुने नागेश्वराभिधम् ।
विनश्यन्ति द्रुतं चार्च्य महापातकराशयः ।४५।
रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः ।
रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने ।४६।
ददौ जयवरं प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः ।
अविर्भूतः स लिंगस्तु शंकरो भक्तवत्सलः ।४७।
रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः ।
सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामसंसेवितो मुने ।४८।
रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ।४९।

नाना प्रकार की अद्भुत लीलायें करने वाले जगदम्बा भगवानोकेसहित शिव ज्योतिर्लिग का स्वरूप धारण करके संसार के मनुष्योंकी भलाईके लिए वहाँ विराजमान हुए हैं ।४४। हे मुने ! नागेश्वर नाम वाले भगवान् शिवके लिंग का दर्शनार्चन करने से बड़े से बड़े महान् पातकों के समूहभी शीघ्र ही समूल नष्ट हो जाया करते हैं४४।हे मुनिराज ! भगवान शिव का रामेश्वर नाम वाला ग्यारहवाँ अवतार हुआहैजिसको श्रीरामचन्द्र भगवानने स्थापित

किया था और उनका प्रिय कार्य करने वाले हुए हैं ।।४६।। ज्योतिलिंग के सुन्दर स्वरूप में संस्थित भक्तवत्सल भगवान् शम्भु श्री रामचन्द्र जी की भक्ति-भावना से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने श्रीराघवेन्द्र को विजय प्राप्त करने का वरदान दिया था ।४७। हे मुने ! सेतुवन्ध में भगवाण् श्रीरामचन्द्र ने उनकी अति सेवा की ओर उन्हीं की प्रार्थना से भगवान् शङ्कर ज्योतिलिंग के स्वरूप में विराजमान हुए हैं ।।४८।। इस भूमिमण्डल में श्रीरामेश्वर की बहुत अधिक तथा अत्यन्त अद्भुत महिमा है । रामेश्वर प्रभु भोग-मोक्ष और मन की सम्पूर्ण कामनाओं को पूरे करने वाले भक्तवत्सल हैं ।४९।

त च गंगाजलेनैव स्नानपयिष्यति यो नरः ।
राभेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ।५०।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्लभानपि ।
अतः प्राप्य पर ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात् ।५१।
घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशः शंकरस्य हि ।
नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ।५२।
दक्षिणस्यां दिशि मुने देवशैलसमीपतः ।
आविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभु ५३।
सुदेह्यमारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने ।
तुष्टस्तद्भक्तितः शम्भर्योऽरक्षद्भक्तवत्सलः ।५४।
तत्प्रार्थितः स वै शम्भुस्तडागे तत्र कामदः ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः ।५५।
तं दृष्ट्वा शिवलिंग तु समभ्यर्च्य भक्तितः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्ति च विन्दति ।५६।

जो मनुष्य श्रीरामेश्वर महादेव को दृढ़ भक्ति की भावना से गंगाजल से स्नान कराता है वह निश्चय ही जीवन्मुक्त हो जाता है ।५०। ऐसा पुरुष संसार में देव दुर्लभ परम सुख-सौभाग्यका उपभोगकर अत्यन्त ज्ञानकी प्राप्ति करता है और अन्त में उसका मोक्ष हो जाता है ।५१। भगवान् शिव का बारहवाँ अवतार घुश्मेश्वर नाम वाला हुआ है । यह अवतार अपने अनन्यभक्तो के ऊपर अत्यन्त दया करने वाला हुआ है और इसने घुश्माको महान् आनन्द

का प्रदान किया है ।५२। हे मुनीश्वर ! दक्षिण दिशा में एक देवशैल है, वहाँ पर ही एक सरोवर के निकट महाप्रभु शिव प्रकट हुए हैं। जिन्होंने घुश्मा का प्रिय कार्य किया था ।५३। हे मुने ! भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् शङ्कर ने सुदेहा नामक दैत्य के द्वारा मारे हुए घुश्मा के पुत्र के प्राणों की रक्षा भक्ति से सन्तुष्ट होकर की था ।५४। घुश्मा की प्रार्थना पर कामना देने वाले प्रभु शिव वहाँ एक सरोवर के समीप में ही घुश्मेश्वर नाम से ज्योतिर्लिङ्ग के स्वरूप में स्थित हो गये ।५५। इन ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप शिव के दर्शन एवं भक्ति समन्वित समर्चन से मनुष्य इहलौकिक सम्पूर्ण सुखों का आनन्दोपभोग करते हुए आगे चलकर मोक्षपद की सद्गति का लाभ प्राप्त किया करता है ।५६।

इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिङ्गावली मया ।
द्वादशप्रमिता दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।५७।
एतां ज्योतिर्लिगकथां यः पठेच्छृणुयादपि ।
मुच्यते सर्वपापभ्यो भुक्ति मुक्ति च विन्दति ५८।
शतरुद्राभिधा चेयं वर्णिता संहिता मया ।
शतावतारः सत्कीर्तिः सर्वकामफलप्रदा ।५९।
इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ।
सर्वान्कामनवाप्नोति ततो मुक्ति लभेद् ध्रुवम् ।६०।

हे मुनिराज ! मैंने तुम्हारे समक्ष में इन द्वादश संख्या वाले ज्योतिर्लिगों का पूरा वर्णन कर दिया जिनके दर्शन स्पर्शन श्रवण और पठन से भुक्ति मुक्ति दोनों की प्राप्ति निस्सन्देह ही होती है ।५७। जो कोई मनुष्य संसार में इस ज्योतिर्लिग की कथा को सुनता व सुनाता है वह समस्त पापों से छुटकारा पाकर भोग मोक्ष पाता है ।५८। हे मुने ! मैंने अब यह शतरुद्र संहिता का वर्णन सुना दिया है जो कि शिव के सौ अवतारों की कीर्तिस्वरूप है और सब मनोरथों का पूरा करने वाली होती है ।५९। जो पुरुष पूर्णतया सावधान चित्त होकर इस शतरुद्र संहिता को पढ़ता अथवा श्रवण करता है वह अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर निश्चय ही पीछे मुक्ति को प्राप्त करता है ।।६०।।

कोटिरुद्र संहिता

॥ द्वादश ज्योतिर्लिंगों का माहात्म्य ॥

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनः
तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ।१।
कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं—
शशांककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् ।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु—
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितमहो मङ्गलम् ।२।
सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया ।
शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ।३।
पुनश्च कथ्यतां तात शिवमहात्म्यमुत्तमम् ।
लिंगसम्बन्धिप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ।४।
शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्ताःस्मो वय प्रभो ।
शैवं यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ।५।
पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तीर्थे तीर्थे शुभानि हि ।
अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ।६।
तानि तानि च दिव्यानि लिङ्गानि परमेशितुः ।
व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया ।७।

समस्त प्रकार के विकारों से रहित, स्वकी भुवनमोहिनी माया से सब भुवनों को धारण करने वाले और जगदम्बा पार्वतीको अपने आधे अङ्ग में धारण करते हुए तेजमय स्वरूप वाले भगवान् शङ्करको सर्वदा प्रणाम करता हूँ जिनके करुणापूर्ण कटाक्षसे स्वर्ग तथा अपवर्गके सम्पूर्ण वैभव उनके भक्तों को प्राप्त हो जाया करते हैं और योगीजन जिनका पूर्ण बोध सुख सर्वदा अपने हृदय में देखा करते हैं ।१। आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक इन

तीनों तापों के संताप को शान्त कर देने वाले कृपा से परिपूर्ण सुन्दर दृष्टि-पात करने वाले, स्मित से मनोहर मुख कमल वाले, चन्द्रदेव की कला के परमोज्जवल स्वरूपयुक्त समस्त सुखों के दाता, स्फूर्तिमान्, सच्चिदानन्द स्वरूप तथा भवानीकी भुजाओं से अलिंगित भगवान् शङ्कर का वपु हमारा सर्वदा मंगल करे।२। ऋषियों ने कहा-हे सूतजी ! आपने लोकों की भलाई के लिए बहुत ही अच्छी बात कहने की कृपा की है। अब यह प्रार्थना की है कि आप अनेक सुन्दर आख्यानों से पूर्ण भगवान् शिव के अवतारों का माहात्म्य हमको बताइये।३। हे तात ! आप भगवान् शिवके भक्तों में सर्व श्रेष्ठ है और परम धन्य हैं। भगवान् शङ्कर के लिंगस्वरूप से सम्बन्धित माहात्म्यका वर्णन विस्तृत रूप से करने की कृपा करें ।।४।। हे प्रभो ! आपके मुखाम्बुज से विस्तृत शम्भु के यशो मृत का श्रवणों द्वारा पान करते हुए हमारे मनको तृप्ति नहीं हो रही है अतएव आपसे निवेदन है कि उसे पुनः सुनाने का अनुग्रह करें।५। इस भूमण्डल में प्रत्येक तीर्थ में जहाँ पर भी जितने शिवके शुभ लिंग स्थापित किये हैं तथा अन्य स्थलों में जितने विख्यात शिव लिंग विराजमान हैं उन समस्त परमेश महेश के दिव्य ,लगों का आपको पूर्ण ज्ञान है। हे व्यासजी के शिष्य ! आप सब लोकों के कल्याण की कामना से ही हमारे समक्ष में इस समय वर्णन करने का अनुग्रह करें।।६-७।।

साधु पृष्ठमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया।
कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः।८।
सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते।
सर्वा लिङ्गमयी भूमिः सर्वं लिङ्गमयं जगत्।९।
लिंगयुक्त नि तीर्थानि सर्वलिंगे प्रतिष्ठितम्।
सख्या न विद्यते तेषां तानि किञ्चिद् ब्रवीम्यहम्।१०।
यत्किञ्चिद् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्।
तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किञ्चन।११।
तथापि श्रुतां प्रीत्या कथयामि यथा श्रुतम्।
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह।१२।

पाताले चापि वर्थन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ।
सर्वत्र तूज्यते शम्भुः सदेवासुरमानुषैः ।१३।
त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरेमानुषम् ।
अनुग्रहाय लोकानां लिङ्गरूपेण सत्तमाः ।१४।

श्री सूतजी ने कहा–हे मुनिश्रेष्ठ ! इस समय आप लोगों ने समस्त लोकों के हित की भावना लेकर अच्छा प्रश्न किया है हे ब्राह्मणो ! मुझे आप लोगों से बहुत ही स्नेह है अतः मैं सब कुछ सक्षिप्त रूप से आपके सामने वर्णन करता हूँ ।८। हे मुनीश्वर ! भगवान् शिव के समस्त लिंगों की संख्या बतला देना असम्भव है और उन्हें पूर्णतया बतला देने की सामर्थ्य किसी में नहीं हो सकती है क्योंकि सारा भूमण्डल एवं जगत् लिंगमय ही है ।९। समस्त तीर्थ लिंगमय हैं और सभी कुछ लिंग के द्वारा ही प्रतिष्ठित है तथा लिंग में ही स्थित है । उनकी संख्या वर्णनातीत है तथापि मैं दिव्य ज्योतिर्लिंगों का वर्णन करता हूँ ।१०। इस जगतीतल में जो कुछ भी दर्शनीय पदार्थ हैं तथा जिनका भी वर्णन किया जाता है और स्मरण किया जाता है वह सब भगवान् शङ्कर का ही स्वरूप है । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।११। हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! तो भी पृथ्वी तल में जितने दिव्य लिंग हैं उनका वर्णन अपने श्रुत के अनुसार मैं करता हूँ। आप प्रेमपूर्वक सुनो ।१२। भगवान् शङ्कर के ज्योतिर्लिंग पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल में सर्वत्र विद्यमान हैं और वे देवे, असुर तथा मनुष्यों के द्वारा सभी स्थलों में पूजित एवं वन्दित होते हैं ।१३। हे ऋषिश्रेष्ठ ! देव, दैत्य और मानवों के सहित य त्रिभुवन महेश्वर से व्याप्त है और भगवान् शङ्कर संसार के कल्याण के लिये अनुग्रह करते हुए सर्वत्र लिंग स्वरूप में विराजमान रहते हैं ।४।

अनुग्रहाय लोकानां लिङ्गानि च महेश्वरः ।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा ।१५।
यत्र यत्र यदा शम्भुर्क्त्वा भक्तैश्च संस्मृतः ।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ।१६।
लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चात्यकल्पयत् ।
तल्लिङ्गं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ।१७।

पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तेषां संख्या न विद्यते ।
तथापि च प्रधानानि कथ्यते च मया द्विजाः ।१८।
प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ।१९।
ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम ।
तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पाप व्यपोहति ।२०।
सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैदे मल्लिकार्जुनम् ।
ऊज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ।२१।

भगवान् महेश्वर लोक कल्याणार्थ अनुग्रह करके समस्त तीर्थ स्थलों में विविध प्रकार के लिंगों का स्वरूप धारण करते हैं ।१५। जब जिस समय जहाँ जहाँ पर शिव भक्तों ने अपने अभीष्ट देव शिव का स्मरण किया है उसी समय वहाँ-वहाँ पर अवतार लेकर भक्त-कार्य पूर्ण करके महेश्वर विराजमान हो गये हैं ।१६। सांसारिक लोगों के उपकार करने के लिये महेश्वर ने अपना लिंग स्वरूप प्रकट कर दिया है । उसी लिंग प्रतिमा का समर्चन कर संसार में मनुष्य अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त किया करते हैं ।१७। हे द्विजवरो ! यद्यपि इस पृथ्वी तल पर विराजमान लिण भी गणना करने के योग्य नहीं हैं तथापि मैं कतिपय प्रमुख लिंगों का वर्णन करता हूँ ।१८। इस भूमि मण्डल के प्रधान स्थलों में जहां-जहाँ पर भी मुख्य-मुख्य शिव की लिंग मूर्तियाँ विराजमान हैं मैं इस समय उन्हीं का वर्णन करना चाहता हूँ, जिनके अख्यानों का श्रवण कर मनुष्य उसी समय समस्त स्वविहित पापों से छुटकारा पा जाता है ।१९। हे सत्तम ! जितने भी मुख्य-मुख्य महेश्वर के ज्योतिर्लिंग हैं अब उनके ही विषय में कुछ वर्णन करता हूँ उसको सुनकर प्राणी पापों से विमुक्त हो जाता है ।२०। सौराष्ट्र में सोमनाथ, उज्जयिनी पुरी में महाकाल, श्री शैल में मल्लिकार्जुन और ओङ्कार में परमेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हैं ।२१।

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।२२।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ।२३।

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वसिद्धिफलं लभेत् ।२४।
यं यं काममपेक्ष पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
प्राप्यंति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वरा ।२५।
ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः ।
तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति ।२६।
एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःख नाषनम् ।
इक लोमे परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम् ।२७।
ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भाजनीयं प्रयत्नतः ।
तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात् ।२८।

हिमाचल पर केदारनाथ, डाकिनी में भीमशङ्कर, वाराणसी पुरी में विश्वनाथ और गौतमी नदी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिलिंग हैं। ।२२। चिताभूमि मे वैद्यनाथ, सेतुबन्ध में रामेश्वरनाथ, दारुक वनमें नागेश और शिवालय में घुश्मेश्वर नाम वाम वाले शिवके ज्योतिलिंग सस्थितहैं२३ इन द्वादश शिव के नामों का जो प्रात कालमें उठते ही स्मरण करता हैं वह सब पापों मे मुक्ति होकर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करताहै २४।हे मुनीश्वरो ! जो श्रेष्ठ मानव हृदयमें जिस-जिस मनोरथका उद्देश्य लेकर इन द्वादश शम्भु के शुभ नामों का पाठ एवं स्मरण करेंगे वे उन मनोरथों को इस लोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे २५। जो मानव निष्काम भावनासे ही अपना कर्त्तव्य समझते हुए उपास्य देव श्री महादेव के इन बारह नामों का स्मरण करेंगे उन्हें फिर संसार में माता के गर्भ में आकर कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा ।२६। उपर्युक्त द्वादश ज्योतिलिंगोंके अर्चन करने मात्रसे समस्त वर्णों के दुःख-दारिद्रय का नाश होजाता है और इस लोकमें सुखोपभोग तथा पर लोक में मोक्ष मिलता है ।२७। इन ज्योतिलिंग स्वरूप शिव प्रतिमाओं पर चढ़ा हुआ नैवेद्य (मिठाई) ग्रहण करनी चाहिए और उसे सयत्न खालेना भी उचित है । ऐसा करने वालों के समस्त पाप उसी समय भस्मीभूत हो जाया करते हैं ।२८।

ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः ।
विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न नरैस्तथा ।२९।
एकं च पूजितं येन षण्मास तन्निरन्तरम् ।
तस्य दुख न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम् ।३०।
हीनयौनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंग च पश्यति ।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः ।३१।
सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः ।
शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्ति यात्नपायिनीम् ।३२।
म्लेच्छो वाप्यन्तजो वापि षण्णो वापि मुनीश्वराः ।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शं न चरेद् ।३३।
ज्योतिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया ।
ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ।३४।
सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशमुदाहृतम् ।
मह्याः सागरसयोगे तल्लिंगमुपलिंगकम् ।३५।

हे द्विजवरो ! इन द्वादश ज्योतिर्लिंग का वन्दनार्चन द्वारा प्राप्त फल का यथातथ वर्णन करने की सामर्थ्य ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओं में भी नहीं है अन्य साधारण की तो बात ही क्या है ॥२९॥ जो पुरुष निरन्तर नित्य ही छँ मास तक किसी भी एक ज्योतिर्लिंग का पूजन करता है उसे फिर माता की कुक्षि में निवास करने की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती है ॥३०॥ जो किसी निकृष्ट योनि में जन्म लेकर भी शिव की लिंगमयी प्रतिमा का दर्शन करता है तो उसके अगले जन्म में श्रेष्ठकुल प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ इस तरह शुद्ध एवं श्रेष्ठ कुल में जन्म पाने के साथ धनाढ्य और वेद-शास्त्र का पारगामी विद्वान् भी हो जाता है जिससे श्रेष्ठ कर्म करके विनाश-विहीन विमुक्ति की प्राप्ति कर लेता है ॥०२॥ हे मुनीश्वरो ! चाहे कोई म्लेच्छ हो अथवा अन्त्यज हो तथा नपुंसक हो—कैसा भी कोई क्यों न हो, वह यदि शिवभक्त रोज शिव पूजन करता है तो दूसरे जन्म में द्विज होकर अवश्य ही मुक्त हो जाता है । अतएव महेश्वर के दर्शन हरएक को अवश्य ही करना चाहिए ।३३। हे श्रेष्ठ ऋषि-

गण ! तभी तक मैंने आप लोगों के सामने शिव के ज्योतिर्लिंग का पूजन एवं दर्शन के फल का वर्णन किया है। अब मैं उनके उप-लिंगों के फल का वर्णन करता हूँ आप उसे श्रवण करें ।। ३४ ।। भूमि और समुद्र के संयोग में सोमेश्वर का उपलिंग अन्तकेश नाम से प्रथित है ।३५।

मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृमम् ।
रुद्रश्वेरमिति ख्यात भृगुकक्षे सुखावहम् ।३६।
महाकालभवं लिंग दुग्धेशमिति विश्रुतम् ।
नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ।३७।
ॐ कारज च यल्लिङ्गं कर्दमेशमिति श्रुतम्।
प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम् ।३८।
केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे ।
महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतां तथा ।३९।
भीमशङ्करसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम् ।
सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ।४०।
नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम् ।
मल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम् ।४१।
रामेश्वरराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम् ।
घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम् ।४२।
ज्योतिर्लिंगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः ।
दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ।४३।
एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च ।
अन्यायि चापि मुख्यानि श्रूयतामृषिसत्तमाः ।४४।

भृगु कक्ष में में मल्लिकार्जुन से प्रकट होने वाला परमसुख का दाता रुद्रेश्वर नाम वाला उपलिंग कहा गया है ।३६। नर्मदा नदी के तट पर महाकाल ज्योतिर्लिंग से उत्पन्न हुआ दुग्धेश नाम बाला उपलिंग है जोकि समस्त पापराशि का हरण करने वाला बताया गया है ।३७।श्रीओङ्कार से समुत्पन्न कर्दमेश नामक एक उपलिंग है जो कि विन्दु सरोवर में विख्यात है और सब कामनाओं का देने वाला बताया गया है ।२८।श्रीसूर्य तनया यमुना

के तट पर केदारेश्वर ज्योतिलिंग से समुद्भुत होने वाला भूतेश नाम से विख्यात उपलिंग है जिसके दर्शन तथा पूजनार्चन करने से महापाप भी दूर हो जाया करते हैं।३९। भीम शंकर से समुत्पन्न भीमेश्वर नाम वाला उपलिंग है जो कि सह्य नामक पर्वत पर विख्यात है और बहुत भारी बल का प्रदान करने वाला है।४०। मल्लिका सरस्वती नदी के तट पर नागेश्वर ज्योतिलिंग से उद्भव प्राप्त करने वाला भूतेश्वर नामक शिव का उपलिंग है जिसके केवल दर्शन मात्र से ही पापों से छुटकारा हो जाता है।४१। श्री रामेश्वर भगवान् से उत्पन्न होने वाले गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश शम्भु के ज्योतिलिंग से उत्पन्न व्याघ्रेश्वर उपलिंग है।४२। हे द्विजगणों ! अब यह मैंने आप लोगों के सामने ज्योतिलिंगों के समीपस्थ उपलिंगों का वर्णन किया है जिनके दर्शन का भी महान् पुण्य एवं फल होता है और समस्त पाप छूट करते हैं एवं सम्पूर्ण मनोरथ पूरे हो जाते हैं।४३। हे ऋषिश्रेष्ठो ! ये वर्णित सभी उपलिंग बहुत ही प्रसिद्ध हैं और मुख्य रूप से कहे गये हैं। इसके अनन्तर अब अन्य विख्यात लिंगों का वर्णन भी करता हूँ जिसे आप लोग श्रवण करेंगे।४४।

॥ अन्यान्य शिव लिंगों का माहात्म्य ॥

गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा।
सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता।१।
लिंग तत्रैव मुख्य च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम्।
कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्तुल्यो सृद्धबालकः।२।
तिलभण्डेश्वरैवर दशाश्वमेध एव च।
गंगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः।३।
भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थवः सदा।
नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्यः स समीपगः।४।
वर्तते गण्डकीतीरे वटुकेश्वर एव सः।
पूरेश्वर इति ख्यातः कल्गुतीरे सुखप्रदः।५।

सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम् ।
दूरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा ।६।
शृंगेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च ।
जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ।७।

श्री सूत जी ने कहा—भागीरथी के परम पावन तट पर बसी हुई मुक्ति के प्रदान करने वाली अति विख्यात काशी नाम की नगरी है वह समस्त लिंगमयी तथा भगवान् विश्वनाथ के निवास करने की भूमि कही गई है। ।१। काशीपुरी में मुक्ति के प्रदान करने वाली भगवान् शिव की मुख्य प्रतिमा विराजमान है और कृत्तिवास शिव भी वहाँ पर स्थित हैं। वहाँ काशी में नित्य निवास करने वाला, चाहे वृद्ध हो, बालक हो, साक्षात् शिव के तुल्य ही हो जाया करता है ।२। वहाँ तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्मेघ नाम वाले भी शिव हैं। गंगा सागर के संगम में संगमेश नामक शिव विराजते हैं ।३। भूतेश्वर एवं नारीश्वर नामों से विख्यात होने वाले शिव कौशिकी नदी के समीप में विराजमान हैं जो अपने भक्तों को निरन्तर समस्त वस्तुओं को प्रदान करने वाले हैं ।४। गण्डकी नदी के तट पर बटुकेश्वर नाम वाले महादेव हैं और फल्गु नदी के किनारे पर सुख के दाता पूरेश्वर नाम वाले भगवान् शङ्कर हैं। उत्तर नगर में सिद्धनाथेश्वर शिव हैं जो दर्शन मात्र से ही मनुष्यों को सिद्धि देने वाले प्रसिद्ध हैं और वहाँ पर ही दूरेश्वर नामक भी शिव विराजमान हैं ।।५-६। दधीचि मुनि के युद्धस्थल में प्रसिद्ध होने वाले शृंगेश्वर वैद्यनाथ तथा जप्येश्वर नामक शिवलिंग विराजमान हैं ।७।

गोपेश्वरः समाख्तो रंगेश्वर इति स्मृतः ।
वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः ।८।
व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि ।
भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुँकारेशस्तथैव च ।९।
सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम् ।
संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः ।१०।
ततश्च तप्तकातीरे कुमारेश्वर एव च ।

सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः ।११।
रामेश्वर इति प्रोक्तो कुंभेशश्च परो मतः ।
नन्दीश्वरश्च पुंजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ।१२।
ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा ।
दशाश्वमेधतीर्थे हि चतुर्वर्गफलप्रदः ।१३।
तथा रामेश्वरस्तत्र सर्वापद्विनिवारकः ।
भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चः प्रवर्द्धकः ।१४।

वहाँ पर गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश और विमलेश्वर नाम वाली शिव की मूर्तियाँ स्थित हैं ।८। इनके अतिरिक्त व्यासेश्वर, सुकेश, भाण्डेश्वर, हुंकारेश नाम की प्रतिमाएँ भी है ॥ ९ ॥ और भी सुरोचन, भूतेश्वर, तथा संगमेश नाम से परम विख्यात भगवान् शम्भु के ज्योतिलिंग हैं जिनके दर्शनार्चन से मनुष्यों के पापों का क्षय हो जाता है ॥१०॥ तप्तका नाम की नदी के तट पर शिव की सिद्धेश्वर, कुमारेश्वर और सेनेश नाम वाली प्रसिद्ध प्रतिमाऐं हैं ॥ ११ ॥ पूर्णा में रामेश्वर, कुम्भेश, नन्दीश्वर; पुंजेश और पूर्णक नाम वाले भगवान् शिव की मूर्त्तियाँ हैं ॥१२॥ प्रयाग में प्राचीन समय से ब्रह्माजी के द्वारा संस्थापित दशाश्वमेध तीर्थ पर ब्रह्मेश्वर नामक शिव कर्म अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों को देने वाले विराजमान हैं ॥१३॥ वहाँ पर सोमेश्वर नामधारी शिव समस्त आपत्तियों के हटा देने वाले हैं और भारद्वाजेश्वर ब्रह्मतेज के प्रदान करने वाले हैं ॥१४॥.

शूलटकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः ।
माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः ।१५।
नागेशाख्यः प्रसिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः ।
सूर्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः ।१६।
पुरुषोत्तमपुर्यां तु भुवनेशः सुसिद्धिदः ।
लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः ।१७।
कामेश्वरः शंभुर्लिंगो गंगेशः परशुद्धिकृत् ।
शक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया ।१८।

तथा वटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः ।
सिंधुतीरे कपालेशो वक्त्रेशः सर्वपापहा ।१९।
धौतपापेश्वरः साक्षादशेन परमेश्वरः ।
भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः ।२०।
नन्देश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः ।
नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः ।२१।

सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले शूलटकेश्वर महादेव हैं तथा भगवान् माधवेश्वर अपने भक्तों की रक्षा करने वाले विराजमान हैं ।१५। हे विप्रवृन्द ! अयोध्यापुरी में नागेश नामक परम प्रसिद्ध शिव हैं जो सूर्य वंशमें उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को विशेष रूपसे सुख-सौभाग्य प्रदानकिया करते हैं ।१६। पुरुषोत्तमपुरी में श्री भुवनेश शिव की प्रतिमा बहुत प्रसिद्ध है और वहाँ लोकेश नाम वाले महालिंग मनुष्योंको पूर्ण आनन्द देने वाले हैं ।१७। भगवान् शम्भु की कमेश्वर नामक मूर्ति ज्योतिर्लिंग के रूप में है तथा गंगेश शुद्धि करने वाले और शुक्रेश्वर एवं शुक्र सिद्ध भगवान्शिव लोकों की हित सम्पादन करने की इच्छा से वहाँ स्थापित हुए हैं ।।१८।। भगवान् वटेश्वर नामक परम प्रसिद्ध शिव समस्त कामनाओंके फलका प्रदान करने वालेहैं तथा सिन्धु नदीके तट पर श्रीकपालेश्वर और वक्त्रेश समस्त पापों का हरण करने वाले हैं ।१९। साक्षात् शिव के स्वरूप वाले वहाँ धौत पापेश्वर, भीमेश्वर और सूर्येश्वर नाम से प्रसिद्ध प्रतिमाएं विराजमान हैं ।।२०।। समस्त संसार में पूजित नन्देश्वर शिव ज्ञान के प्रकान करने वाले-नमस्कार महान् पुण्य के प्रदाता तथा रामेश्वर भगवन् महान् पुण्य के फलों के देने वाले स्थित हैं ।। २१ ।।

विमलेश्वरनामा वैकंटकेश्वर एव च ।
पूर्णसागरसयोगे धर्तुकेशस्तथैव च ।२२।
चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः ।
सर्वकामप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः ।२३।
बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च ।
यत्र वा अन्धको दैत्यः शङ्करेण हतः पुका ।२४।

अयं स्वरूपमंशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः ।
शरखेश्वरविख्यातो लोनांक सुखदः सदा ।२५।
कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटिशश्चः बुंदाचले ।
अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा ।२६।
नागेश्वरवस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः ।
अन्तेश्वरसंज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ।२७।
योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्वरस्तथा ।
कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः ।२८।
भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम् ।
चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः सगमेश्वर एव च ।२९।

पूण सागर के संयोग के निकट में विमलेश्वर, कटकेश्वर और धर्तुकेश शिव के ज्योतिलिंग विराजमान हैं ॥ २२ ॥ चन्द्रमा के समान कान्ति प्रदान करने वाले चन्द्रेश्वर और सब मनोरथ दाता सिद्धेश्वर शिव बताये गये हैं ॥ २३ ॥ जिस स्थान पर प्राचीन काल में भगवान् शिव के अन्धक नाम वाले दैत्य का वध किया था वहाँ अन्धकेश तथा बिल्वेश्वर नाम से प्रथित हैं ॥२४॥ भगवान् शम्भु ने अपने अंश से यही स्वरूप धारण करके यहाँ पर शरखेश्वर नाम से प्रसिद्ध होकर अपनी स्थिति की है जो संसार के प्राणियों को परम सुख प्रदान करने वाले हुए हैं ॥२५॥ अर्बुद (आबू) नामक पर्वत पर सदा मनुष्यों को सुख प्रदान करने वाले कर्दमेश कोटीश और अचलेश नाम से भगवान् शिव विराजमान हैं ॥ २६ ॥ कौशिकी नामक नदी के तट पर नागेश्वर तथा अनन्तेश्वर नाम से विख्यात शिव प्रतिमाऐं कल्याण करने वाली हैं । ॥२७॥ इनके अतिरिक्त यगेश्वर, वैद्यनाथ, सप्तेश्वर और कोटिश्वर नाम वाले शिव परम विख्यात हैं ॥ २८। भद्र नामक साक्षात् शिव भद्रेश्वर इस नाम से एवं चण्डीश्वर और संगमेश्वर नामों से विख्यात हैं ॥२९॥

।उत्तर दिशा के चन्द्रभाल पशुपति शिवलिङ्ग माहात्म्य।

शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः ।
माहात्म्य शिवलिगानां प्रवदामि समासतः ३०।

गोकर्ण क्षेत्रमपरं महापातकनाशनम् ।
महावनं च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्तरम् ।२।
तत्रास्ति चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम् ।
रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम् ।३।
तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनिश्वराः ।
सर्वलोकहितार्थाय करुणासागरस्य च ।४।
स्नान कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभालं समर्च्य च ।
शिवलोकमवाप्नाति सत्यं सत्यं न संशयः ।५।
चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाऽद्भुता ।
न शक्या वर्णितुं व्यासाद् भक्तिस्नेहतरस्य हि ।६।
चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान् ।
यथाकथंचित्संप्रोक्ता परलिंगस्य वै श्रृणु ।७।

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रवृन्द ! अब मैं आपके सामने उत्तर दिशा में विराजमान शिव के ज्योतिर्लिगों के माहात्म्य का वर्णन संक्षेपसे करता हूँ उसे आप सभी परम आदर तथा प्रेम से श्रवण करो ॥१॥ महान् पातकों का नाश करने वाला अन्य गोकर्णनाम वाला क्षेत्रहैऔर वहाँ अत्यन्त विशाल विस्तृत तथा परम पवित्र वन है ॥२॥ उस स्थान पर चन्द्रभाल नाम से विख्यात शिवका एकश्रेष्ठ ज्योतिर्लिग रावण के द्वारा भक्तिसे सहित स्थापित किया हुआ है जो समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाला है।३। हे मुनिश्वर वृन्द ! समस्त संसार की भलाई के लिये दया के सागर भगवान चन्द्रभाल शिव के लिंग की वैद्यनाथ के तुल्य ही स्थिति है।४। यह सर्वथा पूर्ण सत्य हैऔर नितान्त निस्सन्देह है कि गोकर्णमें स्नानकर चन्द्रभाल शिवलिग का अर्चन-वदन करने वाले पुरुषों को शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है ॥५॥ अत्यन्त भक्त-वत्सल चन्द्रभाल शङ्करकीमहिमा परम अद्भुतहैजिसका यथार्थ वर्णन करने में स्वयं व्यास मुनि भी असमर्थ होते हैं।६। यद्यपि चन्द्रभाल शिव की महिमा बहुत ही बड़ी है तो भी मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका कुछ वर्णन करता हूँ आप लोग उसको श्रवण करें ॥७॥

दाधीचं शिवलिंग तु मिश्रर्षिवरतीर्थके ।
दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम् ।८।
तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ।
शिवलिंग समर्चेद्व दाधीश्वरमादरात् ।९।
दधीचमूर्तिस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम् ।
शिवप्रीत्यर्थमेवाशु तीर्थयात्राफलार्थिभिः ।१०।
एवं कृते मुनिश्रेष्टाः कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र पतिमाप्नुयात् ।११।
नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितमे ।
ऋषिश्वरमिति ख्यातं शिवलिंग सुखप्रदम् ।१२।
तद्दर्शनात्पूजनाच्च जनानां पापिनामपि ।
भुक्तिर्मुक्तिश्च तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः ।१३।
हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिंगमघापहम्
पूजनीयं विशेषेण हत्याकोटिविनाशनम् ।१४।

मिश्र (मिश्र ऋषिनामक तीर्थ पर दाधीच नाम वाला शिव का लिंग विराजमान है जिसको दाधीच मुनि ने परम प्रीति एवं भक्ति के साथ वहाँ स्थापित किया था ।८। वहाँ पहूँच कर सविधि स्नानादि करने के पश्चात् दाधीकेश्वर शिव की अर्चना करनी चाहिए ।९। अतिशीघ्र तीर्थ-यात्रा के फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वालोंको भगवान् शिवके प्रसन्न करनेके लिए दाधीच ऋषि की संस्थापित प्रतिमा का विधिपूर्वक पूजन करना आवश्यकहै ।१०। हे श्रेष्ठ मुनिय ! इस रीति से शिवार्चन करने से मनुष्य इस लोक में कृत-कृत्य होकर अन्त समयमें परलोककी सद्गतिको प्राप्त होजाया करता है ।११। नैमिषारण्य की पवित्र तपो भूमि में वहाँ के तपोनिष्ठ ऋषिगण के द्वारा संस्थापित ऋषीश्वर नामधारी शिव का ज्योतिर्लिंग है, जो मनुष्योंको सदा सुख प्रदान किया करते हैं ।।१२।। हे मुनिवृन्द ! भगवान् ऋषीश्वर के दर्शन से पापात्मा मनुष्यों का भी उद्धार हो जाता है और वे भी अपने समस्त पाप राशिसे उन्मुक्त होते हुए इस लोकमें भुक्ति और परलोकमें मुक्ति

की प्राप्ति प्राप्त कर लिया करते हैं ॥ १३ ॥ हत्याहरण नामक तीर्थ में सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाले और खासतौर से करोड़ों हत्याओं के विनाशक परम पूज्य का लिङ्ग विराजमान है ॥१४॥

देवप्रयागतीर्थे तु ललितेश्वरनामकम् ।
शिवलिंगं सदा पूज्य नरैः सर्वाधनाशनम् ।१५।
नयपालाख्यपुर्य्यां तु प्रसिद्धायां महीतले ।
लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफलप्रदम् ।१६।
शिरोभागस्वरूपेण शिवलिंगं तदस्ति हि ।
तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ।१७।
तदारान्मुक्तिनाथाख्यं शिवलिंगं महाद्भुतम् ।
दर्शनादर्चनात्तस्य भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते ।१८।
इति वश्च समाख्यातं लिङ्गवर्णनमुत्तमम् ।
चतुर्दिक्षु मुनिश्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।१९।

देवप्रयाग नामक तीर्थ के स्थान में सब पापों का क्षय करने वाले ललितेश्वर नाम वाले शिव का सब पुरुषों को पूजन अवश्य ही करना चाहिए ।१५। परम विख्यात नयपालपुरी में अर्थात् नैपाल में पशुपतीश्वर नाम वाले अति प्रसिद्ध तथा समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाले ज्योति-लिङ्ग विराजमान हैं ॥१६॥ यह शिव का लिंग शिर के भाग के स्वरूप में ही संस्थित है । इनकी कथा का वर्णन मैं केदारेश्वर के इतिहास में बतलाऊंगा ॥ १७ ॥ इनके समीप मे ही मुक्तिनाथ वाले परम अद्भुत शिव का लिंग है जो दर्शन देकर एवं पूजित होकर भुक्ति-मुक्ति दोनों को प्रदान किया करते हैं ॥१८॥ हे श्रेष्ठ मुनिगण ! इस प्रकार से चारों दिशाओं में विराजमान भगवान् शिव हैं । अब क्या श्रवण करना चाहते हो ? ॥१९॥

॥ विष्णु द्वारा शिव सहस्त्र नाम का कीर्तन ॥

श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वरः ।
तदहं कथयाम्यद्य शिव नामसहस्त्रकम् ।१।

शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्पलोचनः ।
अर्थिगस्यः सदाचारः सर्वः शंभुर्महेश्वरः ।२।
चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वरः ।
वेदान्तसारसंदोहः कपाली नीललोहितः ।३।

श्री सूतजी ने कहा—हे श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ! जैसा हमने सुना है वही अब बतलाते हैं । आप लोग इसका श्रवण ध्यानपूर्वक करें । विष्णु भगवान् की प्रार्थना से श्री शिव जिससे परम सन्तुष्ट हुए थे वह परम पवित्र सहस्रनाम मैं आपको सुनाता हूँ ।।१।। भगवान् विष्णु ने कहा—"शिवः"—यह भगवान् शङ्कर का नाम त्रिगुण से रहित परम मङ्गल वाचक होकर मङ्गल करने वाला है । शिव का "हर" यह नाम सृष्टि के अन्त में सब का संहार करने के कारण ही से पड़ा है । "मृड"–यह सुख का प्रदान करने से शिव का नाम पड़ गया है । "रुद्रः"—यह शिव का पवित्र नाम प्रजा को अन्त समय में सहार करते हुए रुलाने से हुआ है । अथवा समस्त दुःखों को दूर भगा देने से रुद्र नाम पड़ गया है । या दुष्टों को दुखों के दायक होने से रुद्र कहे जाते हैं । "पुष्कर"—यह पुष्टि करने से शिव का नाम हुआ है । 'पुष्पलोचनः"—यह नाम पुष्प अर्थात् कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले होने से हुआ है । "अर्थिगम्यः"—यह शिव का शुभ नाम भक्तों को स्वर्ग-मोक्षादि की कामना पूरी करने के कारण हुआ है । "सदाचारः"—यह नाम सत्पुरुषों के आचरण रखने वाले होने से हुआ है । "शर्व"—यह शिव का नाम समस्त प्रजा के अन्त करने से हुआ है । "शम्भुः"-यह शिव का शुभ नाम भक्तों को सुख देने से हुआ है । 'महेश्वर'-यह नाम अर्थात् परमेश्वर 'यः परः स महेश्वरः'–इस श्रुति वचन के अनुसार जो सबसे ऊपर है वह महेश्वर होता है सबसे बड़े स्वामी होने के कारण ही हुआ है ।।२।। भगवान् शिव का "चन्द्रापीड"—यह शुभ नाम अपने मस्तक में चन्द्रमा धारण करने के कारण से हुआ है । "चन्द्रमौलि"-यह नाम अपने मस्तक का चन्द्रमाभूषण बनाने के कारण हुआ है । 'विश्वम्:-यह नाम शिवको परब्रह्म स्वरूप बतलाता है । "विश्वम्भरेश्वरः"-यह नाम संसार और समस्त देवों के स्वामी होने के कारण हुआ है । 'वेदान्त सार

सन्दोह:"—यह नाम वेदान्त शास्त्र के पूर्ण रूप से ज्ञाता होने से पड़ा है। "कपली" कपाल धारण करने से तथा 'नील लोहित'—यह नीले और लाल रंग वाली जटा धारण करने से नाम हुए हैं ।।३।।

ध्यानाधरोऽपरिच्छेद्यो गोरीभर्त्ता गणेश्वरः ।
शष्टमूर्तिविश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः सर्गसाधनः ।४।
ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवत्रिलोचनः ।
वामदेवो महादेवो पटुः परिवृढ़ो दृढः ।५।
विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः सुरसत्तमः ।
सर्वप्रमाणसंवादी वृषाको वृषवाहनः ।६।

'ध्यानाधार.'—यह नाम योगियों के ध्यान का आधार बनने से हुआ है। "अपरिच्छेद्य"—यह नाम देश और काल से परिच्छिन्न न होने के कारण शिव का हुआ है। 'गौरीभर्त्ता"—यह पार्वती के पति होने से और प्रमथादि गणों के नियन्त्रण करने वाले होने से "गणेश्वर"—यह नाम हुआ है। आकाश आदि आठ मूर्तियों में स्थिति रखने के कारण शिव का "अष्ट मूर्ति" नाम हुआ है। समस्त जगत् ही मूर्ति स्वरूप होने से 'विश्वमूर्ति' नाम है। "त्रिवर्ग स्वर्गसाधन:"—यह शिव का शुभ नाम धर्म-अर्थ और काम एवं स्वर्ग के अचिन्त्य सुख के देने वाले होने के कारण हुआ है ।।४।। "ज्ञान गम्य"—यह नाम ज्ञान मात्र से ही वेदान्त के अर्थ जानने योग्य होने के कारण शिव का है। "दृढ प्रज्ञ:"—यह नाम सर्वदा ज्ञान से युक्त-"देवदेव:"—यह देवों को भी कर देने वाले देवता अथवा शक्ति प्रदान कर उनको पूर्ण प्रकाश तथा आनन्द देने वाले—"त्रिलोचन"—तीन नेत्रों के धारण करने वाले अथवा तीन गुण तीन लोक और तीन वेदों के ज्ञान से युक्त किम्वा अकार उकार और मकार ओम् ये तीन अक्षर के नेत्र वाले यद्वा शास्त्र आचार्य और ध्यान त्रिदर्शन इन साधन स्वरूपी तीन नेत्रों वाले होने से यह नाम पड़ा है। महाभारत ग्रन्थ की टीका के रचयिता नीलकण्ठ ने भी वही इसका अर्थ लिखा है। 'वामदेव"—यह नाम शिव का इसलिये हुआ है कि ये दुरात्माओं के मद को निकलवा देने वाले हैं अथवा लोकोत्तर एवं सुन्दर देवता हैं किम्वा कर्म फलों के विभाजन

करने के कारण सुन्दर देवता हैं "महादेव" इसका अर्थ ब्रह्मादि देवों के भी वन्दनीय बड़े देव हैं। "पटु" यह नाम दुःखों के नाश करने वाले अथवा अपने भक्तवर्ग के कल्याण करने में परम कुशल होने से हुआ है। "परिवृढ" जगत् के प्रभु—दृढ़—महाबलवान्—होने के कारण ये नाम हुए हैं ॥५॥ 'विश्वरूप' समस्त जगत्स्वरूप—'विरूपाक्ष' विषम नेत्र वाले—'वागीश' वेद वाणी के स्वामी—'शुचि सत्तम' तीनों माया के गुणों से रहित होने के कारण परम विशुद्ध—सर्व प्रमाण संवादी'—वेदादि के समस्त प्रमाणों के वेत्ता—'वृषाङ्क' वृष के चिन्ह को धारण करने अथवा धर्मयुद्ध और 'वृषवाहन नन्दीश्वर नामक वृष के वाहन वाले होने से ये सब शिव के नाम हुए हैं ॥६॥

ईशपिनाकी खट्वांगी चित्रवेषश्चिरन्तनः।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्माण्डहृज्जटी। ७
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणतात्मक'।
उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥८
दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥९

'ईश'—सम्पूर्ण जगत् के स्वामी—'पिनाकी' पिनाक नाम वाले धनुष को धारण करने वाले—'खट्वांग' खाट के एक अंग को अपना आयुध बनाने वाले—"चित्र वेष" समय पर कार्य के अनुकूल अनेक वेषों के धारण करने वाले—'चिरन्तन' तीनों कालों से बाधा न पाने वाले अर्थात् परम प्राचीन—'तमोहर' अज्ञान के अन्धकार को हरण करने वाले अर्थात् अविद्या नाशक—'महायोगी' यम-नियम प्राणायामादि योग के आठों अंगों के तत्व ज्ञाता—'गोप्ता' सर्वप्रकाश से रक्षा करने वाले—'ब्रह्मा' जगत् में सभी कुछ की उत्पत्ति करने वाले और महान् समस्त गुणगणों से परिपूर्ण होने से उक्त सभी नाम भगवान् शिव के हुए हैं (५०) 'धूर्जटि'—सारभूत जटाओं वाले अथवा गंगा को जटाजूट में धारण करने वाले हैं ॥७॥ 'काल-कल:' अर्थात् मृत्यु और यम के काल अर्थात् संख्या करने वाले—'कृत्तिवासा'

अर्थात व्याघ्र चर्मके वस्त्र धारण करने वाले शिव हैं। "पिनाक हस्त, कृत्तिवासः" यह श्रुति का भी वचन आता है अर्थात शिव पिनाक हाथ में धारण करने वाले तथा चर्म वस्त्र वाले हैं। 'सुभग'—सुन्दर स्वरूप वाले अथवा अत्यन्त ऐश्वर्यधारी —'प्रणवात्मक' ओंकर के स्वरूप धारण करने वाले—यहां "ओमित्येकाक्षर ब्रह्म" यह श्रुति भी यही बतलाती है।'उन्नध्र'अर्थात् पापात्मा पुरुषों को पाश से बांधने वाले 'पुरुषः—यह शिव का नाम इसलिए हुआ है कि शिव सब के शरीर में व्याप्त है अथवा अन्तर्यामी रूप से शयन करते हैं, अथवा सब प्रकार से परिपूर्ण होने से भी शिव का नाम पुरुष है। 'जुष्य सबके मन वचन और कर्म के द्वारा सेवा करके के योग्य हैं—,दुर्वासा' यह नाम वल्कलादि के वस्त्रधारण करने से हुआ है अथवा दुर्वासा नाम अत्रि क यहाँ पुरुष रूप से अवतार होने वाले होने से नाम है। 'पुरुशासन' त्रिपुर नामक असुर के सहारकर्त्ता हैं। (६०) 'दिव्यायुध' पिनाक प्रभृति अत्युत्तम आयुधों के धारण करने वाले हैं। 'स्वन्द गुरु' अर्थात् षडानन कार्तिकेय के पिता हैं। 'परमेष्ठी' अपनी अनन्त गुणमयी महिमा से युक्त और आकाश में स्थित होने से शिव के नाम हुए हैं।परात्पर' अर्थात् अव्यक्त, पर से भी परे हैं 'अनादि मध्य निधनः' अर्थात् देश और काल से भी अपरिछिन्न है। 'गरीश' अर्थात् मेरु आदि समस्त पर्वतों के स्वामी है। 'गिरिजाधवः' अर्थात् शिव हिमाचल की पुत्री पार्वती के स्वामी हैं ॥८॥९॥

कुवेरबन्धुः श्रीकण्ठो योकवर्णोत्तमो मृदुः।
समाधिवेद्यः कोदण्डी नीलकंठः परश्वधी ॥१०
विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः।
धर्माध्यक्षः क्षमाक्षेत्र भगवान्भगनेत्रभित् ॥११
उग्रः पशुपतिस्ताक्ष्यः प्रियभक्तः परंतपः।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥१२

'कुवेरबन्धु' अर्थात् यक्षाधिपति कुवेर के भाई हैं। 'श्रीकण्ठ' अर्थात् अपने कण्ठ में सुषमा किम्वा वेद को रखने वाले हैं। यहाँ इसे शिव के शुभ नाम की पुष्टि—'ऋचः सामानि यजु ऋषि सा हि श्रीरमृतास तास' वह

श्रुति के वचन से होती है। 'लोक वर्णोतम' अर्थात् शिव के भास्वद् रूप को लोक द्वारा देखा जाता है अथवा लोक में ब्राह्मणादि से भी श्रेष्ठ है (७०) 'मृदु' अर्थात् भक्तों के लिये सौम्य रूप वाले हैं। 'समाधि वेद्य' अर्थात् धनुर्धारी हैं। 'नीलकण्ठ' अर्थात् प्राणीमात्र के त्राण के लिये महाविष के पान करने से नीले कण्ठ वाले हैं। 'परश्वधी' अर्थात् अपना सर्वस्व धन देकर भक्तों को सुख पहुचाने वाले हैं, किम्वा भक्तों में अपनी जैसी बुद्धि प्रदान करने वाले हैं। (८०) 'विशालाक्ष' बड़े नेत्रों से युक्त-मृगव्याध—मृग पशु के समान जीव के संहार करने के लिये व्याध के सदृश अथवा अर्जुन पर कृपा करने के लिये व्याध का स्वरूप रखने वाले सुरेश—अर्थात् समस्त देवों के स्वामी। 'सूर्य तापन'—अर्थात् दुर्जनों को सूर्य की भाँति ताप प्रदान करने वाले किम्वा सूर्य को भी तपा कर भय देने वाले हैं। इस बात का पूर्ण पोषण करने वाला—भीषोदेति सूर्य' यह श्रुति का वचन भी है। धर्माध्यक्ष—अर्थात् वर्ण और आश्रम प्रभृति धर्मों के स्थान हैं (८०) 'क्षमा क्षेत्रम्'—अर्थात् क्षमा के उद्भव के स्थान हैं। 'भगवान्' अर्थात् भग नाम छै प्रकार के ऐश्वर्यों से संयुक्त हैं। भगनेत्रभित्—अर्थात् शिव दक्ष के यज्ञ में भग नामक देवता के नेत्रों का भेदन करने वाले हैं। उग्रः—अर्थात् महाप्रलय के समय में समस्त सृष्टि का संहार करने के कारण शिव उग्र रूप वाले हैं। पशुपति'—पशु—जीवों के पालन कर्त्ता शिव का स्वरूप होने से उनका यह नाम हुआ है। 'तार्क्ष्यः' अर्थात् कश्यप का स्वरूप हैं। 'प्रिय भक्तः'—अर्थात् अपने भक्तों के ऊपर अत्यन्त प्यार करने से उनके परम प्रिय शिव हैं। 'परन्तपः'—अर्थात् शत्रुओं को ताप देने वाले हैं। 'जहाँ प्रिय-माह ऐसा पाठ है वहाँ प्रिय भाषण करने वाले हैं। 'दाता—इसका मतलब है कि शिव भक्तों को ऐश्वर्य के देने वाले हैं। दयाकरः—भक्तजनों के उद्धार करने के लिये पूर्ण अनुग्रह करने वाले हैं 'दक्षः'—इस जगत् के स्वरूप में वृद्धि पाकर समस्त कर्म-कलाप के करने में कुशल हैं। कपर्दी अर्थात् संन्यासी किम्वा कपर्दी मुनीकृत भिक्षु सूत्रके जानने वाले अथवा कपर्दी के रूप से प्रकट होकर ज्ञान का दान करने वाले शिव हैं काम शासन' —अर्थात् कामदेव को भस्म करने वाले हैं॥ १२॥

श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः ।
लोककर्त्ता मृगपतिर्महाकर्त्ता महौषधिः ॥१३
सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः ।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥१४
उत्तमो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमतरः सुखी ॥१५

"श्मशाननिलयः" —अर्थात् श्मशान भूमि में अपना निवास बनाने वाले शिव होते हैं। "सूक्ष्मः" —इनका अर्थ है शिव शब्दादि के स्थूल कारण से रहित हैं। यहाँ श्रुति का वचन 'सर्वगतं सुसूक्ष्यम्'-यही बात पुष्टकर देता है। 'श्मशानस्थः'अर्थात् श्मशानमें ठहरने वाले हैं। 'महेश्वर'-सबसे बड़े स्वामी 'लोककर्त्ता'--इस विश्व के वनाने वाले 'मृगपतिः' अर्थात् पशुओं की रक्षा करने वाले और'महाकर्त्ता'-अर्थात् पाँच महाभूतोंके निर्माण करने वाले हैं। इस विषय के पोषक "विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" इत्यादि आगमों के वचन भी हैं। यहाँ पर भगवान् शिवके सहस्र नामोंका एक शतक पूरा होता है। (१००) शिव का नाम 'महौषधि' भी है। इसका अर्थ होता है शिव ब्रीहि यवादिके रूप वालेहैं अथवा संसार बन्धन स्वरूप रोगके छुड़ादेने वाले हैं। 'सोमपः' यज्ञादिमें देव स्वरूपसे सोमके पान करने वाले हैं। किम्वा धर्म की मर्यादा को दिखाते हुए यजमान के स्वरूप से सोमपान करने वाले हैं। 'अमृतपः'-अर्थात् अपनी ही आत्मा का अमृतपान करने वाले हैं। 'सौम्यः'-भक्तों के लिये परम सौम्य शान्य स्वरूप वाले हैं। 'महातेजाः'-इसका अर्थ है परम तेजस्वीहैं जिनसे सूर्यादि तेजोनिधि भी तपतेहैं। यहाँ येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' यह श्रुति का वाक्य भी इसकी पुष्टि करने वाला है। 'महाद्युतिः'-अर्थात् महान् कान्ति वाले हैं। यहाँ भी 'स्वयज्योतिः' यह श्रुति वचन है। कहीं पर 'महानीतिमहामतिः' ऐसा भी पाठान्तर है। "तेजोमयः"--अर्थात् विश्व को प्रकाशित करने वालेहैं। किंवा तेजसे युक्तहैं। "अमृतमयः"-अर्थात् मरणसे रहित या जलमयहै। 'अमृतवा आपः'-यह श्रुति वचनहै। शिवकी अष्टमूर्ति के अन्तर्गत एक जल का स्वरूप भी है अथवा मोक्ष के आनन्द से परिपूर्ण है। "कन्नमय" —अर्थात् अन्न के स्वरूप वाले हैं। यहाँ पर भी

'अन्नमय आत्मा'—'अन्नं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति के वचन हैं। 'सुधापति'—अर्थात् देवोंको अमृत का पान कराने के लिये उसकी रक्षा करनेवाले स्वामीहैं 'उत्तम'--इसका अर्थ है शिव संसार में आवागमन के समूह से पार करने में सर्वोत्कृष्टहैं। यहाँ 'विश्वस्म दिद्र उत्तरः' यह श्रुति का वचन भी इसका पोषक होता है। गोपतिः—अर्थात् पृथ्वी-स्वर्ग-पशु, वाणी, रश्मी और जल के स्वामी हैं।

"गोप्ता"—समस्त भूतों के पालन करने वाले हैं। 'ज्ञानगम्य'—इस शिव के नाम का तात्पर्य होता है भगवान् शम्भु केवल कर्म से प्राप्त करने के पश्चात् समुत्पन्न ज्ञान से प्राप्त करने के योग्य हैं। 'पुरातनः'--काल से अपरिच्छिन्न होने के कारण परम प्राचीन हैं। 'नीति'—दण्ड के योग्य व्यक्तियों को दण्ड के प्रणयन करने वाले हैं। "सुनीति"—अर्थात् निर्मल चित्त वाले, 'सोमः' अर्थात् चन्द्र के स्वरूप से औषधियों की पुष्टि करने वाले अथवा उमाके सहित रहने वाले हैं। ११०। 'सोमरतः'—चन्द्र अमृत या सोमलता के रस में अनुराग करने वाले हैं। "सुखी"—अर्थात् आनन्द से युक्त हैं। किम्बा भक्तों को सुख प्रदान करने वाले हैं। यहाँ—"एषह्येनानन्दयति" यह श्रुति का वचन भी है॥ ३-१४-१५॥

अजातशत्रुरालोकसंभाव्यो हव्यवाहनः।
सीकंकरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ।।१६
महर्षिः कपिलाचार्य्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः सुकृतः सुधीः ।।१७
धातृधामा धामकरः सर्वदः सर्वगोचरः।
वह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः ।।१८

"अजातशत्रु"—शत्रु से रहित है क्योंकि आप शिव स्वयं ही सबके शासक हैं। "आलोकः'—अर्थात् स्वयं ही प्रकाश स्वरूप हैं। "संभाव्यः"—अर्थात् समस्त देव असुरों के माननीय हैं। "हव्यवाहन"—अर्थात् शिव अग्नि स्वरूपसे समस्त देवों को हवि के पहुँचा देने वाले हैं। यहाँ पर'देवेभ्योहव्य वाहनः प्रजानम्" यह श्रुति का वाक्य भी प्रमाणित करता है।

'लोककरः'—लोकों के सृजन करने वाले, 'वेदकरः'—ऋग्वादि वेदों के

प्रकाश करने वाले, 'सूत्रकार:'–व्यासादि के रूप में होकर सूत्रों की रचना करने वाले और "सनातन:"--सदा सर्वदा रहने वाले शिव हैं। "महर्षि कपिलाचार्य:"—सांख्य दर्शन के द्वारा शुद्ध आत्मा के जानने वाले कपिल के रूप में अवतीर्ण होने वाले हैं। जो वेद के एक ही देश को जानते हैं वे महर्षि कहे जाते हैं। यहाँ पर—"ऋषि प्रसूतं कपिलं महान्तम्" यह श्रुति वाक्य भी इसकी पुष्टि करता है। 'विश्वदीप्ति'—अर्थात् यह समस्त संसार शिव की ही दीप्ति का रूप है। यहाँ—'यस्य भासा सर्वमिदम्' यह वेद का वचन भी इसका पोषक है।

'त्रिलोचन:'—अर्थात् तीन नेत्रों वाले हैं। 'पिनाकपाणि:'—अर्थात् पिनाक धनुष अथवा त्रिशूल को हाथ में धारण करने वाले हैं। 'भूदेव'—भूमि में दुर्वासा आदि ब्राह्मण के स्वरूप से अवतीर्ण होने वाले हैं। 'स्वस्तिद:'–भक्तों को कल्याण प्रदान करने वाले हैं। सुकृत:—अर्थात् भक्तों के मङ्गल करने वाले हैं। 'सुधी:'–श्रेष्ठ ज्ञान से परिपूर्ण हैं।।१७।। धातृधामा'—अर्थात् विश्व के धारण करने वाले तेज से युक्त हैं। 'धामकर:'—सूर्यादि तेज और समस्त प्राणियों की देह के बनाने वाले हैं। 'सर्वग;'–सब में व्याप्त रहने वाले शिव हैं। 'सर्वगोचर:'—सम्पूर्ण जगत् को प्रत्यक्ष करने वाले हैं। 'ब्रह्म सृक्'—अर्थात् ब्रह्मा अथवा वेद के सृजन करने वाले हैं। 'विश्वसृक्'—अर्थात् संसार की रचना करने वाले हैं। 'सर्ग:'—स्वयं सृष्टि के स्वरूप में होने वाले, 'कवि:'—सभी कुछ के ज्ञाता हैं। यहाँ पर श्रुति का वचन है—'कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू:' इत्यादि। 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इत्यादि ॥ १६।१७।१८ ॥

शाखो शिशाखो गोशाख: शिवो भिषगनुत्तम: ।
गंगाप्लवोदको भव्य: पुष्कल: स्थपति: स्थिर: ॥१६
विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथि: ।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशय: ॥२०
कामदेव: कामपालो भस्मोद्धू लितविग्रह: ।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्त: कृतागम: ॥२१

'शाख:'–इसी नाम वाले ऋषि का स्वरूप, 'विशाख:' एक ऋषि के स्वरूपधारी अथवा स्कन्द के स्वरूप से उत्पन्न होने वाले हैं। 'गोशाख: शिव:–

अर्थात् वेदों की शाखा के अश्रय स्वरूप, अथवा इस सम्पूर्ण जगत् के शयन करने का आधार किम्वा त्रिगुण रहित होने के कारण शिव हैं। यहाँ दोशब्दों का एक ही शिव का नाम है। यहाँ पर 'स ब्रह्मा स शिवः' इत्यादि श्रुतिका वचत है। 'भिषक्'–धन्वन्तरि के स्वरूपमें अवतीर्ण होकर संसार के समस्त रोगों के नाशक हैं। यहाँ पर भी–'भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि इत्यादि श्रुति के वचन हैं जो उक्त नाम की पूर्ण पुष्टि करते हैं। अनुत्तमः'-अर्थात् संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं यहाँ जिससे उत्तम कोई नहीं-ऐसा बहुव्रीहि समाज होता है। यहाँ 'यस्मात्परं नायमस्ति किंचित्' यह श्रुति का वचन समर्थक है।

'गंगाप्लवोदकः'—भागीरथी गंगा के जल-प्रवाह के समान हैं। 'जन तारकः'–अर्थात् भक्तों के उद्धारक हैं। 'भव्य'-समस्त कल्याण से परिपूर्ण हैं। 'पुष्कलः'–सब में व्यापक रहने वाले हैं। 'स्थपतिः स्थिरः'–अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डों के रचने वाले अथवा माया के कंचुकी हैं। यहाँ पर ये दोनों शब्द मिलकर शिव का एक ही नाम बतलाते हैं।'विजितात्मा'–आत्मा को जीत लेने वाले हैं। 'विषयात्मा'–समस्त इस प्रपञ्च जगत् की आत्मा हैं। कहीं 'विधेयात्मा' यह पाठान्तर भी होता है। 'भूत वाहन सारथिः'–प्राणियों के कर्मफलों को प्राप्त करने वाले ब्रह्मा को अपना सारथी रखने वाले हैं। 'सगणः'-अर्थात् प्रथमादिगणों से युक्त रहने वाले। 'गणकाय'–गणों के शरीर वाले किम्वा अपरिच्छेद्य काया वाले। 'सुकीर्ति'–सुन्दर कीर्ति से युक्त। छिन्न संशयः–सर्वज्ञता के कारण सब प्रकार के संशयों से रहित हैं॥ १६।२०॥

'कामदेवः'–अर्थात् धर्मार्थादि पुरुषार्थों की इच्छा रखने वाले शिव हैं। 'कामपालः'–कामिजन की कामनाओं को पूरा करने वाले। 'भस्मोद्धूलित विग्रहः'–भस्म लगाने से धूलित शरीर वाले। 'भस्म प्रियौ भस्मशायी'-भस्म-प्यारी लगनेके कारण उसी में शयन करने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द मिलकर एक ही शिव का नाम बतलाते हैं। 'कामी —पूर्णकाम अर्थात् जिनकी सभी कामनायें स्वतः परिपूर्णहैं। 'यहाँ-'सोऽकामाय'इत्यादि श्रुतिवाक्यभी उनको कामना रहित बतलाता है। 'कान्त'-मनोहर किम्वा द्विसीय परार्ध में ब्रह्मा के भी अन्त करने वाले हैं। 'कृतागमः'–श्रुति तथा मृत आदि आगम स्वरूप लक्षण के व्यक्त करने वाले हैं॥ २१॥

समावर्त्तो निवृत्तत्मा धर्म पुंजः सदा शिवः ।
अकल्मषश्च पुण्यात्मा चतुर्वाहुर्दु रासदः ।।२२।।
दुर्लभो दुगमा दुर्गः सर्वायुधविशारदः ।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतंतुस्तस्तु वर्द्धनः ।। २३
शुभांगो लोकसारङ्गी जगदीशो जनार्दनः ।
भस्नशुद्धिकरोऽ भीरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ।।२४

शिव का एक नाम 'समावर्त्ता' होता है । इसका अर्थ संसार रूपी चक्र के घुमाने वाला होता है । अनिवृत्तात्मा —अर्थात् सर्वत्र व्याप्ति के कारण उनकी विद्यमानता रहती है । अतः अनिवृत्त आत्मा वाले हैं । धर्म पुञ्ज धर्म की राशि रूप है सदाशिव -अर्थात् शिव सर्वदा कल्याणस्वरूप वाले हैं ।

शिव का एक नाम अकल्मष है इसका अर्थ होता है नित्य शुद्ध रहने वाले । , चतुर्बाहु '--अर्थात् चार भुजाओं वाले विष्णु का -सा स्वरूप वाले । 'दुरावासः'-- योगिजनों की समाधिमें भी बड़ी कठिनाई से ध्यानगत होने वाले । यहाँ 'सर्वावास ऐसा भी पाठान्तर मिलता है उसका अर्थ है सर्वत्र सब में निवास करने वाले शिव हैं । दुरासद बड़ी कठिनता से प्राप्त होने के योग्य शिव हैं ।। २।। 'दुर्लभ : अर्थात् अत्यन्त भक्ति से ही प्राप्त होने वाले हैं। दुर्गम बड़ी कठिन मेहनत से जानने के योग्य (१८० दुर्ग :- अर्थात् बहुत ही दुख उठाकर पाने के योग्य । सर्वायुधविशारद :-- समस्त शस्त्रास्त्र की विद्याओं के पूर्ण पण्डित ।

"अध्यात्म योग निलयः" --अर्थात् असंप्रज्ञात समाधि के स्थान सार की वृद्धि वा छेदन करने वाले ।। २३ ।। 'शुभांग' श्रेष्ठ अंगों वाले । लोक सारङ्ग-- सारग के सदृश लोक का सार ग्रहण करने वाले किम्बा ओंकार के द्वारा जानने के योग्य । जगदीश समस्त जगत् का नियन्त्रण करने वाले 'जनार्दनः' — इस जगत् के संहार करने वाले । भस्म शुद्धिकरः अर्थात् भस्म से शुद्धि करने वाले । (१६०) ।। मेरु -- पर्वत के स्वरूप में संस्थित । औजस्वी -आत्मा के बल ओज से परिपूर्ण । 'शुद्धि विग्रहः'—अर्थात् चित्स्वरूप वाले ॥ २२॥ २३॥ २४॥

असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् ।
हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥२५
महाह्रदो महागर्तः सिद्धो वृन्दारवन्दितः ।
व्याघ्रचर्माम्बरो व्यालो महाभूतो महानिधिः ॥२६
अमृतोऽमृतपः श्रीमान्पाञ्चजन्यः प्रभंजनः ।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परात्परः ॥२७

'असाध्यः'—चरित्रहीन पुरुषों के द्वारा प्राप्त न होने वाले । 'साधु साध्यः'—सच्चरित एवं साधु वृत्ति वाले भक्तोंके द्वारा प्राप्त होने के योग्य है। 'भृत्यमर्कट रूप धृक्' अर्थात् हनुमान के स्वरूप में स्थित होने वाले । हिरण्य रेताः'-अग्निके सम स्वरूपवाले अर्थात् परम तेजस्वी । पौराण'-समस्तपुराणों के द्वारा ब्रह्म के रूप से प्रतिपादन करने के योग्य । 'रिपु जीव हरः'—शत्रुओं के प्राणों का हरण करने वाले । 'बलः'-महान् बल की शक्ति धारण करने वाले॥(२००)॥(यहाँ शिव के नामों का द्वितीय शतक समाप्त हो गया है ।) 'महाह्रदः'-ऐसे महान् सरोवर का स्वरूप जिसमें योगी विश्रामलेकर सर्वदा आनन्द में मग्न रहा करते हैं । 'महागर्त्तः'-महागर्त्त वाले किम्वा महान् दुरत्यय माया से युक्त । 'सिद्ध वृन्दारवन्दितः'—परम सिद्ध और देव समूह के द्वार वन्दना किये जाने वाले । 'व्याघ्र चर्माम्बरः'-अर्थात् बाघ के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले । 'व्याली'—अर्थात् महान् विषधर वासुकि आदि अनेक सर्पों के भूषण धारी । 'महाभूतः'-महान् विराट्को उत्पन्न करनेवाले अथवा तीनों कालों में अवच्छिन्न महत्तत्त्व स्वरूप वाले । यहाँ यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वकम्'—यह श्रुति का वचन भी पोषक होता है । 'महानिधि'-ऐसेविशाल स्वरूपके धारणकर्त्ता जिसमें समस्तप्राणी समा जाते हैं।२५।२६। 'अमृताशः'—अपने आत्मानन्द रूपी अमृतका सदा पान करने वाले । 'अमृत वपुः'—मृत्यु रहित शरीर के धारण करने वाले । यहाँ—'अजरोऽपरः'—यह वेदका वाक्य भी शिवके मरणाभावकी पुष्टि करता है । 'पाञ्चजन्यः'-अर्थात् पाँच जनों में रहने वाले अग्नि स्वरूपी । यहाँ पर भी-'अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः'—यह श्रुति वाक्य है। किसी जगह 'पञ्चयज्ञ'-ऐसा भी

पाठान्तर मिलता है । वहाँ इसका अर्थ यज्ञों के उत्पादक शिव हैं । 'प्रभञ्जनः' –भक्तों के मायात्मक आवरण के नाशक अथवा वायु के स्वरूप में संस्थित । 'पञ्चविंशति तत्त्वस्थः'-अर्थात् प्रकृति आदि पच्चीसतत्त्वोंमें विराजमान रहने वाले । यहाँ–'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'–यह श्रुति का वचन उक्तार्थ का समर्थक है । 'पारिजातः'-अर्थात् मनुष्यों के मनोवांछित फल देने वाले कल्प वृक्ष के स्वरूप से युक्त । परात्परः'ःब्रह्म तथा जगत् के रूप वाले हैं ।।२७।।

सुलभः सुव्रतः शूरो वांग मयैकनिधिर्निधिः ।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।।२८

आश्रमः श्रमणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः ।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः ।।२९
धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणः शशिगुणाकरः ।
सत्यः सत्यपरोऽदीनो कर्मो गोधमशासनः ।।३०

'सुलभः'—पत्र पुष्पादि के अत्यन्त साधारण उपचारों से पूजित होने पर प्राप्त होने वाले ।'सुव्रतः शूरः अपने भक्तों की रक्षा करने का अच्छा व्रत लेने वाले किम्वा भोजन नियत करने वाले शूर अर्थात् सूर्यके स्वरूप में स्थित यहाँ इन दोनों शब्दों से शिव का एक ही नाम व्यक्त होता है । 'ब्रह्म वेद निधिः'–वेदों के प्रादुर्भाव होने का स्थल । यहाँ—'अस्य महतो भूतस्य निःश्वासितमेतदृग्वेदः'-अर्थात् इस महान् देवकाजो निःश्वास है वही ऋग्वेद है यह श्रुतिका वचनभी उक्त नामार्थ की पुष्टि करताहै । 'वाङ्मयैक निधिः' कहीं ऐसा भी पाठान्तर मिलता है । वर्णाश्रम गुरुः–अर्थात् योगिजन द्वारा स्थापित ब्राह्मण आदिवर्णोंऔर ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंके उद्भव करने वाले अथवा उपदेशक ।।२८।।'वर्णी'-ब्रह्मचारी के स्वरूपमें रहने वाले।।(२२०)। 'शत्रुजिच्छत्रु तापनः'—देव शत्रु को जीतने तथा उन्हें सन्ताप देने वाले । यहाँ भी दोनों शब्दों द्वारा एक ही शिव का नाम होता है । 'आश्रमः'-आश्रम के सदृश संसार में भ्रमणशीलों को विश्राम प्रदान करने वाले । 'श्रमणः'— निज भक्तों के पापों का क्षय करने वाले । 'क्षामः'–प्रलयकालमें प्रजा को क्षीण करने वाले । 'ज्ञानवान्'–नित्यज्ञान से युक्त । 'अचलेश्वरः'–पृथ्वी पर्वत प्रभृति के स्वामी । 'प्रमाण भूतः'—प्रत्यक्षानुपानादि प्रमाणों के

उत्पादक। 'दुर्ज्ञेयः'-अत्यन्त घोर श्रम से जानने के योग्य। 'सुपर्णः'-धर्म अधर्म रूपी पक्षों से युक्त अथवा गरुड़ के स्वरूप में संस्थित किम्बा सबके उत्पन्न करने वाले यहाँ—'सुपर्णा विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्त बहुधा कल्पयन्ति' इत्यादि श्रुति वचन है जो उक्त नाम के अर्थ को बतलाता है। अथवा छन्द स्वरूप पर्ण वाले। 'वायु वाहनः'—वायु सोपान से युक्त रथ वाले अथवा जिसके भय से वायु समस्त प्राणियों का वहन करता है। वहाँ उसका पोषक—'भीषा स्माद्वातः पवते' इत्यादि श्रुति का वाक्य है। 'धनुर्धरो धनुर्वेदः—अर्थात् धनुर्वेद को प्रकट करने वाले पिनाक के धारक। यहाँ पर ये दोनों शब्द एक ही शिव नाम के वाचक होते हैं। 'गुणराशिर्गुणा करः'—योगादि गुणों के संघात वाले और योग, साँख्य, तप, विद्या, विधि, क्रिया' ऋत, सत्य, दया, श्रेष्ठ मति, अहिंसा, शांति, दम, ध्येय, ध्यान, मति, धृति, प्रथा, मेधा, नीति, कान्ति, दृष्टि, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, सरस्वती, प्रासाद, क्रिया, प्रतिष्ठा आदि अनेक गुणों की खान। यहाँ भी दोनों शिव का एक ही नाम बतलाते हैं। 'सत्यः सत्यपरः'—साधुओं के समाज में सत्य स्वरूप वाले और यथार्थ कथन करने में निष्ठा रखने वाले। यहाँ पर भी दोनों शब्द एक ही नाम को प्रकट करते हैं। 'दीनः'—सामान्य बाह्य दृष्टि रखने वाले के लिये श्मशान में निवास करने से एक दरिद्र के समान दिखलाई देने वाले किम्वा अदीन अर्थात् सर्वदा परम सन्तुष्ट रहने वाले। 'धर्माङ्गो धर्म साधनः'—अर्थात् यज्ञादि के धार्मिक अंगों वाले। जैसा कि हरिवंश पुराण में प्रथम पर्व २१ अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है और लिखा है—वेद रूप चरण, यज्ञ स्तम्भ स्वरूप दंष्ट्रा, यज्ञ रूप हाथ वाला वाराह मूर्तिरूप है और जिसका चिति रूप मुख, अग्नि स्वरूप जिह्वा, डाभ (कुशा) रूप रोम, ब्रह्मात्मक शिव, दिनरात्रि स्वरूप नेत्र, दिव्य वेदान्त तथा श्रुति रूप आभरण, घृत रूप नासिका, स्रुवा स्वरूप तुण्ड, साम-वेदात्मक शब्द, धर्म सत्य स्वरूप शोभा, कर्म-विक्रम सत्क्रिया सयुत, प्रायश्चित रूपी नख और पशु रूप जानु और विकृत भुजा, उग्रता से युक्त होम स्वरूप वाला लिंग, फल बीज महौषधि वायु से समन्वित अन्त-रात्मा वाला वेदरूप फिचों से हुआ सोम स्वरूप रक्त, वेदी रूप स्कन्ध, हवि रूप गन्ध, हव्य-कव्य स्वरूप वेगवान्, प्राग्वंश रूपी शरीर विचित्र

दीक्षाओंसे समर्पित, दक्षिणा रूपी हृदय, योगी और महायज्ञ से युक्त उपकर्म रूपी ओष्ठ,प्रवर्गावर्त्त रूप भूषण तथा अनेक प्रकारके वेदरूप गमन,गुप्त उपनिषद् रूपी आसन और छाया पत्नीके सहित मेरु शृंगके तुल्य उन्नत बाराह रूप है एवं धर्म के साधनोंके विधाता हैं। यहाँ पर भी दोनों शब्दों से एक ही शिव के नाम की व्यक्ति होती है ॥२८ से ३०॥

अनंतदृष्टिरानन्दो दंडो दमयिता दम ।
अभिचार्यो महामायो विश्वकर्मविशारद ॥३१
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः ।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामो जितेद्रियः ॥३२
कल्याण प्रकृति कल्प सर्वलोकप्रजापति ।
तपस्वी तारको धीमान्प्रधान प्रभुरव्यय ॥३३

'अनन्त दृष्टिः'—अर्थात् असख्य दृष्टियों वाले । 'आनन्दः'–अर्थात् अत्यन्त सुख के स्वरूप हैं। यहाँ-'आनन्द ब्रह्म' इत्यादि श्रुति से भी उनका नाम व्यक्त होता है 'दंडो दमयिता'–दमन करने वालों को भी दण्ड रूप और इन्द्रादि के रूप से प्रजा के दमन करने वाले हैं। यहाँ भी दोनों का एक ही नाम होता है। 'दमः'-इन्द्रियों के निग्रह के स्वरूप वाले। 'अभिवाद्यो महामायः'-सुरासुरों द्वारा वन्दित और मायासंयुतों को मोहने वाले हैं। ये दोनों भी एक ही हैं।२४०। 'विश्वकर्मा विशारदः'-विश्व की रचना करने वाले और सकल कलाओंमें प्रवीण जिनके द्वारा श्रेष्ठ सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ है। ये दोनों एक ही हैं। 'वीतरागः'-भक्तों के राग-द्वेष को मिटाने वाले। 'विनीतात्मा'-भक्तोंके स्वभाव को विनम्र बना देने वाले। 'तपस्वी' अर्थात् तप से युक्त। 'भूत भावन'-प्राणियों की वृद्धि के लिये सम्पादक। 'उन्मत्त वेष, प्रच्छन्न'—दिगम्बर (नग्न) होने के कारण गूढ रूप वाले। यहाँ भी दोनों से एक ही नाम का प्रकाशन होता है। 'जितकामः'-कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले। 'अजित प्रियः'—विष्णु के प्यारे।

किसी स्थान में—'जितरोचिः प्रियाकविः' ऐसा पाठान्तर भी है। 'कल्याण प्रकृति'-अर्थात् उत्तम स्वभाव से युक्त। 'कल्प'-सब चराचर के

आदि कारण ।(२५०)। 'सर्वलोकप्रजापति:'—सम्पूर्ण लोकों तथा समस्त प्रजा के पालक स्वामी । 'तपस्वी'-अपने भक्तों को रक्षा करने के कार्यमें वेग सहित शीघ्रता करने वाले । 'तारक:'-इस संसार रूपी सागर से तार देने वाले । 'श्रीमान'-श्रेष्ठ बुद्धि एवं ज्ञान से युक्त । 'प्रधान प्रभु'-उस चराचर प्रकृति के स्वामी । 'अल्यप:'—नाश से नहित ।३१—३३।

लोकपालोऽन्तरात्म च कल्पादि: कमलेक्षण: ।
वेदशास्त्रर्थतत्वज्ञो नियमी नियमाश्रय: ।३४।
चन्द्र: सूर्य्य: शनि केतुर्वरांग विद्रु मच्छवि: ।
भक्तवश्य: परं ब्रह्म मृगबाण र्पणोऽनघ: ।३५।
अद्रिरद्रयालय: कान्त: परमात्मा जगद्गुरु: ।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्यो मङ्गलावृत: ।३६।

'लोकपाल:'—लोकों के पालन-पोषण करने वाले । 'अन्तरात्मा'—माया के प्रभाव से अपने स्वरूप को छिपा कर रखने वाले । 'कल्पादि:'—समस्त शास्त्रों के आदि कारण । 'कमलेक्षण:--कमल के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाले किम्वा अपनी दृष्टि में लक्ष्मी का निवास रखने वाले ।(२५०)। 'वेद शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञ:'-मुनियों को वेदों एवं शास्त्रों का असली तत्वार्थ का ज्ञान प्रदान करने वाले या स्वयं वेद शास्त्रों के तत्वार्थ के ज्ञाता । 'अनियम'—स्वयं शिक्षा से रहित अथवा सबको सिक्षा देने वाले । नियताश्रम' सम्पूर्ण जगत् के आधार स्वरूप ।। ३४ ।। 'चन्द्र:' सबको प्रसन्नता देने से चन्द्र के स्वरूप वाले । 'सूर्य:'-कर्मों में सब लोकों को प्रेरित करने वाले आदित्य स्वरूप । 'शनि'--शनि के रूप वाले । 'केतु'--केतुवा धूमकेतु का स्वरूप वाले । वराँग:' शोभापूर्ण अंगों वाले । कहीं 'विराम:' ऐसा भी पाठान्तर होता है । 'विद्रु मच्छवी'-मूंगे के समान कान्ति वाले अर्थात् मंगल स्वरूप । 'भक्ति वश्य:'-- भक्ति के द्वारा बस में हो जाने वाले ।। (२७०) ।। 'परब्रह्म'-परात्पर ब्रह्म के स्वरूप वाले । 'मृग बाणापूर्ण'-अर्थात् अपनेभक्तों के लिये मृग के अन्वेषण में मन रूपी बाण का अर्पणकरने वाले । 'अनघ'-

सब प्रकार के पापों से रहित। 'अद्रि:'—मेरु आदि पर्वत के स्वरूप वाले। अद्रयालय:,-कैलास पर्वत के निवास करने वाले। कान्त:'—अत्यन्त सुन्दर अथवा ब्रह्मा को अपना सारथि रखने वाले। 'परमात्मा'-सब में व्यापक होकर निवास करने से सर्वोत्कृष्ट महान् आत्मा वाले अर्थात् सर्वत्र विद्यमान। जगद्गुरु'- सम्पूर्ण जगत् को हित का उपदेश देने वाले। सर्व कर्मालय:'—अर्थात् सबके नित्य के तथा नैमित्तिक कर्मों के अर्पण करने के आधार। 'तुष्ट:' - परम सन्तोष तथा आनन्द के स्वरूप। 'मगल्यो मंगलावृत:'—अपने भक्तों के मंगल में हित स्वरूप तथा अनेक मंगलों से युक्त ये दोनों शब्द एक ही शिव के शुभ नाम के द्योतक हैं ॥३४-३५३६॥

महातपा दीदीर्घतपा: स्थविष्ठ: स्थविरो ध्रुव:।
अह: संवत्सरो व्याप्ति: प्रमाणं परमं तप: ॥३७
संवत्सरकरो मन्त्र: प्रत्यय: सर्वतापन:।
अज: सर्वेश्वर: सिद्धो महातेजा महाबल: ॥३८
योगी योग्यो महारेता: सिद्धि: सर्वादिरग्रह:।
वसुर्वसुमना: सत्य: सर्वपापहरो हर: ॥३९

'महातपा:'—संसार के समुत्पन्न करने से महान् तप करने वाले। यहाँ 'यस्य ज्ञान मयं तप:'—इत्यादि वेद के वचन का प्रमाण है। 'दीर्घतपा:'—स्वयं अजर अमर होने से दीर्घतम तपस्या करने वाले भगवान् शिव हैं।

'स्थविष्ठ:'—अत्यन्त स्थूल। 'स्थविर:'—अत्यन्त वृद्ध अर्थात् सबसे प्राचीन बड़े। ध्रुव:'- अटल स्वरूप वाले। 'अह:'—प्रकाश स्वरूप। 'संवत्सर:'-वर्षात्मक काल के स्वरूप से युक्त। 'व्याप्ति:'-सर्वत्र विद्यमानता रखने के स्वरूप वाले। 'प्रमाण:'-प्रमित स्वयं प्रमाण रूप। यहाँ श्रुति वचन इसका पोषक—'प्रज्ञान-ब्रह्म' होता है। 'परमम्'—पर शोभा से समन्वित अथवा मुक्ति स्वरूपिणी लक्ष्मी के दाता।'तप:'-ऋत सत्य आदि के स्वरूप से युक्त। 'ऋत तप:'—इत्यादि श्रुति वाक्य हैं।३७। संवत्सर कर:'-काल 'चक्र के प्रवर्त्तक अथवा प्रभव प्रभृति वत्सरों के उत्पन्न करने वाले। 'मन्त्र 'प्रत्यय:'-अर्थात् ऋग्यजु: साम स्वरूप मन्त्रोंके द्वारा प्रतीत होने वाले। 'सर्व

दर्शन:'--सभी कुछ का प्रत्यक्ष करने वाले। यहाँ 'विश्वतश्चक्षुर्विश्वाक्षम्' इत्यादि श्रुति के वचन इस उक्त अर्थ की पुष्टि करने वाले हैं।

'सर्वेश्वर:'--ईश्वरों के भी परमेश्वर।' एष सर्वेश्वर ! इत्यादि वेद के वाक्य यहाँ पर पोषक हैं। सिद्ध'--अर्थात् नित्य निष्पन्न स्वरूप। 'महा-रेता.' महान् वीर्य वाले। यहाँ 'ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षम्'--यह श्रुति वचन है। 'महाबल'—महान् पराक्रम वाले ॥३८॥ 'योगी योग्य:,—नित्य योग से युक्त अर्थात् योग में प्रवृत्त होने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द एक ही नाम को प्रकट करने वाले है। (शिव नामों का यह तृतीय शतक समाप्त हो गया।) तेजो:'--महान् प्रभाव से युक्त किम्वा दुष्टों के अत्या-चार न सहन करने वाले। 'सिद्धि:'—-अनन्त काल का स्वरूप होने के कारण सिद्धियुक्त। 'सर्वादि:'—-समस्त के आदि कारण। 'अग्रह:'—— पुण्य से हीनों के द्वारा न ग्रहण करने के योग्य। 'वसे:'—अर्थात् समस्त प्राणियों को अपने अन्दर निवाह देने वाले। वसुमना:' राग द्वेषादि से कालुष्य रहित चित्त वाले। 'सत्य:' अर्थात् आवर्तक स्वरूप। यहाँ-'सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह वेद वचन इसका पोषक है। 'सर्व पाप हरोहर' अर्थात् कायिक प्रभृति समस्त पातकों के हरण करने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द एक ही नाम को बतलाने वाले हैं।३९।

सुकीर्तिः शोभनः स्रग्वो वेदांगो वेदविन्मुनिः।
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः।४०।
अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्।
कमंडलुधरो धन्वी ह्यवाङ्मनसगोचरः।४१।
अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः।४२।

'सुकीर्ति:' सुन्दर समुज्ज्वल यश से युक्त। शोभन–विविध प्रकार के वैभवोंसे युक्त शोभा वाले। (३०)। श्रीमान्-ऐश्वर्य लक्षण शोभा की समस्त सामग्री से युक्त। 'अवाङ्' मनस गोचर:'--चक्षु आदि का तो कथन ही क्याहै वाणी और मनसे परे यहाँ, यतो वाचौ निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इत्यादि श्रुति वचन पोषक हैं। 'अमृत: आश्वत:-अमर और नित्य। यहाँ पर भी--'अजरोऽमृत:' इत्यादि श्रुति वाक्य है। ये भी दोनों एक ही

होते हैं ॥४०॥ 'कमण्डलु धरः,-कमण्डलु हाथ में धारण करने वाले 'धन्वी'-धनुष के धारक । वेदांग;—वेद के बोधक अंग रूप । 'वेदविन्मुनिः,-वेदों के ज्ञाता मुनि स्वरूप ।

'भ्राजिष्णुः'—एक रस प्रकाश के स्वरूप वाले । 'भोजनम्–इस भुवनमोहिनी माया का भोजन करने वाले । 'भोक्ता' पुरुष स्वरूप से भोग करने वाले । 'लोकनाथ'—सम्पूर्ण लोकों के स्वामी किम्बा सबका शासन करने वाले । 'दुराधरः'—दैत्यादि के द्वारा आराधना करने के अयोग्य एवं अशक्य ॥४१॥ अतीन्द्रियो महामाय'—शब्दादि का स्वरूप न होने के कारण इन्द्रियों के अविषय । यहाँ—'अशब्द सम्पर्कम्' इत्यादि श्रुति के वचन पुष्टिकारक हैं । जो स्वयं माया किया करते हैं उन पर भी माया का प्रभाव डालने वाले । यहाँ इन दोनों शब्दों से एक ही नाम की अभिव्यक्ति होती है । 'सर्व वास'—सब में निवास करने वाले । 'चतुष्पथः'—चारों पदार्थों के साधक मार्ग वाले । कालयोगी'-कर्म के परिपाक होने के समय प्राणियों को भोग की प्रेरणा देने वाले । 'महाः नाद,—अयि गम्भीर ध्वनि से युक्त । 'महोत्साहः,--इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहृति करने के कार्य में उत्साहपूर्वक सर्वदा उद्यत रहने वाले । 'महाबलः'—बड़े भारी बल वालों से भी बली ।४२।

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचार पुरन्दरः ।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ।४३।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वावार्यो मनोगतिः ।
वहुश्रुतिर्महामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ।४४।
तेजस्तेजो द्युतिधरो जनकः सर्वशासनः ।
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रशाशकः ।४५।

'महाबुद्धिः'—अर्थात् महान् बुद्धि के भण्डार । 'महावीर्यः'—इस जगत् के बड़ी भारी उत्पत्ति के कारणरूप वीर्य को धारक करने वाले ।

'भूतचारी'-भूत पिशाच आदि के साथ सदा विचरण करने वाले । 'पुरन्दरः'--त्रिपुरासर का विदारण करने बाले । 'निशाचरः'--रात्रि के

समय में विचरण करने वाले। 'प्रेतचारी'—प्रेतों को साथ में लेकर गमन करने वाले। 'महाशक्तिर्महाद्युतिः—महान् शक्ति एवं महान् ज्योति के धारण करने वाले। यहां 'ज्योतिषाः' ज्योतिः' इत्यादि श्रुति का अर्थ भी यही है कि वह प्रकाशकों की भी ज्योति है। ये दोनों एक ही हैं।४३। 'अनिर्देश्य वपुः'-:ऐसे शरीर धारण करने वाले जिसका ज्ञान किसी को भी नहीं होता है। 'श्रीमन्' ऐश्वर्य की शोभा से युक्त॥ (३४०)॥ 'सर्वाचार्य मनोगतिः' समस्त आचार्यों के मन में ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले। वहुश्रुतः'----अनेक शास्त्रों का उद्भव करने वाले 'महामायः'----बहुत बड़ी माया को उत्पन्न करने वाले। 'नियतात्मा ध्रुवः'--नियत आत्मा स्वरूप में स्थित निश्चल। 'अध्रुवः'--ध्रुव जिससे नहीं है। 'ओजस्तेजो द्युतिधरः'--प्राण, बल, शौर्यादि गुणों की दीप्ति को धारण करने वाले। 'नर्तकः'----ताण्डव नामक नृत्य के करने वाले सर्व शासकः.'----समस्त प्राणियों के नियन्ता। यहाँ--'अन्त प्रविष्ट शास्त जनानां सर्वात्मा' यह श्रुति वचन है। इसका अर्थ है अन्दर प्रविष्ट होता हुआ जीवों का शासक सबकी आत्मा है। 'नृत्य प्रियो नित्य नृत्य'... नाच की प्रिय लगने के कारण नित्य ही शिव भक्तों के द्वारा उनके निकप नृत्य दिखाये जाने वाले। इन दोनों शब्दों के द्वारा एक ही नाम होता है। 'प्रकाशात्मा प्रकाशक.'----स्वयं तो प्रकाश स्वरूप है अत सबको प्रकाशित करने वाले हैं। ये दोनों एक ही हैं (३५०)॥४४॥४५॥

स्पष्टाक्षरो बुद्धो मन्त्रः समानः सारसंप्लवः।
युगादिकृतद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः।४६।
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः।४७।
अपां निधिरधिष्ठानं दुर्जतो जयकालवित्।
प्रतिष्ठमः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः।४८।

'स्पष्टाक्षर,--ओङ्कार लक्षण वाले। 'बुध'--सबका ज्ञान रखने वाले शिथुणिता से रहित। 'सार स प्लव' वेदान्तके स्वरूपमेंस्थित होकरसंसार सागरसे पाप उतारनेमें साधना'युगादि कृत युगावर्त्त'--स्वयं काल स्वरूप

होने के कारण युगादि के भेद करने वाले तथा युगोंके आवर्तन कर्त्ता ये दोनों शब्द भगवान् शिव का ही नाम व्यक्त करते हैं। 'गम्भीरः—ज्ञान तथा ऐश्वर्य प्रभृति बल से अति गहन। 'वृष वाहनः' नन्दीश्वर नामक वृष को वाहन रखने वाले ॥४६॥ 'इष्ट'—अतिशयानन्द स्वरूप होने के कारक प्रिय किम्बा यज्ञादि के द्वारा समर्चित। 'विशिष्टः'--सबसे उत्कृष्ट। (३६०)। शिष्टेष्टः' महापण्डितोंको प्रिय लगने वाले किम्बा शिष्ट पुरुषोंके द्वारा पूजित। 'शलभः' सर्वत्र गमन करने वाले। 'शरभः'—शरभ के अवतार धारण करने वाले। 'धनुः'-पिनाक धनुष के धारण कर्त्ता। 'तीर्थरूपः'-सर्व विद्याओं के स्वरूप से युक्त। 'तीर्थनामाः'-सांसारिक जीवों को सद्गति करने के लिए भागीरथी आदि के लाने वाले। 'तीर्थादृश्य.'--गंगादि तीर्थोंके द्वारा भी दुष्प्राप्य होने वाले। स्तुतः'--अर्थात् ब्रह्मादि देवों के द्वारा स्तुति तथा वन्दना किये हुए। 'अर्थदः'--पुरुषार्थों के प्रदान करने वाले ॥४७॥ 'अपांनिधिः'-समुद्र के स्वरूप वाले। 'अधिष्ठानम्.'-उपादान कारण से समस्त प्राणियों के आधार। 'विजयः' ज्ञान-वैराग्य आदि तथा ऐश्वर्य प्रभृति गुणों के द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करने वाले। 'जयकाल वित्'-दैत्य तथा असुरों के नाश और देवों के विजय के समय का ज्ञान रखने वाले। 'प्रतिष्ठितः'-अर्थात् अपनी महिमामें स्थित। यहाँ 'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' इत्यादि श्रुत वचनसे उसके प्रतिष्ठित होने की पुष्टि होती है।

'प्रमाणज्ञः'-प्रत्यक्षादि प्रमाणों तथा समस्त प्राणियोंके प्रमाके ज्ञाता। 'हिरण्य कवच' हेम के निर्मित कवच को धारण करने वाले। 'नमोहिरण्य वाहवे हिरण्य वर्णाय हिरण्य रूपाये, इत्यादि श्रुतिके महा वचन से उक्त नाम के अर्थ का वर्णन होता है। 'हरिः'-समस्त पापों को हरण करने वाले ॥४८

विमोचनः सुरगणो विद्यशो बिन्दुसंश्रयः।
वातारूपोऽमलोन्मायी विकर्ता गहनो गुहः ।४९।
कारणं कारणं कर्त्ता सर्वबन्ध विमोचनः।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ।५०।
गुरुदो ललितो भेदो नवात्मात्मनि संस्थितः।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्गुरुः ।५१।

'विमोचन:'—आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के नाशक। 'सुरगण:'-सर्व देव स्वरूप।'विद्येश:'-सम्पूर्ण विद्याओं के प्रवर्तक स्वामी।(३८०)।'बिन्दु-संश्रय:'–प्रणव (ओङ्कार) के आत्मभूत। 'बालरूप:'-ब्रह्माके ललाट से समुत्पन्न बालक के स्वरूप में स्थित। 'बलोन्मत्त:'–बल द्वारा समस्त शत्रुओंके नाशक। :विकर्त्ता:'–विचित्र भवन के करने वाले। 'गहन::अपूर्व एव अद्भुत सामर्थ्य रखनेवाले ऐसे गम्भीरजिसे कोईभी जान नहीं सकता।'गुह:'-अपनी प्रबल मायाके द्वारा अपने सत्यस्वरूप का छिपाने वाले।'करणम्'-इस जगत् के उद्भव में साधक स्वरूप। 'कारणम्'—सृष्टि की रचना में उपादान तथा निमित्त कारण स्वरूप। 'कर्त्ता'-परम स्वतन्त्र अर्थात् सभीकुछ करने वाले।

'सर्वबन्धविमोचन:'-अपने ज्ञान के प्रदान से अविद्याकृत समस्त बन्धनों से विमुक्त कर देने वाले। 'व्यवसाय:'–सत्-चित् और आनन्द के स्वरूप में स्थित।'व्यवस्थान:'-वर्णों और आश्रमोंके विभाग कर व्यवस्था करनेवाले। 'स्थानद:'-सबको उनके कर्मों के अनुसार स्थान के दाता। 'जगदादिज:'–हिरण्यगर्भ के स्वरूप से इस जगत्के आदिमें होने वाले।।५०।।'गुरुद:'-शत्रुओं को अधिक रूप से खण्डन करने वाले। 'ललित:'–सर्वाधिक सुन्दर स्वरूप वाले। 'अभेद:'-अद्वैत स्वरूप में स्थित। 'भावात्मात्मनि संस्थित:'-प्राणियों के पाँच भूतों द्वारा बने हुए शरीर और जीवात्मामें अन्तर्यामी रूपसे स्थित। 'वीरेश्वर:' शूरों के पति। 'वीरभद्र:'-वीरभद्र नाम वाले एक शिवके गण के स्वरूप में स्थित। (४००) (यहाँ चतुर्थ शतक नमों का समाप्त होता है।) 'वीरासन निधि:'-वीरों के आसन में विधान वाले 'विराट्'-समस्त जगत् के स्वरूप में संस्थित।।५१।।

वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नन्दीश्वरः।
आज्ञाधरस्त्रिशली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥५२
बालखिल्यो महावीरस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः।
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापति ॥५३
मघवा कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्र भृत्॥५४

'वीर चूड़ामणि:—अर्थात् वीरों के शिरोभूषण। 'वेत्ता' – सब के ज्ञाता। 'तीव्रानन्द:'—अत्यन्त आनन्द स्वरूप। 'नदीधर:'— मस्तक पर भागीरथ के धारण करने वाले समुद्र स्वरूप। दाज्ञाधार:'—सन्तति स्वरूप जगत् के द्वारा अविच्छिन्न रूप से आज्ञा के आश्रय। 'त्रिशूली'— त्रिशूल आयुध के धारक। 'शिपिविष्ट:'—यज्ञ में विष्णु के रूप से विराजमान। 'यज्ञो वै विष्णु: पशव: शिपिर्यज्ञ एवं पमुषु प्रविश्य तिष्ठति' इत्यादि श्रुति का वचन प्रमाण है अथवा रश्मि में रहने वाले। 'शिवालय:' कल्याणयुक्त मंगलमय स्थानमें निवास करने वाले ॥४१०।५२

'वालखिल्य'—-बालखिल्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित। महाचापे:' विदेह राजा जनक के द्वारा अर्थित धनुष वाले। 'तिग्मांशु'— सूर्य स्वरूप में स्थित। 'वधिर:'—श्रोत्रेन्द्रिय से रहित। 'खग-'-अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले। 'अभिराम:'—समस्त योगियों के समूह रमण का आधार। सुशरण:' पीड़ित प्राणियों की शरण (रक्षक) रूप में हो कर त्रास देने वाले 'सुब्रह्मण्य:'—समस्त वेद ज्ञाति तथा ज्ञान के ज्ञाताओं के हित-सम्पादक। 'सुधापति:'--अमृतके स्वामी ।५३। 'मन्त्रवान् कौशिक:- इन्द्र के स्वरूप में विराजमान। यहाँ ये दीनों एक ही नाम के द्योतक हैं। (४२०) 'गोमान्' – ससार रूपी गौ वाले। इनकी कथा लिंग पुराण में वर्णित है। 'विराम:'—प्राणियों के अवसान का आथार। सर्व साधन:'— समस्त पुरुषार्थों के देने वाले साधनयुक्त। ललाटाक्ष:' मस्तक में तृतीय नेत्र धारण करने वाले। 'विश्वदेह:'--जगत् स्वरूपी देह वाले। सार:'- महाप्रलय काल में भी स्थित रहने वाले। 'संसार चक्र भृत्'—सम्पूर्ण जगत् के प्रपञ्चरूपी चक्र को धारण करने वाले ॥५४॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हरिणो ब्रह्मवर्चसः।
परमार्थः परमाय संचयो व्याघ्रकोमलः ।५५
रुचिर्बहुरुचिर्वैद्यो वाचस्पतिरहस्पतिः
रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः ॥५६
युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः पुरञ्जनः।
कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः ॥५७

'अमोघ दण्ड:'—सफल दण्ड वाले। 'मध्यस्थ:'—न्याय में स्थित रहते हुए पक्षपात से रहित रहने वाले। 'हिरण:'—सुवर्ण अथवा तेज के स्वरूप में विराजमान। 'ब्रह्म वर्चस्वी'— ब्रह्म अथवा ब्रह्म की दीप्ति का प्रकाश वाले। परमार्थ.—मोक्ष स्वरूप अर्थ की सिद्धि प्रदान करने वाले। 'परोमायी'—उत्कृष्ट माया वाले। यहाँ दोनों एक ही हैं।

'शम्वर:'- परमोत्कृष्ट कल्याण के दाता किम्वा जल के स्वरूप में स्थित। व्याघ्र लोचन:'. अर्थात् बाघ के समान दुष्टों पर क्रूर नेत्र वाले ॥५५॥ 'रुचि:'-दीप्ति स्वरूप वाले। 'विरंच:'-ब्रह्माके स्वरूप में विराजमान 'स्वन्धु:'-स्वर्ग लोक में बन्धु भाव के रूप में फल प्रदान करने वाले। 'वाचस्पति:'-समस्त विद्याओं केस वामी। ईशान: सर्व विद्यानाम्' इत्यादि श्रुति वचन उनके स्वामी होने का समर्थन करता है। 'अहर्पति:' सूर्य स्वरूप में स्थित। (४००। 'रवि:'-रसों कों किरणों द्वारा ग्रहण करने वाले। विरोचन:'-अग्नि अथवा सूर्य स्वरूप में स्थित। स्कन्द:'-प्रमृत के रूप में सब में और वायुके रूप में शोषणकर्त्ता। ।शास्ता वैवस्वतो मुन:' सब पर शासन करने के लिये सूर्यपुत्र धर्मराज के तुल्य। यहाँ तीनों शब्दों के द्वारा एक ही को बतलाया जाता है। 'युक्तिरुन्नतकीर्ति:'-आठ अंगों वाले योग से युक्त किम्वा न्याय स्वरूप महती कीर्ति वाले। यहाँ दोनों एक हैं। 'सानुराग:'-भक्तों पर प्रीति रखने वाले। 'परञ्जय:'-शत्रुओं को युद्ध में जीतने वाले। कैलाअधिपति:'-कैलास गिर के स्वामी। 'कान्त:'-परम सुन्दर। 'सविता'-समस्त जगत् को प्रसूत करने। (४५०) 'रविलोचन:'-सूर्य रूपी नेत्रों को धारण करने वाले। 'अग्नि मूर्धा चक्षुपी चन्द्रसूर्यो:' इत्यादि श्रुतिका समर्थन यहाँ वचग है ॥५६॥

विश्वोत्तमो वीतभयो विश्वभर्ता: ।
नित्यो निगत कल्याण:पुण्यश्रवणकीर्तन: ।५८
दूरश्रवो विश्वसहो ध्येय दु:स्वप्ननाशन: ।
उत्तारणोदुष्कृतिहा विज्ञोयो दु:सहो धव: ॥५९
अनादिर्भूर्वोलक्ष्मी:किरीटी त्रिदशाधिप: ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिरांगद: ॥६०

'विश्वोत्तम:' शतिशय श्रेष्ठता से युक्त। 'वीतभय:'—संसार के समस्त भय से शून्य। 'विश्वभर्त्ता'—समस्त विश्व के भरण-पोषण करने वाले। 'अनिवारित:'–कर्मफल देने में किसी के भी द्वारा न निवारण करने के योग्य। 'नित्य:'- उत्पत्ति एवं विनाश से रहित सर्वदा एक रस रहने वाले। -नियत कल्याण:'—निश्चित कल्याण से युक्त। 'पुण्य श्रवण कीर्तन:'—परम पावन श्रवण और कीर्त्तन वाले ॥५८॥ 'दूरश्रवा:'-सुदूर देश में भी श्रवण करने वाले। 'विश्वसह:'—संसार के सहने वाले (४६०)। 'ध्येय:'— ध्यान तथा विचार करने योग्य। 'दु:स्वप्न नाशन:' — बुरे दिखलाई देने वाले स्वप्नों के नाशक। 'उत्तारण:'— संसार से पार कर देने वाले। 'दुष्कृतिहा'–दुष्टों के नाश करने वाले। 'विक्षेप:'—विशेष रूप से जानने के योग्य। 'दु:सह:'- दुख के साथ भी असुरादि के द्वारा सहन न करने योग्य। 'अभव:'—जन्म से रहित ॥५९॥ 'अनादि:'—सब चराचर के कारण होने आदि से रहित। 'भूर्भुवो लक्ष्मी:'--भूर्भुवस्व:स्वरूप लोक की लक्ष्मी की आत्म-विद्या वाले 'किरोटी' —किरीट नामक शिरोभूषण धारण करने वाले। (४४०)। 'त्रिदशाधिप:' देवगण के स्वामी। 'विश्वगोप्ता'-समस्त जगत् के रक्षक। 'विश्व कर्त्ता'—इस जगत् के उत्पन्न करने वाले। 'सुवीर:'—अनेक तरह की गति वाले। 'रुचिरांगद.' सुन्दर बाजूबन्द धारण करने वाले ॥६०॥

जननो जनजन्मादि: प्रीतिमान्नीतिमान्ध्रुव: ।
वसिष्ट: कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रम: ॥६१
प्रणव: सत्यथाचारी महाकोशो महाधन: ।
जन्माधिपो महादेव: शकलागमपारग: ॥६२
तत्वं तत्वविदेधात्मा विभूर्विष्णुविभूषण: ।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्य्य जन्ममृत्युजरातिग: ॥६३

'जनन'- समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले। जन-जन्मादि:'- समस्त प्राणियों के जन्म के आदि कारण। 'प्रीतिमान्'-नित्यही प्रीतिसे पूर्ण। 'नीतिमान्'- सर्वदा नीति से युक्त। 'ध्रुव:'-सबके स्वामी।४८०। 'वसिष्ठ:'- प्रलय के समय में भी विद्यमान। 'कश्यप:'-कश्यप नामक ऋषि के स्वरूप में अवस्थित। 'भानु:'-प्रकाश से युक्त। 'तमेव भान्तमनु भागि सर्वेम्'- इत्यादि

श्रुति का वचन भी यहाँ इसका प्रतिपादक है। 'भीमः'– दुष्टों के लिये भय कारणस्वरूप। 'भीम पराक्रमः'—असुरादि दुरात्माओं को भययुक्त पराक्रम वाले ॥६१॥ 'प्रणवः'–ओंकार स्वरूप। शिव अथर्वशीर्ष में लिखा है—'अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण एवर्चो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसश्च यज्ञे ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणमयति तस्मादुच्यते प्रणवः'। अर्थात् ओङ्कार कणव क्यों कहा जाता है—वह प्रश्न पूर्वक उत्तर में कहते हैं कि जिससे ऋचाओं यजुवद के तथा सामानि अथर्वाङ्गिरसम् के मन्त्रों के उच्चार्यमाण होने पर यज्ञ में ब्रह्म-ब्राह्मणों के लिये प्रणाम करवाता है अतएव इसे 'प्रणव' कहते हैं।

'सत्याद्याचारः'--अर्थात् सन्मार्ग में गमन करने वाले। 'महाकोशः'—अन्नमय प्रभृति महाकोशों से युक्त। 'महाधनः'— असीम धनैश्वर्य वाले। 'जन्माधिपः'—जन्म और उत्पत्ति के स्वामी। (४००)। 'महादेवः'—समस्त भावों को त्यागते हुए आत्म ज्ञान के ही ऐश्वर्य में पहुँचने से महान् देव हैं। 'सकलागमपारगः'–सम्पूर्ण वेदों के अन्त तक ज्ञान रखने वाले ॥६१॥ 'तत्वमू–ब्रह्म के स्वरूप में स्थित। 'तत्ववित्'—ब्रह्म के स्वरूप को ठीक-ठीक जानने वाले। 'एकात्मा'—एक ही आत्मा स्वरूप। 'आत्मा वा इदनेव एवाग्र आसीत्'— इत्यादि श्रुदि वचन उक्तार्थ का पूर्ण पोषक है। 'विभुः'— सबमें व्यापक। 'विश्वभूषणः'—जगत् के भूषण अथवा जगत् के आभरण वाले। 'ऋषिः'—इन्द्रियों से पर ज्ञान रखने वाले अर्थात् जो अगोचर है उसे भी जानने वाले। यहाँ 'विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः'—इत्यादि वेद वाक्य इसको प्रमाणित करता है। 'ब्राह्मणः'—उत्तर वर्ण स्वरूप। ऐश्वर्य जन्म मृत्यु जरातिगः'—अपने ऐश्वर्य से जन्म प्रभृति षट् विकारों का अतिक्रमण करने वाले शिव हैं। (५००)। (यहाँ पाँचवाँ शतक समाप्त हो गया)॥ ६३॥

पञ्चतत्व समुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः।
अनाद्यन्तो ह्यात्मयोनिर्वत्सलो भूतलोकधृक्॥६४
गायत्रीवल्लभः पार्श्वविश्वावासः प्रभाकरः।
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा॥
अनेमिरिष्टनेमिश्च मुकुन्दो विगतज्वरः।
स्वयंज्योतिर्महाज्योतिस्तनुज्योतिरचंचलः॥६६

'पञ्चयज्ञ समुत्पत्तिः'-देवादि पञ्च यज्ञों की उत्पत्ति करने वाले। 'विश्वेशः'—समस्त विश्व के स्वामी। 'विमलोदयः'—समस्त मङ्गलोंके उदय करने वाले। आत्मयोनिः'—सब चराचरके कारण स्वरूप। अनाद्यन्तः' —आदि तथा अन्त दोनों से रहित। व सलः'-सब पर प्यार करने वाले अर्थात् प्रिय। 'भक्तलोकधृक्'-भक्तजनों के धारण करने वाले ॥६४॥ गायत्री वल्लभः' शिव गायत्री रूपिणी प्रिया वाले। प्रांशुः'—सुषुम्ना प्रभृति किरणों के प्रकृष्ट स्वरूप से युक्त। 'विश्वावास'—संसार में व्याप्त। (५१०)

'प्रभाकरः'-अत्यन्त दीप्ति का प्रकाश करने वाले। 'शिशुः'—बालक के स्वरूप में स्थित रहने वाले। इस सम्बन्ध में एक कथा लिंग पुराण में पार्वती स्वयम्बर के प्रकरण में लिखित है। 'गिरिरतः'—कैलास पर्वत के निवास को प्रिय समझने वाले। 'सम्राट्'—सबके अधिपति प्रभु किम्बा नियन्ता। 'सुषेणः सुरशत्रुहा'—गणों की एक विशाल एवं सुन्दर सेना के स्वामी और देव शत्रुओं के संहारक। यह दोनों एक ही हैं। 'अमोघोऽरिष्टनेमिः'-स्तुति करने पर प्रसन्न होकर सब कुछ फल देने वाले। 'सत्यसंकल्पः'-यह श्रुति इसको प्रमाणित करती है। शुभाशुभ फल दान रूपी—अर्थात् शुभ और बुरे फलों के दान करने वाले स्वरूप में स्थित। ये दोनों शब्द एक ही हैं। 'कुमुदः'—भार को हटाकर पृथ्वी को परम प्रसन्नता देने वाले। यहाँ मुकुन्दो मुक्तिदः'-ऐसा पाठान्तर मिलता है।

'विगतज्वरः'-समस्त तापों के सन्ताप से पृथक् रहने वाले। 'स्वयं ज्योतिस्तनु ज्योतिः'-स्वप्रकाशात्मक सूक्ष्म तेज के स्वरूप वाले शिव हैं। यहाँ 'नीवार शूकवत्तन्वी पीता भावत्यणूपमा। तस्याः शिखाया मध्ये च परमात्मा व्यवस्थितः'-इत्यादि श्रुति वचन से से इस उक्तार्थ की पुष्टि स्पष्ट है। ये दोनों एक ही हैं। 'आत्मज्योतिः'—आत्मा स्वरूप ज्योति वाले। 'येन सूर्यः तपति तेजसद्धः'—इत्यादि श्रुति के वचन से यह समर्थितार्थ है। (५२०)। 'अचञ्चलः' स्थिर स्वरूप वाले। 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठति'—इत्यादि श्रुति वाक्य है जिससे स्थिरता की पुष्टि हो जाती है ॥६५-६६॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः।
ज्ञानस्कन्धा महानोतिविश्वोत्पत्तिरुपप्लवः ॥६७

भगो विवस्वानादित्यो गतपारो बृहस्पतिः ।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ॥६८
उदारकीर्त्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मय, ।
नक्षत्रमाली नाकेशः' स्वाधिष्ठानः षडाश्रय ॥६९

पिंगलः'-बाघ के चर्माम्बर धारण करने के कारण पिंगल वर्ण वाले । 'कपिलश्मश्रु:'-पिंगल वर्ण की दाढ़ी-मूंछ रखने वाले । 'भाल-नेत्रः-मस्तक में तृतीय नेत्र रखने वाले । 'त्रयी तनु:'—वेदमय शरीर के धारी । 'ज्ञान स्कन्दो महानीतिः'-अर्थात् ज्ञान के दान द्वारा भक्तों को मोक्षदाता और संसार रूपी समुद्र के शोषक । इस जगत् स्वरूप यन्त्र की निर्वाह साधन करने वाली नीति रखने वाले प्रभु शिव हैं । 'विश्वो-त्पत्तिः'—इस समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले । उपप्लवः'—दुष्टों को पीडित करने वाले ।

'भगोविवस्वानादित्य:'-भग-विवस्वान् और आदित्य देवों के स्वरूप रखने वाले । यहाँ ये तीनों शब्दों के द्वारा एक ही शिव का नाम होता है । 'योगपार:'-योग के साँग ज्ञान रखने से सम्पूर्णता वाले । 'योगाधारः' अर्थात् योग के पूर्ण आश्रय ऐसा ही पाठान्तर होता है । (५३०) । 'दिवस्पतिः'— स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के स्वरूप वाले । 'कल्याण गुणनामा' शिव शम्भु आदि मंगल वाचक नामों वाले । 'पापहा'-भक्तों के पापों का नाश करने वाले । 'पुण्य दर्शनः'—परम पावन पुण्यस्वरूप दर्शन वाले । ६७-६८॥

'उदार कीर्त्तिः'—वन्दनीय सुन्दर कीर्त्ति वाले । 'उद्योगी'—जगत् की सृष्टि-रचना करने के कार्य में अतिशय उद्योग करने वाले । 'सद्योगी' सर्वदा सुन्दर योग के साधन में परायण । 'सदसन्मयः-भले बुरे इस जगत् के स्वरूप में अवस्थित । 'नक्षत्र माली'—आकाश के स्वरूप में विराजमान होकर नक्षत्र रूपी मालाओं के धारण करने वाले । 'नाकेशः' स्वर्ग के अधिपति । कही 'लोकेश'-ऐसा भी पाठान्तर मिलता है (५४०) 'स्वाधिष्ठान षडाश्रयः'-निज स्वरूप में लय स्थान वालों के आधारभूत ।६९

पवित्रः पापनाशश्च मणिपूरो नभोगतिः ।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तिर्वृषाकपिः ॥७०

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः ॥७१
ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागः ॥७२

पवित्रः पापहारी'—परम पुनीत और भक्तों के पापों के हरण करने वाले । 'मणिपूर'-रत्नादि के द्वारा भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले । 'नभोगति'-आकाश में विचरण करने वाले । 'हृत्पुण्डरीकमासीन'-योगिजनों के हृदय रूपी कमलमें सर्वदा निवास करने वाले । 'शक्र'-इन्द्र के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'शांतः'-सर्वदा शांतिमय स्वरूप वाले । वृषाकपिः'—धर्म की स्थिरता रखने के कारणभूत ॥७०॥ 'उष्ण' हलाहल महा विष के पान करने के कारण उष्णता से पूर्ण । 'गृहपतिः-सब गृहों के पालन करने वाले । (५५०) । 'कृष्णः'-काले कंठ वाले अथवा कृष्ण गोचर स्वरूप । 'समर्थः'-समस्त कार्यों के करने की सामर्थ्य वाले । अनर्थ नाशनः-संसार के समस्त दुःखों का नाश करने वाले ।

'अधर्म शत्रु'-अधर्म करने में तत्पर पापियों के नाशक किम्वा दुष्टों पर शासन करने वाले । 'अज्ञेय'-योगिजन के द्वारा भी न जानने योग्य किम्वा अगम्य । 'पुरुहूतः पुरुश्रुतः'-बहुतों के द्वारा उपासना में रहने वाले । कहीं 'पुरुहत पुरुष्टुतः'-ऐसा भी पाठान्तर है । अर्थात् बहुतसे गुरुओं के द्वारा श्रवण होने वाले । यहां ये दोनों एकही नाम बताने वाले हैं ॥७१॥ब्रह्मगर्भ' अपने गर्भ में वेदों की स्थिति रखने वाले । वृहद्गर्भः-इस महान् ब्रह्माण्ड को गर्भ में धारण करने वाले । 'धर्मधेनुः'-धर्मोत्पत्ति के स्थान स्वरूप । 'धनागमः'-समस्त प्रकार के धन-वैभव के आगम करने वाले । (५६०) । 'जगद्धितैषी'-इस समस्त जगती तलके कल्याण करनेकी कामना रखनेवाले । 'सुगतः'-संसार का मोह न करने के कारण भगवान् बुद्ध के स्वरूपमें अवतीर्ण होने वाले । 'कुमारः':बाल स्वरूप में स्थित किम्वा अपने सम्मुख कामदेवको पराजित कर देने वाले । 'कुशलागम्:-'अर्थात् समस्त कल्याणों के प्रदान करने वाले ॥७२॥

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ।
आराग्नो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥७३
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्धामा महाज्योतिरनुत्तमः ।
मातामहो मातरिश्वानभस्वान्नागहारधृक् ॥७४
पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ।
निरावरणनिर्वारो वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः ॥७५

'हिरण्य वर्णः' – स्वर्ण के समान कान्ति वाले । नमो हिरण्य वर्णा-श्रुतेः' ये दोनों एक ही हैं । 'नानाभूत रतः'-- अर्थात् भूत पिशाचादि में रमणानन्द लेने वाले ।'ध्वनिः'—नारद स्वरूप वेषधारी । 'अरागः'—राग से रहित । 'नयनाध्यक्षः'—समस्त लोकों के नेत्रों वर्तमान रहने के कारण चक्षुओं के प्रवर्त्तन कराने वाले । 'विश्वामित्रः'—अर्थात् विश्वामित्र नाम वाले गाधितनय के स्वरूप में प्रवस्थित ऋषि रूप वाले । (५००) 'धनेश्वरः'—कुवेर के स्वरूप में विराजमान । 'ब्रह्म-ज्योतिः'—सबको प्रकार देने वाले ब्रह्म स्वरूप । 'वसुधामा'— धन रूपी तेज वाले । महाज्योतिरनुत्तमः'--अति महान् तेज वाले होने के कारण सबसे परमोत्कृष्ट । ये दोनों एक हैं । 'मातामहः'---जगत् की माता के भी पिता । 'मातरिश्वान्'भास्वान्---वायु के स्वरूप में स्थित । 'नाग-हार धृक्'—सर्पों के हारों को धारण करने वाले ॥७३।७४॥ 'पुलस्त्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'पुलहः'– पुलह नामधारी ऋषि के स्वरूप में स्थित । 'अगस्त्यः'--अर्थात् अगस्त्य नाम वाले ऋषि के रूप में स्थित । (५८०) 'जातूकर्ण्यः'—जातूकर्ण्य ऋषि के स्वरूप में स्थित ।'पराशरः' पराशरके स्वरूप में रहने वाले । 'निसवरण निर्वादः' अर्थात् माया के वन्धन से परे होने के कारण चारण करने में अशक्य । 'निरावरण विज्ञानः'—कहीं ऐसा भी पाठान्तर होता है । 'वैरंच्यः'—अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप में प्रादुर्भूत । 'विष्टरश्रवाः'--विष्णु के स्वरूप में स्थित ॥७५॥

आतमभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकनीराग्रणीर्वीरश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ॥७६
व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।
अलकरिष्णुरचलो रोचिष्णर्विक्रमोन्नतः ॥७७

आयु: शब्दपतिर्वाग्मी प्लवनः शिखिसारथिः।
असस्पृष्टोऽतिथिः शत्रु: प्रमाथी पादपासनः।७८।

'आत्मभू:'—स्वयं प्रकाश स्वरूप। 'अनिरुद्ध:'–किसी भी आदुर्भाव में कभी किसीके द्वारा निरुद्ध न होने वाले। 'अत्रि' अत्रि नामक ऋषि के स्वरूपमें स्थित। 'ज्ञान मूर्त्ति:'-ज्ञानके स्वरूप वाले। यहाँ 'सत्यज्ञान मनन्त ब्रह्म' इत्यादि श्रुति वाक्य इसका पोषक है। 'महायशा:' अतुल कीर्तिधारी। (५९० 'लोक वीराग्रणी:'लोक के वीर विष्णु आदि से भी परम श्रेष्ठ एवं प्रमुख। 'वीर:'—महान् शूर। 'चण्ड'–दुष्ट जीवों पर अत्यन्त क्रोध करने वाले। 'सत्य पराक्रम'--सफल शक्तिके धारणा करने वाले ।७६। 'व्याल कल्प:'-महाविषधर सर्पोंके भूषणोंसे विभूषित। 'महाकल्प:'--अत्यन्त सामर्थ्य वाले। कल्पवृक्ष:–भक्तोंके मनकी कामनाओंको पूर्ण करने वाले। 'कलाधर:'–भक्तजनोंके मन प्रसन्न करने के कारण चन्द्रके स्वरूप वाले। 'अलङ्करिष्णु'–अलंकृत करने के कारण विशेष कान्ति वाले। 'अचल:'–स्थिर स्वरूप वाले। (६००) यहाँ भगवान् शिवके नामों का छठवाँ शतक समाप्त होगया है।) 'रोचिष्णु'--अत्यन्त दीप्ति वाले। विक्रमोन्नत:'-- नाना प्रकारके पराक्रमसे युक्त होने के कारण सबसे वड़े हैं।७७। 'आयु: शब्दपति:'–अर्थात् समस्त प्राणियों की आयु और वेदकी वाणीके नियन्त्रण करने वाले। वाग्मीप्लवन:'—अर्थात् बहुत शीघ्रताके साथ भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले। यहाँ ये दोनों एक ही को बताते हैं। 'शिखिसारथि:'-अग्नि की सहायता वाले। 'असमृष्ट'—अर्थात् माया के सब तरहके संसर्गसे शून्य। 'अथिति:'-अपने भक्तजनकी अर्चा अतिथिके स्वरूप से ग्रहण करने वाले। 'शत्रु प्रमाथि'—असुरोंको सेनाके विलोडन करनेमें पूरी तरह समर्थ। 'पादपासन:'—वृक्षके समीप अपना आसन जमाकर बैठने वाले ।।७८।।

वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः।
जप्यो जरादिशमनो लोहितश्च तनूनपात् ।७९।
वृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा।

निदाघस्तपनो मेघभक्षः परपुरञ्जयः ।८०।
सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशरात्मकः ।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहना ।८१।

'वसुश्रवाः'—मधुर श्रवणसे युक्त । (६१०) 'हव्यवाहः'—देवगणों के समीप हविको प्राप्त कराने वाले अग्नि के स्वरूप में समवस्थित । 'प्रतप्तः'-उग्र तपस्या करने वाले । 'विश्वभोजनः'—समस्त विश्व का पोषण करने वाले । 'जप्य' —जप तथा उपासना करने के योग्य । 'जरादि शमनः'वार्धक्य-आदिकी पीड़ाको शान्त करने वाले । 'लोहितात्मा तनूनपात्'—भक्तोंके शरीरको न गिराने वाले रक्त वर्णसे युक्त अग्नि के स्वरूपमें स्थित । यह ये दोनों शब्द एक ही को बताने वाले हैं ।७९।

'वृहदश्व'—बड़े अश्वोंसे युक्त वाले । 'निभोयोनिः'—सभी के कारण होनेके कारण आकाशके भी कारण है । 'सुप्रतीक'-सुरम्य अवयवोंस संयुक्त । 'तमिस्र हो'—अज्ञानके अन्धकार को दूर भगा देने वाले । (६२०) 'निदाघस्तपन'-ग्रीष्मके और सूर्यके स्वरूपमें स्थित । ये दोनों एक ही हैं । 'मेघ'—मेघके स्वरूपमें विद्यमान रहने वाले । 'स्वक्ष'-परम सुन्दर नेत्रों वाले । पर पुरकजय'-शत्रुओंके पुरको जय करने वाले ।।८०।। 'सुखानिल' सुखप्रद वायुके समुत्पन्न करने वाले । 'सुनिष्पन्न'- इस परम सुन्दर जगत् को उत्पन्न करने वाले । 'सुरभिः शिशिरात्मकः'-अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता के प्रदान करने वाले शिशिर ऋतुके स्वरूप में स्थित । यहाँ दोनों एक ही हैं । वसन्तो माधव'-मकरन्दसे युक्त बसन्त ऋतु स्वरुप में स्थिर रहने वाले । 'ग्रीष्म' - समस्त रसोंके शोषण करने वाले ग्रीष्म ऋतुके स्वरूप में अवस्थित । 'नभस्य'-श्रावण मास में होने वाली वर्षा ऋतु के रूप में संस्थित । (६३०) 'बीज वाहन'-धान्यकी प्राप्ति कराने वाले शरद और हेमन्त ऋतुओं के स्वरूप में स्थित ।।८१।।

अङ्गिरागुरुरात्रेयो विमलो विश्वाहनः ।
पावनः पुरजिच्छक्रस्त्रैविद्यो नववारणः ।८२।
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ।

जमदग्निर्जलनिधिर्विगालौ विश्वगालवः ।८३।
अघोरौऽनुत्तरो यज्ञः श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रदः ।
शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिन्दमः ।८४।

'अङ्गिरा'—अंगिरा नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित रहने वाले। 'गुरुरात्रेयः'— दत्तात्रेय के स्वरूप में स्थित गुरु । यहाँ ये दोनों शब्द एक ही शिव के नाम को प्रकट करने वाले हैं।'बिमलः'—मलसे रहित परम शुद्ध । 'विश्व वाहनः'—सम्पूर्ण जगत् के निर्वहन करने वाले। 'पावनः'--पापों का नाश कर पवित्र बना देने वाले । 'सुमतिर्विद्वान्'— श्रेष्ठबुद्धि वाले होने के कारण सभी कुछ के ज्ञाता । ये दोनों एक ही हैं । 'त्रैविद्यः'—ऋग्—यजु और साम—इन तीनों वेद विद्याओं के ज्ञाता । 'नरवाहनः'--यक्षराज कुबेर के रूप में स्थित ॥८२॥ 'मनोबुद्धिः'—मन के सहित बुद्धि स्वरूप । (६४०) 'अहङ्कारः'—अहंकार नामक तत्व के रूप में स्थित रहने वाले । क्षेत्रज्ञः—लिंग शरीर स्वरूप क्षेत्र के ज्ञाता । 'क्षेत्र पालकः'— सिद्ध स्थानों की रक्षा करने वाले । जमदग्निः'—जम-दग्नि नाम बाले ऋषि के रूप में स्थित । 'बल निधिः—समस्त शक्तियों के अधिष्ठान स्वरूप में स्थित । 'बिगाल.'—मोक्षरूपी अमृत का विशेष रूप से स्रवण करने वाले । 'विश्वागालवः'—संसार में गालव नाम वाले ऋषि के स्वरूप में स्थित ॥८३॥ 'अधीरः'--धीरता से रहित होकर अति अभयंकर । 'अनुत्तरः'—सबसे महान् अर्थात् जिनके आगे अन्य कोई भी बड़ा नहीं है । 'यज्ञः'--ज्योतिष्टोम प्रभृति यज्ञों के स्वरूप वाले । (६५०) 'श्रेयः'—कल्याण स्वरूप वाले । ' निःश्रेयसां पथ- — समस्त कल्याणों के मार्ग स्वरूप । 'शैलः'—शिला से समुत्पन्न अर्थात् नर्मदा नदी में लिंगात्मक । 'गगन कुन्दाभ.'—गमन कुन्द के पुष्प के समान कान्ति वाले । 'दानबारि.'—दैत्य दानवों के संहारक । 'अरि—न्दमः'—अपने भक्तजन के शत्रुओं के नाशक ॥८४॥

रजनी जनकश्चारुर्निःशल्यो लोकशल्यधृक् ।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरप्रियः ।८५।
आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवः शिवालयः ।
वहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ।८६।

न्यायनिर्मायको नेयो न्यायगम्यो निरञ्जनः।
सहस्रमूर्द्धा देवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभंजनः ॥८७

'रजनी जनकः'— कालरात्री रूपिणी शक्ति के उत्पादक। 'चारु विशल्यः'—दुःखों से रहित रखने वाली सूक्ष्म बुद्धि से युक्त। 'लोक कल्प धृक्'—लोकों की सृष्टि पुष्टि आदि के धारण करने वाले। 'लोक शल्य-धृक्' ऐसा भी कहीं पाठान्तर प्राप्त होता है। यहाँ लोकों के दुःखों का हर्त्ता अर्थ होता है। 'चतुर्वेदः'—चारों वेदों का प्रादुर्भाव करने वाले। (६६०)॥ 'चतुर्भावः'-धर्म अर्थ आदि चारों भावों को प्रकट करने वाले ,चतुरश्चतुर प्रियः'—परम प्रवीण और कुशलों से प्रेम करने वाले। यहाँ दोनों एक ही नाम के बोधक हैं ॥८५॥ 'आम्नायः'—वेद स्वरूप। समाम्नायः:-वेद के भी प्रमाणभूत किम्वा वह जिससे सबके प्रमाण स्वरूप वेद का प्राकट्य है अथवा वेद के तुल्य। 'तीर्थ देव शिवालयः'—तीर्थों में स्थित देवों के कल्याण के स्थान। ,बहुरूपः'—असंख्य स्वरूप वाले। 'महारूपः'--महान् एवं पूज्य स्वरूप के धारण करने वाले। 'सर्व रूपः'—जगत् की समस्त वस्तुओं के स्वरूप वाले। 'चराचरः'—अस्थित लक्ष्मी के आश्रय स्वरूप ॥८६॥

'न्याय निर्मायकों न्यायी'-सदा सत्पक्ष के निर्वाह करने वाले और नीति से युक्त। यहाँ दोनों एक ही नाम के बोधक हैं ॥(६७०)॥ 'यन्य गम्यः'—नीति से जानने के योग्य। 'निरन्तरः'—भेद ले रहित। 'सहस्रमूर्धा--एक सहस्र अथवा असंख्य शिरों वाले। देवेन्द्रः--समस्त देवगण के स्वामी। 'सर्व शस्त्र प्रभंजनः' समस्त प्रकार के शस्त्रों के जोड़ने वाले ॥८७॥

मुंडी विरूपो विकृतो दंडी दानी गुणोत्तमः।
पिंगलाक्षो हि बव्हक्षो नीलग्रीवो निरामयः।८८
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक्।
पद्मासनः परंज्योतिः पारम्पर्य्य फलप्रदः।।८९
पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः।
परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः॥९०

मुण्डः'--लुंचित केशों वाले। 'विरूपः'--सबसे श्रेष्ठ रूप—लावण्य

वाले। 'विक्रान्त'-अत्यन्त महान् बल-विक्रम वाले। 'दण्डी'—काल दण्ड को धारणा करने वाले। 'शान्त'—दमनशील अर्थात् इन्द्रियोंको जीतने वाले। (६८०) 'गुणोत्तम'—श्रेष्ठ गुण-गण से युक्त। 'पिङ्गलाक्षः'—पिंगल वर्णके नेत्रों वाले। 'जनाव्यक्ष'—समस्त मनुष्योंके स्वामी। 'नीलग्रीव'—हलाहल महाविषको कण्ठमें रख लेने के कारण नीले रंग की गर्दन वाले। 'निरामयः'--समस्त रोगोंसे शून्य अर्थात् परम स्वस्थ ।८८। 'सहस्रबाहु'--एक सहस्त्र अथवा असंख्य भुजाओं वाले। सर्वेश'--सबके अधिपति। 'शरण्य' सबके रक्षक अर्थात् शरणागति में समागतके पालक। 'सर्वलोकधक'--भू प्रभृति समस्त लोकोंके धारणकर्त्ता।, पद्मासन' विद्यासनसे विराजमान अथवा हृदय कमलमें पद्मासनसे स्थित। (६९०) 'पर ज्योति--सर्वाधिक तेज वाले। 'परम्पार'--संसार दुःखसे अत्यन्त खिन्नोंको पार लगा देने वाले। 'परं फलम्'--परम पुरुषार्थ (मोक्षपद) स्वरूप ।८९।

'पद्मगर्भ'—समस्त संसार को अपने गर्भमें रखने वाले अथवा हृदय कमलकी कणिका में उपासकोंके ध्यानके लिये विराजमान। 'महागर्भः--महा वन्दनीय विराट् स्वरूप। 'विश्वगर्भ' सम्पूर्ण जगतको अपने गर्भ में रखने वाले। 'विचक्षणः'--विशेष रूपसे वेदादिके ज्ञान का कथन करने वाले। 'वरद'--भक्तोंको अभीष्ट वरदान देने वाले। 'वरेश'—वरदान के प्रदाताओंमें सर्वश्रेष्ठ (७००) (यहाँ श्री शिवके नामोंका यह सप्तम शतक समाप्त हो गया) 'महाबल' समस्त महा शक्तियोंके समुत्पादक ।९०।

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेश्वरः ।९१।
देवासुरेश्वरो दिव्यो देव सुरमहाश्रयः।
देवदेवोऽनयोऽचिंत्यो देवतात्मात्मसम्भवः ।९२।
सद्योनिर्ह्य सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः।
विबुधाग्रवरः श्रेष्टः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ।९३।

'देवासुर महाश्रयः' देवगण और असुर समूह के महान् आधार

स्वरूप से स्थित । देवासुर गुरुर्देव:'—देव और असुरों को उपदेश देने वाले के भी ज्ञानदाता गुरु । यहाँ ये दोनों एक ही हैं । 'देवादिदेव:'—ब्रह्मादिक के भी उत्पन्न करने वाले देवों के आदि देव । 'देवाग्नि:'—अग्नि को प्रकाशवान् करने वाले । 'देवाग्निसुखद: प्रभु:'—देवगण को अग्नि के द्वारा सुख प्रदाता और स्वतन्त्र । ये दोनों एक ही शिव नाम को बताते हैं ।।९१।। 'देवासुरेश्वर:'-देवगण और मसुर वर्ग के स्वामी । 'दिव्य:'-अलौकिक उत्तम स्वरूप वाले । 'देवासुरमहेश्वर:'—देवगण और असुरों के परम पूजनीय प्रभु स्वरूप । 'देवदेवमय:'--देवताओं के पूज्य देव ब्रह्मादि स्वरूप वाले ।।(७१०)।।

'अचिन्त्य:'-ध्यान करने पर भी चिन्तन में न आने वाले । 'देव देवात्म सम्भव:'—ब्रह्मादिक देवों के भी देवता जिस ब्रह्मा से समस्त जीवों की सृष्टि हुई है ।।९१।। 'सद्योनि:'-संसार की समस्त वस्तुओं के कारण । ,असुर व्याघ्र'—असुरों के लिये बाघ के तुल्य भयंकर प्रहारक । 'देवसिंह:-देवगण में सिंह के सदृश । दिवाकर:—दिन के बनाने वाले सूर्य स्वरूप । 'विबुधाग्रवर श्रेष्ठ हैं शिव उन ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ हैं।९१।९३।

शिवज्ञानरत: श्रीमांछिखी श्रीपर्वतप्रिय: ।
वज्रहस्त: सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातन: ।९४।
ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिप: ।
नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नवृत्तिधर: शुचि: ।९५।
लिङ्गाध्यक्ष: सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगापह: ।
स्वर्धामा स्वर्गत: स्वर्गी स्वर स्वरमय स्वन. ।९६।

'शिवज्ञानरत:'—अपने स्वरूप के ज्ञान में सदा तत्पर । 'श्रीमासे'-स्वर्ण सम्पत्ति से युक्त होने वाले ।।७२०।। 'शिखि श्री पर्वत प्रिय:'—चूड़ाधारी कुमार कार्तिकेय के लिए श्री पर्वत से प्रेम करने वाले । यह कथा 'ज्योतिर्लिंग माहात्म्य' में देखनी चाहिए 'वज्रहस्त:'-हाथ में वज्र-व धारी इन्द्र के स्वरूप में स्थित । 'सिद्धिखड्गी'-समस्त सिद्धियों से समन्वितखड्गकोधारण करनेवाले ।'नरसिंहनिपातन:'-शरभके रूपसेनृसिंहकाग

चूर-चूर करने वाले ।।९४।। 'ब्रह्मचारी'—वेद में शील सम्पन्ना 'लोकचारी' —भूप्रभृति लोकों में विचरणशील। 'धर्मचारी'—धर्म के कार्य करने वाले। 'धनाधिपः'—समस्त प्रकार के धन वैभवों के स्वामी। 'नन्दी'--नन्दीश्वर नाम वाले अपने ही गण के स्वरूप में स्थित। 'नन्दीश्वरूप नाम वाले अपने ही गण के स्वरूप में स्थित। 'नन्दीश्वर-'--नन्दियों के स्वामी ।।(७३०)।। 'अनन्तः'--देश और काल के परिच्छेद से शून्य। 'नग्न व्रतधरः'—दिगम्बर रहने के वृत (नियम) को रखने वाले अर्थात् सब भूत वेष को धारण करने वाले। 'शुचिः'--सम्पूर्ण दोषों से हीन अर्थात् पुर्ण निर्दोष ।।९५।। 'लिगाध्यक्षः'—वाण आदि लिंग (चिन्ह) रूप में सबके अध्यक्ष अथवा लिंग रूप देह में अधिष्ठित। 'सुराध्यक्षः' समस्त देवों के स्वामी। 'योगाध्यक्षः' योग शास्त्र के प्रवर्तक परमाचार्य। 'युगावहः' - सतयुग त्रेता आदि युग प्रभृति की समयानुसार प्राप्ति करने वाले। 'स्वधर्मा' - जगत् की रचना करने के अपने धर्म से युक्त। 'स्वर्गतः' स्वर्ग में निवास करने वाले। 'स्वर्ग स्वरः' स्वर्ग लोक में गमन वाले। 'स्वरमयःस्वनः' षडज ऋषभादि संगीत के सात स्वरों के समुत्पत्ति कारक ध्वनि वाले ।। ९६।।

वाणाध्यक्षो बीजकर्त्ता कर्मकृद्धर्मसम्भवः।
दम्भो लोभोऽथ वै शम्भुः सर्वभूतमहेश्वरः ।।९७
श्मशाननिलयस्त्र्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः।
लोकोत्तरस्फुटो लोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः ।।९८
अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णकन्धरपातनः।
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तभित् ।।९९

वाणाध्यक्षः'—बाणासुर के अधिपति। 'बीजकर्त्ता'—शुक्र के उत्पादक। 'धर्मकृद्ध र्मसम्मवः'--परम पुण्य करने वालों के धर्म का प्रादुर्भाव करने वाले 'दम्भः'—अपने भक्तों की परीक्षा करने के लिये माया से विविध रूप धारण करने वाले। 'अलोभः' लोभ से रहित। 'अर्थविच्छम्भुः'–वेदशास्त्र आदि धर्म के ज्ञाताओं को सम्भावना करने वाले 'सर्वभूत महेश्वरः'—समस्त प्राणियों के सबसे बड़े स्वामी ।।९७।। 'श्मशाव निलयः'—समस्त मृत्युगत प्राणियों के महा अनिष्ठा स्वरूप महा द्रलय के नाशक स्थान में निबास करने वाले: 'त्र्यक्षः' --तीन नेत्रों को धारण करने वाले ।.(७३०)।।

'सेतु:'—इस संसार रूप सागर से तारने के लिए सेतु रूप। 'अप्रतिमाकृति:'—उपमा से शून्य आकृति वाले। 'लोकोत्तरस्फुटालोक:'—अति उत्तम आत्म-स्वरूप वाले जिसे नेत्रों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। 'त्र्यम्बक:—तीन नेत्रों से युक्त। 'नागभूषण:' सर्पों के विविध भूषणों से भूषित जिनमें शेषनागादि प्रमुख सर्प भी हैं ।।६८।। "अन्धकारि:'—अन्धक नामक दैत्य के मारने वाले। 'मखद्वेषी'—प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वाले। 'विष्णु कन्धर पातन:'—दक्ष के यज्ञ में विष्णु के कन्धर का निपात कर देने वाले। 'हीनदोष:'विषमतादि दोषों से रहित। 'अक्षयगुण:'—नाशशून्य अनेक अद्भुत गुणगण से युक्त। (७६०)। 'दक्षारि:'—अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति के शत्रु। 'पूषदन्तभित्' पूषा के दाँतों के तोड़ने वाले ।।६६।।

पूर्ण: पूरयिता पुण्य: सुकुमार: सुलोचन: ।
सन्मार्गप: प्रियो धूर्त्त: पुणकीर्त्तिर नामय: ।।१००
मनोजवस्तीर्थंकरो जटिलो नियमेश्वर: ।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रद: ।।१०१
सद्गति: सिद्धद: सिद्ध: सज्जाति: खलकंटक: ।
कलाधरो महाकालभूत: सत्यपरायण: ।।१०२

'पूर्ण:'– सम्पूर्ण कलाओं से युक्त। 'पूरयिता'—सबको अतुल सम्पति प्रदान कर पूर्ण बना देने वाले। 'पुण्य:'–स्मरण मात्र से पापों से छुटकारा देने वाले। 'सुकुमार:'—स्कन्द के सदृश सुन्दर पुत्र वाले। 'सुलोचन:'—सुन्दर नेत्रों वाले। 'सामगेय प्रिय:'—सामवेद का गायन करने वालों को अत्यन्त प्रिय लगने वाले। 'अक्रूर:'--क्रूरता से रहित। 'पुण्य कीर्त्ति:' पाप नाशक यश वाले। (७८०)। 'अनामय:'—व्याधियों से रहित ।।१००।। 'मनोजव:'—भक्तों के दु:ख दूर करने के कार्य में मन के समान वेग वाले। 'तीर्थंकर:'—शास्त्रों के प्रमाणों के निर्माता। 'जटिल:'—शिर पर सुन्दर जट जूट धारण करने वाले। 'जीवितेश्वर:'—समस्त प्राणियों को प्राणों का दान करने वाले स्वामी। 'जीवितान्तकरो नित्य:'-सब प्राणियों के संहारक तथा नित्य। 'बसुरेता:' सुवर्ण के वर्ण तुल्य वीर्य वाले। 'वसुपद:'—अपने भक्तों के विविध

रत्नों को प्रदाता ॥१०१॥ 'सद्गतिः'—प्राणियों को अव्यभिचारिणी अच्छी गति के प्रदान करने वाले अथवा ब्रह्मादि सन्तों के द्वारा प्राप्त होने वाले। यहाँ पर 'सन्तमेनं ततो विदुः'— इत्यादि श्रुति का वचन इस अर्थ को प्रमाणित करता है। 'संस्कृतिः— जगती तल के रक्षक करने वाली आकृति से युक्त (७६०)। 'सिद्धिः'—समस्त वस्तुओं में संचित रूप अथवा अत्यन्त फल रूप। 'सज्जातिः'—साधु लोगों की जाति को जन्म देने वाले। 'कालकण्टकः'—काल के भी वेधन करने वाले। 'कलाधरः' शिल्पादि चौंसठ कलाओं से युक्त। 'महाकालः'—काल के भी काल। भूत सत्य परायणः'— समस्त प्राणियों के परम आश्रय ॥१०२॥

लोकलावण्यकर्त्ता च लोकोत्तरसुखालयः।
चन्द्रसंजीवनः शास्ता लोकग्राहो महाधिपः ॥१०३
लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृत्तिभूषितः।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतां वरः ॥१०४
तेजोमयो द्युतिधरो लोकमानी घृणार्णवः।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा ह्यजेयो दुरतिक्रमः ॥१०५

'लोक लावण्य कर्ता—लोकों की सुन्दरता के निर्माता। 'लोकोत्तर सुखालयः'—सबसे उत्कृष्ट सुख- सौभाग्य को अपने अधीन रखने वाले। 'चन्द्र संजीवनः'--चन्द्र को संजीवन देकर लोक-पीड़ा के नाशक। 'शास्ता'—दुरात्माओं को शिक्षा देने वाले। (८००) यहाँ शिव के नामों का अष्टम शतक समाप्त हो गया। 'लोक गूढः' मानवों की बुद्धि रूपिणी गुहा के आश्रय होने कारण अप्रत्यक्ष। 'महाधिपः'—सबसे महान् स्वामी ॥१०३॥ 'लोकबन्धु'— लोकों के लिये बन्धु के तुल्य। 'कृत्य' जोकि श्रुति और स्मृति के स्वरूप में स्थित हैं, उसको हिताहित के रूप में उपदेश करने वाले। 'लोकनाथः'— चौदह भुवनों के ईश्वर। 'कृतज्ञः- प्राणियों के द्वारा किये हुये पुण्य और अपुण्य कर्मके ज्ञाता। कीर्ति- 'भूषणः'- यश रूपी भूषण से विभूषित। अनपायोक्षरः'- नाशरहित होने के कारण नित्य स्वरूप। यहाँ दोनों एक ही नाम को बताते हैं। 'कान्तः'- यमराज के भी नाशक। 'सर्वशस्त्र भृतां वरः'- समस्त शस्त्रधारियों में अति श्रेष्ठ ॥१०४॥ 'तेजोमयो द्युतिधरः'- अतिशय तेज की कान्ति के धारण करने वाले। (८१०)

'लोकानामग्रणी:'—सब लोकों में परम श्रेष्ठ। अणु:'—अत्यन्तसूक्ष्म स्वरूप। यहाँ 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य:'—इत्यादि श्रुति वचन है जो इस अर्थ वाले नाम को बताता है। 'शुचिस्मित:'—मन्द हास से युक्त। 'प्रसन्नात्मा'—प्रसाद युक्त स्वभाव वाले। 'दुर्जेय:,—महा—बलवान् शत्रुओं के द्वारा भी न जीते जाने वाले। 'दुरतिक्रम:'—दुख से भी अतिक्रमण के अयोग्य अर्थात् भय के कारण सूर्यादि को भी भीति देने वाले। यहाँ 'भयादस्माद वात: पवते भयात्तपति: सूर्य भया—दिन्द्रश्चाग्निश्च मृत्युर्धावति पर्जन्य:'—इत्यादि श्रुति का वाक्य प्रमाण है ॥१०५॥

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वर: ।
तुम्बवीणो महाकोप: विशोक: शोकनाशन: ॥१०६
त्रिलोकपस्त्रिलोकेश: सर्वशुद्धिरधोक्षज: ।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्तोऽव्यक्तो विशांपति: ॥१०७
पर: शिवो वसुर्नासासारो मानधरो मय: ।
ब्रह्मा विष्णु: प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वय: ॥१०८

'ज्योतिर्मय:'— तेज के पुंज। 'जगन्नाथ:'-अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के अधीश्वर। 'निराकार:'- बिना आकार वाले अथवा निर्गुण स्वरूप। 'जलेश्वर:'- भौतिक जल अथवा सुर नदी भागीरथी के स्वामी। (८२०)। तुम्बवीण:' तुम्बी फल की निर्मित वीणा से युक्त। 'महाकोप:'- सृष्टि के संहार करने की वेला में महान् क्रोध करने वाले। 'शोकनाशन:'- भक्तों के शोक नाश करने वाला ॥१०६॥ 'त्रिलोकप:- त्रिभुवनों के पालक। त्रिलोकेश:'- त्रिभुवन को अपनी आज्ञा से कर्मों में प्रवृत्त कराने वाले प्रभु। 'सर्वशुद्धि:'- समस्त प्राणियों की शुद्धि करने वाले। 'अधोक्षज:'- इन्द्रिय जन्य ज्ञान को नीचे पतित करने वाले। 'अव्यक्त लक्षणो देव:'—अस्पष्ट चिन्ह वाले तेज पुंज के स्वरूप में अवस्थित देव। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। 'व्यक्ताव्यक्त:'—साकार स्वरूप में गुण- उपाधि व्यक्त होते हुये भी निर्गुण निराकार रूप होने से अव्यक्त। (८३०)। 'विशांपति:'—समस्त प्रजा के पालक स्वामी ॥ १० ॥ 'वरशील:'—सर्वोत्तम शीलयुक्त किम्वा

श्रेष्ठ शील के दाता। 'वरगुण:'–सर्वश्रेष्ठ गुण-गण से अलंकृत। 'मारो-मानधन:' अत्यन्त बल वाले और दुष्टों के नाश करने के मान को धन समझने वाले। यहाँ दोनों एक ही हैं। 'मय:'–सुख के स्वरूप में स्थित। 'ब्रह्मा'–अपनी विभूति रूप चतुरानन के स्वरूप में स्थित करने वाले। 'विष्णु: प्रजापाल:'–व्यापक होते हुए प्रजा का शासन करने के कारण विष्णु स्वरूप में स्थित। ये दोनों एक ही नाम के बोधक हैं। 'हस:'— अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मा के स्वरूप में विराजमान। 'हँस-गति:'— योगिजन की गति अर्थात् उद्धारक। 'वय:'— पक्षी के स्वरूप में स्थित। यहाँ 'एक: सुपर्ण: स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भवन विचष्ठे द्वा सुपर्णा'—इत्यादि श्रुति वचन प्रमाण है ॥(८४०) ॥१०८॥

वेधाविधाता धाता च स्रष्ठा हर्त्ता चतुर्मुख. ।
कैलासशिखरावासी सर्वावामी सदागति. । १०९
हिरणयगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपति ।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्रह्माणप्रिय: ॥ ११०
देवप्रियो देवनाथो देवकी देवचिन्तक: ।
विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्द्धन . ॥ १११

'वेधा विधाता धाता'–शिव इस जगत् की उत्पत्ति करने के कारण वेधा नाम वाले, सांसारिक मानवों के कर्म तथा उनके फल का दान करने के कारण विधाता कहे जाते हैं और विविध रूप से समस्त जगत् को धारण करने के कारण धाता हैं। यहाँ ये तीनों शब्द एक ही नाम के बोधक होते हैं। 'सृष्टा' संसार को उत्पन्न करने वाले। 'हर्त्ता'— जगत् के संहारक। 'चतुर्मुख:'—हिरण्य गर्भ के स्वरूप से अवस्थित कैलासशिखरवासी'—कैलास नामक गिरि की चोटी पर निवास करने वाले। 'सर्वावासी:'—सब में अन्तर्यामी स्वरूप से वास करने वाले। सदागति:'—सब जीवों को गति देने वाले ॥१०९॥

'हिरण्य गर्भ:'—हिरण्य गर्भ को उत्पन्न करने वाले किम्बा हिरण्य-मय में व्याप्त होने से हिरण्यगर्भ अथवा ब्रह्मा के स्वरूप में अपनी ही आत्मा से स्थित। यहाँ 'हिरण्यगर्भ' समवर्त्तताग्रे:– इत्यादि श्रुति वचन उक्तार्थ को प्रमाणित करता है। द्रुहिण:'—ब्रह्मा के स्वरूप में

स्थित। 'भूतपालः'—प्राणियों के पालक ॥ (८५०) ॥ 'भूपतिः'—भूमि के स्वामी। 'सद्योगी'---सत्कर्मों की योजना करने वाले। 'योग-वियोगी'--योग के पूर्ण ज्ञाताओं को भी योग में प्रवृत्त कराने वाले। 'वरदः'--प्राणियों को वरदान देने वाले। 'ब्राह्मणप्रियः'-- विप्रों पर अत्यधिक प्यार करने वाले किम्वा विप्रों को प्रिय लगने वाले ॥ ११० ॥ 'देवप्रियः'--देवगण के प्यारे अथवा देवों पर प्यार करने वाले। 'देवनाथः'---देवगण के स्वामी।

'देवज्ञः'---देवों को ज्ञानी बनाने वाले। 'देव चिन्तकः'--देवताओं के द्वारा चिन्तित होने वाले। 'विषमाक्षः'--विषम अर्थात् तीन नेत्र वाले। (८६०) 'विशालाक्षः'--बड़े नेत्रों वाले। 'वृषदो वृष वर्द्धनः'—उपदेशक के द्वारा धर्म के वर्धक तथा जिनसे धर्म समृद्ध होता है। यहाँ दोनों एक ही हैं ॥ १११ ॥

निर्ममो निरहङ्कारो निर्मोही निरुपद्रवः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वर्तु परिवर्त्तकः ॥११२
सहस्रार्चिर्भूतिभूषः स्निग्धाकृतिरदक्षिणः।
भूतभव्यभवन्नाथो विभवो भूतिनाशनः ॥११३
अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः।
निष्कंटकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥११४

'निर्ममः'—ममता के भाव से शून्य। 'निरहङ्कारः'—अहङ्कार से रहित। 'निर्मोहः'—बिना मोह वाले। 'निरुपद्रवः'—उपद्रवों से रहित। 'दर्पहा दर्पदः'—सबके अभिमान का हनन करने वाले तथा शत्रुओं के दर्प के दलनकर्त्ता। ये दोनों एक ही हैं। 'दृप्तः'—अपने ही आत्मा के सुधार-सास्वाद से सदा परम प्रसन्न। 'सर्वर्तु परिवर्त्तकः'—समस्त ऋतुओं के परिवर्तनकर्त्ता ॥ १२ ॥ 'सपत्नजित्'—अनन्त असंख्य शत्रुओं पर जय प्राप्त करने वाले। (८७०) 'सहस्रार्चिः'—असंख्य दीप्तियों से युक्त। 'स्निग्ध प्रकृति दक्षिणः'—स्वाभाविक स्नेह के कारण कुशल एवं सरल। 'भूत भव्य भवन्नाथः'—त्रिकाल के स्वामी। 'प्रभवः'—संसार को अकृष्टता से उत्पन्न करने वाले। 'भूति नाशनः'—शत्रुओं की सम्पत्ति के नाशक ॥११३॥ 'अर्थः'—सबके द्वारा प्राथनीय। 'अनर्थः'—सब प्रकार के प्रयोजनों से रहित। 'महाकोशः'—महान् धन सम्पन्न।

परकार्येकपण्डित:'—मोक्ष प्रदान करने के कार्यमें महापण्डित। 'निष्कण्टक;'—कामादि क्षुद्र शत्रुओं से रहित। (८८०) कृताधुन्द:'—अविच्छिन्न परमानन्द से युक्त। 'निर्व्याजो व्याज मर्दन:'—स्वयं कपट के दूषित भाव से दूर रहते हुए अन्य के कपट के नाशक। ये दोनों एक ही हैं॥ ११४॥

सत्त्यवान्सात्त्विक: सत्य: कृतस्नेह: कृतागम:।
अकम्पितो गुधाग्रहो नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥११५
सुप्रीत: सुखद: सूक्ष्म: सुकरो दक्षिणानिल:।
नन्दिस्कन्ध धरो धुर्य्य: प्रकट: प्रीतिवर्धन: ॥ ११६
अपराजित: सर्वसहो गोविन्द: सत्त्ववाहन:।
अधृत: स्त्रधृत: सिद्ध: पूतमूर्तिर्यशोधन: ॥ ११७

'सत्त्ववान्:'- शौर्य वीर्यादि गुणों से युक्त। 'सात्त्विक:'- सत्त्व गुण की प्रधानता रखने वाले। 'सत्य कीर्ति:'—वास्तविक कीर्ति से युक्त। 'स्नेह कृतागम:'—अपने भक्तोंपर असित स्नेह होने के कारण उनके हित के लिये ही शास्त्रों का प्रकाश करने वाले। 'अकम्पित:'—कम्पसे रहित अर्थात् निश्चल। 'गुणग्राही'—अपने भक्तजनों के सामान्य गुणों को भी आदर से ग्रहण कर कृपा करने वाले। 'नैकात्मा नैक कर्मकृत्'-अनेक स्वरूपों से युक्त तथा समस्त कर्मों के कर्त्ता ॥११५॥ सुप्रीत;-श्रेष्ठ प्रीति से युक्त रहने वाले। 'सूक्ष्म:'—अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपसे सब में व्याप्त रहने वाले। यहाँ सर्वगतं सुसूक्ष्मम्: इत्यादि श्रुति वाक्य इस कथितार्थ में प्रमाण हैं। 'सुकर:'- भक्तों को वरदान देने के कारण सुन्दर कर (हाथ) वाले। 'दक्षिणानित:' —आनन्द करने के कारण मलयाचल से समात वायु के स्वरूप में अवस्थित।

'नन्दिस्कन्धधर:'—नन्दी के कन्धे पर विराजमान। धुर्य:—समस्त प्राणियों के जन्म प्रभृति लक्षणों को धारण करने वाले। प्रकट;–सूर्यादि के स्वरूप से सबको प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले। यहाँ पर—उतैनं गोपा अदृशान्ना दहार्य—यह श्रुति का वाक्य है जो उक्तार्थ का समर्थन करता है। 'प्रीति वर्द्धन:'—भक्तों के प्रेम को बढ़ाने वाले॥११६॥ 'अपराजित:'—शत्रुओं से कभी भी न हारे जाने वाले।

'सर्वसत्त्व:'—समस्त प्राणियों का उद्भव करने वाले। (९००) यहाँ श्री शिव के नाम का नवम शतक समाप्त हो गया है।)'गोविन्द:'—स्वर्ग अथवा गो-भक्तों को देने वाले। 'सत्त्व वाहन:'—मोक्ष के उपयोगी 'पराक्रम के प्रदाता। 'स्वधृत:'—अपनी आत्मा से धारण किये हुए। 'अधृत:'—अनन्य आधार। 'सिद्ध:'—समस्त प्रकार की सिद्धियों से पूर्ण।

'पूतमूर्ति:'—पवित्र एवं विशुद्ध मूर्ति वाले। 'यशोधन:'—यश रूपी धन से सम्पन्न॥११७॥

वाराह शृङ्गधृक् शृङ्गी बलवानेकनायक:।
श्रुतिप्रकाश: श्रुतिमानेकबन्धुरनेक धृक्॥ ११८
श्रीवत्सल:, शिवारम्भ: शान्तभद्र: समो यश:।
भूशयो भूषणो भूतिर्भूतिकृद् भूतभावन:॥ ११९
अकपो भक्तिकायस्तु कालहानि कालविभु:।
सत्यव्रती महात्यागी नित्य: शान्ति परायण: १२०

'वाराह शृङ्ग धृक्छृङ्गी'—वाराह का दन्त शिखर तथा शृङ्ग धारण करने वाले शृङ्गी। ये दोनों एक ही नाम को व्यक्त करते हैं। 'बलवान्'—सब प्रकार की शक्तिसे युक्त। 'एक नायक:'—अद्वितीय स्वामी ॥९१०॥ 'श्रुति प्रकाश:'—वेदों के द्वारा प्रकाशित। यहाँ-तन्त्वौपनिषदं पुरुष पृच्छामि' इत्यादि श्रुति वाक्य इसको प्रमाणित करता है।

'श्रुतिमान्'—सर्वदा वेदों से युक्त। 'एकबन्धु:'—अद्वितीय बन्धु। 'अनेककृत्'—अपने आपके स्वरूप को अनेक बना लेने वाले। यहाँ पर 'बहुस्यां प्रजायेति तदात्मानं स्वयम् कुरुत' इत्यादि वेद बचनसे पुष्टि होती है ॥११८॥ 'श्री वत्सल: शिवारम्भ:'—लक्ष्मी के प्रिय विष्णुके मंगल के लिये आरम्भ करने वाले। 'शान्त भद्र:'—सत्पुरुषों के मङ्गल के कर्त्ता। 'समोयश:'—समस्त प्राणियों में समान किम्वा सब ऐश्वर्य लक्ष्मी के सहित यश वाले। यहाँ दोनों शब्दों द्वारा एक ही शिव का नाम बताया गया है। कहीं 'समज्जस:'—ऐसा पाठान्तर दिखलाई देता है। 'भूशय:'—भूमि में शयन करने वाले। 'भूषण:'—सबको भूषित बनाने वाले। 'भूति:'— समस्त सम्पत्तियों के स्वरूप में स्थित। (९२०)

'भूतकृत्'—समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले। 'भूतवाहनः'—सम्पूर्ण जीवों का यथातथा निर्वाह करने वाले ॥११६॥ 'अकम्प;'—कम्प अर्थात् चञ्चलता से रहित स्थिर स्वरूप में स्थित। 'भक्तिकायः'—भक्तिरूपी काया के धर्त्ता। 'कालहा'—सवको भक्षण कर जाने वाले महाबली काल के भी नाशक। 'नीललोहितः'—कण्ठ में नीलवर्ण होने पर स्वयं वर्ण वाले। 'सत्यव्रत महात्यागी'—सत्यव्रत से सम्पन्न तथा समस्त पुरुषार्थों को देकर अत्यन्त त्याग करने वाले। नित्य शान्ति परायणः'—त्रिकाल में अवाध्य शान्ति के आगार ॥१२०॥

परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः।
शुभदः शुभकर्त्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥१२१
अनर्थितो गुणग्राही ह्यकर्त्ताकनकप्रभः।
स्वभावभद्रो मध्यस्थःशत्रुघ्नोविघ्ननाशनः॥१२२
शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली।
अमृत्युः सर्वदृक् ।सहस्तजोरा।शर्मिहामाणः ॥१२३

'परार्थ वृत्तिर्वरदः'—प्राणियों को परार्थ वरदान देन वाली वृत्ति से युक्त माया के आवरण को खण्डित करने वाले अथवा वरदाता। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। यहाँ पर 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' इत्यादि श्रुति का वाक्य प्रमाण है। अथवा भक्तों के हृदय में सर्वदा प्रवेश की इच्छा रखने वाले ॥(९३०)॥ 'विशारद;—समस्त विद्याओं की कलाओं में नितान्त निपुण। 'शुभदः'—अपने भक्तों को शुभ का दान करने वाले। 'शुभ कर्त्ता' भक्तों के कल्याण के उत्पादन करने वाले। 'शुभ नामा शुभः'—शुभ नाम के धारण करने वाले होने के कारण स्वयं भी परम कल्याण से सम्पन्न। यहाँ दोनों शब्द एक ही के बोधक हैं ॥१२१॥ 'अनर्थितः'—याचना से रहित रहने वाले। 'अगुणः'—गुण रहित अर्थात् निराकार स्वरूप। 'साक्षी ह्यकर्त्ता'—इस समस्त चराचर जगत् के द्रष्टा होने के कारण अकर्त्ता हैं और मायाकी उपाधि से युक्त होने के कारण ईश्वर को जगत् का कर्त्ता होना माना जाता है। अतः ईश्वर स्वयं कर्त्ता नहीं है। यहाँ दोनो एक ही के बोधक हैं। 'कनक प्रभः—स्वयं

के तुल्य दिव्य एवं ज्वलन्त कान्तिके धारण करने वाले। 'स्वभाव भद्रः—स्वकीय भक्तोंकी भावनाके कारण ही मंगल स्वरूप अथवा मंगलों के दाता। 'मध्यस्थः'—ब्रह्मा और विष्णुके मध्यमें संस्थित। (९४०)। 'शीघ्रगः'-निज भक्तोंके कार्य सम्पादनके करनेके लिये शीघ्रतासे गमन करने वाले। 'शीघ्रनाशना'—भक्तोंके दुःखोंको अति शीघ्र नाश कर देने वाले ॥१२२॥ 'शिखण्डी, कवची, शूली चूड़ा, कवच और त्रिशूल धारण करने वाले। यहाँ तीनों शब्द एक ही नामका बोध कराते हैं।

'जटी, मुण्डी, कुण्डली'- शिरपर जटा-जूटसे युक्त, मुण्डित शिर वाले और सर्पोंके कुण्डल धारण करने वाले। तीनों शब्द यहाँ एकही शिव नाम के बोधक हैं। 'अमृत्युः'—मौतसे रहित रहने वाले। 'सर्वदृक् सिंहः'—सबके द्रष्टा तथा दुष्टोंके संहार करने में सिंहके स्वरूप वाले। यहाँ ये दोनों एकही नामके बोधक हैं। 'तेजो राशिर्महामणिः'—तेजका स्वरूप होने के कारण महान्मणि कौस्तुभ आदिके रूप वाले। यहाँ दोनों एक हैं ॥१२३॥

असंख्येयोऽप्रमेथात्मा वीर्य्यवान् वीर्यकोविदः।
वेद्यश्च वै वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥१२४
अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः।
सुरेशः स्मरणः शर्व शब्दः प्रतपतां वरः ॥१२५
कालपक्षः कालकालः सुकृती कृतवासुकिः।
महेष्वासो महीभर्त्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः ॥१२६

'असंख्येयः प्रमेयात्मा:'—अपार एवं अपरिच्छेद्य स्वरूप वाले। 'वीर्य वान्वीर्य कोविदः'—वीर्य सम्पन्न तथा समस्त पराक्रमोंमें परम प्रवी [ण]। वेद्यः'-मुक्तिके इच्छुक पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य॥ (९५०)॥ वियो-गात्मा'-विशिष्ट योगसे युक्त आत्मा अर्थात् स्वरूप वाले। 'परावर मुनी-श्वरः' पर अवर और मुनिगणके भी ईश्वर।१२४। अनुत्तमो दुराधर्षः'-सबसे उत्तम अर्थात् परम श्रेष्ठ और असह्य तेजयुक्त जिसके तेजको कोई भी आसानीसे सहन नहीं कर सकता है। 'मधुर प्रिय दर्शनः'—परमसौम्य एवं मधुर स्वरूप वाले तथा सबको प्रिय दर्शन वाले। 'सुरेशः'—देवगणके

स्वामी । 'शरणम्'–सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले । 'पर्व:'–विश्वके स्वरूप वाले विराजमान । 'शब्द ब्रह्म सताँ गति:' वेदके स्वरूपमें संस्थित तथा साधु पुरुषों की गति अर्थात् उद्धारक । यहां दोनों एकही हैं ।।१२५।। 'कालपक्ष:'—सृष्टिकी रचनादि के कार्य में-कालकी सहायता वाले । 'कला-कारी'—सबके उत्पादक कालको उत्पन्न करने वाले । (१३०) 'कङ्कणीकृत वासुकि:– वासुकि सर्पको अपना कङ्कण बना लेने वाले । 'महेश्वास:'—अक्षय महान् धनुष के धारी । 'महीभर्त्ता'—इस समस्त जगत् के धारण करने वाले । 'निष्कलङ्क:'—अविद्याके दोषसे रहित । 'विशृ-ङ्खल:'— मायाके बन्धनसे मुक्त ।।१२६।।

द्यु तिमणिस्तरणिर्धन्य: सिद्धिद:सिद्धिसाधन: ।
विश्वत: सम्द्रवृत्तस्तु व्यूढोरस्को महाभुज: ।।१२७
सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रिय: ।
निर्लेपो यतिसङ्गात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशन: ।।१२८
स्वत: स्तुतिप्रिय: स्तोताव्याप्तमूर्तिनिराकुल: ।
निरवद्यमयोपायो विद्याराशिश्च सत्कृत: ।।१२९

'द्यु मणि स्तरणि'—सूर्यके स्वरूपमें स्थित होकर संसाररूपी सागरमे तारने वाले । 'धन्य:'— परम कृत्त कृय । 'सिद्धिद: सिद्ध साधन:'-अणि मा महिमादि अष्ट सिद्धियोके प्रदाता होनेके साधनों द्वारा समस्त पुरुषार्थों के प्रदान करने वाले । ये दोनों एक ही हैं । 'विश्वत: सवृत:'–सब ओरसे मायाके द्वारा आच्छादित स्वरूप वाले । 'स्तुल्या'—देव, दनुज और मानवों द्वारा स्तुति करनेके योग्य ।।९७०।। 'व्यूढोरस्क:'–परम विस्तृत वक्ष:स्थल वाले । 'महाभुज:'—लम्बी भुजाओं से युक्त ।।१२७ ।। 'सर्वयोनि:'—सम्पूर्ण उत्पन्न करनेके स्थल तथा कारण । 'निरातङ्क:' सांसारिक व्याधि अथवा लौकिक सन्तापसे रहित । 'नर:नारायण प्रिय:'—नर-नारायण मुनियों पर अतिशय प्यारकरने वाले । 'नर्लेप: निष्प्रपञ्चात्मा'-कर्मके बन्धनोंसे विमुक्त होते हुक पञ्चभूतादिके समुदाय स्वरूप प्रपञ्चसे शून्य शरीके धारण करने वाले । यहाँ ये दोनों एकही शिवनामके प्रकाशक हैं । 'निर्व्यंग:'—विशिष्ट अङ्गयुक्त प्राणियोके उत्पादक । 'व्यङ्गनाशन:'— व्यंग कर्मोंके नाश करने

वाले ॥११८॥ 'स्तवा:'-स्तवन करने के योग्य। 'स्तव प्रिय:'-स्तुति से प्रेम (प्यार) करने वाले।९८०। 'स्तोता'-प्रेम पूर्वक भक्तों के द्वारा स्तुत होने वाले। 'व्यास मूर्त्ति:'-व्यास महर्षि की मूर्ति के स्वरूप में विराजमान। निरंकुश:-मायास्वरूप अंकुश से शून्य। 'निरवद्यमयोपाय:'-अनिन्द्य स्वधन स्वरूप मोक्ष से सम्पन्न। 'विद्या राशि:'-समस्त विद्याओं के समूहके स्वरूप में संस्थित। 'रस प्रिय:' भक्ति रस पर प्यार करने वाले ॥१२९॥

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्ण: संग्रहो नित्यसुन्दर:।
वैयाघ्रधुर्यो धात्रीश: शाकल्य: शर्वरीपति: ॥१३०
परमार्थगुरुर्दत्त: सूरिराश्रितवत्सल:।
सोमो रसज्ञो रसद: सर्वसत्वावलम्बन: ॥१३१
एव नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव हि हर हरि:।
प्रार्थयामास शम्भुं वै पूजयामास पंकजै: ॥१३२

'प्रशान्त बुद्धि: - परम शान्त एवं सौम्य बुद्धि वाले। 'अक्षुण्ण:' — दूसरों के द्वारा तिरस्कृत न होने वाले। 'सग्रह:'-भक्तजनों के संग्रह करने वाले। 'नित्य सुन्दर:' सर्वदा सुन्दर दिखाई देने वाले ॥९९०॥ 'वैयाघ्र-धुर्य:'-व्राघम्बर को सदा धारण करने वाले। 'धात्रीश:'-समस्त भूमण्डल के अधीश्वर। 'शाकल्य:'-शाकल्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थिति करने वाले। शर्वरी पति:'-रात्रियों के सर्वेश्वर ॥१३०॥ 'परमार्थ गुरु:'-तापक मन्त्र का उपदेश करते हुए मुक्ति पद प्राप्त कराने वाले गुरु। 'दृष्टि:'-चक्षु के अधिष्ठाता देवता के स्वरूप वाले। 'शरीराश्रित वत्सल:'-शरीरधारी जीवों पर अतिशय दया करने वाले। 'सोम:'—उमाके सहित सर्वदा विराजमान। 'रसोज्ञपक:'-हलाहल महाविषके स्वादके ज्ञाता तथा वीर्य के प्रदान करने वाले। 'सर्वसत्वावलम्बन:'-संसार के समस्त प्राणियों के आश्रय भूत ॥१०००॥ यहाँ श्री शिवके एक सहस्र नामोंका वर्णन समाप्त होता है ॥१३१॥ इस तरह इन उक्त शिवके सहस्रनामों के द्वारा भगवान् विष्णुने शिवकी स्तुतिकी और पद्म दलोंसे अर्चना करके उनकी प्रार्थना की ॥१३२॥

॥ शिव सहस्रनाम स्तोत्र का फल ॥

श्रुत्वा विष्णुकृतं दिव्यं परनामविभूषितम् ।
सहस्रनाम स्वस्तोत्र प्रसन्नोऽभुन्महेश्चरः ।१।
परीक्षार्थं हरेरीशः कमलेषु महेश्वरः ।
गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः ।१।
पंकजेषु तदा तेषु सहस्रेषु बभूव च ।
न्यूननेकं तदा विष्णुर्विकलः शिवपूजने ।३।
हृदा विचारितं तेन कृतो वै कमलं गतम्
यातं यातु सुखेनैव मन्नेत्रं कमलं न निम् ।४।
ज्ञात्वेति नेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्वावलम्बनात् ।
पूजयामास भावेन स्तवयामास तेन च ।५।
ततः स्तुतमथो दृष्ट्वा तथाभूत हरो हरिम् ।
मामेति व्यापरन्ननेव प्रादुरासांज्जगद्गुरुः ।६।
तस्मादवततराशु मंडलात्पार्थिवस्य च ।
प्रतिठितस्य हरिणा स्वलिंगस्य महेश्वरः ।७।

सूतजी ने कहा–उस समय विष्णु द्वारा निर्मित सुन्दर नामों से विभूषित अपने सहस्रनाम नाम स्तोत्रका श्रवण कर शिवको परम प्रसन्नता हुई ॥१॥ समस्त लोकों के स्वामी महेश्वर ने विष्णु भगवान्‌की परीक्षा करने के लिए उन सहस्र कमलों में से एक कमल को छिपा लिया ।॥२॥ शिव समर्चनके लिए लायेगये सहस्र कमलोंमें जब एक कमल कम हुआ तो विष्णु भगवान् पूजाकी साङ्ग सम्पूर्णता के अभावसे पहिले कुछ व्याकुल हुये और सोचाकि एक कमल कहाँ गया ? यदि कम है तो रहे उसकी पूर्तिके लिये मेरा नेत्ररूपी कमल उपस्थित है ॥३-४॥ भगवान् विष्णु ने ऐसा जानकर तुरन्त अपना नेत्र उखाड़ डाला और विविध सत्व के अवलम्ब शिव का स्वभाविक रूप से पूजन एवं स्तवन किया ॥५॥ इस प्रकार से विष्णु को स्तवन करते हुए देखकर जगत्‌के गुरु महेश्वर ने ऐसा मत करो··ऐसा मत

करो।' यह कहके हुए समक्ष में अपना आविर्भाव किया।६।भगवान् विष्णुके द्वारा प्रतिष्ठित अपने पार्थिव लिंगसे मण्डल शम्भु शीघ्रही प्रकट हो गये।७।

यथोक्तरूपिणं शम्भुं तेजोराशिसमुत्थितम्।
नमस्कृत्य पुरः स्थित्वा स तुष्टाव विशेषतः।८।
तदा प्राह मादेवः प्रसन्नः प्रहसन्निव।
सम्प्रेक्ष्य कृपया विष्णुं कृतांजललिपुटं स्थितम्।९।
ज्ञातं मयेदं सकलं तव चित्तेप्सितं हरे।
देवकार्य्यं विशेषेण देवकार्य्यरतात्मनः।१०।
देवसार्य्यस्य सिद्धयर्थं दैत्यनाशाय चाश्रमम्।
सुदर्शसाख्यं चक्रं वै ददामि तव शोभनम्।११।
यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकसुखावहम्।
हिताय तव देवेश धृतं भावय तद् ध्रुवम्।१२।
रणाजिरे स्मृतं तद्वै देवानां दुःखनाशनम्।
इदं चक्रमिदं रूपमिदं नामसहस्रकम्।१३।
ये शृण्वन्ति सदा भक्त्वा सिद्धिः स्यादनपायिनो।
कामनां सकलां चैवं प्रसादान्मम सुव्रत।१४।

शास्त्रमें लिखेहुए स्वरूपमें स्थित परमोज्ज्वल तेजके पुञ्ज समक्षमेंप्रकट हुए शिवका दर्शन कर विष्णु ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर विशेष रूपसे उनकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त होगये।८। उस समय परमप्रसन्न शिव हाथजोड़कर समक्षमें भगवान् विष्णुको देखकर हंसते हुए कहने लगे।।९। शिवने कहा—हे विष्णो! आपके मनमें जोभी कुछ विचारहै वह मैंने सब समझ लिया है तुत इस समय देवगणके कार्य उत्पादन में तत्पर होते हुए उनका समस्त कार्य पूरा करनेके इच्छुक हो।१०। देवगण के कार्योंकी सिद्धि के लिये और बिना श्रम के दैत्योंका संहार करने के लिये मैं प्रसन्न होकर आपको 'सुदर्शन' नाम वाला परम शोभन चक्र देता हूँ॥११॥ हे देवेश! हे विष्णु! आपने समस्त लोकों का सुखदायक जो स्वरूप देखा है उसका निश्चय ही ध्यान करो। इससे आपका परम हित होगा॥१२॥

रणभूमि में यदि उस रूपकाका ध्यानकिया जावेतो देवताओंका सम्पूर्णदुःख दूर हो जाता है। यह सुदर्शनचक्र यह रूप और सहस्रनाम स्तोत्र महान् फल देने वाले हैं ॥१३॥ हे सुव्रत ! जोभी कोई पुरुष दृढ़ भक्तिके साथ इस स्तोत्रका श्रवण किया करते हैं और नित्य ही सुनते हैं उनको मेरी कृपा से समस्त अभीप्सितोंकी अक्षय सिद्धि अवश्य ही हो जाती है ।१४।

एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्य्यायुतसमप्रभम् ।
सुदर्शनं स्वपादोत्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ।१५।
विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मुखस्तदा ।
नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवी ।१६।
श्रृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च किं प्रभो ।
दुःखानां नाशनार्थं हि वद त्वं लोकशङ्कर ।१७।
इति पृष्ठस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत् ।
प्रसन्नमानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम् ।१८।
रूपं ध्येय हरे मे हि सर्वानर्थ प्रशान्तये ।
अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम् ।१९।
धार्य्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्ठस्य सिद्धये ।
त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम् ।२०।
अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः ।
तेषां दुःख न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः ।२१।

सूत ने कहा--शिव ने ऐसा कहते हुए सहस्रों सूर्यों के तुल्य कान्ति वाले अपने चरणसे समुत्पन्न सम्पूर्ण शत्रुओं के नाशक सुदर्शनचक्र को दे दिया ॥१५॥ इसके अनन्तर उस समय उत्तर दिशाकी ओर अपना मुख करके भली-भाँति संस्कारके साथ सुदर्शनचक्रको ग्रहणकिया और भगवान् महेशको नमस्कार करके विष्णु ने प्रार्थना की ॥१६॥ विष्णु ने कहा हे प्रभो ! हे देव ! हे लोकोंके कल्याण करनेवाले ! मेरे ध्यानकरने के योग्य क्या है और मेरेद्वारा पढ़नेकेयोग्य क्या २ है ? यह सभी दुःखोंके निवारण करने के लिए मुझे कृपया बतला देवें ।२७। सूतजी ने कहा-विष्णु भगवान

के द्वारा इस तरह पूछने पर शिव मनमें परम प्रसन्न एवं अत्यन्त सन्तुष्ट होकर देवोंकी सहायता करनेवाले वचन विष्णुने करने लगे ।।१८।। शिवने कहा-हे विष्णो ! समस्त उपद्रवोंकी शांतिकेलिये मेरे मङ्गलमय स्वरूप का ध्यान करना चाहिए और समस्त दुःखो के नाश होनेकेलिये मेरे सहस्रनाम स्तोत्रका पाठ करना चाहिये ।।१९।। हे विष्णो ! समस्त कामनाकों की सिद्धिके लिये चक्रोंमें परमश्रेष्ठ मेरे चक्रको जिसका नाम सुदर्शन है सर्वदा प्रयत्न पूर्वक धारण करना चाहिए ।।२०।। जो मानव मेरे इस शिव सह-नाम वाले स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करेंगे या श्रवण करायेंगे उनको कभी स्वप्नमें भी दुःख नहीं सतायेगे-इसमें तनिकभी संदेह नहीं है ।२१।

राज्ञां च संकटे प्राप्ते शतावृत्तिं चरेद्यदा ।
साङ्गं च विधिसयुक्तं कल्याणं लभते नरः ।२२।
रोगनाशंकर ह्येतद्विद्यावित्तदमुत्तमम् ।
सर्वकामप्रदं पुण्यं शिवभक्तिप्रदं सदा ।२३।
यदुद्दिश्य फलं श्रेष्टं पठिष्यन्ति नरास्त्विह ।
यप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम् ।२४।
यश्च प्रातः समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम् ।
पठने मत्समक्ष वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः ।२५।
ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिलां सर्वकामिकाम् ।
अन्ते सायुज्यमुक्ति वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ।२६।
एवमुक्त्वा तदा विष्णु शंकरः प्रीतिमानसः ।
उपस्पृश्य कराभ्यां तमुवाच गिरिशः पुनः ।२७।
वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ट वरान्वृणु यथेप्सितान् ।
भक्त्या वशीकृतो नूनं स्तवेनानेन सुव्रत ।२८।
इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् ।
सुप्रसन्नतरो विष्णुः सांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ।२९।
यथेदानीं कृपा नाथ क्रियते चान्यतः पराः ।
कार्य्या चैव विशेषेण कृपालुत्वात्त्वया प्रभो ।३०।

यदि भूरतियोंके द्वारा सङ्कट आनेका अवसर आवे तो सविधि अङ्ग-न्यास पूर्वक सहस्रनाम की एकशत आवृत्ति करने पर दुःख दूर होकर निश्चय ही कल्याण होता है ॥२२। यह शिव सहस्रनाम स्तोत्र रोगनाशक विद्या और वैभवका दाता तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करने वाला एवं निरन्तर पवित्र शिवकी भक्तिके प्रदान करने वाला है ॥२३॥ मनुष्य जिस किसी भी श्रेष्ठ फल प्राप्त करने के उद्देश्य से इसका पाठ करेंगे वे निस्सन्देह इस लोक में उस श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति करेंगे ॥२४॥ जो भी कोई मनुष्य नित्य बहुत तड़के उठकर मेरी अर्चा करके इस स्तोत्रका पाठ करेंगे उनसे सत्सिद्धि दूर नहीं रहती है ॥२५॥ जो सहस्रनामका नित्य पाठ करता है वह लोकमें समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाली सम्पत्ति पाता है और अन्त में सायुज्य मुक्ति का पद प्राप्त करता इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ॥२६। सूत जीने कहा-इस तरह विष्णु के कहने के पश्चात् शङ्कर प्रसन्न मन होकर विष्णु भगवान की अपने दोनों हाथों से स्पर्श करते हुए कहने लगे ॥२७॥ शिवने कहा-हे देवगण में श्रेष्ठ विष्णो ! मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम अपने मनोवाञ्छित वरोंको स्वीकार करो। हे परम शोभन व्रत वाले ! भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र रत्नके पाठसे निश्चय ही शिव वशीभूत हो जाते हैं ॥२८॥ सूतजीने कहा—इस प्रकार से देवों के भी पूज्य देव महादेवके कहने पर उनको प्रणाम करके परम प्रसन्न विष्णु उनसे हत्थ जोड़कर फिर प्रार्थना करने लगे ॥२९॥ भगवान् विष्णु ने कहा-हे नाथ ! हे प्रभो ! इस समय आपने जैसा अनुग्रह किया है, हे दयालो वैसी ही कृपा आगे भी आपको करनी चाहिए ॥३०॥

॥ नारद का शिवतत्व श्रवण ॥

सूत सूत महाभाग ज्ञानवानसि सुव्रत ।
पुनरेव शिवस्यैव चरितं ब्रूहि विस्तरात् ॥१
पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा ।
आराधनञ्च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य हि ॥२
साधुपृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि किम् ।
चरित्र शङ्करं रम्यं शृण्वतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥३

एतदेव पुरा पृष्ठो नारदेन पितामहः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम् ॥४
शृणु नारद सुप्रीत्या शंकरं चरितं वरम् ।
प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापातकनाशनम् ॥५
रभवा सहितो विष्णु शिवपूजां चकार ह।
कृपया परमेशस्य सर्वान्कामानवाप हि ॥६
अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः।
तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टिकरः सदा ॥७

ऋषियोंने कहा हे महान् भाग्य वाले ! हे सुव्रत ! हे सूतजी ! आप अत्यन्त ज्ञान वाले हैं, अतएव हमारी विनीत प्रार्थना है कि आप अब भगवान् शङ्करके चरित्रका विस्तारके सहित वर्णन करें ॥१॥ पहिले होने वाले राजा लोगों ने एवं ऋषिगण और देववृन्दने सर्वश्रेष्ठ भगवान् शिव का ही आराधन किया है ॥२॥ सूतजीने कहा-हे ऋषिप्रवर ! इस समय आपने अति उत्तम प्रश्न किया है। मैं आपके सामने अब परम सुन्दर एवं श्रोताओंको भोग और मोक्ष दोनों ही के दाता भगवान् शिवका विस्तृत चरित्र सुनाता हूँ। आप सब ध्यानके साथ सुनिये ॥३॥ यही बात पहिले एक समय नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछी थी। परम प्रसन्न होकर ब्रह्मा जीने नारदजीसे कहा था ॥४॥ ब्रह्माजीने कहा-हे नारद ! तुम प्रेम पूर्वक सुनो, मैं आपके स्नेह से वशीभूत होकर ही महापातकों का नाशक शिवेश्वरके चरित्रका वर्णन करता हूँ ॥५॥ अपनी प्रिय लक्ष्मी को साथ में लेकर भगवान् विष्णुने एकबार शिवका पूजन किया था तब उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे ॥६॥ हे तात ! मैं जगत् का विधाता ब्रह्मा भी शिव-समर्चन के अतुल प्रभाव के कारण ही उनकी कृपा से इस सुविस्तृत संसार की रचना किया करता हूँ ॥७॥

शिवपूजाकरा नित्यं सत्पुत्राः परमर्षयः।
अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजन कारकाः ॥८
नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः।
सप्तर्षयो वसिष्ठाद्याः शिवपूजनकारकाः ॥९

अरुंधती महासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च ।
अहल्या गोतमस्त्री च शिवपूजनकारका: ।१०।
दुर्वासा: कौशिक: शक्तिर्दधीचो गोतमस्थता ।
कणादो भार्गवो जीवो वैशपायन एव च ।११।
एते च मनुय: सर्वे शिवपूजाकरा मता: ।
तथा पराशरो व्यास: शिवपूजारत: सदा ।१२।
उपमन्युर्महाभक्त: शिवस्य परमात्मन: ।
याज्ञवल्क्यो महाशंवो जैमिनिर्गर्ग एव च ।१३।
शुकश्च शौनकाद्याश्च शंकरस्य प्रपूजका: ।
अन्येऽपि बहव: सन्ति मुनयो मुनिसत्तमा: ।१४।

हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! मेरे पुत्र भी नित्यप्रति भगवान्शिवका पूजनकरते हैं तथा अन्यभी बहुतसे ऋषिगण शिवकी पूजा करने वाले हुए हैं ।।८।। हे नारदजी ! तुमभी विशेष रूपसे भगवान्शिवका पूजनकरने वाले हो और अन्य ऋषि लोग भी शिवके समाराधक: हुए हैं ।।९।। परम पतिव्रत धर्मके पालन करने वाली अरुन्धती, लोपामुद्रा और गौतम की पत्नी अहिल्या भी शङ्करकी पूजा-अर्चन करने वाली हैं ।।१०।। इनके अतिरिक्त दुर्वासा विश्वामित्र, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशम्पायन आदि ये समस्त ऋषि, मुनि भगवान्शिवकी पूजोपासना करने वाले हैं यथा पराशर और व्यासमुनि निरन्तर शिवको आराधनामें परायण रहा करते हैं ।।११-१२।। उपमन्यु महर्षि भी परमेश्वर शिवके महान्भक्त हुए है । याज्ञवल्क्य, जैमिनि तथा गर्ग भी परम शैव थे ।।१३।। शुक्र एवं शौनक आदि भी भगवान्शिवके पूजक हैं । हे मुनिश्रेष्ठो ! अन्य भी बहुत से ऋषि हैं जो एक मात्र शङ्कर भगवान् की पूजा करने वाले हैं ।।१४।।

अदितिर्देवमाता च नित्य प्रीत्या चकार ह ।
पार्थिवीं शैवपूजां वै सा वधू: प्रेमतत्परा ।१५।
शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा ।
महाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजका: ।१६।

गन्धर्वाः किन्नराद्याश्चोपसुराः शिवपूजकाः ।
तथाऽसुरा महात्मानः शिवपूजाकरा मताः ॥१७
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः सानुजः ससुतो मुने ।
शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनवली तथा ॥१८
महाशैवः स्मृतो बाणो हिरण्याक्षसुतास्तथा ।
वृषपर्वा दनुस्तात दानवाः शिवपूजकाः ॥१९
शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथाऽपरे ।
शिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः ॥२०
सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यां वंशप्रवर्त्तकौ ।
शिवसेवारतौ नित्य सर्वश्यां तौ मुनीश्वर ॥२१

देवगणकी माता अदितिने अपनी वधूके सहित परम प्रेम मग्न होकर प्रीति-भक्तिके साथ पार्थिव शिवका पूजन किया था ॥१५॥ इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंने—आठ वसुओंने और सभी देवताओंने महाराजिकगण के साथ एव साध्योंके सहित भगवान् महेश्वरका पूजन किया था ॥१६ । इनके अतिरिक्त किन्नर गन्धर्व, प्रभृति तथा महान्आत्मा वाले दैत्यलोग भी सब शिवके उपासक हुए हैं ॥१७ । हे मुनिवर ! महान् दैत्यराज हिरण्य-कशिपु अपने भाई एवं पुत्रके साथ नित्यही शिवका पूजन किया करता था । विरोचनभी शिव-पूजक हुआ है ।१८। हे तात ! वाणासुर और हिरण्याक्ष पुत्र वृषपर्वा, दनुदैत्य और उसकेपुत्र ये सभी शिवकी आराधना करने वाले हुए हैं ॥१९॥ भगवान् शेष, वासुक, तक्षक और अन्यभी नागजातिके बड़े बड़े नाग एव गरुड आदि पक्षीभी शिवकी उपासना करने वाले परम शिव भक्त हुए हैं ॥३०॥ हे मुनीश्वर ! इस भूमण्डलपर सोम और सूर्य ये दोनों अपने-अपने महान् वंशके चलाने वाले माने गये हैं वे भी सभी स्वकीय वशजोंके साथ शिवके अनन्य उपासक एवं परम भक्त हुए हैं ॥२१॥

मनवश्च तथा चक्रः स्वायंभुवपुरःसराः ।
शिवपूजां विशेषेण शिववेशधरा मुने ॥२२
प्रियव्रतश्च तत्पुत्रस्तथा चोत्तानपात्सुतः ।
तद्वंशाश्चैव राजानः शिवपूजनकारकाः ॥२३

ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नवयोगिनः ।
तद्भ्रातरः परे चापि शिवपूजनकारकः ।२४।
वैवस्वतसतास्ताक्ष्य इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ।
शिवपूजारतात्मानः सर्वदा सुखभोगिनः ।२५।
ककुत्स्थश्चापि मांधाता सगरः शैवसत्तमः ।
मुचकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च ।२६।
भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः ।
शिवपूजाकरा ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः ।२७।
खट्वांगश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः ।
विधितः पार्थिवीं मूर्ति शिवस्यापूजयत्सदा ।२८।

हे मुने ! स्वायम्भुव आदि जो मनु हुए हैं वे सब नित्य शिवकी वेष-भूषा धारण करके ही शिवका पूजन किया करते थे ॥२२॥ महाराज प्रियव्रत तथा उसके पुत्र और उत्तानपाद के पुत्र एवं उनके वंश में जो भी राजा हुये वे सभा शिवके पूजनको करने वाले हुए है ॥२३॥ इनके अति-रिक्त ध्रुव, ऋषभ, भरत नवयोगी तथा अन्य उनके समस्त भाई ये सब परम शिव-पूजक हुए हैं ॥२४॥ वैवस्वत मनुके पुत्र ताक्ष्य तथा इक्ष्वाकु, प्रभृति नृपगण सी शंकर की पूजा के प्रेमी और इसीके प्रभावसे निरन्तर सुखके भोक्ता हुए हैं ।२५। ककुत्स्थमान्धाता, राजा सगर, मुचुकुन्द, राजा हरिशचन्द्र और कल्माषपाद भी शैवों में परम श्रेष्ठ हुए हैं ।२६। भगीरथ आदि अनेक महान् पुरुषार्थी राजा शिवका वेष धारण करने वाले तथा शिवके पूजन करने वाले हुए में ।२७। देवोंके सहायक राजा खट्वाङ्गने सविधि शिवका पार्थिव पूजन किया था ॥२८॥

तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत्सदा ।
रघुस्ततनयः शव सुप्रीत्या शिवपूजकः ।२९।
अजः शिवार्चकिस्तस्य तनयो धर्मयुद्धकृत ।
जातो दशरथो भूपो महाराजो विशेषतः ।३०।
पुत्र र्थे पार्थिवी मूर्तिशैवीं दशरथो हि सः ।
समानच विशेषेण वसिष्ठस्याज्ञया मुनेः ।३१।

पुत्रेष्टिं च चकारासौ पार्थिवो भवभक्तिमान् ।
ऋष्यश्रृगमुनेराज्ञां सम्प्राप्य नृपसत्तमः ॥३२
कौसल्या तत्प्रिया मूर्ति पार्थिवी शांकरीं मुदा ।
ऋष्यश्रृंगसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये ॥३३
सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नृपवल्लभा ।
पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम ॥३४
शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुः शुभकरान् ।
महाप्रत पितो वीरान्सन्मार्गनिरतान्मुने ॥३५

इसी वंशमें उनके पुत्र महाराज दिलीप एवं इनके पुत्र राजा रघुशैव होकर परम प्रीति से शिवका वेष रखकर उनका पूजन किया करते थे। ॥२९॥ महाराज रघुके पुत्र अज नृप जिन्होने धर्मसे युद्ध किया था वे शिव के परम प्रिय भक्त हुये थे इसके अनन्तर राजादशरथ तो विशेष रूपसे शिव की उपासना करने वाले हुए हैं ॥३०॥ राजा दशरथ अपने गुरु वसिष्ठ मुनिकी आज्ञा से पुत्र-प्राप्ति के लिये शिवकी पार्थिव मूर्तिका निर्माणकर विशेष रूपसे नित्य ही महादेवका पूजन किया करते थे ॥३१॥ भक्तिमन् महाराज दशरथने ऋशि श्रृङ्ग मुनिकी आज्ञासे पुत्रेष्टि योग किया था ।३२। दशरथकी पत्नी कौशल्याने ऋष्य श्रृङ्ग मुनिकी आज्ञासे रोज ही शिवकी पार्थिव मूर्ति बनाकर अपने पुत्र की प्राप्तिके लिये शिवका पूजन किया था ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दशरथ नृपकी अन्य महारानी सुमित्रा तथा कैकेईने भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिकी कामनासे शिवका अर्चन किया था ।३३। हे मुने ! उन सभी रानियोंने भगवान् महेशके प्रसादसे महान् प्रताप वाले, परम वीर, सन्मार्गगामी एवं अतिशय कल्याणकारी पुत्रोंको प्राप्त किया था ।३५।

ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञः स्वय हरिः ।
चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः ॥३६
कौसल्यायाः सुतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मण ।
शत्रुघ्नश्चैव कैकेय्या भरतश्चेति सव्रताः ॥३७
रामः ससहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत् ।
भस्मरुद्राक्षधारी च विरजो योगमास्थितः ॥३८

तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने ।
ते सर्व पार्थिवं लिंग शिवस्य समपूजयन् ।३९।
सुद्युम्नश्च महाराजः शैवों मुनिसुतो मुने ।
शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससेवकः ।४०।
पार्थिवेशसमर्चातः पुनः सोऽभूत्पुमान्वरः ।
मासं स्त्री पुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वं त्यवर्त्तत ।४१।
ततो राज्यं परित्यज्य शिवधर्मपरायणः ।
शिववेषधरो भक्तया दुर्लभ मोक्षमाप्तवान् ।४२।

इसी शिव-पूजनके प्रभाव से शिवकी आज्ञा पाकर विष्णु महाराज दशरथके द्वारा चतुर्भुजी मूर्तिके स्वरूपमें श्रीरामचन्द्र रूपसे प्रकट हुए थे। ॥३६॥ इस प्रकार से दशरथ की तीनों रानियों के पुत्र हुए। महारानी कौशल्याके श्रीराम, सुमित्राके लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयीके भरत नामवाले पुत्र प्रकट हुए थे ॥३७॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रभी नित्यही पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवका बड़ेही प्रेमके साथ पूजन किया करते थे ओर भस्म तथा रुद्राक्षमाला धारणकरके विरक्तिके मार्गमें स्थित रहा करते थे ।३८। हे मुने ! इसके पश्चात् भी उनके वंशमें जोभी राजा हुए हैं वे सभी शिव का पार्थिव पूजनकरने वाले थे ।३९। हे मुनीश्वर ! ऋषिके पुत्र परम शिव के भक्त महाराज सुद्युम्न शिवके शापसे अपनी स्त्री और समस्त अनुचरों के साथ स्रीके रूपमें होगये थे ॥४०॥ राजा सुद्युम्नने नित्य पार्थिव शिवके पूजनका नियम ग्रहण किया और इसके प्रभावसे पुनः पुरुष रूप हुए किन्तु महेशके शापका फिर भी इतना प्रभाव रहा कि एकमास पर्यन्त पुरुष और एकमास तक स्त्री रहते थे। इस तरह स्त्रीत्वसे उन्होंने छुटकारा पाया था। इसके पश्चात् वे अपना राज्य त्यागकर शिवोपासनामें तत्पर होकर अन्त में मोक्षपदकी प्राप्ति के अधिकारी हो गये थे ॥४१-४२॥

पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजः सुपूजकः ।
शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः ।४३।
भरतस्तु महापूजां शिवस्यैव सदाऽकरोत् ।
नहुषश्च महाशैवः शिवपूजारतो ह्यभूत् ।४४।

यथातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान् ।
अजीजनत्सुतान्पञ्च शिवधर्मपरायणान् ॥४५
तत्सुता यदुमुख्याश्च पञ्चापि शिवपूजकाः ।
शिवपूजाप्रभावेण सर्वान्कामांश्च लेभिरे ॥४६
अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चुः शिवं हिते ।
तद्वंश्या अन्यवश्यश्च भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥४७
कृष्णेन च कृतं नित्यं बदरीपर्वतोत्तमे ।
पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम् ॥
प्रसन्नाद् भागवांस्तस्माद्वरान्दिव्याननेकशः ।
सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शङ्करात् ॥४९

राजा पुरूरवा तथा उनका पुत्र शिवके पूजक एवं परम भक्त हुए हैं। शिवके पूजनके अतुल प्रभावसे उनके सभी मनोरथ पूर्ण भी हुए थे ।४३। राजा भरत शिवकी महासमर्चा किया करते थे तथा महाराज नहुष महा शैव थे और निरन्तर शिवके समाराधनामें तत्पर रहा करते थे ॥४४॥ राजा ययातिने भी भगवान् शङ्करकी पूजाके प्रभावसे अपनी समस्त कामनाओंकी प्राप्तिकी और शिव धर्ममें तत्पर पाँच पुत्रोंको जन्म दिया था ॥४५॥ यदुवंशमें मुख्य उनके पाँचपुत्र शिवके परम पूजक हुए और भगवान् शिवकी कृपासे अपनी समस्त अभीष्ट कामनाओंकी उन्हेंने प्राप्ति की थी ॥४६॥ हे मुने ! इनके अतिरिक्त अन्य भी जो महान् भाग्यशाली राजा इस संसारमें हुए हैं उन सबने भी शिवका पूजन किया था । उनके वंशज सभी राजाओंने भोग और मोक्षके प्रदाता शिवका समर्चन किया था । ॥४७॥ महात्मा श्री कृष्ण ने बदरी गिरिपर सातमास पर्यन्त स्वयं बड़ी तत्परताके साथ शिवका पूजन किया था ॥४८॥ उस समय परम प्रसन्न होने वाले शिवसे श्री कृष्ण ने अनेक दिव्य वरदान प्राप्त किये और उन्हींके प्रभावसे समस्त जगत्को अपने वशमें कर लिया था ॥४९॥

प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकरः सदा ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः साम्बाद्याः शिवपूजकाः ॥५०

जरासंधो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा ।
निमि शैवश्च जनकस्तत्पुत्राः शिवपूजकाः ।५१।
नलेन च कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै ।
पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः ।५२।
यातिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः ।
स्वय व्याघ्रदिभी रात्रौ भक्षितश्च मृतो वृषात् ।५३।
तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत् ।
चक्रवर्ती महाराजो दमयन्तीप्रियोऽभवत् ।५४।
इति ते कथितं तात यत्पृष्टं भवताऽनघः ।
शांकर चरित दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ।५५।

हे तात ! भगवान् श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नजी सदा शिवकी पूजा किया करते थे और साम्ब प्रभृति सभी श्रीकृष्णके वंशजोंने शिवकी परम भक्तिका आश्रय लिया था ।५०। महान् शिव भक्त राजा जरासन्ध तथा उनके अण्य वंशज सभी शिवोपासक थे । राजा निमि और जनक तथा उनके पुत्र सभी लोग शिवके परम भक्त हुए हैं ।।५१।। वीरसेन राजा के पुत्र नल राजा ने भी शिवकी पूजाकी थी जोकि अपने पहिले जन्ममें वनके भील रहकर वन-मार्गकी रक्षा किया करते थे । ५२।। भील के जीवन में उसने एक बार शिवके समीपमें स्थित एक सन्यासी की रक्षा की थी और भाग्य वश ही बाघ के भक्षण करने से उसका रक्षणकरनेके कारण मृत्युगत होगया था ।५३। इसी महान् पुण्य कार्य के प्रभाव से अपने दूसरे जन्ममें राजा नल के रूप में उत्पन्न हुआ और चक्रवर्ती राजा नल दमयन्तीरानी के परम प्रिय पति हुए ।।५४।। हे तात ! हे पापशून्य आपने जो प्रश्न मुझसे पूछा सो मैंने महेश्वर शिवका अनिदिव्य चरित्र तुम्हारे सामने वर्णनकर दिया । अब तुम बताओ और मुझसे क्या-क्या पूछना चाहते हो ।५५।

।। शिवरात्रि व्रत का माहात्म्य ।।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं स फल तव ।
यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम् ।१।

बहुभिश्चर्षिभिः सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत् ।
सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते ।२।
केन व्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम् ।
कुशलः शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम् ।३।
भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तैर्येन व्रतेन वै ।
तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।४।
सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः ।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं कथयामि यथाश्रुतम् ।५।
यथा भवद्भिः पृच्छयेत तथा पृष्टं हि वेधसा ।
हरिणा शिवया चैव तथा वै शङ्करं प्रतिः ।६।
कस्मिंश्चित्सतये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने ।
केन श्रुतेन सन्तुष्टो भुक्ति मुक्ति च यच्छसि ।७।

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी ! आप भगवान् शिवकी शुभ कथाका श्रवण कराते रहते हैं ॥१॥ हे सूतजी ! हमने अन्य बहुतसे ऋषियों के द्वारा अनेक उपाख्यान सुने हैं किन्तु उनसे हमारे हृदयके संशयका नाश नहीं होसका इसी कारणसे हम अब आपसे प्रार्थना करते हैं ॥२॥ आपतो परम कुशल शिव भक्त और उनके कृत्योंके ज्ञाता है । इसीलिये हम आपसे यह जानना चाहते है कि भगवान् शङ्कर किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर सच्चा सुख प्रदान किया करते हैं ॥३॥ हे व्यासजीके प्रमुख शिष्य सूतजी ! जिस व्रतके करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति किया करता है अब आप उसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये । हम आपको नमस्कार करते हैं ॥४॥ सूतजीने कहा-हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! सांसारिक प्राणियों पर दया करते हुए आपने बहुत ही सुन्दर बात पूछी हैं । मैंने जैसाभी सुना है वही भगवान् शिवके चरण कमलका स्मरण करके आपको सुनाता हूँ ॥५॥ आज आप लोगोंने जैसी बात पूछी है वैसा ही प्रश्न एकवार ब्रह्मा, विष्णु और जगदम्बा पार्वतीने भी शिवसे पूछा था ॥६॥ किसी समय शिवको प्रसन्न देखकर इन सबने परमेश शिवसे पूछा था कि हे शिव ! किस व्रत से सन्तुष्ट होकर आप भोग-मोक्ष दोनों दिया करते हैं ॥७॥

इति पृष्टास्तदा तैस्तु हरिण तेन वै तदा।
तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां पापहारकम् ।८।
भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्ति मुक्तिप्रदानि च।
मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दशसंख्यानि तानि वै ।९।
दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः।
तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैः सदा ।१०।
प्रत्यष्टम्यां प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम्।
कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यं हि भोजनम् ।११।
एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णोऽह्नि भोजनम्।
असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मां हरे ।१२।
त्रयोदश्यां सिताया तु कर्तव्यं निशि भोजनम्।
असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः ।१३
निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजनं सोमवासरे।
उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिवव्रतपरैः ।१४।

इस प्रकार सबके और विशेष रूपसे विष्णुके द्वारा किये गये इस प्रश्न को सुनकर उस समय शिवजीने जो उत्तर दिया था, मैं श्रोताओंके उसी पापनाशक उपायको बतलाता हूँ।८। श्रीशिवने कहा-हे देववृन्द ! यों तो भोग और मोक्ष दोनोंको प्रदान करने वाले मेरे विविध व्रत हैं किन्तु उन सबमें दशव्रत परममुख्य होते हैं।९। वेदोंके पारगामी जाबाल आदि मुनियों ने ये दशही व्रत बतलाये हैं। इन दशव्रतोंको द्विजाति मात्रको यत्नपूर्वक करना चाहिए।१०। हे विष्णो ! प्रत्येक अष्टमीके दिन एकबार रात्रिमें ही भोजन करना चाहिए। कालाष्टमीकेदिन तो खासतौरसे रात्रिके भोजनका भी त्याग करदेना चाहिए।११। हे विष्णुदेव ! मासके शुक्लपक्षकी एकादशीकेदिन विशेषरूपसे भोजनको सर्वथा छोड़ ही देना चाहिए। हे हरे ! कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन मेरा पूजनकरके रात्रिमें एकबार भोजन करना उचित है।१२। शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन रात्रिमें एकबार भोजनकरे और कृष्णपक्षकी त्रयोदशीके दिन तो शिवके व्रत धारण करने वालोंको सर्वथा

कदापि भोजन नहीं करना चाहिए।१३। हे विष्णो! कृष्ण और शुक्ल दोनोंपक्षोमें जो भी सोमवार पड़े उनमें शिव व्रतियों को केवल एकबार रात्रिमें ही यत्नके साथ भोजन करना उचित है।१४।

व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः।
यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रत संपूर्त्तिहेतवे।१५।
व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्विजन्मभिः।
व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः।१६।
मुक्तिमार्गप्रवीणैश्च कर्तव्यं नियमादिति।
मुक्तेस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम्।१७।
शिवार्चनं रुद्रजप उपवासः शिवालये।
वाराणस्यां च मरण मुक्तिरेषा सनातनी।१८।
अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
चतुर्ष्वपि वलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे।
तस्मात्तदेव कर्त्तव्यं भुक्तिफलेप्सुभि।२०।
एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नृणां हितावहम्।
एतद् व्रतं तु सर्वेषां धर्मसाधनमुत्तमम्।२१।

हे द्विजवरो! इनसब व्रतोंमें शिव सेवियोंको यथाशक्ति व्रतकी समाप्ति परही भोजन करना चाहिये।१५। हे द्विजवृन्द! ये समस्तव्रत द्विजातियों को बहुतही नियमके साथ करने चाहिये। जो लोग इन व्रतोंका त्यागकर दिया करते हैं वे दूसरे जन्ममें चोर होते हैं।।१६।। जो मुक्तिके मार्ग को जाना चाहते हैं उन्हें ये व्रत नियमपूर्वक अवश्य ही करने चाहिए। इसका कारण यही है कि ये चारोंबातें मोक्ष के देनेवाली होती हैं।१७। शिवका समर्चन रुद्रका जप शिवालयमें रहकर उपवास, और काशीपुरीमें मृत्यु इनसे सनातनी मुक्ति होती है।।१८।। कृष्णपक्ष में सोमवारसे युक्त अष्टमी तथा चन्द्रवारसेयुक्त चतुर्दशी होतो येदोनों भगवान्शिवके परमप्रसन्नता देनेवाले दिन होते है। इसमें कुछभी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।।१९।। हे भगवन्!

ऊपर बतलाये हुए चारों व्रतोंसे भी शिवरात्रिका व्रत बहुत अधिक बलवान् होता है। अत एव भोग-मोक्षके दोनों फल प्राप्त करने की इच्छा वालों को यह व्रत अवश्य ही करना चाहिये ॥२०॥ शिवरात्रिके व्रतके दिनसे अधिक अन्य कोई भी व्रत मनुष्यों के हित करने वाला नहीं है। यह व्रत मनुष्यके समस्त उत्तम धर्मोंका साधन है ॥२१॥

निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणां तथा।
वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीबालानां तथा हरे।२२।
दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च।
शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद् व्रतं वरम्।२३।
ताघस्य ह्यसिते पक्षे विशिष्टा साति कीर्तिता।
निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटि विनाशिनी।२४।
तद्दिने चैव यत्कार्य प्रातरारम्य केशव।
श्रूयतां तन्मनो दत्वा सुप्रीत्या कथयामि ते।२५।
प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः।
समाचरेन्नित्यकृतं स्नानादिकमतन्द्रितः।२६।
शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि।
मनस्कृत्य शिवं पश्चात्सङ्कल्पं सम्यगाचरेत्।२७।
देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोस्तु ते।
कर्त्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव।२८।

हे विष्णो! यह व्रत सकाम तथा निष्काम मनुष्योंके-चारोंवर्णों वाले तथा चारोंआश्रमों वाले मानवोंके-स्त्री-वर्ग और बालक वृन्दके धर्मका श्रेष्ठ साधन माना गया है ॥२२॥ यह ऐसा शिवका श्रेष्ठव्रत है जो समस्त दास दासियोंका सब देवता आदिका तथा सम्पूर्ण देहधारी मनुष्यों का हित सम्पादन करने वाला है ॥२३॥ माघ मासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथि किसी अन्य तिथिसे मिश्रित तथा रात्रिमें व्याप्त होने वाली होतो उसे ग्रहण करना चाहिए क्योंकि ऐसी त्रयोदशी अत्यन्त श्रेष्ठ कही गई है और ऐसी तिथि कोटि (करोड़) हत्याओं के पापोंकी भी नाशकारणी बताई गई

है ।।२४।। हे केशव ! शिव चतुर्दशीके दिन प्रातःकालके समयसे लेकर जो-जो भी कर्तव्य पालन करने चाहिये उन्हें अब मैं तुमको बतलता हूँ आप सब ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।।२५।। धर्मरत बुद्धिमान् मनुष्यको प्रातःकालमें शिवरात्रिके दिन सानन्द शय्यासे उठकर आलस्यका त्याग करते हुए स्नान आदि नित्य-कर्म करना चाहिये ।।२६।। इस अपने आह्निक कर्म के सांग सम्पन्न होने पर शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक भगवान् शिवका अर्चन करे और अन्तमें नमस्कार करके पीछे सम्यक् रीतिसे सत्संकल्प करे ।।२७।। हे देवोंके देव ! हे नीलकण्ठ ! आपको मेरा प्रणाम है। मैं आपके इस शिवरात्रिके व्रतको करनेकी सदिच्छा रखता हूँ ।।२८।।

तव प्रभावाद् देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति ।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि ।।२९
एवं संकल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत् ।
सुस्थले,चैव यल्लिगं प्रसिद्धं चागमेषु वै ।।३०
रात्रौ तत्र स्वयं गत्वा संपाद्य विधिमुत्तमम् ।
शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे ।।३१
निधाय चैव यद् द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ ।
पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः ।।३२
परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वासः शुभं तथा ।
आचम्य च त्रिवारं हि पूजारम्भ समाचरेत् ।।३३
यस्य मंत्रस्य यद्द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत् ।
अमंत्रक न कर्तव्यं पूजनं तु हरस्य च ।।३४
गीतर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्भक्तिभावसमन्वितः ।
पूजन प्रथमे याम कृत्वा मंत्रं जपेद् बुधः ।।३५

हे देवेश ! मेरी प्रार्थना है कि आपके प्रभावसे मेरा यह व्रत निर्विघ्न होजावे और काम, क्रोधादि महाशत्रु मुझे पीड़ा न देवें ।।२९।। इस रीतिसे सङ्कल्पकरके पूजनकी समस्त वस्तुयें एकत्रितकरे और इसके पश्चात् शास्त्रों में प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंगकी सुरम्भ स्थलमें स्थापना करनीचाहिए ।३०। रात्रि

में वहाँ स्वयं जाकर श्रेष्ठ विधानके साथ भगवान्‌शिवके दक्षिण भागमें अथवा पश्चिमभागमें स्थलमें उनसमस्त पूजाके उपचारोंको शिवके समीप रक्खे और फिर व्रतकरने वालेको स्नान करना चाहिए। ये कार्य समुचित विधिसे ही करनेचाहिए।३१-३२। अन्दरके वस्त्रके साथ शुभ बस्त्र धारण कर तीनबार आचमन करनेचाहिए इसके पश्चात् शिवके पूजनका आरम्भ करे ॥३३॥ जो पूजनका द्रव्य अर्पितकरे वह उसीके मन्त्रके सहित समर्पित करनाचाहिए। मन्त्रोंके बिना शिवका पूजन वैसेही कभी नहीं करे।३४। गायन-वादन तथा नर्तनके साथ परमभक्तिकी भावनासे बुद्धिमानको प्रथम प्रहरमें शिवका पूजन करके फिर 'ॐ शिवाय नमः' अथवा 'ॐ नमः शिवाय:' इस पञ्चाक्षरी मन्त्रका जाप करना चाहिए ॥३५॥

पार्थिव च तदा श्रेष्ट विदध्यान्मंत्रवान्यदि।
कृतनित्यक्रियः पश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत्।३६।
प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्च त्स्थापनमाचरेत्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं तोषयेद्वृषभध्वजम्।३७।
माहत्म्यं व्रतसंभूत पठितव्य सुधीमता।
श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाम्यया।३८।
चतुर्ष्वपि च यामेषु भूर्तिनां च चतुष्टयम्।
कृत्वाऽवाहतपूर्व हि विसर्गविधि वै क्रमात्।३९।
काय जागरणं प्रीत्या महोत्सवसमन्वितम्।
प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूजयेच्छिनम्।४०।
ततः सप्राथयेच्भु नतस्कन्धः कृताञ्जलिः।
कृस्पंपूर्णव्रतको नृत्वा तं च पुनः पुनः।४१।
नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया।
विसृज्यते मया स्वामिन्व्रतं जातमनुत्तमम्।४२।

इस प्रकारसे इस उक्त मन्त्रका जपकरते हुएही परमश्रेष्ठ पार्थिवलिंग का निर्माणकरे फिर उसे स्थापितकरे और नित्य-क्रिया करके पार्थिवलिंग का पूजनकरे और अनेक प्रकार के स्तोत्रों द्वारा स्तवन करके भगवान्‌शिव

को सन्तुष्ट एवं प्रसन्नकरे ॥३६-३७॥ इसके अनन्तर बुद्धिमान शिव-भक्त को व्रत सम्बन्धी माहात्म्यका पाठ करनाचाहिए। व्रतकी साङ्ग समाप्तिकी इच्छासे व्रत माहात्म्यका श्रवण करे ॥३८॥ इस प्रकार शिव महारात्रिके चारों प्रहरोंमें आदिमें आवाहनसे लेकर क्रमशः विसर्जन पर्यन्त भगवान् शिवकी चारोंमूर्तियोंका अर्चनकरना चाहिए ॥३९॥ इसमहारात्रिमें बड़ेही उत्साहकेसाथ विशेष उत्सव करते हुए प्रीति और भक्तिके सहित जागरण करना चाहिए,और दूसरेदिन प्रातःकाल होनेपर पुनः शिवकी स्थापनाकर पूजनकरना चाहिए ॥४०॥ इसके अनन्तर अपनेकाधोंको झुकाकर विनम्र भावसे हाथों को जोड़ते हुए सदाशिव की प्रार्थना करे। इस तरह सम्पूर्ण व्रत विधिको समाप्तकर भगवान्शिवको बारम्बार नमस्कार करके प्रार्थना करनी चाहिए ॥३१॥ हे स्वामिन् ! हे महादेव ! आपकी आज्ञासे मैने जो व्रतका नियम ग्रहण किया था वह अब समाप्त हो गया है। अब मैं आपका विसर्जन करना चाहता हूँ ॥४२॥

व्रतेनानेन देवेश यथाशक्ति कृतेन च।
सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि ।४३।
पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्वा दद्याद्दान यथाविधि।
नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत् ।४४।
यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः।
भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत् ।४५।
यामे यामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैहरे।
शिवरात्रौ विशेषेण तामहं कथयामि ते ।४६।
प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे।
पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः ।४७।
पंचद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हर सदा।
तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत् ।४८।
तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां ददेत वै।
पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद् बुधः ।४९।

हे देवेश्वर ! हे सर्वाद्य ! आप मेरे यथा शक्ति किये हुए इस व्रतसे सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर मुझ सेवकपर कृपाकी दृष्टि करें ।।४३।। इसके पश्चात् भगवान् शंकरको पुष्पोंकी अञ्जलि समर्पित करके सविधि दान देवे तथा शिवको प्रणामकरके अपने गृहीत नियमका विसर्जन करे ।४४। शिव के भक्त एवं उपासक ब्राह्मणोंको और विशेष रूपसे संन्यासियोंको अपनी शक्तिकेअनुसार तृप्तिपूर्वक भोजनकराकर पूर्ण सन्तुष्टकरे । और फिर स्वयं भी भगवान् के प्रसाद के स्वरूप में प्राप्त भोजन करे ।।४५।। हे विष्णो ! शिवके श्रेष्ठभक्तोंको जैसे प्रत्येक प्रहरमें महाशिवरात्रिके दिन विशेष पूजन करनाचाहिए, उसपूजनके विधानको आपको सुनाता हूँ ।४६। हे विष्णुदेव ! पहिले प्रहरमें संस्थापित पार्थिव शिवलिंगका अनेक उपचारोंके द्वारा परम भक्तिपूर्वक अर्चन करे ।४७। सर्वप्रथम पांचकृत्यों द्वारा शिवकापूजन करे प्रत्येक वस्तुके मन्त्रसे उसे समर्पित करना चाहिए, प्रत्येक द्रव्यका पृथक् २ समर्पण करे ।४८। पूजनके द्रव्योंके समर्पणके साथ प्रत्येक द्रव्यके पश्चाद् जलकी धारा चढ़ानी चाहिए । इसके अनन्तर विद्वान व्रत करने वालेको जलकी धारासे ही समर्पण किये हुए द्रव्यको उतारना चाहिए ।।४९।।

शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वा जलधारया ।
पूजयेच्च शिवं तत्रानिर्गुणं गुणरूपिणम् ।।५०
गुरुदत्तेन मंत्रेण पूजयेद् वृषभध्वजम् ।
अन्यथा नाममंत्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम् ।।५१
चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः ।
कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शंभोः परात्मनः ।।५२
कुष्पैश्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः ।
अष्टभिर्नाममंत्रैश्चार्पयेत्पुष्पाणि शंकरे ।।५३
भव शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुपतिस्तथा ।
उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै ।।५४
श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यन्तैर्नामभि पूजयेच्छिवम् ।
पश्चाद् धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम् ।।५५

आद्ये यामे च नैवेद्यं पक्वान्नं कारतेद् बुधः ।
अर्घं च श्रीफलं दत्वा ताम्बूलं च वेदयेत् ।५६।

उस समय एकसौ आठबार ॐ नमःशिवायः' इस परमविख्यात पञ्चाक्षरी मन्त्रको पढ़कर निर्गुण एवं सगुणस्वरूप शिवका पूजनकरना चाहिए ।५०। गुरुसे उपदिष्ट मन्त्रके द्वारा अथवा नाम मन्त्रसे सदाशिवका समर्चन करना चाहिए ॥५१॥ शिवका पूजन सुन्दर चन्दन अखण्डित अक्षत (चावल) काले तिलोंसे करना उचित है ॥५२॥ कमलके दल, सौर और कनेरसे शिवका पूजन करे और शिव भगवान्के ऊपर शिवके आठों नाम मन्त्रोंके द्वारा पुष्प चढ़ावे ॥५३॥ भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, महान् भीम, उग्र ईशान-ये शिव भगवानके आठ नाम हैं ॥५४॥ 'श्री' पहिले लगाकर नामके आगे चतुर्थी विभक्ति लगावे । तथा 'ॐ श्री भावय नमः इत्यादि वत् सब नामोंसे शिवकी अर्चना करे। इसके पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़ाना चाहिए ॥५५॥ प्रथम प्रहरमें बुद्धिमान् भक्तोंको पक्वान्न सहित नैवेद्यका समर्पण करना चाहिये तथा अर्घ, श्रीफल, बिल्व, नारियल चढ़ाकर अन्तमें ताम्बूल समर्पित करे ॥५५॥

नमस्कारं ततो ध्यानं जपःरप्रोक्तो गुरोर्मनोः ।
अन्यथा पञ्चवर्णेन तोषयेत्तेन शंकरम् ।५७।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याय सुजलेस्तर्पणं चरेत् ।
पञ्चब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम् ।५८।
महोत्सवश्च कर्तव्यो यावद् यामो भवेदिह ।
ततः पूजाफल तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत् ।५९।
पुनर्द्वितीये यामे च संकल्पं सुसमावरेत् ।
अथवैकदैव संकल्प्य कुर्यात्पूजां तथाविधाम् ।६०।
द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजा कृत्वा धारा समर्पयेत् ।
पूर्वतो द्विगुणं मन्त्रं समुच्चार्यार्चयेच्छिवम् ।६१।
पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम् ।
बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम् ।६२।

अर्घ्यं च बीजपूरेण नैवेद्यं पायसं तथा ।
मन्त्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन ।६३।

इसके पश्चात् नमस्कार और ध्यान करके गुरूदिष्ट मन्त्रका अथवा मेरे मन्त्रका जापकरना चाहिए ; किम्बा पञ्चाक्षरी मन्त्रसे शिवको सन्तुष्ट करे ।५७। इसके पश्चात् धेनुमुद्राको प्रदर्शित कर निर्मल जलके द्वारा महेश्वरकी तृप्ति करे और अपनी शक्तिके अनुसार पाँच ब्राह्मणोंको भोजन करावे ।५८। इसके पश्चात् शेष जितनाभी समय रहे महोत्सव करता रहे। इसके अनन्तर समस्त पूजाके फलोंको देकर देवका विसर्जन करना चाहिए ।५९। यहाँ तक प्रथम प्रहरकी पूजा हुई । अब द्वितीय प्रहरके आरम्भमें भली-भाँति सङ्कल्प करे अथवा आरम्भमें एकहीबार सङ्कल्प करे पूजनका आरम्भ करे जोकि पूर्ववत् ही होवे ॥६०॥ पूर्वकी भाँतिही प्रथम द्रव्योंसे पूजाकरके फिर जलकी धारा समर्पित करे । इस दूसरे प्रहरमें प्रथम प्रहर की अपेक्षा द्विगुण मन्त्रोंकाजाप करते हुए शिवार्चन करना चाहिए ॥६१॥ प्रथम प्रहरके पूजनसे शेष रक्खे हुए तिल, जौ, चावल और कमलोंसे और विशेषरूपसे बिल्वपत्रोंसे सदाशिवका पूजनकरना चाहिए ।६२। हे विष्णो ! बिजौरा नीबूका अर्घ्य तथा खीरके नैवेद्यका अर्पण करे और पहिलेसे भी दुगुने मन्त्रोंका जाप करना चाहिए ॥६३॥

ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्यसंकल्पमाचरेत् ।
अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च द्वितयावधि ।६४।
यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजन चरेत् ।
यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि च ।६५।
धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि ।
नैवेद्यापूपकैर्विष्णोः शाकैर्नानाविधैरपि ।६६।
कृत्वैवं चाथ कपूरैरारातिक्रविधिं चरेत् ।
अर्घ्यं च ताडिमं दद्याद् द्विगुणं जपम चरेत् ।६७।
ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम् ।
उत्सवं पूर्ववत्कुर्याद्यावद्यामावधिर्भवेत् ।६८।

यामे चतुर्थ संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम् ।
प्रयोगादि पुना कृत्वा पुजां विधिवदाचरेत् ।६९।
माषैः प्रियंगुभिर्मुद्गै सप्तधान्यैस्तथाथवा ।
शङ्खीपुष्पैर्बिल्वपत्रैः पूजयेत्परमेश्वरम् ।७०।

इसके पीछे योग्य ब्राह्मणोंके भोजन करनेका सङ्कल्प करे बाकी सम्पूर्ण पूजनको प्रथमप्रहरके समान द्वितीय प्रहरकी समाप्तितक करता रहे ॥६४॥ यहाँ द्वितीय प्रहरकी अर्चना समाप्त हो जाती हैं और अब तीसरे प्रहरके पूजनका विधान आरम्भहोता है । इस प्रहरमें भी पूर्ववत् पूजनका क्रम करना चाहिये । यज्ञोके स्थानमें गेहूँ तथा आकके पुष्प चढ़ावे ॥६५॥ हे विष्णुदेव ! तीसरे प्रहरमें अनेक तरहकी उत्तम धूप ,बहुतसे दीपक पुआ का नैवेद्य और अनेक भाँतिके शाकोंसे पूजन करे ॥६६॥ इस तरह पूजन करके शिवकी आरती कपूरसे करे । अनारनका अर्घ्य देवे और पहिले की अपेक्षा द्विगुणित मन्त्र जाप करना चाहिए ।६७। इसके अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्रह्मभोज करानेका सङ्कल्प करे और तृतीय प्रहरकी समाप्तिके पर्यन्त पहिले की तरह उत्सव करता ही करे ॥६८॥ यह तीसरे प्रहरकी पूजा समाप्त होती है अब चौथेप्रहरकी अर्चन का आरम्भ होजाता है जब चतुर्थ प्रहरकी पूजाका अवसर आवे तो पहिलेका विसर्जनकर देवे और फिर नये सिरेसे आवाहन आदि करके पूर्ण विधि-विधानसे पूजन करे ॥६९॥ अब उड़द, मूंग, काँगनी अथवा सात धान्यों, शङ्खी-पुष्प और बिल्वपत्रोंसे शिवका अर्चन करना चाहिए ॥७॥

नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि ।
अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम् ।७१।
अर्घ दद्यात्कदल्यश्च फलेनैवाथ वा हरे ।
विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घ्यं शिवाय च ।७२।
पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मन्त्रजापं नरोत्तमः ।
सकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद् बुधः ।७३।
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः ।

मयौत्सववैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः ।७४।
उदये च तथा जाते पुनः स्नात्वार्चयेच्छिवम् ।
नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत् ।७५।
नानाविधानि दानानि भोज्य च विविध तथा ।
ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसंख्यया ।७६।
शंकराय नमस्कृत्यञ्जलिमथाचरेत् ।
प्रार्थयेत्सुस्तुतिं कृत्वा मंत्रैरेतैर्विचक्षणः ।७७।

इसके पश्चात् अनेक प्रकारके मिष्ठान्न नैवेद्योंको शिवके लिये समर्पित करे अथव, उड़दके बने हुए पक्वान्नसे शिवको सन्तुष्ट करना चाहिए ।७१। हे हरे ! इस समय केलाकी गौरका अर्घ्य देवे किम्वा ऋतुके विविध फलों से भगवान् शिवको अर्घ्य देना चाहिए ।।७२।। इसके पश्चात् विद्वान् शिवव्रती व्यक्तिको पहिलेसे दुगुना मन्त्र जापकर अपनी शक्तिके अनुकूल ब्राह्मण-भोजन करानेका सङ्कल्प करना चाहिए ।।७३।। भक्तिपूर्वक गायन, वाद्य, नर्तन आदिको करते हुए भक्तोंके सहित महान् उत्सवका समारोह अरुणोदय पर्यन्त करके समयके शेष भागको व्यतीतकरना चाहिए ।।७४।। भुवन भास्करके समुदित होने पर स्नान करके पुनः शिवका अर्चन करना चाहिए । तत्पश्चात् अनेक पूजाके योग्य भेंटोके द्वारा अपना अभिषेक करना चाहिए ।।७५।। इसके अनन्तर प्रहरोंके अनुसार अर्थात् प्रहरोंकी संख्याके अनुकूल विविध तरहके दान, विभिन्न प्रकारके भोजन ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको अपने संङ्कल्पानुरूप समर्पित करने चाहिए ।।७६।। इसके पश्चा शिवको प्रणामकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे और फिर सुबुद्धि भक्तको निम्नप्रकारके मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिए ।।७७।।

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु ।७८।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजामिकं मया ।
कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूनाथ प्रसीद मे ।७९।
अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च ।

तैनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः ८०।
कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं न हि देवता।८१।
पुष्पाँजलिं समर्प्यैव तिलकाशिष एव च
गृह्णीयाद् ब्राह्मणेभ्यश्च ततः शम्भुं विसर्जयेत्।८२।
एव व्रतं कृतं येन तस्माद् दूरो हरो न हि।
न शक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम।८३।
अनायासतया चेद्वै कृतं व्रतमिद परम्।
तस्य वै मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा।८४।

हे कृपानिधे ! हे शिवजी ! मैं आपका हूँ और आपकेही प्राणों वाला हूँ तथा आपकेही चित्त वाल हूँ - यही समझकर जो भी उचित हो वही आप करें।७८। हे भूतनाथ ! मुझ सेवक के द्वारा अज्ञानवश पूजन तथा जप आदि किया गया है उससे आप अपनी स्वाभाविक दयालुता के कारण से मुझ पर प्रसन्नहोवें।७९ इस परमपावन व्रतसे जोभी उत्तम फल होता है। उससे आप समस्त सुखों के प्रदान करने वाले मुझपर प्रसन्नता करें।८०। हे महादेव ! मैं यही चाहता हूँ कि मेरे कुल में सदा आपका भजन पूजन करते रहें और मैं कभीभी ऐसे वशमें न होऊँ जिसमें आपका नाम संकीर्तन न होता हो।८१। इस रीति से निवेदन करके पुष्पाँजलि समर्पित कर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद के तिलोंका ग्रहण करे और इसके अनन्तर शिव का विसर्जन कर देवे।८२। इस प्रकार से जो भी व्रत करते, उनसे भगवान शम्भु कभी दूर नहीं रहा करते हैं। इस व्रतका पूर्ण फल मैं नहीं कह सकया हूँ। ऐसे भक्त को मुझे कुछ भी अदेय वस्तु नहीं होती।८३। यदि बिना कुछ श्रमके भी यह परम श्रेष्ठ व्रत किया गया हो, उसकोभी मोक्ष बीज अवश्य होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।८४।

प्रतिमासं वृतं चैव कर्तव्यं भवितत्तौ नरैः।
उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा सांगभलं लभेत्।।८५।
व्रतस्य करणान्न न शिवोऽहं सर्वदुःखहा।

ददमि भुक्ति मुक्ति च सर्व वै वाञ्छितं फलम् ।८६।
इति शिववचनं निशम्य विष्णुर्हिततरमद्भुतमाजगाम धाम ।
तदनु व्रतमुत्तमं जनेष समचरदात्महितेषु चैतदेव ।८७।
कदाचिन्नारदायाथ शिवरात्रिव्रतन्त्विदम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः ।८८।

ससारमें मनुष्योंका कर्तव्य हैकि शिवदेवको प्रसन्नकरनेके लिये प्रत्येक मासमें चतुर्दशीके दिन इस व्रतको करना चाहिए और भक्तिके साथ पीछे उद्यापन करके पूर्ण अङ्गोंवाला इसके फलका लाभ प्राप्त करे ।।८५।। इस व्रतके करने वालेका निश्चत रूपसे अवश्यही मैं सारा दुःख दूर मगा देता हूँ और उसे भुक्ति मुक्ति दोनों प्रदानकर सम्पूर्ण अभीप्सित फल दिया करता हूँ ।८६। सूतजीने कहा-भगवान् विष्णुदेव महेश्वरके इस प्रकार के परम हितप्रद बचनोंको श्रवणकर अद्भुत एवं अतुल तेजको प्राप्तहुए और इसके उपरान्त उन्होंने अपने हित चाहने वाले मनुष्योंके निकटमें उपस्थित होकर यह शिवका परम श्रेष्ठ व्रत किया ।८७। एकबार इसी दिव्य शिवके व्रतके विषयमें भगवान् विष्णुने श्रीनारदजी से कहा था कि यह भोग मोक्ष दोनों का देने वाला सर्वोत्तम ब्रत है ।।८८।।

।। शिवरात्रि ब्रत का उद्यापन

उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च ।
यत्कृत्वा शंकरः साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ।
श्रूयतामृषयो भक्तया तदुधापनमादराद् ।
यस्यानुष्ठानतः पूर्ण भवति तद् ध्रुवम् ।२।
चतुर्शाब्दं कर्तव्य शिवरात्रिव्रतं शुभम् ।
एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम् ।३।
शिवरात्रिदिने प्राप्ते मित्य संपाद्य वै विधिम् ।
शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ।४।
ततश्च करायेद्दिव्यं मण्डलं तत्र यत्नतः ।

गौरीतिलकनाम्ना वै प्रसिद्धं भुवनत्रये ।।५
तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिंगतोभद्रमण्डलम् ।
अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रल्पयेत् ।।६
कुंभास्तत्र प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया ।
सर्वस्त्रा सफलास्तत्र दक्षिणासहिताः शुभ्यः ।।७

ऋषियोंने कहा—अब आप महाशिवरात्रिके व्रतकी उद्यापनकी विधि का वर्णन करें जिसके करने से साक्षात् भगवान् शिव निश्चित रूपसे प्रसन्न होजाया करते हैं ।।१।। सूतजीने कहा— हे ऋषिगण ! अब आप पूर्ण भक्तिके साथ आदरपूर्वक महाशिवरात्रिके व्रतके उद्यापन करनेके विधान को परम प्रेमपूर्वक श्रवण करो जिसके कर देनेसे यह महाव्रत निश्चिय ही पूर्ण हो जाया करता हैं ।।२।। इस परम शुभ शिवरात्रिका व्रत चौदहवर्ष तक करना चाहिये । इस व्रतमें त्रयोदशीके दिन एकबार भोजन करे और चतुर्दशीकेदिन उपवास करनाचाहित।। ३।। शिवरात्रिके दिन नैत्यिक विधि को समाप्त करके भगवान् शिवके मन्दिरमें जाकर सविधि उनका अर्चन करना चाहिएं ।।४।। इसके अनन्तर भगवान् शम्भुके समीपमें यत्नके साथ दिव्य मण्डलकी रचना करानी चाहिए जिस मण्डल की त्रिभूवनमें गौरी-तिलकके शुभ नामसे ख्याति है ।।५।। इसके मध्यमें सुन्दर लिंगतोभद्र-मण्डलको बनावे अथवा उस मंडलके अन्दर सर्वतोभद्र चक्रका निर्माण करना चाहिये ।।६।। उस जगह प्राजापत्यके नामसे वस्त्र फल और दक्षिणा के सहित शुभ घटोंकी स्थापना करे ।।७।।

मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः ।
मध्ये चक्रश्च संस्थाप्यः सोवर्णो वापरो धटः ।।८
तत्रोमासहितां शंभुमूर्ति निर्माय हाटकीम् ।
पलेन वा तदर्द्धेन यथाशक्तयाऽथवा व्रती ।।९
निधाय वामभागे तु शिवामूर्तिमतन्द्रितः ।
मदीयां दक्षिणे भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत् ।।१०
आचार्यं वरयेत्तत्रचर्त्विग्भिः सहितं शुचिम् ।

अनुज्ञातश्च तैर्भक्तया शिवपूजां समाचरेत् ॥११
रात्रौ जागरण कुर्यात्पूजां यामोद्भवां चरन् ।
रात्रिमाक्रमयेत्सर्वां गीतनृत्यादिना व्रती ॥१२
एवं सम्पूज्य विधिवत्सतोष्य प्रतिरेव च ।
पुनः पूजां ततः कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि ॥१३
यथाशक्ति विधान च प्राजाप्रत्यं समाचरेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः ॥

उस मण्डपके समीप मध्यमें एक या दो सुवर्ण कलशोंकी स्थापना करनी चाहिए जहाँकि शिवके व्रत करनेवाले व्यक्ति एक अथवा आधेपल की सुवर्णकी पार्वतीकेसाथ शिवकीप्रतिमा स्थापित करे ॥८॥९॥ आलस्य का त्यागकर वहाँपर वामभागमें जगदम्बा पार्वतीकी प्रतिमा और दक्षिण भागमें भगवान् शिवकी मूर्तिकी स्थापना सविधिकर रात्रिमें उनका अर्चन करना चाहिए ॥१०॥ उस मण्डप योग्य ऋत्विजों और आचार्यका वरण भी करे जिनकी आज्ञाके अनुसारही भक्ति-भावके साथ शिवकी वन्दनार्चन करना चाहिये ॥११॥ प्रत्येक प्रहरमें पूजन करते हुई रात्रिका जागरण करे और बड़े उत्साहके साथ गीत भजन तथा नृत्य आदिसे उस रात्रिका समय व्यतीत करे ॥१२॥ इस रीतिसे रात्रिको सविधि शिवपूजनकर शिव को सन्तुष्ट करे और फिन प्रातःकालमें पुनः शिवार्चन कर हवन करना चाहिये ।१३॥ इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार प्राजापत्य व्रतका विधान करे और इसके उपरान्त प्रेमपूर्वक ब्रह्मभोज कराके दान देवे । इस समस्त विधानमें पूर्ण भक्तिकी भावना होनी चाहिये ॥१४॥

ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालकारभूषणैः ।
अलंकृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक् ॥१५
गां सवत्सां विधानेन यथोपस्करसंयुताम् ।
उक्त्वा चार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रीयतामिति ।१६
ततः सकुम्भां तन्मूर्ति सवस्त्रां वृषभे स्थिताम् ।
वालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ॥१७

ततः संप्रार्थयेद्देवं महेशानं महाप्रभुम् ।
कृतांजलिर्नतस्कन्धः सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः ।१८।
देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।
व्रतेनानेन देवेशं कृपां कुरु ममोपरि ।१९।
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव ।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रासादात्तव शङ्कर ।२०।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शङ्कर ।२१।
एवं पुष्पाञ्जलिं दत्वा शिवाय परमात्मने ।
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रार्थनां पुनरेव च ।२२।
एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते ।
मनोऽभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ।२३।

जो बरण किये हुए ऋत्विज हों उन्हें सपत्नीक वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित कर विधिके साथ पृथक् पृथक् उन्हें दान देना चाहिए ।।१५।। सवत्सा दूध देने वाली गौका दान समस्त वस्तुओं के साथ आचार्यको देवे और यह कहकर देना चाहिए कि भगवान्‌शिव मुझपर प्रसन्न होवें ।।१६।। इसके उपरान्त कलश तथा वस्त्रादिके साथ वृषभपर विराजमान शिवकी प्रतिमाको वस्त्राभूषणों से युक्त आचार्य को समर्पित कर देवे ।।१७।। इसके पश्चात् अपने कन्धोंको नीचेकी ओर झुकाकर विनम्र भावसे दोनों हाथ जोड़कर शिवके समीप गद्‌गद् वाणी से प्रार्थना करे।१८। हे देवों के देव ! हे महादेव ! हे शरणागत वत्सल ! हे देवेश ! आप अब इस व्रत से मेरे ऊपर प्रसन्नहोकर कृपाकी दृष्टि करें ।।१९।। हे शिव ! भक्तकी भावनाका आश्रयलेकर मैंने इसव्रतको किया है सो हे शङ्कर ! इसमें कुछ न्यूनताभी रह गई हो तो आपकी प्रसन्नता से पूर्णताको प्राप्त हो ।।२०।। हे शङ्कर ! मैंने ज्ञान या अज्ञानसे जो कुछभी आपका पूजन तथा जप आदि किया है सो सब आपकी अपनी कृपासे सफल होवे ।।२१।। इसविधिसे नम्र प्रार्थना के सहित पुष्पोंकी अञ्जलि समर्पित कर शिवको प्रणाम करे ।।२२।। इस

तरह जिसने भी इस व्रतको किया है उसमें कोई भी न्यूनता नहीं रहा करती है और वह शिवव्रती मनकी चाही हुई सिद्धि ही प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।२३।।

व्याध-कथा प्रसंग में शिवरात्रि माहात्म्य वर्णन

सूत ते वचन श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः ।
विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव प्रतमुत्तमम् ।१।
कृत पुरा च केनेह सूत तद् व्रतमुत्तमम् ।
कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम् ।२।
श्रूयतामृषयः सर्वे कथयामि पुरातनम् ।
इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।३।
पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद् गुरुद्रुहः ।
कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः ।४।
निरन्तरं वने गत्वा मृगान्हन्ति स्म नित्यशः ।
चौर्य्यं च विविधं तत्र करोति स्म वने वसन् ।५।
बाल्यादारभ्य तेनेह कृतं किंचिच्छुभं न हि ।
महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः ।६।
कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना ।
न दुरात्मा स्म जानाति महष्टननिवासकृत् ।७।

ऋषियोने कहा—हे सूतजी ! आपके बचन सुनकर हम सबको अत्यन्त आनन्द हुआ है। अब आप कृपाकर उसी परम श्रेष्ठ व्रतको प्रीत-पूर्वक विस्तारसे कहिए।१। हे सूतजी ! इस संसारमें सर्व प्रथम यह व्रत किसने किया था और अज्ञानसे भी इस श्रेष्ठ व्रतको करनेसे क्या फल प्राप्त होता है ? कृपाकर यहसब बताइये।२। सूतजीने कहा-हे ऋषिगण ! इस सम्बन्ध में मैं एक परम प्राचीन तथा समस्त पापोंका नाशक निषादका आख्यान तुमको सुनता हूँ।३। बहुतपहिले पुरानेसमयमें गुरुद्रुह नामसे विख्यात, बहु कुटुम्बी और अतिबलवान् एकभील बनमें रहाकरता था जोकि सर्वदा हत्या आदि करने के बुरेसे बुरे कर्मोंमें तत्पर रहता था ।।४।। उसका यह नित्य

का काम था कि बनमें मृगोंकी शिकार करे और वहाँ आते-जाते लोगोंके धनका अपहरण करे ।५। उसने अपने बचपनसे लेकर युवावस्थातक कोई भी शुभ कर्म कभी नहीं किया और इसी रीतिसे वनमें रहते हुऐ उस दुरात्माका बहुत समय व्यतीत हो गया ।६। इस तरह रहते हुए उसे शुभ महाशिवरात्रिका समय आ गया किन्तु उस दुष्ट बुद्धिको इस परम पावन दिनका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ ।।७।।

एतस्मिन्समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा ।
प्रार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर ।८।
इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम् ।
जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम् ।९।
दवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचदेव हि ।
अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यः स वै दुःखमुपागतः ।१०।
किं कर्तव्यं क्व गतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन ।
वाल श्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति ।११।
मीदय वै कलत्रं च तस्याः किंचिद् भविष्यति ।
किंचिद् गृहीत्वा हि मया गन्तव्यं नान्यथा भवेत् ।१२।
इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशयसमीपगः ।
जलावतरण यत्र तत्र गत्वा स्वयं स्थितन ।१३।
अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति ।
त हत्वा स्वगृहं प्रीत्या यास्याभि कृतकार्यकः ।१४।

उसी समय उसके माता-पिता और पत्नीने उससे कहा—हम भूखसे अत्यन्तही व्याकुल होरहे हैं,हमको कहींसे भोजन दो ।८। माता-पिता और पत्नीकी इस बातको सुनकर वह अपना धनुष उठाकर शीघ्रही मृग मारने के लिये घोर वनमें गया और चारों और बहुत घूमा-फिरा किन्तु दैवयोग से उसदिन उसे कुछ शिकार नही मिली । जब सूर्य अस्ताचलगामी होगए तो उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह अत्यन्त दुःखित हुआ ।।९-१०।।उसने बनमें सोचा-क्या करूं और अब कहाँ जाऊं ? खेदकी बात है कि आज

मुझे कुछभी भोजनकासाधन नहीं मिला है। में अपने माता-पिताऔर पुत्र पत्नीको क्या खिलाऊँगा? ॥११॥ मेरी स्त्री गर्भवती है अतः उसके लिये अवश्यही कुछ खानेकी वस्तु लेजाना आवश्यक है। अतः अब मैं भोजनका सामान लिये बिना घरको नहीं वापिस लौटूंगा।१२। ऐसा विचार करके वह भील एक सरोवरके तटपर जाकर बैठ गया ॥१३॥ उसने सोचा यह जलपीनेका घाट है इसलिये यहाँ अवश्य ही कोई न कोई जीव आवेगा। उसका वध करके सफल होकर ही आनन्दसे घरमें जाऊंगा। १४॥

इति मत्वा स वै वृक्षमेकं विल्वेमिसंज्ञकम् ।
समारुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः ।१५।
कदा यास्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामहं पुनः ।
इति बुद्धि समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः ।१६।
तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगी त्वेका समागत ।
तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा ।१७।
तां दृष्ट्वा च तदा तेद तद्वधार्थमथो शरः ।
सहृष्टेन द्रुतं बाणं धनुषि स्वे हि सदधे ।१८।
इत्येवं कुर्वतस्तस्य जलं बिल्वदलानि च ।
पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिगमभूत्ततः ।१९।
यामस्य प्रथमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च ।
तन्महिम्ना हि तस्यैव पातक गलितं तदा ।२०।
तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वां सा हरिणी भिया ।
व्याधं दृष्ट्वा व्याकुल हि तचनं चेद्मव्रतीत् ।२१।

वह भील अपने दिलमें एसा विचार करके जल लेकर एक बेलके वृक्ष पर चढ़ गया और वहाँ बैठगया ॥१५॥ कब कोई जीव आवे और कब मैं उसे मारूँ-यही मनमें विचार करके भूखा-प्यासा वह भील वहां प्रतीक्षामें स्थित हो गया ॥१६॥ जब रात्रिका प्रथम प्रहर हो गया तो एक हिरनी प्याससे बेचैन होकर हाँपती हुई वहाँ आई ॥१७॥ हे विष्णुदेव ! उसी मृगीको देखकर उस व्याधको नहुत प्रसन्नता हुई और उसने हिरनीको

मारनेके लिए तुरन्त ही धनुषपर बाण चढ़ा लिया ।१८। धनुष और तीर को साधनेके प्रयत्नमें उनके हाथसे बेलपत्र और जल नीचे गिरगये जहाँकि एक शिवका ज्योतिर्लिङ्ग स्थापित था ॥१९॥ इस तरह से अनजाने ही उसके द्वारा अनायास भगवान् शिवके प्रथम प्रहरका अर्चन हो गया। इस महारात्रि में शिव-पूजनके प्रभावसे उसके समस्त पापोंका क्षय हो गया। ॥२०॥ उसके धनुषकी ध्वनिको सुनकर और भीलको वधके लिये प्रस्तुत देखकर वह हिरनी अत्यन्त भयभीत होकर उससे कहनी लगी ।२१।

किं कर्तु मिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः ।
तच्छ्रुत्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत् ।२२।
कुटुम्ब क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वं तर्पयाम्यहम् ।
दारुणं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तं दुर्द्धरं खलम् ।२३।
किं करोमि क्व गच्छामि ह्युपायं रचयाम्यहम् ।
इत्थ विचार्य्य सा तत्र वचन चेदमब्रवीत् ।२४।
मन्मांसेन सुखं ते स्याद्देहस्यानर्थकारिणः ।
अधिकं किं महत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः ।२५।
उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह ।
तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ।२६।
परं तु शिशवौ मेऽद्य वर्तन्ते स्वाश्रमेऽखिलाः ।
भगिन्यौ तान्समर्प्यैव प्रायास्ये स्वामिनेऽथवा ।२७।
न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर ।
आयास्येह पुनश्चाहं समीप ते न सशयः ।२८।

हिरनीने कहा-हे व्याध ! तुम्हारी क्या करनेकी इच्छा है ? मेरे सामने अपना सत्य विचार प्रगट करो, मृगीकी इस बातको सुनकर वह भील कहने लगा ॥२२॥ व्याधने कहा-आज मेरा समस्त कुटुम्ब भूखा है, तुझे मारकर अपने परिवार वालोंके प्राणोंकी रक्षा करूँगा। भीलके इस उत्तर को सुनकर और भीषण व्याध के स्वरूप को देखकर हिरनी अपने मन में सोचने लगी ।२३। इस प्राणोंकी बाधाका समय उपस्थित होजानेपरमैं कहाँ

जाऊं और क्या करूं ! अच्छा कोई उपायरचता हूँ-ऐसा मनमें विचारकरके उसने कहा-।२४। मृगीने कहा-आज महान् अनर्थ करनेवाले इसमेरे शरीर से यदि आपको सुखमिले तो मेरा इससे अधिक और क्या महान् पुण्य हो सकता है । मैं आज बिना किसी संदेहके निश्चय ही बड़ी भाग्यशालिनी हूँ ।२५। इसलोकमें उपकार करनेवाले प्राणिका जितना पुण्य होता है उसका वर्णन एक सौ वर्ष में भी नहीं किया जा सकता है ।।२६।। किन्तु केवल यही प्रार्थना हैकि इस समय मेरे सबबच्चे अपने स्थानमें अकेले हैं मैं उन्हें अपनी भगिनी अथवा स्वामीके पास सौंपकर तुरन्त आपके समीप में आ जाऊंगी ।२७। हे वनचर ! आप मेरे इस वचनको असत्य मत मानना, मैं तुम्हारे पास निश्चय ही आऊंगी-इसमें कुछ सन्देह नहीं ।२८।

स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारधिः ।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्व प्रतिष्ठितम् ।२९।
इत्युक्तोऽपि तथा व्याधो न मेने तद्वचो यदा ।
तदा सुविस्मिता भीता वचन सात्रवीन्पुनः ।३०।
शृणु व्याधप्रवक्ष्यामि शपथ हि करोम्यहम् ।
अगच्छेयं यथा ते न समीप स्वगृहाद्गता ।३१।
ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम् ।
स्त्रियः स्वस्वामिनो ह्याज्ञां उल्लंध्य क्रियान्वितः ।३२।
कृतघ्ने चैव यत्पापं यत्पाप विमुखे हरेः ।
द्रोहिणश्चैव यत्पापं यत्पाप धर्मलघने ।३३।
विश्वासघातके यच्च तथा वै छलकर्तारि ।
तेन पापेन लिम्पामि यद्यहं नागमे पुनः ।३४।
इत्याद्यनेकशपथं मृगी कृत्वा स्थिता यदा ।
तदा व्याधः स विश्वस्य गच्छेति गृहमब्रवीत् ।३५।
मृगी हृष्टा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम् ।
तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां विना गत ।३६।

सत्यके प्रभावसे यह भूमि स्थित है और सत्य ही से सागर तथा जल

धारा स्थित है, निष्कपार्थ यही है कि सत्यमें सभी कुछ स्थित है।२९।सूतजी ने कहा-उस हिरनीकी ऐसी प्रार्थना सुनकर भी व्याधने नहीं माना तो वह अति आश्चर्यान्वित होकर बहुत डर गई और उसने फिर कहा ॥३०॥ मृगीने कहा-हे व्याध मैं जो भी कुछ निवेदन करती हूँ उसे आप सुनो मैं आपके समक्षमें शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं अपने वचनकापालन अवश्य करूंगी अर्थात् मैं अवश्य ही वापिस आऊंगी। ३१॥ वेदों के बेचने वाले और त्रिकालमें सन्ध्या न करनेवाले ब्राह्मणकोजो पापहोता है तथा कामों में आसक्त हुई स्त्रियों को अपनी स्वामी की आज्ञाके उल्लंघन में जो पाप होता है एवं विश्वास घात करने वाले-कृतघ्नी-छल करने वाले और शिवसे विमुख रहने वालेको जोभी पाप होता है और धर्मको तोड़ने वाले को जोभी पातक लगता है मैं भी उसी पापकी भागिनी होऊंगी यदि मैं कहकर आपके पास लौटकर वापिस न आऊं ॥३२-३३-३४॥ इस तरह बहुत सी शपथ खाकर वह जब स्थित हुई तो व्याधने हिरनी से कहा, मैं विश्वास करता हूँ तू चली जा।।३५॥ इसके पश्चात् जब तक वह हिरनी जल पीकर प्रसन्न हो अपने स्थानको गई तब तक प्रथम प्रहर विना नींद लिये उस व्याधका व्यतीत हो गया ॥३६॥

तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता।
तस्या मार्ग विचिन्वन्तो ह्याजगाम जलार्थिनी।३७।
तां दृष्ट्वा च स्वयं भिल्लोऽकार्षीद् बाणस्य कर्षणम्
पूर्ववज्जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि।३८।
यामस्य च द्वितीयस्य तेन शम्भोर्महात्मनः।
पूजा जाता प्रसगेन व्याधस्य सुखदायिनी।३९।
मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किं करोषि वनेचर।
पूर्ववत्कथितं तेव तच्छ्रुत्वाऽहं मृगी पुनः।४०।
धन्याऽहंब्रूयतां व्याध सफलं देहधारणम्।
अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भवष्यति।४१।
परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्टन्ति चार्भकाः।
भर्त्रे तांश्च समर्प्यैव ह्यागमिष्याम्यहं पुनः।४२।

इसके उपरान्त मृगीकी एक दूसरी बहिन उसकी खोज करते हुई जलपीनेको वहाँ आ पहुँची ।।३७।। इस दूसरी हिरनी को देखकर भीलने इसका वध करनेके लिए फिर ज्यों ही धनुष खींचा कि उसके हाथसे पुनः पूर्ववत् बेलपत्र और जल शिव लिंग पर गिर पड़े ।।३८।। यह इस प्रकारसे द्वितीय प्रहरका शिवार्चन व्याध का अनजाने ही सुसम्पन्न हो गया जो कि महान् सुख देनेवाला होता है ।।३९।। उस समय वह हिरनी भीलको देख कर कहने लगी-यह आप क्या करना चाहते हैं ? व्याध ने पूर्ववत् उसके वध करने का उत्तर दिया। यह सुनकर मृगी कहने लगी ।।४०।। मृगीने कहा-हे व्याध मैं परम धन्य हूँ, मेरा यह शरीर धारण करना आज सफल हो गया क्योंकि इस नाशवान् मेरे शरीर से आपका उपकार होगा-परन्तु केवल छोटीसी प्रार्थना यही है कि मेरे बच्चे सब एकाकी घर पर मेरी प्रतीक्षामें होंगे, मैं उन्हें अपने स्वामीके सुपर्द कर आऊं और फिर आपके समीप बहुत शीघ्र वापिस आती हूँ ।।४१-४२।।

त्वया चोक्तं न मन्येऽहं हन्मि त्वां नात्र संशयः ।
तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथं कुर्वती हरे ।४३।
शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि ।
वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारितम् ।४४।
परिणीतां स्त्रियं हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुनाम् ।
वेदधर्मं समुल्लङ्घ्य कल्पितेन च तो ब्रजेत् ।४५।
विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः ।
पित्रो क्षयाहमासाध शून्यं चैवाक्रमेदिह ।४६।
कृत्वा च परितापं हि करोति वचनं पुनः ।
तेन पापेन लिम्पामि नागच्छेय पुनर्यदि ।४७।
इत्युक्तश्च तथा व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः ।
सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टाऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ।४८।
तावद् द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां बिना गतः ।
एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके ।४९।

भीलने कहा यह तेरा कथन मैं नहीं मान सकता-मैं अब अवश्यही मारूंगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे हरे ! यह व्याधके वचन सुनकर वह मृगी शपथ करती हुई कहने लगी ।४३। मृगीने कहा-हे व्याध ! यदि मैं वापिस लौटकर आपके समीप न आऊं तो वचन के विधान से मेरा समस्त पुण्य चला जायगा ।४४। जो मनुष्य अपनी विवाहिता पत्नी का त्यागकर अन्य स्त्री से भोग करता हैतथा जो वेद विहित धर्मका उल्लंघन करके कल्पित मार्गका अनुगमन करता है-जो विष्णु भक्त बनकर शिव की निन्दा करता है, जो माता-पिता की दाह तिथि को विना ब्राह्मण भोजनके खाली जाने देता है, जो दूसरेको दुख:देकर पीछे मधुर वचन बोलता है मैं उस पापसे लिप्त हो जाऊ यदि मैं वापिस लौटकर आपके पास न आऊं ।४५-४६। सूतजी ने कहा—उस भील ने इस तरह शपथ पूर्वक कहने पर मृगीसे कहा—'तू चली जा'। तब वह मृगी परम प्रसन्न होकर जल-पान करके अपने घर चली गई ।४७। तब तक उस व्याध को विना निद्रा लिये दूसरा प्रहर व्यतीत हो गया और फिर तीसरे प्रहर के आरम्भ होने पर उसने देखाकि वे हिरनियाँ वापिस नहीं आई हैं ।४९।

ज्ञात्वा विलब चकितस्तदन्वेषणातत्पर: ।
तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं ततः ।५०।
पुष्टं मृगं तं दृष्ट्वा हृष्टो वनचरः स वै ।
शर धनुषि संधाय हन्तुं त हि प्रचक्रमे ।५१।
तदैवं कुर्वतस्तस्य बिल्वपत्राणि कानिचित् ।
तत्प्रारब्धवशाद्विष्णो पतितानि शिवोपरि ।५२।
तेन तृतीययामस्य तदात्रौ तस्य भाग्यतः ।
पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम् ।५३।
श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः ।
कुटुम्बार्थमहं हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोऽब्रवीत् ।५४।
तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं हरिणो हृष्टमानसः ।
द्रुतमेव च तं व्याधं वचनं चेदमब्रवीत् ।५५।

धन्योऽहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति।
यस्यांगं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम् ॥५६

हिरनियों के वापिस आने में विलम्ब देखकर व्याध चकित होकर उनकी खोज करनेमें तत्पर होगया किन्तु उसी समय उसने जलके मार्गमें आता हुआ एक हिरण देखा ॥५०। उस परम पुष्ट शरीर वाले हिरणको देखकर व्याधने अपने धनुष पर वाण चढ़ा लिया और वह उसका बध करनेको उद्यत होगया ॥५१॥ हे विष्णुदेव ! जब उसने धनुष-वाणका सन्धान किया तो भाग्यवश कुछ बेलपत्र शिवके ऊपर उसके हाथसे गिर गये। उसने उस रात्रिमें भीलके भाग्यसे तीसरे प्रहरकी शिवकी पूजा सम्पन्न होगई। इस तरह उस व्याध पर शिवने अपनी कृपालुता दिखलाई थी ॥५२।५३॥ धनुषके शब्दको सुनकर मृगने कहा–हे भील ! यह तुम क्या कर रहे हो ! व्याधने कहा–मैं अपने कुटुम्बके पोषणके लिये तुझे मारना चाहता हुँ॥५४॥यह भीलके वचन सुनकर हिरन परमप्रसन्न चित्तसे व्याधसे कहने लगा—॥५५॥ मृगने कहा-मैं आज अतिशय धन्य भाग्य वाला हूं, मैं पुष्टि वाला हूँ क्योंकि मेरे शरीरसे आपकी तृप्ति होगी। जिसके शरीरसे दूसरेका कोई उपकार नहीं बनता, उसका शरीर धारण करना ही सर्वथा निष्फल है ॥५६॥

यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै
तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत् ॥५७
परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननी शिशून ।
आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुनः ॥५८
इत्युक्तस्तेन स व्याधो विस्मतोऽतीव चेतसिः।
मताक् शुद्धमना नष्टपापपुञ्जो वचोब्रवीत् ॥५९
ये ये समागताश्चात्र ते ते सर्वे त्वया यथा।
कथयित्वा गता ह्यत्र नायान्त्यद्यापि बन्धका ॥६०
त्वं चापि सङ्कटे प्राप्तो व्यलीकं गमिष्यसि।
मम संजीवन चाद्य भविष्यति कथं मुधा ॥६१

श्रृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि ।
सत्येन सर्वं ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम् ।।६२
यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलित क्षणात् ।
तथापि श्रृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक ।।६३

जिस प्राणी में सामर्थ्य हो और उससे वह दूसरों की भलाई नहीं करता है तो उसकी समस्तसमर्थता व्यर्थही है । ऐसाप्राणी परलोकमें नरक का गामी होता है ।।५७।। किन्तु सिर्फ कुछक्षण आपसे चाहता हूँकि अपने बालकोंको माताको सोंपतेहुए धीरजबंधाकर शीघ्र आपकी सेवामेंउपस्थित हो सकूं ।५८। मृगके इस तरह कथनसे व्याधको बड़ा आश्चर्य हुआ और शिवार्चनके प्रभावसे कुछ मनकी शुद्धि हो जानेसे तथा पापोंका क्षय होनेसे उस भीलने कहा—।।५९।। व्याधने कहा–हे मृग जो-जो भी जीव यहाँ आये सब तेरी भाँतिही कहकर यहाँसे चलेगये और वे सब अभी तकभी वापिस नहीं आये हैं ।६०। हे मृग ! उसी तरह तू भी प्राण सङ्कटमें प्राप्त होकर असत्य का आश्रय लेकर समय निकालेगा, तू ही बता ! मेरा जीवन इस तरह कैसे रहेगा । ।।६१।। मृगने कहा-हे व्याध ! मैं जो कुछ भी आपसे कहता हूं उसेआप सुनिये । मैं कभी असत्य नहीं बोलता हूं । सत्यके प्रबल प्रभावसे ही यह चराचरमय समस्तब्रह्माण्ड स्थित होरहा है ।६२। जिसकी वाणीमें असत्यता रहती है उसका सारा पुण्य तुरन्त ही नष्ट होजाता है । हे भील ! अब आप मेरी सत्यतापूर्ण प्रतिज्ञाका श्रवण करिये ।।६३।।

सन्ध्यायां मैथुने यस्य शिवरात्र्यां च भोजनं ।
कूटसाक्ष्ये न्यासंहारे सन्ध्याहीने द्विजे तथा ।।६४
शिवहीनं मुखं यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि सन् ।
पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोटनेऽभक्ष्यभक्षणे ।।६५
असपूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक् च यः ।
एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि ।।६६
इति श्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज ।
स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः ।।६७

ते सर्वे मिलितास्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः ।
धृत्तांतं चैव तं सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम् ।५८।
गन्तध्य निश्चयेनेति सत्यपाशेन यंत्रिताः ।
आश्वास्या बालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा ।६९।
मृगी ज्येष्टा च या तत्र स्वामिनं वाक्यमब्रवीद् ।
त्वां बिना बालका ह्यत्र कथं स्थास्यन्ति वै मृग ।७०।

संध्याके समय मैथुनकरनेसे,शिवरात्रिको दिनमें भोजन करनेसे झूँठी गवाही देनेसे, किसीकी रक्खी हुई धरोहरको मारकर पचा जानेसे तथा ब्राह्मण को सन्ध्यावन्दन न करने से जो पाप होता है तथा जिसका मुख शिव भजनसे रहित है,जो सर्वसमर्थ होकरभी उपकार नहीं करता है, पर्व के दिन बेल तोड़ने और अभक्ष्यका भक्षण करनेसे, शिवार्चनके पूर्व भोजन करनेसे, भस्म रहित अङ्ग रहनेसे जो जो महापातक होते हैं वे सभी मुझे लगें अगर मैं वचनदेकर आपके पास वापिस न आऊं ।६४। ६६।श्रीशिवने कहा—ऐसे उस मृगके बचनों को सुनकर व्याधने कहा—'चले जाओ' शीघ्र वापिस आना'। तब वह हिरन जल पीकर सकुशल अपने निवास स्थानपर चला गया ।६७। इसके उपरान्त वे सब हिरनी और हिरन अपने रहनेके स्थानमें एकत्रितहोकर मिले औरएकदूसरेने परस्परमें प्रणाम करके व्याघ्र की बातचीतका समस्त हाल कहा और सुना, फिर वे कहने लगे ।६८। हम सबको अवश्यही अब वहाँ उस व्याधके पास जानाही चाहिए। इस प्रकार सत्य पाशके बन्धनमें बंधे हुए उन्होंने अपने बच्चोंको धीरज बंधाकर वहाँ जानेका निश्चय किया ।६८। उनमें जो सबसेबड़ी हिरनी थी उसने अपने पतिसे कहा—हे मृग ! आपके बिना ये बच्चे वहाँ कैसे रह सकेंगे ।७०।

प्रथमं ते मया तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो ।
तस्मान्मया च गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह ।७१।
इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्टा वाक्यमब्रवीत् ।
अहं त्वेत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया ।७२।
तच्छ्रुत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वै मया ।
भवत्यौ तिष्टतां चात्र मातृतः शिशुरक्षणम् ।७३।

तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः।
प्रोचुः प्रीत्या स्वभर्तारं वैधव्ये जीवितं च धिक् ।७४।
बालानाश्वास्य तांस्तत्र समर्प्य सहवासिनः।
गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः ।७५।
ते बाला अपि सर्वे वै विलोक्यानु समागताः।
एतेषां या गतिः स्याद्वै ह्यस्माकं सा भवत्विति ।७६।
तान् दृष्ट्वा हर्षितो व्याधो बाणं धनुषि संदधे।
पुनश्च जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ।७७।
तेन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा।
तस्य पापं तदा सर्वं भस्मसादभवत् क्षणात् ।७८।

हे पतिदेव ! सबसे प्रथम मैंने ही वहाँ पहुँचने का वचन दिया है। इसलिये मुझे वहाँ पहुँच जाना चाहिए। आप दोनों यहांपर ही रहें ।७१। बड़ी मृगीके इस वचन को सुनकर सबसे छोटी कहने लगी-मैं तो आपकी टहलनी हूँ। मैं वहाँ जाती हूँ। आप सब यहीं रहें ।७२। मृगियों के यह वचन सुनकर हिरन ने कहा मैं जाता हूँ, तुम सब यहाँ रहो क्योंकि बच्चों की रक्षा करने वाली माता ही हुआ करती है ।७३। अपने पति के वचन श्रवणकर उन दोनों मृगियोंने अपने धर्मका ध्यानकरते हुए उस बातको न स्वीकार कर प्रेमके साथ पतिसे कहा-वैधव्यमें जीना स्त्रीके लिये धिक्कार जैसा है ।७४। इस तरह बातचीत करके अपने बच्चोंको धीरज देकर पड़ोसियोंके सुपर्द करते हुए सभी वहाँ चलेगये जहाँ व्याध बैठा था ।७५। पीछे से सबबच्चे भी वहीं चल दिये और मनमें ठानलिया कि हमारे माता-पिता की जो दशा होगी वही दशा हमभी भोग लेंगे ।७६। उससमय उन सबको आये हुए देखकर व्याध मनमे बहुतही प्रसन्न होते हुए अपने धनुषपर बाण चढ़ाने लगा। उस समय भी उसके धनुषके सन्धान करनेमें हाथसे शिवकी मूर्तिपर जल तथा बेलपत्र गिर गये ।७७। इससे भगवानशिवके चौथे प्रहर का भी अर्चन सम्पन्न होगया और इसके प्रभावसे व्याधके समस्त पापोंका समूल विनाश हो गया ।।७८।।

मृगी मृगी मृगश्चोचुः शीघ्रं वै व्याधसत्तम ।
अस्माकं सार्थकं देह कुरु त्वं हि कृपा कुरु ।७९।
इति तेषां वचः श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः ।
शिवपूजनप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान् ।८०।
एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीनाः सुसंमताः ।
स्वीयेनैव शरीरेण परोपकरणे रताः ।८१।
मानुष्यं जन्म सप्राप्य साधितं किं मयाधुना ।
परकीय च सपीड्य शरीर पोषितं मया । ८२
कुटुम्ब पोषितं नित्य कृत्वा पापन्यनेकशः ।
एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भविष्यतिः ।८३।
कां वा गतिं गमिष्यामि पातकं जन्मतः कृतम् ।
इदानीं चिन्तयाम्येवं धिग्धिक् जीवनं मम ।८४।

उस समय वहाँ पहुँचकर मृग और मृगी शीघ्र व्याधसे बोले-हे व्याध श्रेष्ठ ! अब आप हमारे सबके शरीरोंको सार्थक बनादो और कृपा करो । ।७९। शिवने कहा—उन सबके इन बचनों को सुनकर उस भील को बड़ा विस्मय हुआ और शिवपूजनके प्रभावसे उसे देव-दुर्लभ ज्ञानप्राप्त होगया । ।८०। उसने मनमें सोचा-परस्पर मिले हुए ज्ञान रहित इस पशु योनि में उत्पन्न मृग परम धन्य हैं जो अपनेनश्वर शरीरसे परोपकार करनेमेंतत्पर होरहे हैं ।८१। इस मनुष्य देह को प्राप्तकर मैंने क्या फल प्राप्तकिया, जो दूसरे प्राणियोंके शरीरको पीड़ा देकर जन्मभर अपना शरीर पाला ।८२। मैंने सदा बहुतसे पापकर्म करके अपने कुटुम्बका पालन किया ! ऐसे-ऐसे बुरे पापकर्म करने वाले मेरी क्या गति होगी ।८३। मैं नहीं समझता मेरी क्या दुर्गति होगी । क्योंकि जन्मसे ही पाप कर्म किये आज मैं ऐसी चिन्ता कर रहा हूँ । मेरे जीवनको धिक्कार है !।८४।

इति ज्ञान समापन्नो वाणं संवारयंस्तदा ।
गम्यतां च मृगश्रेष्टा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत् ।८५।
इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नः शङ्करस्तदा ।
पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास संमतम् ।८६।

संस्पृश्य कृपया शम्भुस्तं व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत् ।
वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि व्रतेनानेन भिल्लक ।८७।
व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात् ।
पपात शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन् ।
शिवोऽपि प्रसन्नात्मा नाम दत्वा गुहेति च ।
विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्वरानदात् ।८९।
श्रृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुंक्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान् ।
राजधानीं समाश्रित्य श्रृङ्गवेरपुरे पराम् ।९०।
अपनाया वंशवृद्धिः श्लाघनीयः सुरैरपि ।
गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम् ।९१।

इस तरह ज्ञानके उदयसे सद्विचार वाले उस व्याधने धनुषसे वाण हटालिया और कहने लगा-हे मृगवरो ! तुम सब परमधन्य एवं सत्यनिष्ठ हो, अब आप सब अपने निवासस्थानको चलेजाओ ।८५। शिवजीने कहा-उससमय जब उसभीलने मृगोंसे यह कहा तो भगवान्शंकर बहुतही प्रसन्न हुए औरफिर उन्होंने उसभीलको शास्त्रानुमत अपना पूज्यस्वरूप दिखलाया ।।८६।। शिव कृपासे पूर्ण होकर भीलके शरीरको हाथसे स्पर्श करते हुए प्रीतिपूर्वक बोले-हे भील ! मैं तेरे इसव्रत एवं जागरण तथा अर्चनसेबहुत ही प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ, तू अब वर माँग ले ।।८७।। तब भगवान् शिवके स्वरूपका दर्शनकर व्याधभी क्षणमात्रमें मुक्तहोगया और 'हे भगवन् मैंने सभी कुछ प्राप्तकर लिया -यह कहते हुए शिवके चरणोंमें गिर पड़ा ।८८। अत्यन्त प्रसन्न शिवने उसका 'गुह'-यह नाम देकर कृपाभरी दृष्टिसे देखते हुए उसे दिव्य वरदान दिये ।८९। शिवजीने कहा-हे व्याधर्षे ! अब तू मनोऽभिलषत दिव्य भोगोंका उपभोगकर तथा शृगवेरपुरमें अपनी उत्तम राजधानी बनाकर वहाँ राजाके रूपमें निवासकर ।९०। हे व्याध ! तुम्हारी वंशवृद्धि कभी नाशको प्राप्त नहीं होगी और उसकी प्रशंसा देवगण भी करेगे। त्रेतामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् तुम्हारे घर पर पधारेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।९१।

करिष्यति त्वया मैत्री मद्भक्तसहकारकः ।
मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्तिं यास्यसि दुर्लभाम् ।९२।
एतस्मिन्नन्तरे ते तु कृत्वा शङ्करदर्शनम् ।
सर्वे प्रणम्य सन्मुक्तिं मृगयोनेः प्रपेदिरे ।९३।
विमानं च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा ।
शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवं गता ।९४।
व्याधेश्वरः शिवो जातः पर्वते ह्यर्बुदाचले ।
दर्शनात्पूजनात्सद्यो मुक्तिं मुक्तिप्रदायकः ।९५।
व्याधोऽपि तद्दिमान्नून भोग्रान्स सुरसत्तम ।
भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमासवान् ।९६।
अज्ञानत्स व्रतञ्जैतत्कृत्वा सायुज्यमाप्तवान् ।
किं पुनर्भक्तिसम्पन्ना यान्ति तन्मयतां शुभाम् ।९७।
विचार्य सर्वशास्त्राणि धर्माश्चैवाप्यनेकशः ।
शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम् ।९८।

मेरे भक्तोंपर विशेष कृपा वाले श्रीराम तुम्हारे साथ मैत्री भाव रक्खेंगे और तुम मेरी सेवामें चित्त लगाकर दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्तकरोगे। ।९२। इसी समयमें उन मृग और मृगीने भी साक्षात् शिव के दर्शन प्राप्त किये और उनको प्रणामकरके वे भी मुक्त होगये। उनकी वह मृगयोनि छूट गई ।९३। फिर वे दिव्यदेह धारण करके विमानारूढ़ होकर शिवके दर्शन मात्रसे शापसे छुटकारा पा गये और शिव लोकके दिव्य धाम में चले गये ।९४। उस समयसे अर्बुदाचलको मुक्त करनेवाले शिव 'व्याधेश्वर' इसनाम से प्रसिद्धहोकर स्थापित होगये और और वे दर्शनार्चनसे मनुष्योंको तुरन्त भोग-मोक्ष प्रदान किया करते हैं ।९५। हे देवोंमें श्रेष्ठ ! उस समय से वह भीलभी संसारके समस्त भोगोंको भोगकर श्रीरामचन्द्रकी कृपासे शिवको सायुज्य मुक्तिके पदको प्राप्त हो गया ।९६। भीलने तो अज्ञान से शिवका व्रतकिया और विवशतासे व्रत बनपड़ा तब उसे भुक्ति मुक्तिमिलगई तोजो भक्तिवाले इसकेद्वारा शुभगतिको पालेवें तो क्या आश्चर्यकी बात है ।९७।

सम्पूर्ण शास्त्रोंका मंथन कर और विविध धर्मोंका विवेचन करके सर्वोत्तम महाशिवरात्रिके व्रतको बतलाया गया है ॥६८॥

व्रतानि विधिधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च ।
दानानि क विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा ॥९९
तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः ।
नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ॥१००
तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः ।
शिवरात्रिव्रतं दिव्यं भुक्ति मुक्तिप्रद सदा ।१०१
एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रत शुभम् ।
व्रतराजेति विख्यात किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१०२

यों तो इस लोक में विविध व्रत, अनेक तीर्थ, सैकड़ों प्रकार से दान बहुत से यज्ञ नाना भाँतिके तप एवम् जप हैं परन्तु इस महाशिवरात्रि के व्रतोपवास तथा शिवार्चनकी समताको कोईभी प्राप्तनहीं होसकते हैं ।९९-१००।।इसीलिये अपना कल्याणचाहने वालोंको यह परमश्रेष्ठ,भोग-मोक्ष का दाता शिवरात्रि का व्रत अवश्यही करनाचाहिए ।१०१।अब तक हमने शिवरात्रिके व्रतका आख्यान और महान्फल भली भाँति बतला दिया है । यह सबव्रतोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ही 'व्रतराज' कहा है। अब और आप क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥१०२॥

॥ मुक्ति निरूपण ॥

मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह ।
अवस्था कीदृशी भवेदिति सर्वं वदस्व नः ॥१
मुक्तिश्चर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः ।
संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी ।२।
सारूप्या चैव सालोक्या सान्निध्या च तथा परा ।
सायज्या च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत् ।३।
मुक्तेर्दाता मुनिश्रेष्ठा केवलं शिव उच्यते ।
ब्रह्माद्या न हि ते ज्ञेयाः केवलं च त्रिवर्गदाः ।४।

ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाः शिवस्त्रिगुणतः परः ।
निर्विकारी परब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः परः ॥५
ज्ञानरूपोऽव्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयः स्वयम् ।
कैवल्यमुक्तिदः सोऽत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि ।६।
कैवल्याख्या पञ्चमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम् ।
तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ।७।

ऋषियों ने कहा–आपने जो मुक्ति का होना बतलाया है,उसमें क्या हुआ करता है और मुक्तिपाने पर क्या दशा होजातीहै-यह सब कृपाकर हमको बताइये ।१। सूतजीने कहा-मोक्ष चार तरहकी होती है । वह मोक्ष सांसारिक क्लेश,पीड़ाकी हर्त्ता होती है और पूर्णआनन्दप्रिय है । मैं उसका स्वरूप आपको बतलारहा हूँ।२। चारों प्रकार की मुक्तियोंके नाम—सारूप्य, सालोक्य,सान्निध्य और सायुज्य हैं जोकि शिवके व्रतसे प्राप्तहुआ करती हैं ।३।हे मुनिश्रेष्ठो! ब्रह्मा और विष्णुआदि वेदधर्म-अर्थ और काम इन तीन पदार्थोंके वर्गको ही दे सकते है मुक्ति को नहीं । मोक्ष परम पुरुषार्थको देने वाले तो केवल एकमहेश्वरही हैं ।४। ब्रह्मादिकदेव तो तीनोंगुणोंके स्वामी हैं और भगवान् तीनोंगुणोंसे परे हैं तथा जो निर्विकारी परब्रह्महैं वे चतुर्थ हैं जो प्रकृतिसे भी परे हैं ।५। वे ज्ञान स्वरूपी महान्‌देव अविनाशी, साक्षी ज्ञानसे जानने योग्य, अद्वैत,कैवल्य मुक्तिके दाता और धर्मादि त्रिवर्गके भी देनेवाले हैं ।६। हे ऋषिश्रेष्ठो ! यह पाँचवीं"कैवल्य" नाम वाली मुक्ति होती है जो सभीप्रकार के मनुष्योंको दुर्लभ हुआकरती है । अब हम उसके पूरे लक्षण बताते हैं उन्हें आप लोग श्रवण करें ॥१४॥

उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत् ।
यस्मिश्च लीयते तद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।८।
तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः ।
सकलं निष्फलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम् ॥९
विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा ।
कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै ॥१०

शुकेन व्यासपुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः ।
तत्पूर्वं श्चाखिलैर्देवैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि ॥११
सत्य ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम् ।
निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः ॥
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एवं च ।
न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थलः सूक्ष्म एव च ॥१३
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसञ्ज्ञकम् ॥

जिससे यह सब जगत् उत्पन्न होता है और जिसके द्वारा उस समस्त जगत् का पालन-पोषण होता है तथा जिसमहान् मेंजाकर इसजगत्कालय होता है एव जिसशक्तिने इस सबका पूर्णविस्तारकिया है, हे मुनिगण ! वे शिवरूप कहे जाते हैं। वेदने उनको कलाओंसेपूर्ण तथा कलाओंसेरहित दो प्रकारका वर्णनकिया है। ८-९। वह ऐसा विलक्षणस्वरूप है जिसकाज्ञान ब्रह्मा विष्णु कुमार चतुष्टय और देवर्षि नारदजीको भी नहीं है।१०। यही नहीं किन्तु उसे व्यासपुत्र शुकदेवमुनि, अन्यमहामुनिश्वर,समस्तदेवगण और वेद-शास्त्र आदि किसीनेभी नहीं जानपाया है ।११। यहसत्य,ज्ञान, अनन्त, सत्-चित् आनन्दस्वरूप है तथा बिना उपाधिवाला,निर्गुण,अव्यय,शुद्ध और निरञ्जन है।१२। वह परमात्म तत्व रक्त,श्वेत,पीत और नीलनहीं हैं और ह्रस्व,दीर्घ,स्थूल और सूक्ष्म भी नहीं होता है।१३। जहाँ मनके सहित वाणी की पहुँच नहीं होती वही शिवसंज्ञावाला परब्रह्म कहा जाता है ।१४।

आकाश व्यापक यद्वत्तथैव व्यापकं त्विदम् ।
मायातीतं परात्मान द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥१५
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम् ।
भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥१६
ज्ञान तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम् ।
तस्माच्छिवं च भजत मुक्तयर्थमपि सत्तमाः ॥१७
शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः ।

भक्त्यैव ब्रहव: सिद्धा मुक्ति प्राय :परां मुदा ॥१८
ज्ञानमाता शम्भुभक्तिर्मु क्तिप्रदा सदा।
सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रे मांकुरलक्षणा ॥१९
सा भक्तिर्विविधा ज्ञे या सग ुणा द्विजा:।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा सा स्मृता परा ॥२०
नैष्ठिक्यनैष्ठिकी भेदाद् द्विविधैव हि कीर्तिता।
षड् विधा नैष्ठिकी ज्ञे या द्वितीयै कविधा स्मृता। २१

यह परमब्रह्म आकाशकी भाँति सर्वव्यापक है और मायासे परे द्वन्द्व-रहित और मत्सरता से हीन यह परम आत्मतत्व होता है।१५। हे द्विज-गण ! इस संसार में भगवान् शिवके ज्ञान का उदय हो जाने पर अथवा भक्ति-भावसे शिवकाभजन करनेसे या सत्पुरुषों जैसी सूक्ष्म मतिसे उनकी प्राप्ति हुआ करती है।१३। हे मुनिश्रेष्ठो ! इस संसारमें ज्ञानका प्राप्त कर लेना अतिकठिन है और भजनोपासना करना सुगम बताया गया है। इस-लिये मुक्तिपानेके लिए शिवका भजन ही करनाचाहिए।१७। भगवान्शिव भजनके अधीन रहा करते हैं। वे ज्ञानकी आत्मा तथा मोक्षके दाता पर पुरुष हैं। अनेक सिद्ध भक्ति के द्वारा ही सानन्द परम मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं।१८। महेश्वरकी भक्तिको ज्ञान उत्पन्न करने वाली जननी और नित्य मुक्ति एव भोगदात्री कहा जाता है। जिस परम प्रसाद से वह सुलभ हुआ करती है वह सत्य प्रेमके अहङ्कारवाले लक्षणयुक्त बताई गई है।१९। हे द्विजगण ! वह भक्ति निर्गुण तथा सगुण आदिके भेद से बहुत प्रकार की होती है। इनमें जो वैधी और स्वाभाविक हो वही श्रेष्ठ और अधिक समझनी चाहिए।२०। फिरभी वह नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो तरहकी होतो है। इनमें अनैष्ठिकी तो एकही प्रकारकी होती है किन्तु नैष्ठिकी भक्ति छै प्रकारकी होती है।२१।

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधा:।
तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते ॥२२
ते नवांगे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदत:।

सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः ।२३
भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शम्भुना वर्णिते द्विजाः ।
तस्माद् भेदो न कर्तव्यस्तत्कर्तुः सर्वदा सुखम् ।२४
विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः ।
शम्भुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम् ।२५
तस्माद् भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः ।
तथैव निखिलं सिद्धं भविष्यति न संशयः ।२६
इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया ।
तच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।२७

इसमें भी शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् लोग विहिता और अविहिता इन भेदों वाली उसे अनेक तरहकी बतलाते हैं इन दोनोंके भेद-प्रभेद करने से बहुतसे प्रकारकी हो जाती हैं, जिसके विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।२२। ये दोनों प्रकारकी भक्ति श्रवण, कीर्तम अर्चनादि के भेदों से नौ नौ अङ्गोंवाली होती हैं । ये सब शिवकी प्रसन्नताकेबिना प्राप्तकरना अत्यन्त कठिन है । केवल शिवके प्रसादसे ही इनका पाना सुगम होता है ।२३। हे द्विजो ! शिवने वर्णनकरके बतलाया हैकि भक्ति औरज्ञान आपस में भिन्न नहों होते हैं । अतएव भक्ति तथा ज्ञान वालों को नित्य सुख की प्राप्ति होती है । इन दोनोंमें भेदका मानना उचित नहीं हैं ।२४। हे विप्र-गण ! जोभक्तिका विरोध करने वाला होता है,उसे विशेषज्ञान कभी नहीं होता है । शिवकीभक्तिसे ज्ञानकाउदय शीघ्रही होजाता है ।२५। हे मुनी-श्वरो ! इस कारण से भगवान् महेश्वर की भक्ति सबको अवश्य ही करनी चाहिए । उसीके करनेसे सभीकुछ सिद्धहोता है । इसमें कुछभी सन्देहनहीं है ।२६। आपने जोकुछभी मुझसे पूछा है,वहसभी मैंने वर्णनकरके आपको सुना दिया है । इसके श्रवणकरनेसे मनुष्योंके समस्तपापोका क्षयहोता है, यह सुनिश्चित बात है ।२७।

शिवका सगुण निर्गुण स्वरूप

शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्चकः ।
एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम् ।।१

यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः ।
तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदांतिनो विदुः ॥२
तस्मात्प्रकृतिरुत्पन्ना पुरुषेण समन्विता ।
ताभ्यां तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधोः ॥३
पञ्चक्रोशीति विख्याता काशी सर्वातिवल्लभा ।
व्याप्त च सकलं ह्येतत्तज्जलं विश्वतो गतम् ॥४
संभाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरि सः वै ।
नारायणेति विख्यातः प्रकृतिर्नारायणी मता ॥५
तन्नाभिकमले यो व जातः स च पितामहः ।
तेनेव तपसा दृष्टः स वै विष्णुरुद हृतः ॥६
उभयोर्वामशमने यद्रुपंदशित जुवाः ।
महादेवेति विख्यातं निर्गुणे शिवेत हि ॥७

ऋषियोंने कहा—शिव कौन हैं, विष्णु कौन हैं और रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं? इनसबमें निर्गुण कौन हैं। हमारेमनमें इनके विषयमें बहुत बड़ा सन्देहरहता है,सो आप कृपाकरके यहसब बतलाकर संशयको दूरकरें ।१। सूतजी ने कहा-इस विश्वकी सृष्टिके आरम्भ जो निर्गुण निर्विकार परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं उन्हेंही वेद वेदान्तके ज्ञाताओंने 'शिव' इस नाम वाला बतलाया है ।२। हे ज्ञानियो ! उन्हीं शिवसे पुरुषकेसहित प्रकृतिका उदभव हुआ है । फिर वहाँ पर उन दोनों ने मूल में स्थित होकर जल में तपस्याकी है ।३। वही 'पञ्चकोसी' इस नामसे विख्यात् होने वाली काशी है जो सबको अत्यन्तप्रिय है । उसका जल सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होगया है ।४। यह जानकर विष्णु अपनी मायाकेसाथ उसी जलमें शयनकर गये और वे हरि'नारायण'के नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति 'नारायणी'नामसे विख्यात हुई ।५। उनकी नाभिमें उत्पन्न कमलसे उद्भूत होने वालेका नाम ब्रह्मा पड़ाऔर उन ब्रह्माजीने अपनी तपस्यामें जिनके दर्शन कियेवे विष्णु हैं ।६। हे पण्डितो ! निर्गुण स्वरूपवाले शिवने ब्रह्मा और विष्णु के मध्यमें उठे हुए पारस्परिक विवाद को शान्त करनेके लिए जिस स्वरूप का प्रदर्शन कराया वही महादेव नामसे विख्यात हुए हैं ।७।

तेन प्रोक्तमहं शम्भुर्भविष्यामि कपालतः।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः।८
ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपवानभूत्।
स एव च शिवः साक्षाद् भक्तवात्सल्यकारकः।९
शिवे त्रिगुणसम्भिन्नै रुद्रे तु गुणधामनि।
वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति स्वर्णे तन्भूषणे यथा।१०
समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ।
समानाखिलसंसेव्यौ नानालीलाविहारिणौ।११
सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रो रौद्रपराक्रमः।
उत्पन्नो भक्तकार्यार्थं हरिब्रह्मसहायकृत।१२
अन्ये च ये समुत्पन्ना यथानुक्रमतो लयम्।
यांति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते।१३
ते वै रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे।
इमान रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुतिशासनम्।१४

उन्होंने कहा था मैं शम्भु विधाताके मस्तकसे प्रकटहोऊंगा उससमय लोकोंपर कृपादृष्टि रखनेवाले वे ही शंभु 'रुद्र'-इस नामसे प्रसिद्ध हुए।८। अपने भक्तोंपर अनुग्रह करने वाले साक्षात् शिव स्वयं रूपसे रहित होतेहुए भी सबके ध्यानमें आनेके लिये रूपवान् हुए।९। माया के तीनों गुणों से रहितहोकर स्थितशिवमें तथा सगुण रुद्रमें वस्तुतः कुछभी भेदनहीं है जिस प्रकार स्वर्णमें और स्वर्ण से निर्मित भूषणमें कुछभी अन्तर नहीं होता है।१०। ये दोनोंही समान स्वरूप और समानकर्मवाले अपनेभक्तोंको समान रूपसे ही गति देने वाले हैं और सबके द्वारा तुल्य भावसे ही सेवन करनेके योग्य हैं तथा ये दोनों अनेकप्रकारकी लीलायें करनेवाले हैं।११। अत्यन्त पराक्रम वाले रुद्र सबतरहसे शिवकेही स्वरूप हैं। ये ब्रह्मा और विष्णुकी सहायताकरनेवाले अपने भक्तोंकेलिये उनकाकार्य पूराकरनेकोही अवतीर्ण हुए हैं।१२। संसार में जोभी उत्पन्न हुए हैं वे सभी क्रमके अनुसार लय को प्राप्त होते हैं। उस तरह रुद्रका लय कभी नहीं होता वे केवल शिवके स्वरूप ही लय होते हैं।१३। वे सब सामान्य हुए रुद्रमेंमिलकर लय होते

हैं, परन्तु वह रुद्र विष्णु आदिमें मिलकर कभी लयकोप्राप्त नहीं होते हैं· इस विषयमें शास्त्र यही आज्ञा देता है ।१४।

सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कंचिद् भजेन्न हि ।
स्वात्मना भक्तवात्सल्याद् भजत्येव कदाचन ।१५
अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिंस्ते लीनतां गताः ।
तेनैव रुद्रं प्राप्ताः कालेन महता बुधाः ।१६
रुद्रभक्तास्तु ये केचितत्क्षणं शिवतां गताः ।
अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी ।१७
अज्ञानं विविधं ह्येतद्विज्ञानं विविधं न हि ।
तत्प्रकारमह वक्ष्ये श्रृणुतादरतो द्विजा ।१८
ब्रह्मादितृणपर्यन्त यत्किंचिद् दृश्यते त्विह
तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्वकल्पना ।१९
सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ।
सृष्टेरन्तो शिवः प्रोक्तः सर्वशून्ये सदादिवः ।२०।
तस्माच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव मुनीश्वराः ।
स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्वाद् द्विधापि सः ।२१।

ये सब रुद्रको भजते हैं परन्तु रुद्र किसीको भी नहीं भजते हैं । कभी-कभी अपने भक्तजनपर दया करनेके कारणसे अपने आपकोही भजा करते हैं ।१५। हे विद्वद्गण ! जोसर्वदा अन्यदेवोंका भजनकियाकरते हैं वे अन्त में उसीसे लयभी होते हैं और इसतरह बहुतसमयके पश्चात् रुद्रकी प्राप्ति कर पाते हैं।१६। किन्तु जो रुद्रकोही भक्ति भावसे भजते हैं, वे उसी समय शिवकेभावको प्राप्तकरलिया करते हैं । उन रुद्रदेवकी किसीभी अन्यदेवता की आवश्यकता नहीं हुआ करती है—यह सनातनी अर्थात् सदा चले आने वालीश्रुति है ।१७। हे द्विजगण ! संसारमेंअज्ञान तो बहुत तरह का होता है,किन्तु विज्ञान अनेक प्रकारका कभीनहीं होता । अबउसी के भेद तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ । आप उसे श्रवण करो ।१८। इस लोक में ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जोकुछभी दिखलाई देता है वहसब शिवकाही स्वरूप है ।

इसमें विविधभाँतिकी कल्पनाकरना मिथ्या एवं व्यर्थही है ।१९। सृष्टिकेपूर्व शिव हैं तथा इस संसारको रचनाके मध्यकालमें भी शिव हैं और सृष्टि के अन्तमेंभी शिवही रहते हैं । जब सर्वशून्य होता है तबभी सदाशिव विद्यमान रहते हैं।२० हे मुनीश्वरो ! इसरीतिसे भगवान्‌शिव चारगुणों वाले हैं । वे दोप्रकारके स्वरूपमें स्थित होते हुए भी सबप्रकारकी शक्तिसे पूर्णता रखनेके कारण सगुणही हैं–ऐसा ही समझना चाहिए ।२१।

येनैव विष्णवे दत्ताः सर्वे वेदाः सनातनाः ।
वर्णा माता ह्यनेकाश्च ध्यान स्वस्य च पूजनम् । २२
ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी ।
वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छम्भुरुदाहृतः ।।२३
स एवं शङ्करः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः ।
कर्त्ता भर्त्ता च हर्त्ता च साक्षी निर्गुण एव सः ।।२२
अन्येषां कालमानं च कालस्य कलनाः न हि ।
महाकालः स्वयं साक्षान्महाकालीसमाश्रितः ।।२५
तथा च ब्राह्मणा रुद्रं तथा काली प्रचुक्षते ।
सर्वं ताभ्यां ततः प्राप्तमिच्छया सत्यलीलया ।।२६
न तस्योत्पादकः कश्चिद् भर्त्ता न तस्य हि ।
स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूतच्युतादयः ।।२७
स्वयं च कारण कार्यं स्वस्य नैव कदाचन ।
एकोऽप्यनेकतां यतोऽप्यनेकोप्येकतां व्रजेत् ।।२८

जिनने भगवान् विष्णुको समस्त सनातन वेदोंका उपदेश, अनेक वर्ण वाला तथा मात्राओंसे युक्त अपना ध्यान एवं अर्चन बताया है, इससे शिव समस्त विद्य ओंके स्वामी,वेदोंकेनिर्माता और वेदोंके अधीश्वर कहे हैं ।२२-२३। वे साक्षात् शिवही सबपर दयाकरने वाले, सबके उत्पादक, पालनकर्त्ता और विनाश करनेवाले साक्षी एवं निर्गुण हैं ।२४। इस सृष्टिमें सबकेसमय का प्रमाणहोता है, किन्तु यहकाल ऐसा है जिसकीकोई कलनाही नहींहोती है । वह स्वयं महाकालीके सेवित साक्षात् महाकाल हैं ।२५। ब्राह्मण लोग

रुद्र तथा महाकालीकोही ऐसा कहाकरते हैं। उन्होंने (दोनोंने) अपनी सत्य लीलाके सहित इच्छासे सभीकुछ प्राप्तकिया है।२६। इनका कोई भी अन्य उत्पादक, पालक और विनाशकरनेवाला नहींहोता है किन्तु वे स्वयंही सबके कारण हैं और विष्णुआदि अन्य समस्तदेवता कार्यभूत हैं।२७।भगवान्‌शिव तो स्वयं कारण और कार्यस्वरूप हैं। इनका अन्यकोईभी कारण नहींहोता है। वे एक होते हुएभी अनेकस्वरू धारणकरलेते हैं तथा अनेक होकरभी फिर एकही स्वरूपमें स्थित होजाते हैं ॥२८॥

एकं बीजं बहिर्भूत्वा पु बींजं च जायते।
लहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः।२९
एतत्परं शिवज्ञानं तत्वतस्तदुदाहृतम्।
जानाति ज्ञानवानेव नान्यः कश्चिदृषीश्वराः॥३०
ज्ञानं सलक्षणं ब्रूहि यज्ज्ञात्वा शिवतां व्रजेत्।
कथं शिवश्च तत्सर्वं सर्वा शिव एव च॥३१
एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौराणिकोत्तमः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भाजं मुनींस्तानब्रवीद्वचः॥३२

एक बीज फलसे बाहिर होकर फिर वह बीज होता है। इसी तरह बहुत होनेपर भी सभीकुछ वस्तु रूपसे स्वयं शिवके रूप वाले महेश्वर ही हैं।२९। हे ऋषीश्व वृन्द! यह शिवका ज्ञान अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसे मैंने तुम्हारेसामने यथार्थरूपसे बतादिया है। इस भगवान्‌शिवके ज्ञानको ज्ञानी हीसमझता या जानता है अन्यकोई साधारणव्यक्ति इसेनहीं जानसकता है।३०। मुनियोंने कहा—इस शिव ज्ञानके ठीक लक्षण और स्वरूपको भली-भाँति बताइये जिसको प्राप्तकर शिवका स्वरूप प्राप्त होता है।अब आप खुलासाकरके समझाइयेकि किसतरह वे शिव सभीकुछ हैं और किसप्रकार से संसार की सभी वस्तुयें शिव स्वरूप हैं ?।३१। व्यासजी ने कहा—यह सुनकर पौराणिक विद्वानोंमें श्रेष्ठ सूतजी भगवान्‌शिवके चरण कमलों का स्मरणकरके उन मुनियोंसे कहने लगे।३२।

ज्ञाननिरूपण और शिव-विज्ञान

श्रूयतामृषयः सर्वे शिवज्ञानं तथा श्रुतम् ।
कथयामि महागुह्यं परमुक्तिस्वरूपकम् ।१
श्री नारदकुमाराणां व्यासस्य कपिलस्य च ।
एतेषां च समाजे तैर्निश्चित्य समुदाहृतम् ।२
इति ज्ञानं सदा ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत् ।
शिवः सर्वमयो ज्ञेयः सर्वज्ञेन विपाश्चता ।३
आब्रह्मतृणपर्यन्त यत्किंचिद् दृश्यते जगद् ।
तत्सर्वं शिव एवास्ति स देवः शिव उच्यते ।४
यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रियते त्विदम् ।
सर्वं स एव जानाति तं न जानाति कश्चन ।५
रचयित्वा स्वयं तच्च प्रविश्य दूरतः स्थितः ।
न तत्र च प्रविष्टोऽसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान् ।६
यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिंवता ।
वास्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवः स्वयम् ।७

सूतजी ने कहा-हे ऋषिवृन्द ! शिव का ज्ञान अत्यन्त गोपनीय और मोक्षपद स्वरूपवाला है । मैंने इसे जितनाभी सुना एवं समझा वह तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ, आप सब सावधान होकर सुनो ।१। शौनक,स्वामि कार्तिके, नारद, वेदव्यासजी और कपिलदेव, इन सबके समक्षमें उन्होंने शास्त्रोंसे निश्चय करके कहा है ।२। यह समस्त चराचर जगत् शिवमयही है ऐसा ज्ञान सदा रखना चाहिए जो सर्वज्ञाता विद्वान् है उसे शिवको भी सर्व जगन्मय ही जानना चाहिए ।३। परब्रह्मके स्वरूपसे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछभी इस संसारका स्वरूप दिखाईदेता है वह समस्त शिवही का एक रूप है अर्थात् शिवही हैं । इस तरह वे शिव कहलाते हैं ।४। जबभी कभी उनके हृदयमें रचनाकरनेकी इच्छा उत्पन्न होतीहै तभी इस समस्त विश्व का निर्माण कर दिया करते हैं । वे स्वयं सबको खूब अच्छी तरह जानते हैं किन्तु उनको कोईभी नहीं जानपाता है ।५। इस सम्पूर्ण जगत्की रचना

करके स्वयं इसमें प्रविष्टहोते हुयेभी सबसेपृथक् स्थितरहाकरते हैं। वे इसमें प्रविष्ट नहीं होते हैं और न कभी उनका लयही होता है वेतो केवल ज्ञानके स्वरूप वाले हैं ।६। जिस तरह जलमें अग्नि प्रभृति के तेजकी परछाईका भान ऐसाही होता हैकि यह उसके अन्दर विद्यमान है किन्तु वास्तवमें जल में उसका प्रबेश सर्वथा नहीं होता है,उसीतरह इसजगत् में साक्षात् शिवका भान मात्र ही होता है और वे इसमें लिप्त नहीं होते हैं ।७।

वस्तुतस्तु स्वयं सर्वः क्रमो हि भासते शुभः ।
अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च द्वयं पुनः ।८
दर्शनेषु च सर्वेषु मतिभेदः प्रदर्श्यते ।
पर वेदान्तिनो नित्यमद्वैतं प्रतिचक्षते ।९
स्वस्याप्यशस्य जीवोंशो ह्यविद्यामोहितोऽवशः ।
अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः ।१०
सर्वं व्याप्य शिवः साक्षाद् व्यापाकः सर्वजन्तुषु ।
चेतना चेतनेशोऽपि सर्वत्र शङ्करः स्वयम् ।११
उपायं यः करोत्यस्य दर्शनार्थी विचक्षणः ।
वेदान्तमार्गमाश्रित्य तद्दर्शनफलं लभेत् ।१२
यथाग्निर्व्यापकश्चैव काष्टे काष्टे च तिष्ठति ।
यो वै मन्थति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम् ।१३
भक्त्यादिसाधनानीह यः कपोति विचक्षणः ।
स वै पश्यत्यवश्यं हि तं शिवं नात्र संशयः ।१४

अर्थात् रूपसे वह शुम परब्रह्म वेदाक्रमणकरके सवको मासते हैं।बुद्धि के भ्रमको ही अज्ञान कहाजाता है अन्य कुछ भी नहीं है ।८। समस्त दर्शन शास्त्रोंमें मतिका भेदस्पष्ट दिखलाई दिया करता है क्योंकि प्रत्येक सिद्धान्त भिन्न स्वरूप वाले होते हैं,किन्तु वेदान्ती लोग नित्य परमेश्वरको अद्वैतही कहा करते हैं ।९। अपने ही अंशके स्वरूपमें स्थित् यह जीवात्मा अविद्यासे मोहितहोकर 'मैं और तू'-ऐसा समझता है,परन्तु शिव उसअविद्यासे सर्वथा रहित हैं ।१०। सबमेंव्यापक साक्षात् भगवान्शिव सबकोव्याप्तकरके समस्त

जीवोंमें स्थितरहाकरते हैं और समस्तचराचरके प्रभुशिव साक्षात् कल्याण के करनेवाले होते हैं ।११। जो बुद्धिमान् मानव शिवके दर्शनप्राप्त करनेके लिये उपाय करता है वह वेदान्तके मार्गका आश्रय ग्रहण करके ही उनके दर्शन प्राप्त किया करता है ।१२। जिस प्रकार प्रत्येक काष्ठ में अग्नि व्याप्त होकरही स्थित रहाकरती है किन्तु जो कोई उस काष्ठका मन्थन करता है वही उसमें अग्निके दर्शनका फल प्राप्त कर पाता है ।१३। इसी प्रकारजो विद्वान्मानव भक्तिआदिके साधनोंसे आगे बढ़ता है वह अवश्यही उनशिव का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१४।

शिवः शिवः शिवश्चैव नान्यदस्तीति किंचन ।
भ्रान्त्या नानास्वरूपो हि भासते शंकरः सदाः ।१५
यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः ।
उपाधितो हि नानात्वं लभते शङ्करस्थता ।१६
कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते ।
केवलं भ्रान्तिबुद्धयव तदभावे स नश्यति ।१७
तदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत् ।
अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च न नश्यति ।१८
ज्ञानी च बीजमेव स्यात्प्ररोहो विकृतिर्मता ।
तन्निवृतौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा ।१९
सर्व शिवः शिवः सर्वो नास्ति भेदश्च कश्चन ।
कथं च विविध पश्यत्येकत्वं च कथं पुनः ।२०
तथैक चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाधिभं जनैः ।
जलादी च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः ।२१

शिव-भक्तकी भावना ऐसीही होनी चाहिए कि सर्वत्र शिवही हैं शिव के अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछभी नही हैं,भ्रान्तिवश वहीशिव यहाँ नाना स्वरूप में भासमान होते हैं जिस तरह मिट्टी, सागर और सुवर्ण विभिन्न उपाधियोंके कारण अनेक रूपमें दिखलाई दिया करते हैं वैसेहीशिव उपाधियोंके कारण नाना स्वरूप में रहते हैं ।१५-१६। वास्तवमें विचार करके

देखा जावे तो यहाँ कारण और कार्यमें कुछभी भेद नहीं होता हैं। यहभेद जो प्रतीत होता है वह केवल अपनी बुद्धिकी भ्रान्तिके होनेसे ही होता है। जब यह बुद्धिकी भ्रांति स्वरूपअज्ञान न नष्ट होजाता है तो यह अन्तरफिर नहीं दिखाईदेता है और दूर हो जाता है।१७। कारणस्वरूप बीजसेहीवृक्ष अनेकरूपताका प्राप्तकिया करता है किन्तु अन्तमें वहवृक्ष तो नष्ट होजाता है और बीजही शेष रहता है।१८।यहां ज्ञान सम्पन्न जीवात्मा बीजस्वरूप है और वह समस्त प्रकृति स्वरूपिणी विकृति वृक्षके तुल्य है। फिर भी उसकी निवृत्तिमें ज्ञानीही होता है इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।१९। यह समस्त जगत् शिव है तथा शिवही में सम्पूर्ण जगत् है। इन दोनोंमें वस्तुतः कोई भी भेद नहीं होता है। यह कैसे अनेक स्वरूप में दिखाईदेता है और कैसे फिर एकता दिखलाई दिया करतीहै-इसे समझाते हैं।२०। जिस प्रकार एक ही सूर्य के स्वरूप जलमें मनुष्यों को अनेक सूर्य दिखाई देते हैं उसी तरहसे वह शिव एक होते हुए भी भ्रान्तिके कारण ही अनेक रूप में भासमान हुआ करते हैं।२१।

सर्वत्र व्यापकश्चैव स्वर्शत्वं न विबध्यते।
तथैव व्यापको देवो बध्यते न क्वचित्स वै।२२
साहकारस्तथा जीवस्तन्मुक्तः शङ्करः स्वयम्।
जीवस्तुच्छः कर्मभोगी निर्विप्तः शङ्करो महान्।२३
यथैकं च सुवर्णादि मिलिपं रजतादिना।
अल्पमूल्यं प्रजायेत तथाजीवोऽप्यहंयुतः।२४
यथैव हि सुवर्णादि क्षारादेः शोधितं शुभम्।
पूर्ववन्मूल्यतां याति तथा जीवोऽपि संस्कृतेः।२५
प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभावसमन्वितः।
शिवबुद्धया करोत्युच्चैःपूजनं स्मरणादिकम्।२६
तद्बुद्धया देहतो याति सर्वपापादिको मलः।
तदाऽज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा।२७
तदाहंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान्।
शङ्करस्य प्रसादेन याति शङ्करतां पुनः।२८

जिसतरह आकाश व्यापकहोकर भी किसीके स्पर्शकरनेमें नहीं आता है,उसीप्रकारसे वह सर्वव्यापक परमात्माभी कहीं बद्ध नहीं होता है ।२२। यह जीवात्मा अहङ्कारसेयुक्त है और शिव स्वयं उस अहङ्कारसे रहित हैं। जीवएकतुच्छ और कृत शुभाशुभ कर्मोंका भोगनेवाला है किन्तु शङ्करपरम महान् और निरन्तर नितात निर्लिप्त है ।३। शुद्धजीवभी अहङ्कारसे युक्त होनेकेकारण तुच्छबनजाता है जैसे सुवर्ण मूल्यवान् होतेहुएभी चाँदी आदि के मिल जानेपर स्वल्प मूल्य वाला बनजाता है ।२४। तेजाब और अग्नि एवं क्षार आदिसे शोधित किए जानेपर जिसतरह सुवर्णकी शुद्धि होजाती और पूर्ववत् समुचित मूल्य वाला बनजाता है,उसी भाँति संस्कारोंके द्वारा यह अहकारी जीवात्माभी शुद्धस्वरूप वाला होजाया करता है ।२५। जीव का कर्तव्य है कि सर्वप्रथम किसीसुयोग्य श्रेष्ठगुरुसे ज्ञानकीदीक्षा प्राप्तकरे, फिर परम भक्ति के भाव से शिव बुद्धि से उनका पूजन तथा उच्च स्वरसे उनके नामका स्मरण करना चाहिए ।२६। इस प्रकार की बुद्धिबना लेनेपर इस देहके समस्त पाप एवं मलदूर होजाया करते हैं और साराअज्ञान नष्ट होकर ज्ञानउत्पन्न होता है।२७। जबयह जीवात्मा ज्ञानसम्पन्न होजाता है और अहंकारसे छूटजाता है तो उसकीबुद्धि अत्यन्तनिर्मल होजाती है तथा शिवके प्रसादसे शिवके स्वरूप को प्राप्त कर लिया करता है ।२८।

यथाऽदर्शस्वरूपे च स्वीयं रूपं प्रदृश्यते ।
तथा सर्वत्रगं शम्भुं पश्यतीति सुनिश्चितम् ।२९।
जीवन्मुक्तः स एवासौ देहः शीर्णः शिवे मिलेत् ।
प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः ।३०।
शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाऽशुभं नहि ।
द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः ।३१
आत्मयोगेन तत्वानामथवा च विवेकतः ।
यथा शरीरतो यास्याच्छरीरं मुक्तिमिच्छता ।३२
सदाशिवो विलीयेत मुक्तो विरहमेव च ।
ज्ञानमूलं तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिः शिवस्य च ।३३

भक्तेश्च प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवण तथा ।
श्रयणाच्चापि सत्सङ्गः सत्सङ्गाच्च गुरुर्बुधः ।३४
सम्पन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम् ।
इति चेज्ज्ञानवान्यो वै शम्भुमेव सदा भजेत् ।३५

जिस तरह दर्पण में अपना स्वरूप दिखाई देता है उसी तरह शिवको सर्वत्र व्यापक जानते हैं, यह निश्चय ही समझ लेना चाहिये ।२९। वह जीवात्मा फिर मुक्तहोकर देहसे रहितहोकर शिवकेही स्वरूपमें जाकरमिल जाया करता है । यह देह प्रारब्धके वशीभूत होनेके कारणही मिलाकरता है किन्तु ज्ञानीका शरीरके रहते हुएभी उससे रहितही मानागया है ।३०। ज्ञानवान्जीव वही है जो अपनी प्रियवस्तुमे परमहर्षित नहीं होता है और किसीभी अप्रियवस्तु या दशामें शोकयाक्रोध नहींकरता है और सुख तथा दुःखमें जो समान ही भावना रखता है ३१। मुक्तिका इच्छुक पुरुष अपने आत्माके योगसे या तत्वोंके विचारसे अपने शरीरसे शरीरका त्यागकिया करता है ।३२। जो सदाशिवमें लीनहोजाता है,वह समस्त व्यथापीड़ाओंसे छुटकारा पाकर ज्ञानके मूल स्वरूप अध्यात्मकी प्राप्ति करता है औरफिर उसे शिवकी अनपायिनी भक्ति मिलती है ।३३। भक्ति से प्रेम उत्पन्नहोता है, प्रेमसे श्रवण और श्रवण से सत्सङ्ग का लाभ होता है और सत्सङ्गसे संसारमें विद्वान् उद्धारक गुरुदेव की प्राप्ति हुआकरती है ।३४। गुरुसे जब ज्ञानप्राप्त होता हैं तो निश्चयही मुक्ति हो जाया करती है । जो नित्य निरन्तर शिव की उपासना करता है वह इसी रीति से ज्ञान सम्पन्न हो जाया करता है ।३५।

अन्याया च भक्त्या वै युतः शम्भुं भजेत्पुनः ।
अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा ।३६
अतोधिको न देवोस्ति मुक्तिप्राप्त्यै च शङ्करात् ।
शरणं प्राप्य यञ्चैव संसाराद्विनिवर्तते ।६७
इति मे विविधं वाक्यमृसीणं च समागतैः ।
निश्चित्य कथितं विप्रा धिता धार्यं प्रयत्नतः ।३८

प्रथमं विष्णवे दत्तं शंभुना लिंगसम्मुखे ।
विष्णुना ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणा सनकादिषु ।३९
नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः ।
व्यासाय नारदेनोक्तं तेन मह्यं कृपालुना ।४०
मया चैव भवद्भयश्च भविद्भर्ल्लोकहेतवे ।
स्थापनीय प्रयत्नेन शिवाप्राप्तिकरं च तत् ।४१
इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः ।
गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।४२

जो मानव अत्यन्त भक्ति की भावना से शिवका भजन करता है वह निश्चयही अन्तमें मुक्तिके परमपदकी प्राप्तिकिया करता है ।३६। भगवान् शङ्कर से अधिक अन्य कोई भी देवता नहीं जिसकी शरण में जाकर यह जीवात्मा संसार के समस्तबन्धनोंको तोड़कर विमुक्त हो जाता है ।३७। हे ब्राह्मणो ! मैंने ऋषियों के समागम से ही यह ज्ञान प्राप्त होने वाले अनेक वाक्य पूर्ण निश्चय करके तुमसे कहे हैं । सब आपको यत्नपूर्वक अपनी बुद्धिमें धारण करने चाहिए ।३८। सर्वप्रथमभगवान्शिवने अपने ज्योति लिङ्गके समक्षमें भगवान् विष्णुदेवको यहज्ञान प्रदानकियाथा । इसके अनन्तर विष्णुने ब्रह्माजी को इसका उपदेश दिया और ब्रह्माने सनकादिक ऋषियों को इस ज्ञान का उपदेश दिया था ।३९। सनकादिकने इसी दिव्य ज्ञानका उपदेश नारदजीको दिया था । देवर्षि नारद ने व्यासजीको और वेदव्यास महर्षि ने मुझे यह ज्ञान प्रदान किया है ।४०। अब मैंने आपकी उत्कट जिज्ञासा जानकर इसज्ञानको आपको दिया है । आप सबको संसारके हित के लिए इस ज्ञान को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखना चाहिये । यह ज्ञान शिवके चरणों की प्राप्ति करा देने वाला है ।४१। हे मुनीश्वरो ! आपने जिस प्रकारसे मुझसे पूछा वह मैंने भली भाँति सभी आपको बतला दिया है । आप इस ज्ञान को यत्नपूर्वक छिपाकर रखें । अब आप मुझसे क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ।४२।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय आनन्द परमं गताः ।

हर्षगद्गदया वाचा नत्वा तुष्टुवुर्मुहुर्मुदः ।४३
व्यास नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ।
श्रावित नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुत्तमम् ।४४
अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव ।
सन्तुष्टाः शिवसज्ज्ञानं प्राप्यस्ततो विमुक्तिदम्।४५
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ।
अभक्ताय महेशस्य न चाशुश्रूषवे द्विजाः ।४६
इतिहासपुराणानि वेदांछास्त्राणि चासकृत् ।
विचार्योद्धृ तत्सार मह्यं व्यासेन भाषितम् ।४७
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेपाप हि भस्मसात्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्द्धनम् ।४८
पुनःश्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुतेः पुनः ।
तस्मात्पुनः पुनः श्राव्यं भुक्ति मुक्तिफलेप्सुभिः ।४९

व्यासजीने कहा-यह सुनकर उन सब ऋषियों को बहुतही प्रसन्नताहुई और हर्षातिरेकसे गद्गदवाणोसे नमस्कारपूर्वक बारम्बार स्तुति करने लगे ।४३।ऋषियोंने कहा हे व्यासमहर्षिके शिष्य सूतजी ! तुम शिवके उपासकों में परमश्रेष्ठ एवं धन्यहो । आपने बड़ाभारी अनुग्रह करके हम सबको परम तत्वरूपी शिव सम्बन्धी ज्ञानका श्रवण कराया है ।४४। आपके अनुग्रह से हमारे मनकीभ्रान्ति एकदम हटगई और आपके मुखसे मुक्तिदायक शिवका ज्ञानपाकर हम लोग पूर्ण सन्तुष्ट हुए हैं ।४५। सूतजीने कहा-हे द्विजवरो ! इस तत्व तथा इतिहास को आप लोग किसी नास्तिक-शिव-भक्ति रहित श्रद्धाहीन—शठ और जो सुनकर अनुराग नहीं रखता है उससे कभी मत कहना । यह परम गोप्य है ।४६। यह सारा वृतान्त अनेक इतिहास-पुराण— शास्त्र और वेदोंका बार-बार मनन करके उनके सारांश स्वरूप व्यासजी ने मुझसे कहा है ।४७। इसका एक ही बार श्रवण करने से समस्तपाप भस्मीभूत होज ते हैं । यह अभक्तको भक्तिदेत है और जोभक्त हैं उनकी भक्तिको विशेष बढ़ा देता है ।४८। इनके दोबार श्रवण करने से

परम श्रेष्ठ भक्तिकी प्राप्ति होती है और इसके भी आगे सुनने से मोक्ष पद मिल जाता है। अतएव भोग-मोक्ष के इच्छुक जीवों को इसका बार-बार श्रवण करना चाहिए।४६।

आवृत्तयः पञ्च मार्याः समुद्दिश्य फलं परम्।
तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यास्य वचनं त्विदम्।५०
न दुर्लभं हि तस्यैव येनेद श्रुतमुत्तमम्।
पञ्चकृत्वास्तदा वृत्या लभ्यते शिवदर्शनम्।५०
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः।
इदं श्रुत्वा पञ्चकृत्वो धिया सिद्धि परां गताः।५२
प्रोष्यत्यद्यापि यश्चेद मानवो भक्तितत्परः।
विज्ञानं शिवसंज्ञं वै भुक्ति मुक्ति लभेच्च सः।५३
इति तद्वचनं श्रुत्वा परमानन्दसागताः।
समानर्चुश्च ते सूतं नानावस्तुभिरादरात्।५४
नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
आशीर्भिर्वर्द्धयामासुः सन्तुष्टाश्छिन्नसंशया।५५
परस्परं च सन्तुष्टाः सूत ते च सुबुद्धयः।
शम्भुं देव पर मत्वा नमन्ति स्म भजन्ति च।५६

यदि किसी विशेष फल का उद्देश्य चित्तमें हो तो इसकी पाँच बार आवृत्ति अवश्यहीकरे। व्यासजीने कहा हैकि जो ऐसाकरते हैं उनकेउद्देश्य की सिद्धिके साथही उन्हें मुक्ति भी अवश्य मिलती है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है।५०। जिस किसी ने भी इसपरमउत्तम इतिहासको श्रवण किया है उसको कोईभी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। इसका पाँचबार पाठ करने से भगवान्‌शिवके दर्शनभी प्राप्त होजाते हैं।५१। प्राचीनकालमें अनेक राजा, ब्राह्मण तथा वैश्यलोग इसकी पाँचआवृत्ति इसी बुद्धिसे करलेने के पश्चात् परम सिद्धियों का लाभ उठा चुके हैं।५२। इस समय में भी जो मनुष्य भक्ति-भावमें तत्परहोकर इसका श्रवण करेगा वह शिव-विज्ञानको भुक्ति और मुक्तिको प्राप्त कर लेगा।।५३।। व्यासजी ने कहा सूतजी के ऐसे

वचन सुनकर ऋषियों को अत्यधिक आनन्द हुआ और बड़े आदर के साथ अनेक पूजोपचारोंसे सूतजी का वे अर्चन करने लगे ।५४। परमसन्तुष्ट और सन्देहरहितहोकर स्वस्तिवाचन करतेहुए नमस्कारों तथा आशीर्वादोंसे उन्हे बढ़ाने लगे ।५५। तबसे बुद्धिशाली वे ऋषिगण तथा सूतजी शिवको ही सर्वोपरि शिरोमणिदेव मानकर उन्हें नमस्कार करते हुए पूजने लगे ।५६।

एतच्छिवतसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत् ।
भुक्ति मुक्तिप्रदं दिव्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ।५७
इय हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्वया परा ।
चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा ।५८
एतां यः श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ।
स भुक्त्वेहाखिलान्भोगान्नते परगतिं लभेत् ।५३

यह भगवान् शिवका विज्ञान शिवको अत्यधिक प्रसन्न करने वाला है भुक्ति एव मुक्तिका दायक तथा दिव्य भक्तिको बढ़ाने वाला है ।५७। यह अत्यन्त 'कोटि रुद्र' नाम वाली शिवपुराणकी संहिताका वर्णन मैंने किया जो महान् आनन्द की देने वाली है ।५८। जो मनुष्य सावधान चित्त से भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है वह नित्य ही समस्त भोगों का उपभोग किया करता है और अन्त समय में परमगति कोप्राप्त होता है ।५९।



उमा--संहिता

सनत्कुमार का महापातक वर्णन

ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ।
भगवंस्तान्समाचक्ष्व ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ।१
ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ।
ते समासेन कथ्यन्ते सावधानतया श्रृणु ।२
परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसाऽनिष्टचिंतनम् ।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मानसम् ।३
अविवद्धप्रलापत्वमसत्य चाप्रिथं च यत् ।
परोक्षतश्च पैशून्यं चतुर्द्धा कर्म वाचिकम् ।४
अभक्ष्यभक्षण हिंसा मिथ्याकार्यनिवेशनम् ।
परस्वानामुपादनं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ।५
इत्येतद् द्वादशविध कर्मप्रोक्तं त्रिसाधनम् ।
अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनंतकम् ।६
ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम् ।
सुमहत्पातक तेषां निरयार्णवगामिनाम् ।७

श्रीव्यासजीने कहा–हे भगवन् ! हे ब्राह्मपुत्र ! अब आप कृपाकर उन जीवोंका वर्णनकीजिये जो महापापी हैं और नरक गमनकरनेके अधिकारी होते हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।१। सनत्कुमारजी ने कहा जो जीवात्मा सर्वदा पापकर्मोंमें परायणहोकर महाघोरनरक के अधिकारी हैं उनका वर्णन मैं अति संक्षेप के साथ करेता हूँ। आप सावधान होकर श्रवण करें।२। मानसिक कर्म भी चार प्रकार का होता है। दूसरों के धन तथा स्त्रीके प्राप्त करनेकी इच्छा करना, अपने चित्तमें दूसरों का बुरा विचारना, काम-वासना विचार तथा अभिनिवश करना-ये चार मनके कर्म

कहे गये हैं ।३। इसी तरह चारही प्रकारका वाचिक कर्म भी होता है—असङ्गत सम्भाषण करना,असत्य तथा अप्रियबातें कहना, पीठपीछे चुगलखोरी करना-ये वाणीके कर्म हैं ।४। ऐसेही चार तरहके शारीरिक कर्म हैं-अभक्ष्यका भक्षण करना,हिंसा करना,झूठे कार्य करना और दूसरों का धन उड़ालेना-ये शरीरके कर्म कहेजाते हैं ।५। यहाँ तक शारीरिक,वाचिक और मानसिक बारहतरहका कर्म बतलाया है । इसकेआगे इनभेदोंके प्रभेद बतलाते हैं जिनकाकि अनन्त फल हुआकरता है ।६। जोमनुष्य इस संसार रूपी महान् अगाधसागरसे तारनेवाले महादेवकी निन्दाकरते हैं उनका यह महापाप नरकके समुन्द्रमें जानेके लायक होता है ।७।

ये शिवज्ञानवक्तारं निन्दन्ति च तपस्विनन् ।
गुरुन्पितृनथोन्मत्तास्ते यांति निरयार्णवम् ।८
शिवनिन्दा गुरोनिन्दा शिवज्ञानस्य दूषणम् ।
देवद्रव्यापहरणं द्विजद्रव्यविनाशम् ।९
हरन्ति ये च समूढ़ाः शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ।
महांति पातकान्याहुरनन्तफलदानि षट् ।१०
नाभिनन्दति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम् ।
न नभत्यर्चितुं दृष्ट्वा शिवलिङ्गं स्तुव्रति न ।११
स्थानसंस्कापूजां च ये न कुर्वंति पर्वसु ।
विधिवद्धा गुरुणां च कर्मयागव्यवस्थिताः ।१२
यचेष्टचेष्टा निःशङ्काः सतिष्टन्ति रमति च ।
उपवारनिनिमुक्ताः शिव ग्रे गुरुसन्निधौ ।१२
ये त्यजति शिवा व र शिवभक्तान्द्विषन्ति च ।
असंपूज्य शिवज्ञान येऽधीयन्ते लिखन्ति च ।१४

जो महा उन्मत्त पुरुष शिव की गाथा कहने वाले तपस्वी तथा अपने गुरुकी एवं पितरोंकी निन्दाकिया करते हैं वे दुरात्मा जीव भी नरकगामी होते हैं ।८। शिवकी निन्दा--गुरुकी निन्दा,शिव-ज्ञानमें दोष लगाना और ब्राह्मणोंके धनका अपहरण या नाश करना,शिव-ज्ञानीकी पुस्तकका हरण

ये छः अनन्त फल देने पातक बताये गये हैं ।९-१०। जो कल्पित हुई शिव-पूजाको देखकर भी हर्षित नहीं होते है अथवा शिवके पार्थिवलिङ्गको पूजित देखकर भी उन्हें प्रणाम नहींकरते हैं तथा उनका स्तवन नहीं करते हैं ।११। जो सर्वदा अपनीइच्छा के अनुकूलही निस्सन्देह स्थितिरखते हैंतथा रमण कियाकरते हैं और शिवजीके आगे एवं गुरुके निकट उपचारसे भ्रष्ट होते हैं । ।१२। जो पर्वोंमेंस्नान और संस्कार-पूजानहींकरते है तथाकर्मसंयोग में व्यवस्थितरहकर सविधिअपने गुरुजनकाअर्चन नहीं कियाकरते हैं।१३। जो शिवाचारसेयुक्त शिवके भक्तोंसे द्वेषभावरखते हैं और जो शिव-विज्ञान का बिनापूजनके ही पाठकिया करते हैं या लिखते हैं ।१४।

अन्यायतः प्रयच्छन्ति श्रण्वन्त्युच्चारयन्ति च ।
विक्रीडन्ति च लोभेन कुशाननियमेन च ।१५
असस्कृतप्रदेशेषु यथेष्टं स्वापयन्ति च ।
शिवज्ञानकथाऽक्षेपं यः कृत्वान्यत्प्रभाषते ।१६
न ब्रवीती च यः सत्य न प्रदानं करोति च ।
अशुचिर्वाऽशुचिस्थाने यः प्रवक्ति श्रृणोति ।१७
गुरुपूजामकृत्वैवः यः शास्त्रं श्रोतुमिच्छति ।
न करोति च शुश्रूषामास्थां च भक्तिभावतः ।१८
नाभिनन्दति तद्वाक्यमुत्तरं च प्रयच्छति ।
गुरुकर्मण्यसाध्यं यत्तदुपेक्षां करोति च ।१९
गरुमार्तमशक्तं च विदेशं प्रस्थितं तथा ।
वैरिभिः परिभूत वा यः संत्यजति पापकृत ।२०
तद्भार्य्यापुत्रमित्रे यश्चावज्ञां करोति च ।
एवं सुवाचकस्यापि गुरोर्धर्मानुदर्शिनः ।२१

जो अन्यायसे दान करते, सुनते तथा उच्चारण करते हैं एवं लालच के वशीभूत होकर कुत्सित ज्ञानके नियमसे बुरी-बुरी क्रीड़ा करते हैं ।१५। जो लोग अपनीहीइच्छासे असंस्कृत स्थानों में सोते या सुलाते हैं औरशिव की ज्ञान-कथामें विक्षेपकरते या आक्षेपकरके कुछकुतर्क करते हैं ।१३।जो

कभी सत्य नहींबोलते हैं, कभी कुछ प्रदान नहींकरते हैं और स्वयं पवित्र हो या अपवित्रहो ऐसे स्थानमें कुछ कहते या सुनते हैं।१७। जो बिना गुरुके पूजन किये ही शास्त्रोंको सुनते हैं या श्रवण करना चाहते हैं औरजोअपने गुरुकी सप्रेम भक्तिकेसाथ सेवा नहीं करते हैं याउनकी आज्ञाकापालन नहीं करते हैं।१८।जो गुरुजनोंके वाक्योंका आदर नहीं करतेहैं या उनको उत्तर देदेते हैं और जो गुरुके कार्यको असाध्य बताकर उसकी लापरवाही किया करते हैं।१९। जो पापीगुरु,रोगी,असमर्थ तथा परदेशमें स्थित या शत्रुओं द्वारा घिरेहुए या तिरस्कृत मनुष्यको छोड़देते हैं।२०। जो उनकी स्त्री,पुत्र और मित्रोंका तिरस्कार करते हैं तथा श्रेष्ठवक्ता,धर्म दर्शक गुरुकी भार्या, पुत्र और मित्रकी अवज्ञा किया करते हैं।२१।

एतानि खलु सर्वाणि कर्माणि मुनिसत्तम ।
सुमहत्पातकान्याहुः शिवनिन्दासमानि च ।२२
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ।२३
क्रोधाल्लोभाद् भयाद् द्वेषाद् ब्राह्मणस्य वधे समः ।
मर्मांतिक महादोषमुक्त्वा स ब्रह्महा भवेत् ।२४
ब्राह्मण यः समाहूय दत्वा यश्चाददाति च ।
निर्दोषं दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत् ।२५
यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम् ।
उदासीनं सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ।२६
मिथ्यागुणैर्य आत्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात् ।
गुणानापि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत् ।२७
गवां बृषाभिभूतानां द्विजानां गुरुपूर्वकम् ।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।२८

हे मुनिश्रेष्ठ ! ये उपर्युक्त समस्तकर्म शिवकी निन्दाके तुल्यही महापाप कहे जाते हैं।१२। ब्राह्मण की हत्या करने वाला मदिराका पान करने वाला, चोरीकरने वाला और अपने गुरुकी पत्नीका गमन करने वाला तथा

पाँचवाँ इनके साथ मेल मोहब्बत रखने वाला ये सब महापापी कहे जाते हैं ।२३। क्रोधसे, भयसे, द्वेषसे जो ब्राह्मण के वधमें मर्मोंको भेदन करने वाले महादोषोंको कहता है वहभी ब्रह्म-हत्यारा माना जाता है ।२४। जोब्राह्मण को बुलाकर दियेहुए दानकोभी फिर वापिस लेलेता है और जो दोषरहित पवित्र व्यक्ति को भी दोषलगाता है वह भी ब्रह्म हत्यारा कहाता है ।२५। जो मनुष्य अपनी पठित विद्या के अभिमान में चूर होकर किसी उदासीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको निस्तेज करता है वहभी ब्रह्म-हत्यारेके तुल्य ही महापापी माना जाता है ।२६। जो अपने मिथ्यागुणों से बलात् अपने ऐसे गुणों को प्रकटकरके आपही उन्नतिके पदकीप्राप्ति कियाकरता है वहभी ब्रह्म-हत्यारे के समान ही कहा गया है ।२७। बैल आदि से तिरस्कृत हुई गायोंको तथा गुरु के सहित ब्राह्मणों को विघ्न उपस्थित करता है वह भी ब्रह्म-हत्यारा माना गया है ।२८।

देवद्विजगवां भूमिं प्रदत्तां हरते तु यः ।
प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।२९
देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत् ।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशय ।३०
अधीत्य यो द्विजो वेद ब्रह्मज्ञानं शिवात्मकम्।
यदि त्यजति यो मूढ़: सुरापानस्य तत्समम् ।३१
यत्किंचिद्धि व्रतं गृह्य नियमं यजनं तथा ।
संत्यागः पञ्चयज्ञानां सुरापानस्य तत्समम् ।३२
पितृमातृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं द्विजानृतम् ।
आमिषं शिवभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।३३
वने निरपराधानां प्राणिनां चापघातनम् ।
द्विजार्थं प्रक्षिपेत्साधुर्न धर्मार्थं नियोजयेत् ।३४
गवां मार्गे वने ग्रामे यैश्चैवाग्नि प्रदीयते ।
इति पापानि घोराणि ब्रह्महत्यासमानि च ।३५

जो देवता, विप्र और गौओंके लिये कृष्णार्पण की हुई भूमि को काल-

वश नष्ट होनेपर भी हरणकर लेता है उसमनुष्यको भी ब्रह्म-हत्यारा कहा जाता है।२९। किसीभीदेव तथा ब्राह्मणकेधनका हरणकरना तथा अनीति से धन एकत्रित करना-यहभी कर्म ब्रह्म-हत्याके समानहोते हैं और इनका पाप भी ब्रह्म-हत्यारे के तुल्य ही लगता है इसमें तनिक भी सन्देहनहीं है।३०।जोमहामूढ़ विप्रवेदोंको पढ़करभी शिवके ब्रह्मज्ञानका त्यागकरदेता है वह मदिरा पानके समान पाप बतलालागया है।३१। किसी भी नियम या ब्रतको ग्रहणकरके पञ्च-महायज्ञका त्यागककरदेना भी मदिरा-पानकेसमान महापाप माना गया है।३२। अपने पूज्य माता-पिताका त्याग कर देना, मिथ्या भाषण करना, शिवके सेवक भक्तोंके माँसका सेवन करना और जो भक्षण के अयोग्यवस्तु है उसका भक्षण करना।३३। वनमें निरपराधविचारे पशुओंका वध करना और साधु- ब्राह्णो के लिये तथा धर्मके कार्यके लिये प्राणोंका मोह करना।३४। गौओंकी राहमें तथा ग्राममें आग लगा देना-ये सभी ब्रह्म-हत्याके तुल्यही महापाप कहे जाते हैं।३५।

दीनसर्वस्वहरण नरस्त्रीगजवाजिनाम् ।
गोभूरजतवस्त्राणामोषधीनां रसस्य ।३७
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ।
विक्रयस्त्वविपत्तौ यः कृतो ज्ञानाद् द्विजातिभिः ।३८
हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ।
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे ।३८
पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ।
कुमारीसाहसं घोरं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।३९
सवर्णायाश्च गमनं गुरुभार्यासमं स्मृतम् ।
महापापापि चोक्तानि श्रृणु त्वमुपपातकम् ।४०

किसी भी दीन-हीन का सर्वस्व हरण कर लेना—पुरुष, स्त्री, हाथी, घोड़ा, गो-भूमि, चाँदी वस्त्र, औषध, रस, चन्दन अगर, कपूर, कस्तूरी और पट्ट वस्त्र आदि के बेचनेका काम करना और द्विजातियोंके द्वारा ही इन कामों का ज्ञानपूर्वक कराना।३६। हाथ से रखी हुई किसी धरोहरको मार लेना

सुवर्णके चुराने के समान है। जो कन्याएं वरके देने योग्य हैं उन्हें उनके समान वरोंको न देना, पुत्र-मित्रकी स्त्रियोंकेसाथ तथा बहिनोंकेसाथ गमन करना,कुमारीके साथ बलात्कार करना,मदिरा-पान करनेवाली स्त्रीकेसाथ गमन करना,सवर्ण स्त्रीके साथ गमन करना गुरु-पत्नीके गमन के समानही होता है-ये सभी ऊपर बतायेहुए महाघोरपाप कहे गये हैं, इसके आगे में अब उपपातकों का वर्णन करता हूँ उनको आप सुनें ॥३७-३८-३९-४०।

विभिन्न पापों का स्वरूप वर्णन

द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यतिक्रम ।
अतिमानोऽतिकोपश्च दांभिकत्वं कृतघ्नतः ।१
अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं साधुमत्सरम् ।
परदाराभिगमनं साधुकन्यासु दूषणम् ।२
परिवित्तिःपरिवेत्ता च यया च परिविद्यते ।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।३
शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम् ।
यः पीडामाश्रमस्थानामचरेदल्पिकामपि ।४
सभृत्यपरिवारस्या पशुधान्यधनस्ध च ।
कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा ।५
यज्ञारामतडागानां दारापत्यास्त विक्रयम् ।
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्मिणाम् ।६
स्त्रीधनान्पुपजीवंतिस्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ।
अप्क्षण च नारीणां मायथा स्त्रीनिषेवणम् ।७

श्रीसनत्कुमारजीने कहा-ये नीचे बताये हुए सभी उपपातक कहे जाते हैं-ब्राह्मणोंके धनकोछीन लेना, किसी भी अन्यके भागको स्वयं पचाकर उसे नहीं देना,अत्यन्त घमण्डकरना,अति पाखण्डकरना और किसी के किए हुए उपकारको न मानना ।१। सांसारिक विषयों में ज्यादा मनकी प्रवृत्ति रखना,कंजूसी करना,सज्जन मनुष्यों के साथ ईर्ष्याका भावरखना,दूसरोंकी स्त्रीके साथ गमन करना तथा श्रेष्ठ कन्याओंमें कोई भी दोष लगाना ।२।

पर-वित्ति, परवेत्ता तथा जिसके द्वारा जाना जाता है इन दोनों को कन्या का दानकरना, इन दोनोंसे यज्ञकराना ।३। शिवके आश्रममें स्थित वृक्ष बाग या पुष्पोंको नष्ट करना, आश्रममें रहने वाले मनुष्यों को पीड़ा देना-ये सभी उपपातक कहे जाते हैं ।४। सेवक परिवार के सहित पशु, धान्य, धनका दान तथा धान्य पशुओं का चुराना, जलको अपवित्र करना ।५। यज्ञ बाग, सरोवर, स्त्री और अपनी सन्तानको बेचडालना, तीर्थ यात्री तथा तीर्थ-स्थल उपवास, व्रत, उपनयन करने वालोको विक्रय करदेना भी उपपातक होते हैं ।६। स्त्री के धनसे वृत्ति करना, स्त्रियों के द्वारा जीते हुए होना, स्त्रियों के रक्षण करने कपटसे तनभोग करना ।७।

कलागताप्रदानं च धान्यवृष्ट्युपसेवनम् ।
निन्दिताच्च धनादानं पण्यानां कूटजीवनम् ।८
विषमारण्यपत्राणां सततं वृषवाहनम् ।
उच्चाटनाभिचारं च धन्यादान भिषविक्रया।९
जिह्वाकामोपभोगाथ यस्यारलभः सुकर्मसु ।
मूलेनाध्यापको नित्यं वेदज्ञानादिकं च यत् ।१०
ब्राह्मयादिव्रतसत्यागश्चान्याचारनिषेवणम् ।
असच्छास्त्रागि नं शुष्कतर्कावलम्बनम् ।११
देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दया ब्राह्मणस्य च ।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिनामानि।१२
उत्सन्नपितृदेदेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्च ये ।
दु शीला नास्तिकाः पापाः सदा वाऽसत्यवादिनः ।१३
पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु ।
रजस्वलाया योनौ च मैथुनं यः समाचरेत् ।१४

समय पर आयेहुए को भी कुछ न देना, धान्य वृद्धिका सेवन करना, निन्दित धनको लेना और व्यापार में कूट-जीवन बिताना भी उपपातक बताये गये हैं ।८। विषम जङ्गलों के पत्तोंका तोड़ डालना, बैलका वाहन करना किसी के उच्चाटन या मारण का प्रयोग करना, धान्य का छीन लेना तथा वैद्य

वृत्तिका करना-ये सभी उपपातक होते हैं ।९। अपनी जिह्वाके रसभोग की कामनासे बुरे कर्ममें प्रवृत होना और वेदज्ञान आदिमें केवल मूलको पढ़ाना भी उपपातक होता है ।१०। ब्राह्म आदि व्रतका त्याग कर देना, अन्योंके आचारका सेवन, बुरे शास्त्रोंका अध्ययन और शुष्क तर्कका सहारा लेनाभी उपपातक है ।११। देवता, ब्राह्मण, अग्नि, साधु और चक्रवर्ती राजाकी पीछेसे निन्दा करना, पितृयज्ञ, देवयज्ञका त्याग करना, अपने स्वाभाविक कर्मका त्यागकर देना, दुराचरण करना, नास्तिक भावरखना, पाप-वृत्तिकरना और मिथ्या बोलना-ये सभी उपपातक कहेगये हैं ।१२-१३। पर्वके समयमें, दिनके समयमे जलके मध्यमें, वियोनि में, पशु योनिमें और रजस्वला योनिमे गमन करना उपपातक होते हैं ।१४।

स्त्रीपुत्रमित्रसंप्राप्तौ आशाच्छेदकराश्च ये ।
जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयवेदिनः ।१५
भेत्ता तडागकूपान संक्रयाणां रसस्य च ।
एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ।१६
इत्येतैः स्त्रीनराः पापैरुपातकिनः स्मृताः ।
युक्ता एभिस्तथान्येऽपि शृणु तांस्तु ब्रवीमिते।१७
ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
विनाशयन्ति कर्माणि ते नरा नारकाःस्मृता ।१८
परस्त्रियाऽभिलप्यंते ये परद्रव्यसूचकाः ।
परद्रव्यहरा नित्यं तौलमिथ्यानुसारकाः ।१९
द्विजदुःखकरा ये च प्रहारं चोद्धरति ये ।
सेवन्ते तु द्विजाःशूद्रां सुरां बध्नति कामतः ।२०
ये पापनिरताःक्रूरा येऽपि हिंसाप्रिया नरा ।
वृत्यर्थं येऽपि कुर्वन्ति दानयज्ञादिकाःक्रियाः ।२१

जो स्त्री-पुत्र और मित्रों के प्राप्त होने पर आशा को तोड़ देते हैं-तथा मनुष्योंकेसाथ सर्वदा कटुभाषणकरते हैं और क्रूर, समयकाज्ञान नहीं रखते हैं, ये सभीउपपातकी मानेजाते हैं ।१५। तालाव-कूपतथा किसीभी जलाशय

और रसोंका भेदनकरना एव एकही पंक्तिमें बैठेहुए लोगोंके भोजनमें भेद-भावकरना भी उपपातक होते हैं।१६। इन सभी ऊपर बताये हुए कर्मोंको करने से स्त्री हो या पुरुषहो सब उपपातकी कहे जाते हैं। जोभी कोई इन पातकोसे युक्त हैं तथा अन्यपापोंसे भी युक्तहोते हैं उन सबका वर्णन करते हैं आपलोग श्रवणकरें।१७। जो पुरुष गौ,ब्राह्मण,कन्या,स्वामी,मित्र और तपस्वियों के कार्यों को बिगाड़ डालते हैं वे निश्चयही नरकके गामी हुआ करते हैं।१८। जो अन्योंकी स्त्रियों से दुःखित होते हैं तथा जो पराये धन के सूचक हैं एवं नित्यही दूसरोके धनका हरण करने वाले हैं और मिथ्या तोल करने वाले होते हैं, वे नरक के अधिकारी हैं ॥१९॥ जो ब्राह्मणोंको सताते हैं और उन पर प्रहार किया करते हैं-जो सिद्ध होकर शूद्र की स्त्री का सेवन किया करते हैं और कामसे मदिराको बाँधते हैं ॥१०॥जो सदा पापमय कर्मों में ही परायण रहा करते हैं—जो अत्यन्त क्रूर हैं—जो सर्वदा हिंसा किया करते हैं और जो अपनी जीविकाके लिए ही दान यज्ञ आदि किया करते हैं।२१।

गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेष ।
त्यजन्ति ये पुरीषाद्यानारामायतनेषु च ।२२
लज्जाश्रमप्रसादेषु मद्यपानरताश्च ये ।
कृतकेलिभुजगाश्च रन्ध्रान्वेषणतत्परः ।२३
वशेष्टकालिकाकाष्ठैः श्रृंगैःशंकुभिरेव च।
ये मार्गमनुरुंधति परसीमां हरन्ति ये ।२४
कूटशासनकर्त्तारः कूटकर्मक्रियारतः ।
कूटपाकान्नवस्त्राणां कूटसंव्यवहारिणः ।२५
धनुषः शस्त्रशल्यानां कर्त्ता यःक्रयविक्रयी।
निर्द्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः।२६
मिथ्या प्रवदतो वाचंआकर्णयति य शनै।
स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठ।२७
ये याय्यांपुत्रमित्राणिबालवृद्धकृशातुरान्।
भृत्यानतिथिबधूंश्च त्यक्त्वाश्ननंति बुभुक्षितान् ।२८

जो गोशाला, अग्निकुण्ड, जलाशय, गलीकी राह, वृक्षोंकीछाया,पर्वत शिखर और निवासस्थान में मल-मूत्र करते हैं या फेंकते ।२२। जो लज्जा के आश्रम तथा महलोंमें मद्यपान किया करते हैं । दूसरोंकेछिद्रों की खोज करने में तत्पर सर्पोंकेसमान क्रीड़ा करते हैं-वे सभी नरकगामी होते हैं । ।१२। जो पुरुष बांस,ईंट,पत्थर,काष्ठ,सींग और कालों से मार्ग को रोकदेते हैं तथा दूसरोंकी सीमाका हरण करलेते हैं ये सभी नरकके अधिकारी होते हैं ।२४। जो कटपसे शिक्षा देने वाले, छल भद कर्म एवं व्यापारमें तत्पर रहा करते हैं और कपटपूर्ण पाक, अन्न तथा वस्त्रोंका व्यवहार करनेवाले होते हैं-वे सब नरकगामी है ।२५। जो पुरुष धनुष, शस्त्र और शल्यों के निर्माण करने वाले हैं तथा इनकी खरीद फरोख्त किया करते हैं—अपने भृत्यों (नौकरों)केसाथ निर्दयताका व्यवहार कियाकरते हैं और जो पशुओं को बुरी तरहसे मारते हैं-ये सब नरककेगमन करनेवाले होते हैं ।२६। जो मनुष्य झूठी बातको धीरे-धीरे सुनाता है-अपने मित्र, स्वामी और गुरुसे द्रोहकरने वाले हैं कपट व्यवहारकरने वाले,ठग और चपल हैं-ये सब नरक के अधिकारीहोते हैं।२७। जो मनुष्य अपनी स्त्री-पुत्र,मित्र, बान्धव, वृद्ध दुर्बल,रोगी,भृत्य,अतिथि और बान्धवोंको न खिलातेहुए,भूखा ही छोड़ कर भोजनकर लिया करते हैं-ये सभी नरकके जाने वाले उतपातकी होते हैं ।२६।

यः स्वयंमिष्टमश्नाति विप्रेभ्यो न प्रयच्छति ।
वृथापकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ।२९
नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः ।
प्रव्रज्यावासिता ये सरस्यास्य प्रभेदकाः ।३०
ये ताडयन्ति यां क्रूरा दमयते मुहुर्मुहुः ।
दुर्बलान्ये न पुष्णन्ति सततं यं त्यजन्ति च ।३१
पीडयंत्ययिभारेणासहतं वाहयंति च ।
योजयन्नकृताहारान्न विमुचंचि संयतान् ।३२
ये भारक्षतरोगार्तान्गोवृषाँश्च क्षुधातुरान् ।
न पालयन्ति यन्नेन गोघ्नास्तेनारकाःस्मृता ।३३

वृषाणां वृषणास्ये च पापिष्ठा गालयन्ति च ।
वाहयंति च गां वन्ध्यां महानारकिनोनराः ।३४
आशया समनुप्राप्तान्क्षुतृष्णाश्रमकाशितान् ।
अतीथींश्च तथा नाथान्स्वतन्त्रान्गृहमागतान्।४५
अन्नाभिलाषान्दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान्।
नानुकपति ये सूढ़ास्ते यांति नरकार्णवम् ।३६

जो स्वयं नियमोंको स्वीकारकरके इन्द्रियोको जीतनेवाला नर है और स्वीकृतनियमोंका त्यागकरदेते हैं और संन्यासग्रहणकरके घरमें रहते हैं तथा शिव प्रतिमाका भेदन करते हैं ये सब नरकगामी होते हैं ।२९-३०। जो अत्यन्य क्रूरतासे गायोंको मारते है तथा बारम्बार दमनकिया करते है,जो दुर्बलोंका पोषण नहीं कियाकरते हैं तथा उनको सर्वदा त्यागदेते हैं-वे नरकगामीहोते हैं ।३१। जो अत्यन्तबोझालादकर पीड़ादेते हैं,न सहनकरने वाले पशुकोभी बराबर जोततेरहाकरते हैं और जिनपशुओंको खाना न मिलाहो ऐसे भूखे पशुओंको भी जोतते या बधाहुआ रखते हैं वे मनुष्य नरक यातना भोगनेके अधिकारी हुआ करते हैं ।३२। जो अत्यन्त असह्य भार से पीड़ित एवं घायल, रोगी और क्षुदा पीड़ित गाय, बैलोंका समुचित रूपसे पालन पोषण नहीं कियाकरते हैं-वे निस्सन्देह गौ हत्यारे,महापापी नरक के दुःख भोगनेवाले होते हैं ।३३। जो पापात्मा बिचारेबैलोंके अण्डकोशोंको पिटवा कर उन्हें बधिया बनाया करते हैं तथा बाँझ गौओंको भी जोताकरते हैं-वे पुरुष महान्नरककी यातनाभोगते हैं ।३४। कुछ आशालेकर प्राप्तहोनेव ले, भूख-प्यास और परिश्रमके कारण विकल, अभ्यागत तथा अनाथोंको, अन्न पानेकीइच्छासे समागतोंका दीन,बालक वृद्ध,दुर्बल और रोगियों पर जो दया नहीं करते हैं, वे महान् मूर्ख अवश्य ही घोरनरकमें जाते हैं ।३५-३६।

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानादपि बांधवाः ।
सुकृत दुष्कृतं चैव गच्छन्तमनुगच्छति ।३७
आजीविको माहिषिकः सामुद्रो वृषलीपतिः ।
शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद् द्विजाधमः ।३८

यश्चोचितमतिक्रम्य स्वेच्छयैवाहरेत्करम् ॥३९॥
नरके पच्यते सोऽपि योपि दण्डरुचिर्नरः ॥४०॥
उत्कोचकै रुचिक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते ।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः ॥४१॥
ये द्विजा परिगृह्णान्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः ।

मनुष्य मृत्युगत होजानेपर साराधन एश्वर्य घरमेंही पड़ाछोड़जाता है, उसे श्मशानमें पहुँचाकर भाई-बन्धुभी सब घर लौट आते हैं। केवल वहीं एक जीवात्मा अकेला किये हुए पाप तथा पुण्यों को साथ लेकर परलोक में जाया करता है। वहाँ अपने कर्मोंका भोग भोगना पड़ता है। अतः सदा सत्कर्म ही करना चाहिये, यही इसका तात्पर्यार्थ है।३७। बकरी, भैंसका क्रय-विक्रय करनेवाला नीच ब्राह्मण, समुद्र पर रहनेवाला, शूद्रा स्त्री का पति, शूद्रकेतुल्य और क्षत्रियकी वृत्ति करनेवाला महानीच होकर नरकगामी होता है।३८। जो शास्त्रोक्त उचित करना उल्लंघन करके अपनी ही इच्छा से कर वसूल या हरण करता है और जो सर्वदा दण्ड देनेकी रुचि रखता है वह अवश्यही नरकको भोगता है।३९-४०। जिस राजाके राज्य में प्रजाजन घूँसखोर और अपनी इच्छाके ही अनुसार क्रय विक्रय करने वाले हों तथा प्रजाके लोग तस्कारोंसे उत्पीड़ित रहते हों, वह राजाभी नरकगामी होता हैं।४१। जो ब्राह्मण अन्यायी राजा का दियाहुआ दान लेते हैं, वे भी घोर नरकमें निश्चयही जायाकरते हैं।४२।

ते प्रयांति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः ॥४२॥
अन्यायात्समुपादाय द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति ।
प्रजाभ्यः पच्यते सोऽपि नरकेषु नृपो यथा ॥४३॥
पारदारिकचौराणाँ चण्डानाँ विद्यते त्वघम् ।
पारदारितस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः ॥४४॥
अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाऽचौररूपिणाम् ।
अविचार्य्यं नृपस्तमाद्घातयन्नरकं व्रजेत् ॥४५॥
घृततैलान्नपापानि मधुमांससुरासवम् ।
गुडेक्षुशाकदुग्धानि दधिमूलफलानि च ॥४६॥

तृणं काष्टं पत्रपुष्पमौषधं चात्मभोजनम् ।
उपानच्छत्रशकटमासनं च कमंडलुम् ॥४७॥
ताम्रसीसत्रपुः शस्त्रं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम् ।
वैद्यं च वैणवं चान्यद् गृहोपरकरणानि च ॥४८॥
और्ण्णं कार्पास कौमेय पट्ट सूतोद्भवानि च ।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धि हरन्ति च ॥४६॥

जो राजा प्रजाको दबाकर अन्यायपूर्वक धनलेकर ब्राह्मणोंको दानरूप में देता है वह राजा अपनी अनीतिसे युक्त पापसे कारण नरकगामी होता है ।३४। पराई स्त्रियों के साथ भोग तथा चोरी करने वाले पुरुषोंको तथा नित्य ही पर-स्त्रीमें रत राजाको बड़ा पाप लगता है और उसके लिए वह नरक की यातना भोगते हैं ।४४। जो राजा चोरी न करने वाले चोर और चोरीकाकाम करनेवाले तस्करपुरुषोंको सत्पुरुष समझता है और बिना-भली भाँति विचारकियेही ताड़ना एवं दण्डदेता है. वह नरकगामी होता है ।४५। जो निम्न वस्तुओंके चोरहोते हैं वे नरकगामी होते हैं यथा-घी, तेल, पीनेकी वस्तु-अन्न, शराब, माँस, अर्क, ईख, गुड़, शाक, दूध, दही, फल, मूल, घास, काष्ठपत्र, फूल, औषध, अपना, भोजन जूता, छाता, गाड़ी, कमण्डल, आसन, लोहा, ताम्र, सीसा, रांग, शस्त्र, शङ्ख, जलसे उत्पन्न वस्तु-वैद्य लकड़ी, घरके काममें आने वाली वस्तु-ऊनी, सूती, रेशमी, रामबास आदि एवं छालके निर्मित मोटे व बारीक बस्त्रोंको जो भी कोई लालच वश चुरा लेते हैं-वे निश्चय ही नरककी यातना भोगते हैं ।४६-४७-४८-४६।

एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ।
नरकेषु ध्रुवं यान्ति चापहृत्यालपकानि च ॥५०॥
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ।
अपहृत्य नरा यान्ति नरकं नात्र संशयः ॥५१॥
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रांतसमनन्तरम् ।
शरीर यातनार्थाय सर्वाकारमवाप्नुयात् ॥५२॥
यमलोक व्रजन्त्येते शरीरेण यमाज्ञया ।
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाः सुदुःखिता ॥५३॥

देयतिर्यङ् मनुष्याणामधर्मनिरतात्मनाम् ।
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥५४॥
नियमाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ।
प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न बुधैरिष्यते यमः ॥५५॥
परदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ।
नृपतिः शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्मराट् ॥५६॥
अस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥५७॥
य करोति स्वयं कर्म कारयेच्चानुमोदयेत् ।
कायेन मनसा वाचा तस्य पापगतिः फलम् ॥५८॥

इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के बहुत से द्रव्य हैं, जिनका हरण करनेसे चाहे स्वल्प मात्रामेंही क्योंन हो, निश्चयही नरकगामीहोते हैं।५० कुछधी क्यों न हो; पराई वस्तु तो चाहे सरसोंके दानेके बराबर भी चुराई जावेतो इसका बुरा परिणाम नरकयातना अवश्यही सहनापड़ता है, इसमें तनिकभी संशय नहीं है।५१। मनुष्य उपर्युक्त चोरी करनेके पापोंसे नरक भोगनेके पीछे शारीरिक कष्टउठानेके लिए समस्त आकारकी प्राप्तिकरता है।५२। ऐसे पापकर्म करने वाले पापी शरीरको लेकर मेरे आदेशसे भीषणवपु वाले यमदूतों के द्वारा पकड़े हुए अत्यन्त दुःखसे भरकर यमराज के लोकको जाते हैं।५३। धर्मराज अनेक प्रकारके वधोंके द्वारा देव-मनुष्य और पक्षी सबको जो अधर्म करते हैं, दण्ड दिया करता है।५४। जो नियम और सदाचारों में तत्पर रहा करते हैं, कभी अज्ञानवश गिरजाते हैं तो ऐसे लोगों को अनेक प्रकार के प्रायश्चितों द्वारा गुरु ही शिक्षा दे दिया करते हैं। ऐसे लोगों को शिक्षा पाने के लिए धर्मराजके पास नहीं जाना पड़ता है। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं।५५। पराई स्त्रियों से प्रसङ्ग करने वाले—चोर और अन्याय से व्यवहार करने वालों को दण्ड देकर शिक्षा देने बाला राजा बताया गया है। जो गुप्त महापाप किया करते हैं, उनको यमराज ही दण्ड देते हैं।५६। इसलिये किये हुए पापों से शुद्धि प्राप्त करने को प्रायश्चित अवश्य ही करना चाहिए

अन्यथा पापोंका फल बिना भोगेहुए करोड़ों कल्पों में भी नष्ट नहीं होता है ।५७। पापकर्म स्वयं करे या मन वाणी या शरीरके द्वारा पापकर्म करावे अथवा इनका अनुमोदन करे-उसको उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है ।५८।

नरकलोकका मार्ग और यमदूतोंका स्वरूप वर्णन

अथ पापैर्नरा यांति यमलोक चतुर्विधः ।
संत्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः ।। १ ।।
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ।
स्त्रीपुन्नपुंसकैर्जीवैर्ज्ञातव्यं सर्वजन्तुषु ।। २ ।।
शुभाशुभफल चात्र देहिनाँ संविचार्यते ।
चित्रगुप्तादिभिः सर्वैर्वसिष्ठप्रमुखैस्तथा ।। ३ ।।
न केचित्प्राणिनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम् ।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम् ।। ४ ।।
तत्र ये शुभ कर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः ।
ते नरा यान्ति सोम्येन पूर्वं यमनिकेतनम् ।। ५ ।।
पे पुनः पापकर्माणः पापा दानविवर्जिताः ।
ते घोरेण पथा यान्ति दक्षिणेन यमलायम् ।। ६ ।।
षडशीतिसहस्त्राणि योजनानामतीत्य तत् ।
वैवस्वतपुरं ज्ञय नानारूपमवस्थितम् ।। ७ ।।

श्री सनत्कुमारजी ने कहा- समस्तप्राणी चार तरहके पापोंमें त्रासपैदा करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर यमराजके लोकको जाया करते हैं और मजबूर होकर उन्हें वहाँ अवश्य हीं जाना पड़ता है ।१। गर्भमें स्थित रहकर जन्म धारण करने वाले बालक युवा, प्रौढ़ और वृद्ध तथा स्त्री एवं पुरुष और अपुंसक सभीको यह बात भलीभाँति जान व समझलेनी चाहिए ।२। वहाँ पर लेखा-जोखा रखनेवाले धर्मराजके मंत्री चंद्रगुप्तआदि तया महर्षि वशिष्ठ आदि मुनियों द्वारा समस्त जीवोंके शुभाशुभ कर्मका विचार कियाजाता है ।३। अपना किया हुआ कर्म सभीको अवश्यही भोगनापड़ता है । इसलिये

ऐसे कोई भी प्राणी नहीं है जो यमराज के लोकको नहीं जाते हैं। शुभ-अशुभ कर्मोंका निर्णय वहाँ परही होता है।४। इन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले और सौम्य चित्तवाले कृपापूर्ण मनुष्य होते हैं वे वहाँ यमलोक में सौम्य मार्ग से पूर्वद्वार को जाया करते हैं।५। जो अनेक पापकर्म करने वाले महापापी एवं दानशून्य प्राणी होते हैं, वे घोर दक्षिण दिशाके मार्गसे यमराज के लोकको जाया करते हैं।६। वह वैवस्वतपुर अनेक रूप में स्थित हैं और वहाँ जानेके लिए छियासीहजार योजन कोसों का फासला तय करके जाना पड़ता है।७।

समोपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्मणाम् ।
पापिनामतिदूरस्थं यथा रौद्रेण गच्छताम् ॥ ८ ॥
तीक्ष्णंकटकयुक्तेन शर्कराविचितेन च ।
क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणै रचितेन च ॥ ९ ॥
क्वचित्पंकेन महता उरुतोकैश्च पातकैः ।
लोहसूचीनिभैर्दर्भैः सम्पन्नेन पथा क्वचित् ॥१०॥
तटप्रायातिविषयैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः ।
प्रतप्तांगारयुक्तेन यांति मार्गेण दुःखता ॥११॥
क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्ठैः सुदुष्करैः ।
सुतप्तबालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शकुभिः ॥१२॥
अनेकशाखावितर्तैर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित् ।
कष्टेन तमसा मार्गे नानालम्बेन कुत्रचित् ॥१३॥
अयः शृंगाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः ।
क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥१४॥

यही यमलोक पुण्यात्माओंको तो अत्यन्त समीपमें स्थित जैसा प्रतीत होता है और पापियोंको अत्यन्तही दूरमें स्थितजैसा लगता है। पापीप्राणी बड़ेभयङ्कर मार्गसे होकर इस लम्बी यात्राको पार करतेहुए वहाँ पहुँचपाते है।७। मार्गमें कहीं भयानक काँटे बिछेहुए हैं तो कहीं बालू रेतही रेत भरी पड़ी है। किसी जगह छुरेकी तीखीधारके तुल्य चीरदेने वाला पाषाण बिछे

हुए हैं ऐसे मार्गसे जानापड़ता है ।९। वह मार्ग कहींतो बहुतभारी दल-दल से युक्त कीचड़वाला होता है-किसीजगह उरुतोक पापोंसेयुक्त तो कहीं लोहे की सुईकेसमान तीखी कुशाओं से युक्त होता है ।१०। उस मार्ग में कहीं-कहीं तटप्राय प्रदेशोंके अत्यन्त कठिक पर्वतहोते हैं और किसीजगह घने वृक्षों का भयानक जंगल होता है । किसी स्थान पर तपेहुए अंगार भरे होते हैं । ऐसे मार्गमें प्राणी बहुतही दु:खित होते हुए जाया करते हैं ।११। यमलोक के मार्गमें किसीजगह बहुत भारी गहरे गर्त आते हैं,कहीं ऊँचे टीलेहोते हैं और कहींपर खूब तपीहुई बालू होती है तथा तीखे कीले गड़े होते हैं ।१२। यमपुरका रास्ता बहुतही कठिन होता है, कहीं भयानक शाखायुक्त बाँसोंका जंगलहोता है और किसीजगह घोर अन्धकार छाया रहता है तथा उसमार्ग में ऐसे बहुतसे आधार रहाकरते है ।१३। वह रास्ता कहीं लोहेके सिंघाड़ों से व्याप्त रहता है जो बहुतही तीखेहोते हैं । किसी जगह दावानलसे व्याप्त रहता है, किसी स्थानपर तपीहुई पाषाण शिलाएँ मिलती हैं, तो कहीं बहुत ठण्डी बर्फ जमी हुई रहती है ।१४।

क्वचिद्वालुकया व्याप्तामाकण्ठांत: प्रवेशया ।
क्वचिद् दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषाग्निना ॥१५॥
क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्मशकैश्च सुदारुणै: ।
क्वचिन्महाजलौकाभि: क्वचिच्चाजगरैस्तथा ॥१६॥
मक्षिकाभिश्च रौद्राभि: क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणै: ।
मत्तमातंगयूथैश्च बलोन्मत्तै: प्रमाथिभि: ॥१७॥
पंथानमुल्लिखद्भिश्च सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभि: ।
तीक्ष्णश्रृंगैश्च महिषै: सर्वभूतश्च श्वापदै: ॥१८॥
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसै: ।
व्याधिभिश्च महाघोरै: पीडयमाना व्रजंति हि ॥१९॥
महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ।
महापाषाणवर्षेण हन्यमानानिराश्रया ॥२०॥
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति च ।
महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वत: ॥२१॥

उस यमपुरके मार्ग में कहीं कण्ठ पर्यन्त गड़ जाने वाली तप्तबालू हैं तो किसी जगह दूषित गन्दाजल भरारहता है। किसी स्थानपर करीषकी अग्नि व्याप्त रहा करती है।१५। मार्गमें किसी स्थान पर सिंह-बाघ और और भेड़ियाआदि हिंसक एवं भयानक जीव होते हैं। कहीं पर अजगर भरेहुए हैं तो कहीं भयानक मच्छर तथा जौंक मिला करती हैं।१६। यमपुरका मार्ग विषैली मक्खी, सर्प और मतवाले बलोन्मत्त हाथियों से पूर्ण रहता है जोकि बीच-बीचमें जहाँ-तहाँ मिलाकरते हैं और भयदेते हैं।१७। यह रास्ता सब ओर भयावह जीवोंसे भरा-पूरारहता है। कहीं तीक्ष्णदाढ़ों से जमीन खोदने वाले जंगलीशूकर हैं तो कहीं पैनेसीगों वाले भैंसे रहाकरते हैं। सभी प्रकार के हिंसक जानवर वहाँ मिला करते हैं।१८। मार्गमें बहुतविकट डाँकिनी, विकरालराक्षस दिखाईदेते हैं। इस-तरह उस मार्गमें अत्यन्तघोर व्याधियोंसे पीड़ितहोकर जायाकरते हैं।१६ इस यमपुरके मार्गकी प्राणी भयानक धूल से व्याप्त होकर प्रचण्ड वायुके झोंकों से झकझोरते हुए होकर और बृहत्पाषाण वृष्टिसे निराश्रय एवं परम क्लेशित होकर बड़ी कठिनाईसे तय किया करते हैं।२०। किसी जगह बिजलीके सन्ताप से झुलसते हुए और किसी जगह चारों ओर से होने वाली बाणों की वर्षा से पीड़ित होते हुए इस यमपुर के मार्ग को पूरा करते हैं।२१।

पतद्भिर्वज्रपातैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः।
प्रदीप्तांगारवर्षेण दह्यमानाश्च संति हि ॥२२॥
महता पाँसुवर्षेण पूर्यमाणा रुदंति च।
महामेघरवंघौरैस्त्रस्यते च मुहुर्मुहुः ॥२३॥
निशितायुधवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वतः।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना वृजंति च ॥१४॥
महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च।
समताद् बाध्यमानाश्च शुष्यते संकुचन्ति च ॥२५॥
इत्य मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च।
निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समंततः ॥२६॥

विषमेणैव महता निर्ज्जनापाश्रयेण च ।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुष्टाश्रयेण च ॥२७॥
नीयते देहिनः सर्वे ये मूढ़ाः पापकर्म्मिणः ।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥२८॥

कहींपर प्राणियोंपर वज्रपात होता है,कहीं अत्यन्त दारुण उल्काग्नि का पातहोता है और किसी जगह अङ्गारोंकी एकदम वर्षा होती है जिससे शरीरमें भस्मीभूत होनेका कष्ट होता है ।२२। प्राणी मार्गमें धूलसे व्याप्त होकर रुदनकरते हैं और भयानक मेघोंसे भयभीत होते हैं ।२३। पापात्मा प्राणी यमपुरके मार्गमें चारों ओरसे तीखे शस्त्रोंकी बृष्टिसे भेदित होते हुए और महाखारी समुद्रकी लहरोंसे सिंचित होकर जाया करते हैं ।२४। मार्ग में बहुत रूखी व कठोर वायु लगती है, जिससे शुष्क और सुकड़े हुए हो जाते हैं ।२५। इसरीतिसे वह मार्ग बहुतही अधिक भयङ्कर होता है जिसमें न कुछ चबेना है और न कोई आधार ही । उसमें पीनेके लिये जल भी प्राप्त नहीं होता है ।२६। बड़े ही विषम, निर्जन आश्रयहीन, अन्धकार पूर्ण तथा दुरात्माओं से घिरा हुआ यमपुरीका मार्ग है, जिससे पापीजीव जाया करते हैं ।२७। जो मूर्ख पापात्मा प्राणी होते हैं उन्हें यमराज के आज्ञाकारी महाघोर दूतों के द्वारा बलात्कार से लेजाया जाता है ।२८।

एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदतश्च मुहर्मुहः ॥२९॥
प्रेता भूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतलुकाः ।
असौम्या भयभीताश्च दह्यमानाः क्षुधान्विताः ॥३०॥
बद्धाः श्रृङ्खलया केचिदुत्तनपादका नराः ।
कृष्यते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥३१॥
उरसाऽधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणाः सुदुःखिताः ।
केशपाशनिबन्धेन संकृष्यन्ते च रज्जुना ॥३२॥
ललाटे चाँकुशेनान्ये भिन्ना दुष्यंति देहिनः ।
उत्तानाः कटकपथा श्वाचदगारवर्त्मना ॥३३॥

पश्चाद्वाहुनिबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिता: ।
पूरिता श्रृङ्खलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिता: ।।३४।।
ग्रीवापाशेन कृष्यन्ते प्रयांत्यन्ये सुदु:खिता: ।
जिह्वाँकुशप्रवेशेन रज्ज्वाऽऽकृष्यन्त एव ते ।।३५।।
नासाभेदेन रज्ज्वा च व्याकृष्यन्ते तथापरे ।
भिन्ना कपोलयो रज्ज्वा कृष्यतेऽन्ये तथौष्टयो: ।।३६।।

पापी जीव यमदूतों के द्वारा पकड़े हुए अकेले-पराधीन-विवश-मित्र तथा बन्धु-बान्धवों से विमुक्त होकर अपने कुकर्मों पर चिन्ता करते हुए और बारम्बार रोते हुए मार्ग में जाया करते है ।२९। पापीप्राणी जब प्रेत होते हैं तो वस्त्ररहित उनका गला होता है, ओठ और तालू सूखे हुए हैं, सौम्यता से रहित भयभीत-परम सन्तप्त और भूखसे परम क्लेशित होकर यमपुरी की यात्रा करते हैं ।३०। उन पापियों में कुछ साँकलोंसे बंधेहुए हैं तो कुछ ऊपरको पैर कियेहुए हैं । उन्हें बलवान् यमदूत जबर्दस्तीसे खींच-कर लेजाते हैं ।३१। पापी जीवों में कुछ उत्तान होकर मस्तकपर अंकुश से विदीर्ण होते हुए परम दु:खित है तो कोई हृदय से नीचे मुख कियेहुए घिसटे चले जाते हैं, कुछ काल की पाशों से बँधी हुई रस्सीसे खिचे हुए ले जाये जाते हैं । कोई अत्यन्त क्लेशित हैं जोकि कण्टकाकीर्ण तथा अङ्गारपूर्ण मार्ग से ले जाये जाते हैं ।३२-३३। कुछ पापियोंको यमदूतोंके द्वारा मार्ग में भुजाओं को बाँधकर लेजाया जाता है । कोई श्रृङ्खलाओंसे खूब कसकर बंधेहुए उदर से पीड़ित होकर जाते हैं कुछके हाथों में कीलें ठुकी हुई रहा करती हैं ।३४। कोई कोई पापात्मा गर्दन के फाँसेसे खींचे जाते हैं । कोई जिह्वाँकुश प्रवेश वाली रस्सीसे खींचेहुए परमदु:खित होकर यमपुरीके मार्गमें जाते हैं । कुछ लोग नासिकाके भेदन वाली रस्सीके द्वारा तथा कुछ कपोल और होठोंको भेदन वाली रस्सी के द्वारा मार्गमें यमके दूतोंसे खींचेहुए होकर जाया करते हैं ।३५-३६।

छिन्नाग्रपादहस्ताश्च छिन्नकर्णोष्टनासिका: ।
संछिन्नशिश्नवृषणा: छिन्नभिन्नांगसंधय। ।।३७।।

आभिद्यमानाः कुंतैश्च भिद्यमानाश्च सायकैः ।
इतश्चेतश्च धावतः क्रन्दमाना निराश्रयाः ॥३८॥
मुद्गरै र्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहूर्मुहुः ।
कंटकैर्विविधैर्घोरैर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥३९॥
भिन्दिपालैर्विभिद्यंते स्रवंतः पूयशोणितम् ।
शकृतांकृमिदिग्धाश्च नीयते विवशा नराः ॥४०॥
याचमानाश्च सलिलमन्नं वापि बुभुक्षिताः ।
छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानल पुनः ॥४१॥
दानहीनाः प्रयांत्येवं प्राथयंतः सुखं नराः ।
गृहीतदानपाथेयाः सुखं यांति यमालयम् ॥४२॥

उन पापात्माओंमें कुछ आगेके हाथ-पैरोंसे छिन्न होते हैं-कोई कान-ओठ और नाकसेछिन्न तथा कुछ अण्डकोष एवं लिंगसेछिन्न और कुछ अंगों के जोड़ोंसे छिन्न-भिन्नहोकर लेजाये जाते हैं ।३७। यमदूतोंके द्वारा अत्यन्त त्रासको प्राप्त पापात्मा यमपुरीके मार्गमें अलकोंसे विद्यमान होकर वाणोंसे विदीर्ण-निराश्रय और इधर-उधर को रोकर दौड़ते भागते हुए लेजाये जाते हैं ।३८। कुछपर मुग्दर से तथा लोहेके डन्डोंसे बारम्बार प्रहार किये जाते हैं और वे घोरपरम सन्तप्तसूर्यके समान काँटोंसे पीड़ित होते हैं ।३९। वहाँ मार्गमें कुछपापी भिन्दिपाल अस्त्रोंसे भेदित किये जाते हैं । विष्ठाके कीड़ों से, जिनसे रुधिर और मवाद टपकता रहता है, कुछ पापात्मा नोंचे जाते हैं जिनके कष्टसे विवश होते हुए यमपुरीको जाया करते हैं ।४०। यमपुरके मार्गमें उन पापियोंको खानेका अन्न तथा पीनेका जल नहीं मिलता है इसलिये वे अत्यन्त व्याकुल होकर अन्नकी और जल की याचना करतेहुए तथा शीताधिक्य से बेचैन अग्नि तापको माँगते हुए यमदूतों द्वारा ले जाये जाते हैं ।४१। जिन्होंने संसारमें कभी कुछभी दान नहीं दिया, वे दान हीन मनुष्यही ऐसी याचना भूख निवारणके लिये करते हुए जाते हैं । जिन्होंने दानदिया है वे चवेना ग्रहणकर सुखसे यम-लोकको जाया करते हैं ।४२।

एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदा ।
प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यते यमाग्रतः ॥४३॥

तत्र ये शुभकर्माणस्तांस्तु सम्मानयेद्यमः ।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च ।।४४।।
धन्या यूय महात्मानो निगमोदितकारिणः ।
यैश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ।।४५।।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ।
स्वर्गं गच्छध्वममलं सर्वकामसमन्वितम् ।।४६।।
तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यस्य संक्षयात् ।
यत्किंचिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ।।४७।।
धर्मात्मानो नरा ये च मित्रभूता इवात्मनः ।
सौम्यं मुखं प्रपश्यति धर्मराजानमेव च ।।४८।।
ये पुनः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ।।४९।।

इस प्रकारसे वहाँ मार्गमें ही कर्मोंका न्याय प्राप्त करते हुए जीवात्मा कष्टके साथ प्रेतपुरीमें पहुँचते हैं और यमदूत उन्हें बताकर यमराजकेसमक्ष में खड़ा करते हैं ।४३। उन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले होते हैं उनका धर्मराजभी स्वागतकरते अर्घ्य पाद्य और आसनदेकर सम्मानकिया करते हैं ।४४। उन धार्मिक प्राणियोंसे यमराज कहा करते हैं-आप सब शास्त्रके अनुकूल कर्म करने वाले परममहात्मा और धन्यहो । आप लोगोंने दिव्य सुख प्राप्य करनेके लिएही पुण्य कर्म किये हैं ।४५। यमराज धार्मिक प्राणियोंसे कहते हैं आपलोग दिव्यविमानोंपर आरूढ़होकर दिव्यांगनाओं के उपभोगका आनन्दस्वाद करतेहुए समस्त कामनाओंके प्रदान करने वाले निर्मल स्वर्गमें जाओ । वहाँ महाभोगोंके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जाने पर जो कुछ थोड़ा पाप शेष रहा होगा तो उसे यहाँ भोगोगे ।४६-४७। जो धर्मात्मा मित्रस्वरूप ऐसीआत्माके पुण्यपुरुष हैं वे धर्मराजकेरूपमेंभी सौम्य मुख पाते हैं ।४८। जो क्रूर तथा बुरे पापकर्म करनेवाले पुरुष होते हैं उन्हें यमराजका स्वरूपही अत्यन्त डरावना और विकराल दिखलाई देता है । उनके सामने तो यमराज बड़ी भयानक दाढ़ों से युक्त विकराल मुखकृति

वाले और चढ़ी हुई टेड़ी भृकुटियों से कुटिल दृष्टि वाले दिखलाई दिया-करते हैं ।४९।

ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रु मूर्द्धप्रस्फुरिताधरम् ।
अष्टादशभुजक्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् ।।५०।।
सर्वायुधोधोद्धृतकरं सर्वं दण्डेन तर्जयन् ।
सुमहामहिषारूढ दीप्ताग्निसमलोचनम् ।।५१ ।
रक्तमाल्यांबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम् ।।५२।।
ग्रसंतमिव शैलेन्द्रमुद्गिरन्तमिवानलम् ।
मृत्युश्चैव समीपस्थः कालानलसमप्रभः । ५३।।
कालश्चांजनसंकाशः कृतांतश्च भयानकः ।
मारी चोग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा ।।५४।।
विविधा व्याधमः कुष्ठा नानारूपा भयावहाः ।
शक्तिशूलांकुशधराः पाशचक्रासिपाणय: ।।५५।।
वज्रतुंडधरा रुद्राः क्षुरतूणधनुर्द्धराः ।
नानायुधधराः सर्वे प्रहार्वारा भयङ्कराः ।।५६।।

पापियोंके समक्ष उनका स्वरूप शिरपर लम्बे केश-बड़ी दाढ़ी-मूंछ-फड़-फड़ाते हुए अधर-अठारह भुजा-क्रोधसे पूर्ण और अञ्जनके समान वर्ण वाला होता है ।५०। पापात्मा जीवोंके सामने तो धर्मराज समस्त शस्त्रों से सुसज्जित हाथों वाले-सब प्रकारके दण्ड देने फटकार देने वाले-महा महिषपर आरूढ़ और जलतीहुई आगके समानरक्त एवं तेजपूर्ण नेत्रों वाले दिखाई देते हैं ।५१। पापी प्राणियोंके लिये यमका स्वरूप रक्तमाला और वस्त्रतुल्य भयानक घोरगर्जना करने वाले और समुद्रका पान करते हुए से स्थित दिखाईदेते हैं ।५२। उस समय यमराज ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे हिमाचल पर्वतको निगल रहे हैं-अग्निका वमन कररहे हैं ऐसे स्वरूप में धर्मराज स्वयंस्थित रहते हैं और उनके समीपमें कालानलके तुल्य कांति वाले मृत्यु स्थित रहते हैं। यमराज के दूतभी इधर-उधर रहते हैं जिनका

स्वरूपभी भयाभह होता है और इनके अतिरिक्त अञ्जनके समान कृष्ण वर्ण वाला काल-भयानक राजमारी-उग्र महामारी तथा दारुण कालरात्रि भी वहाँ यमके निकटमें विद्यमान रहते हैं।५३-५४। वहाँ अनेक रूपवाले रोग, नाना विधि कुष्ठादि, शक्ति, त्रिशूल, अंकुश, पाश, चक्र खड्ग हाथों में धारण करने वाले दूत उपस्थित रहते हैं।५५। यमदूतोंके पास वज्र, तुण्डधारी रुद्र, छुरे तकस और धनुष होते हैं। ये सभी नाना भाँतिके अस्त्रों को घारण करने वाले हैं, महान् वीर और अत्यन्त भयानक होते हैं।५६।

असंख्याता महावीराः कालाञ्जनसमप्रभाः।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ॥५७॥
अनेन परिचारेण वृत त घोरदशनम्।
यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त च भीषणम् ॥५८॥
निर्भर्त्सयति चात्यन्तं यमस्तान्पापकर्मणः।
चित्रगुप्तश्च भगान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयेत् ॥५९॥

यमदूतों की संख्या ही नहीं है अर्थात् असंख्य होते हैं। वर्णसे बिल्कुल काजलके तुल्य काले और सभी हाथों में अस्त्र-शस्त्र रखने वाले परम भयानक होते हैं।६७। ऐसे परिकरसे घिरे हुए धर्मराजके भयानक स्वरूप को, अति भयङ्कर चित्रगुप्त को पापी प्राणी देखाकरते हैं।५८। उस समय पापियों के सामने आतेही यमराज बुरीतरह ललकारके साथ डाँटते हैं। चित्रगुप्त अनेक धर्मके बचनोंसे बोधन किया करते हैं।५९।

नरकों के विभिन्न भेद वर्णन

भो भो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारकाः।
गर्विता रूपीवीर्य्येण परदारावमर्द्दकाः ॥ १ ॥
यत्स्वयं क्रियते कर्म तदिद भुज्यते पुनः।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दूष्कृतं कृतम् ॥ २ ॥
इदानीं कि प्रलप्यध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः।
भुज्यतां स्वानि कर्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्॥३॥

एवं ते पृथिवीपालाः सम्प्राप्तास्तत्समीपतः ।
स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्कर्मबलदर्पिणः ॥ ४ ॥
तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः ।
संशिक्षयति धर्मज्ञो यमराजानुशिक्षया ॥ ५ ॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः ।
अल्पकालस्य राज्यस्कृते कि दुष्कृत कृतम् ॥ ६ ॥
राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः ।
यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः ॥ ७ ॥

महाराज चित्रगुप्त ने पापात्मा प्राणियोंसे कहा-अरे महान् पाप-कर्म करने वालो ! दूसरोंके धनका हरण करने वालो ! अनेक रूप-लावण्य तथा वीर्य-पराक्रम से गर्वित होने वालो ! दूसरोकी स्त्रीसे रमण करने वालो ! तुमनेजो संसारमें ऐसे बुरेकर्म किये हैं अब उनके दण्डभोग भोगने पड़ेंगे। बताओ तुमने ही क्लेश के उत्पन्न करने के लिये ऐसे पाप क्यों किये थे ? ।१-२। इस समय तुम अपनेही कर्मोंसे उत्पीड़ित होतेहुए क्यों रोते चिल्लाते हो ? अब कर्मोंके फलोंको भोगो, इसमें अन्य किसीका कुछ भी दोष नहीं है ।३। सनत्कुमारजी ने कहा-इसी प्रकारसे अपने महाघोर बुरे कर्मोंसे युक्त और बलका घमण्ड रखने वाले राजालोग भी यमराजके सामने खड़े कियेजाते हैं ।४। महाप्रभु धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराजके आदेश से अत्यन्त क्रोधके साथ उन राजाओं को शिक्षा देते हैं ।५। चित्रगुप्त कहते हैं-अरे दुराचारमग्न ! प्रजाकासर्वनाश करनेवाले राजाओ ! तुमने बहुतही स्वल्प समयतक राज्यभोग करनेमें भी ऐसा पाप क्यों किया ? ।६। हे नृपवृन्द ! आप लोगोंने राज्य भोगनेके कारण अन्याय और बलसे प्रजाकोदण्ड किया है । अब प्रजाके सतानेका फल भोगो ।७।

क्व तद्राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभ कृतम् ।
तत्सवं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥ ८ ॥
पश्यामि तत्बलं नष्टं येन विध्वंसिताः प्रजाः ।
यमदूतैर्योज्यमाना अधुना कीदृशं भवेत् ॥ ९ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्ध्वा यमेन ते ।
स्वानि कर्माणि शोचंति तूष्णीं तिष्ठंति पार्थिवा ॥१०॥
इति कर्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्मराड्यमः ।
तत्पापपंकशुद्धयर्थमिदं दुतानब्रवीत् च ॥११॥
भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीन्वलात् ।
नियमेन विशुद्धयध्वं क्रमेण नरकाग्निषु ॥१२॥
ततः शीघ्रं समादाय नृपान्संगृह्य पादयोः ।
भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च ॥१३॥
सर्वप्रायेण महताऽतीव तृप्ते शिलातले ।
आस्फलय ते तरसा वज्रेणेव महाद्रुमा ॥१४॥

अब वह तुम्हाराज्य और स्त्री कहाँ हैं जिनके लिये तुमने महान् पाप किये थे? अब यहाँपर तो तुम सबको छोड़कर अकेलेही उपस्थित हो ।८ मैं इससमय तुम्हारा वह समस्तबल नष्टहुआ देखरहाहूँ जिससे तुमने अपनी प्रजाका विध्वंस करडाला था । अबतो यमदूतोंके द्वारा अपराधीकी भाँति बँधेहुए कैसे हो ।९। सनत्कुमारजी ने कहा-यमराज के ऐसे अनेक बचन सुनकर राजा लोग चुपचाप अपने कर्मोंको सोचते और पछताते हैं ।१०। धर्मका न्याय करने वाले यमराज राजाओंके उन कर्मोंके उद्देश्यको लेकर उनके पापपंकसे शुद्धि पानेके लिये अपने दूतोंको आदेशदेते हैं । यमराजने कहा-हे चण्ड ! हे महाचण्ड ! तुम जबर्दस्ती इन राजाओं को पकड़ कर क्रमसे नरकरूपी आगमें डालदो और इनकी शुद्धिकरो और नियमका पूर्ण पालन करो ।११-१२। सनत्कुमारजीने कहा-यमराजकी आज्ञापातेही दूतों ने बलात्कार से राजाओंको पकड़ लिया और उनके दोनों पैरों को पकड़ कर जोरसे घुमाया और ऊपर उठाकर नीचे फेंक दिया ।१३। यम-दूत विशाल सन्तप्त शिलाओं को तलपर उन्हें पटककर महावृक्षके समान वज्र से बड़े वेगके साथ ताड़न करते हैं ।१४।

ततः सः रक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः ।
निसंज्ञः स तदा देही निश्चेष्टः संप्राजायते ॥१५॥

ततः स वायुना स्पष्टः स तैरुज्जीवितः पुनः ।
ततः पापबिशुद्ध्यर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे ॥१६॥
अष्टाविशतिसंख्याभिः क्षित्यध सप्तकोटयः ।
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थितः ॥१७॥
घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ।
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी ॥१८॥
षष्ठी तलातलाख्या च सप्तमी च भयानका ।
अष्टमी कालरात्रिश्च नवमो च भयोत्कटा ॥ १९ ॥
दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा ततोऽप्यधः ।
चण्डकोलाहला चान्या प्रचडा चंडनायिका ॥२०॥
पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका ।
कराला दिकराला च वज्रा विंशतिमा स्मृता ॥२१॥

उस समय जब उनके कानोंसे रक्त टपकता है तब प्राणी जर्जर होकर चेतनाशून्य हो जाता है ।१५। फिर वायुका स्पर्शपाकर पुनः उनके द्वारा जीवित करके पापसे शुद्धि पानेके लिये नरकमें डाल दिया जाता है ।१६। वह नगर पृथ्वीके नीचे सातकरोड़ अट्ठाईसयोजन दूर सातवेंतलके अन्तमें घोर अन्धकारोंमें स्थित है ।१७। उन नरकोंके नाम इस प्रकार हैं प्रथम कोटि 'घोर' नामक है । उसके नीचे 'सुघोर' फिर क्रमसे अतिघोर, महा-घोर और पांचवीं यातना का नाम घोर रूप है ।१८। छटी तलातल, सातवीं भयानक आठवीं कालरात्रि और नवमी यातनाका नाम भयोत्कटा है ।१९। इसकेभी नीचे दशवीं चण्ड,फिर महाचण्ड,चण्ड कोलाहल, प्रचण्ड चण्ड नामक हैं ।२०। इसी तरह फिर आगे पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा, भीषण नायिका, कराला, विकराला और बीसवीं वज्रा नामक है ।२१।

त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलार्तिदा ।
समा भीमबलात्युग्रा दीप्तिप्रायेति चाष्ठमी ॥२२॥
इति ते नामतः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः ।
अष्टाविंशतिरेवैताः पापानां यातनात्मिकाः ॥२३॥

तासां क्रमेण विज्ञेयाः पञ्च पञ्चैव नायकाः ।
प्रत्येक सर्वकोटीनां नामतः सन्निबोधतः ॥२४॥
रौरवः प्रथमस्तेषाँ रुवते यत्र देहिनः ।
महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदति च ॥२५॥
ततः शीतं तथा चोष्णं पंचाद्या नायकाः स्मृताः ।
सुघोरः सुमहातीक्ष्णस्तथा संजीवनः स्मृतः ॥२६॥
महातमो विलोमश्च विलोश्चापि कंटकः ।
तीव्रवेगः करालश्च विकरालः प्रकंपनः ॥२७॥
महावक्रश्च कालसूत्रः प्रगर्जनः ।
सूचीमुखः सुनेतिश्च खादकः सुप्रपीडनः ॥२८॥

इनके बाद में त्रिकोणा, पञ्चकोना, सुदीर्घा, अखिलार्त्तिदा, समाभीमवला, अभोग्रा और अन्तिम दीप्तमाया है ।२२। इस तरह घोर नरक कोटि के नामों वाली ये अट्ठाईस पापों की यातनायें होती हैं ।२३। उनमें से क्रम पाँच-पाँच नायक यातना समझनी चाहिये । इनमें से सब कोटियों में प्रत्येक नामसे विख्यात हैं ।२४। उनमें से प्रथम 'रौरव' है जहाँ जाकर सभी प्राणी पीड़ित होकर रोया करते हैं। महा रौरव की पीड़ा तो ऐसी विकट होती है कि बड़े पुरुष भी रुदन किया करते हैं ।२५। इसके बाद शीत और उष्ण पाँच आद्य नायक हैं जिन्हें सुघोर, सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा गया है ।२६। महातम, विलोम, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकपन । ।२७। महावक्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन ।२८।

कुम्भीपाक सुपाकौ च क्रकचश्चातिदारुणः ।
अङ्गारराशिभवन मेदोऽसृक्प्रहितस्ततः ॥२९॥
तीक्ष्णतुंडश्च शकुनिर्महासंवर्तकः क्रतुः ।
तप्तजतुः पङ्कलेपः प्रतिमांसस्त्रपूद्भवः ॥३०॥
उच्छ्वासः सुनिरुच्छ्वसो सुदीर्घः कूटशाल्मलिः ।
दुरिष्टः सुमहावादः प्रवाहः सुप्रतापनः ॥३१॥

ततो मेघो वृषः शाल्मः सिंहव्याघ्रगजाननः ।
श्वसूकराजमहिषघूककोकवृकाननाः ॥३२॥
ग्रहकुंभीननक्राख्याः सर्पकूर्माख्यवायसाः ।
गृध्रोभूकजलौकाख्याः शार्दूलक्रथकर्कटाः ॥३३॥
मडूकः पूतिवक्त्रश्च रक्ताक्षः पूतिमृत्तिकः ।
कणधूम्रस्तथाग्निश्च कृमिगन्धिवपुस्तथा ॥३४॥
अग्नीध्रश्चाप्रतिष्टश्च रुधिराभः श्वभोजनः ।
लालाभक्षांत्रभक्षौ च सर्वभक्षः सुदारुणः ॥३५॥

कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगारराशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित ।२९। तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्त्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव ।३०। उच्छ्वास, सुनिच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन, ।३१। और मेघ वृष, शाल्म, सिंह, व्याघ्र, हाथीके मुखवाले ।३२। मगर, कुम्भीन, नक्र नामवाले, सर्प, कच्छप, काग नामक, गिद्ध, उल्लू जलौका नाम वाले, गीदड़, ऊंट, कैंकड़े धाम वाले ।३३। मेंढ़क, प्रतिवक्त, रक्ताक्ष, पूति, मृतिका, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धि वपु । ।३४। अग्निध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अन्त्र भक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण ।३५।

कंटकः सुविशालश्च विकटः कटपूतनः ।
अम्बरीषः कटाहश्च कष्टा वैतरणी नदी ॥३६॥
सुतप्तलोहशयन एकपादः प्रपूरणः ।
असितालवनं घोरमस्थिभंगः सुपूरणः ॥३७॥
विलातसोऽसुयंत्रोपि कूटपाशः प्रमर्द्दनः ।
महाचूर्णः सुचूर्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा ॥३८॥
पर्वतः क्षुरधारा च तथा यमलपर्वतः ।
मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूमश्च शीतलः ॥३९॥
मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलांगलम् ।
तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपम् ॥४०॥

समोहमस्थिभगश्च तप्तचलमयोगुडम् ।
बहुदुखं महाक्लेशः कश्मलं शमल मलम् ॥४१॥
हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुगः ।
एकपादत्रिपादश्च तीव्रश्चाचीवरं तमः ॥४२॥

कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायक, वैतरणी, नदी ।३६। सुतप्त, लोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर अस्थिभङ्ग, सुपूरण ।३७। विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय ।३८। पर्वत, क्षुरधारा, यमल, पर्वत, मूत्र, विष्ठा, अश्रूकूप, क्षारकूप, शीतल ।३९। मूसल ऊखल, शिला, शकट, लांगल, तालपत्र, असिगहन, महाशटक मण्डप ।४०। समोह, अस्थिभंग, तप्त, चलमय, गुड़, बहुदुःख, महाक्लेश, शमल, मलात, ।४१। हलाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर, तम ।४२।

अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पंचपंचकम् ।
कोटीनामानुपूर्व्येण पंच पंचैव नायकाः ॥४३॥
रौरवाय प्रबोध्यन्त नरकाणां शतं स्मृतम् ।
चत्वारिंशच्चतं प्रोक्तं महानरकमण्डलम् ॥४४॥
इति ते व्यास संप्रोक्ता नरकस्य स्थितिर्मया ।
प्रसंख्यानाच्च वैराग्य शृणु पापगतिं च ताम् ॥४५॥

ये उपर्युक्त क्रमसे सात सौ नरक हैं और प्रतिकोटि में से पाँच-पाँच नायक हैं ।४३। रौरव के ही सौ नरक कहे गये हैं और चालीस सौ महानरक मण्डल कहा गया है ।४४। हे व्यासजी ! इस तरह मैंने आपको नरकों की स्थिति संख्याके सहित कही है । अब वैराग्य और उसकी पाप गति को भी सुनो ।४५।

नरक यातना वर्णन

एषु पापात्माः प्रपच्यन्ते शोष्यन्ते नरकाग्निषु ।
यातनाः भिर्विचित्राभिरास्वकर्मक्षयाद् भृशम् ॥ १ ॥

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ घास्यन्ति धावतः ।
तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरूपतः ॥ २ ॥
सुगाढं हस्तयोर्बद्धा ततः शृङ्खलया नराः ।
महावृक्षाग्रशाखासु लम्व्यन्ते यमकिंकरैः ॥ ३ ॥
ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता दोलन्ति किंकरैः ।
दोल्यन्तश्चाति वेगेन विसञ्ज्ञा यांति योजनम् ॥ ४ ॥
अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं पुनः ।
पादयोर्बध्यन्ते तेषाँ यमदूतैर्महाबलैः ॥ ५ ॥
तेन भारेण महता प्रभृश ताडिता नराः ।
ध्यायन्ति स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥६॥
ततोऽकुंशैरग्निवर्णैर्लोहदंडैश्च दारुणैः ।
हन्यन्ते किंकरैर्घोरैः समन्तात्पापकर्मिणः ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमार जी ने कहा-इन उक्त नरकों में पापात्मा प्राणी गिराये जाते हैं और वे वहाँपर अनेक प्रकारकी यातनाओं द्वारा अपने कृत दुष्कर्मों के नाशहो जानेकर अत्यन्त तीव्र नरककी अग्नियोंमें सुखाये जाते हैं ।१। धातुओं के मैल को हटने के लिये जैसे उन्हें तीक्ष्ण अग्निनें रखते हैं उसी तरह पापी प्राणियोंको पाप-नाशके उद्देश्यसे ही अपने कर्मोंके अनुसारही नरकोंमें गिराया जाता है । २। वहाँ यमराज के दूत पापियोंके हाथों को शृङ्खलासे मजबूतीके साथ बाँधकर इसके पीछे महावृक्षकी शाखों में उन्हें लटकाते हैं ।३। तब वे पूर्ण यत्नद्वारा यमकिंकरों के फेंके हुए काँप उठते हैं और चेतना रहित होकर योजनों तक चले जाते हैं ।४। फिर महा बलवान यमदूत आकाशमें स्थितहोकर उनके पैरों में सौ भार लोहा बाँध देते हैं ।५। उस भारी बोझ से अत्यन्त ताड़ित मनुष्य अपने किये हुए दुष्कर्मों का स्मरण करते हैं और निश्चल एवं मौन रह जाया करते हैं ।६। इसके पश्चात् यमके दूत चारों ओर से अंकुशों तथा अग्नि के तुल्य दारुण लोहे के दण्डों से पीटते हैं ।७।

ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः ।
समन्ततः प्रलिप्यन्ते तीव्रेणे तु पुनः पुनः ॥ ८ ॥

द्रुतेनात्यंतलिप्तेन कृत्तांगा जर्जरीकृताः ।
पुनर्विदार्य्य चांगानि शिरसः प्रभृति क्रमात् ॥ ९ ॥
वृंताकवत्प्रपच्यते तप्तलोहकटाहकैः ।
विष्ठा पूर्णे तथा कूपे कृमीणाँ निचये पुनः ॥१०॥
मेदोऽसृक्पूयपूर्णायाँ वाप्यां क्षिप्यति ते पुनः ।
भक्ष्यंते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ॥११॥
श्वभिर्दंशैर्वृकैर्व्याघ्रै रौद्रैश्च विकृताननैः ।
पच्यन्ते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्तांगारराशिषु ॥१२॥
भिन्नाः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्मणा ।
तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः ॥१३॥
तिला इव प्रपीड्यन्ते चक्राख्ये जनपिंडकाः ।
भ्रज्यते चातपे तप्ते लोहभाण्डेष्वनेकधा ॥१४॥

इसके अनन्तर बार-बार अत्यन्त जलते हुए आगके अङ्गारों से उनका सारा शरीर लिप्त किया जाता है ।८। अत्यन्त लिप्त होने के कारण छिन्नाङ्ग और अति जर्जरी भूत होकर क्रमशः मस्तक के विदीर्ण होनेपर पके हुए बैंगन के सदृश लोहे के संतप्त बड़े कड़ाह में पकाये जाते हैं । इसी तरह पुनः विष्टासे भरे हुए कूपमें और कीड़ोंके समुदाय में डाल दिये जाया करते हैं ।९-१०। इसके अनन्तर उन पापी मनुष्यों को चर्बी, रुधिर और मवादसे परिपूर्ण बावड़ी में फेंक दिया जाया है । वहाँ से बुरी तरह बहुत ही तीक्ष्ण कीड़ोंके द्वारा तथा लोहे जैसी चोंचवाले कौओ से काटे और खाये जाते हैं ।११। इसी तरह कुत्ते डाँस, भेड़िये, भयानक और अत्यन्त विकट मुँह वाले बाघ आदि हिंसक पशुओं से काटे जाते हैं तथा जलते हुए अङ्गारों में मछली की भाँति पकाये जाते हैं ।१२। वहाँ फिर ये प्राणी अपनेही किये हुए बड़े-बड़े पापों के कारण अत्यन्त तेज त्रिशूल के छेदन हुए कोल्हू में डाल दिये जाते हैं ।१३। वहां तिलों के समान उनके शरीर पीसे जाते हैं और खूब सन्तप्त एवं आग से तपे हुए लोहे के पात्रों में उनकी भुनाई की जाती है ।१४।

तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः ।
बहुधा पच्यते जिह्वा प्रपीडयोरसि पादयोः ॥१५॥

यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्यापि सर्वतः ।
निःयेषनरकेष्वेवं क्रमन्ति क्रमशो नराः ॥१६॥
नरकेषु च सर्वेयु विचित्रा यमयातनाः ।
याम्यंश्च दीयये व्यास सागेषु सुकष्टदाः ॥१७॥
ज्वलदंगारमादाय मुखमापूयं ताडचते ।
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनः पुनः ॥१८॥
घृतेनात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम् ।
इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य हन्यते ॥ १९ ॥
विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि पूर्यमाणाः क्वचित्क्वचित् ।
परिष्वजति चात्यग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् ॥२०॥
हन्यन्ते पृष्ठदेशे च पुनर्दीप्तैर्महाघनैः ।
दन्तुरेणातिकुंठेन क्रकचेन बलीयसा ॥२१॥

तेलसे पूर्ण गर्म-गर्म कड़ाहमें बार-बार उनके पैर और हृदय में पीड़ा देकर जिह्वाको पकाया जाता है ।१५। इसी प्रकारसे नरकों की बड़ी ही भयानक तीव्र यातनायें पाकर पापी मनुष्य समस्त नरक में क्रम से भेजे जाते हैं ।१६। हे व्यासजी ! इन सम्पूर्ण नरकोंकी यातनायें अत्यन्त कष्ट देने वाली बहुत ही अद्भुत होती है । वहाँ जबर्दस्ती से उन यमके दूतों के द्वारा मनुष्य के सभी अंगोंको महान कष्ट दिया जाता है ।१७। जलते हुए अंगारे और कोयले मुँह में भरकर ताड़ना दी जाती है और संतप्त अंगारों से तथा तामे की शलाकाओं से जलाया जाता है ।१८। कभी-कभी गर्म तेल या घृत मुख में भरकर खूब पीड़ा देकर पीटा जाता है ।१९ कहींपर मल और कीड़ों से भरे हुए अत्यन्त उग्र लोहे की शाल्मली को लिपटा देते हैं ।२०। इसके पश्चात् सुर्ख गर्म लोहे की घनों से पीठ में चोट दीजाती है और बड़े-बड़े दाँतोंवाले आरोसे चिराई की जाती है ।२१

शिरः प्रभृति पीडयन्ते घोरैः कर्मभिरात्मजैः ।
खाद्यंते च स्वमांसानि पीयते शोणितं स्वकम् ॥२२॥
अन्नं पानं न दत्तं यैः सर्वदा स्वात्मपोषकैः ।
इक्षुवत्ते प्रपीडयते जर्जरीकृत्य मुद्गरैः ॥२५॥

असितालवने घोरे छिद्यंते खण्डशस्ततः ।
सूचीभिर्भिन्नसर्वांगास्तप्तशूलाग्ररोपिताः ॥२४॥
संचाल्यमाना बहुशः क्लिश्यंते न म्रियंति च ।
तथा च तच्छरीराजि सुखदुःखसहानि च ॥२५॥
देहादुत्पाटय मांसानि भिद्यंते स्वैश्च मुद्गरैः ।
दंतुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥२६॥
निरुच्छ्वासे निरुच्छ्वासास्तिष्ठन्ति नरके चिरम् ।
उत्ताडयन्ते तथोच्छ्वासे वालुकासदने नराः ॥१७॥
रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधैर्वधैः ।
महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदेति च ॥२८॥

उनके ही घोर दुष्कर्मोंके कारण उनके मांस खाये तथा उनका रुधिर पीया जाता है । वहाँ नरकोंमें पापात्मा पुरुष इसी भाँति परम पीड़ित किये जाते हैं ।२२। जिन्होंने कभी किसीको अन्न का दान न देकर केवल अपने ही शरीर का पोषण किया था वे वहाँ बड़े-बड़े मुगदरों से खूबही कूटे तथा गन्ने के समान पेरे भी जाते हैं ।२३। फिर महाघोर असिताल वन में खण्ड खण्ड करके छेदित होते हैं और सुईयों से उनके समस्त अंग भिन्न हो जाते हैं । इसके पश्चात् तपाये हुए त्रिशूल पर रख दिया जाता हैं ।२४। इस तरह वहाँ उन पापी प्राणियों को अत्यन्त कष्ट का अनुभव होता है किन्तु मरते नहीं उनको तो केवल दुःखका अनुभव करनेके लिये ही ऐसी पीड़ा दी जाती है और उनका शरीर वह सभी सहन करनेके योग्य होता है ।२५। अति बलवान् दन्तुर आकार वाले घोर यमदूतों के द्वारा मुग्दरों से देहका मांस उखाड़ कर भेदन किया जाता है ।२६। निरुच्छ्वास नाम वाले नरकमें बिना साँस लिये ही स्थिर रहना पड़ता है । उच्छ्वास नामक नरक में मनुष्य बालूके घर में ताड़ित किये जाते हैं ।२७। रौरव नामक नरक में रुदन करते हुए पापी मनुष्य अनेक वधों से पीड़ित होते हैं और महारौरव नरक में तो बड़े-बड़े पुरुष भी रो पड़ते ।२८।

परसु वक्त्रे गुदे मुण्डे नेत्रयोश्चैव मस्तके ।
निहन्यंते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशंकुभिः ॥२९॥

सुतप्तवालुकायां तु प्रयोज्यंते मुहुर्मुहुः ।
जतुपके भृशं तप्ते क्षिप्ताः क्रन्दन्ति विस्वरम् ॥३०॥
कुम्भीपाकेषु पच्यते तप्ततैलेषु वै मुने ।
पापिनः क्रूरकर्माणोऽसह्येषु सर्वथा पुनः ॥३१॥
लालाभक्षेषु पापास्ते पात्यंते दुःखदेषु वै ।
नानास्थानेषु च तथा नरकेषु पुनः पुनः ॥३२॥
सूचीमुखे महाक्लेशे नरके पात्यते नरः ।
पापी पुण्यविहीनश्च ताडयते यमकिंकरैः ॥३३॥
लोहकुम्भे विनिक्षिप्ताः श्वसन्तश्चशनैः शनैः ।
महाग्निना प्रपच्यते स्वपापैरेव मानवा ॥३४॥
दृढं रज्ज्वादिभिर्बद्ध्वा प्रपीडयते शिलासु च ।
क्षिप्यंते चान्धकूपेषु दश्यते भ्रमरैर्भृशम् ॥३५॥

पैरोंमें, गुदामें, मुखमें, शिरमें, नेत्रोंमें सर्वत्र अत्यन्त तपी हुई लोहेकी शलाकाके द्वारा अत्यन्त ताड़ना दीजाती है ।२९। वहाँ खूब तपीहुई रेतमें उन्हें डालदिया जाता है तथा जीवोंसे परिपूर्ण कीचड़में फेंकदेते हैं जहाँकि स्वरहीन होकर वे रुदन कियाकरते हैं ।३०। वे मुने ! कुम्भीपाक नामवाले नरकमें अत्यन्त तपाये हुए तेलमें पापी लोगों को डालकर पकाते हैं। यह यातना उनको दीजाती है जो बहुतही क्रूरतासे पूर्ण करनेवाले इस संसार में रहे होते हैं ।३१। नरकोंमें ऐसे उग्र दुष्कर्म करने वाले पापात्मा मनुष्यों को अत्यन्त कष्टदायक लालाभक्ष नरकों में तथा अनेक ऐसे ही भीषण नरकोंमें बारम्बार गिराया जाता है ।३२ सर्वथा पुण्यसे हीन महापापी प्राणियोंको महान्क्लेश देनेवाले सूचीमुख नामक नरकमें यमदूतोंके द्वारा बलात् गिरा दियाजाता है और वहाँ अनेकतरहकी ऊपरसे ताड़नाभी दी जाती है ।३३। लोहकुम्भमें पतितपापी धीरे-धीरे साँस लिया करते हैं। अपने पाप कर्मों के कारण वहाँ मनुष्य महाग्नि के द्वारा पकाये जाते हैं ।३४।दृढ़ रस्सीसे बाँधकर शिलाओं पर यातना दीजाती है तथा अन्ध कूपों में डाल दिये जाते हैं जहाँ भ्रमरोंसे वे खूब ही डसे जाया करते हैं ।३५।

कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः ।
सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम् ॥३६॥
महाज्वानेऽत्र नरके पापाः क्रदन्ति दुःखिताः ।
इतश्चेतश्च धावान्ति दह्यमानास्तदर्चिषा ।३७॥
पृष्ठे चानीय तुण्डाभ्याँ विन्यस्तस्कंधयोजिते ।
तयोर्मध्येन वाकृष्य बाहुपृष्ठेन बाढतः ।।३८॥
बद्धाः परस्पर सर्वे सुभृशं पाशरज्जुभिः ।
बद्धपिण्डास्तु दृश्यते महाज्वाले तु यातनाः ॥३९॥
रज्जुभिर्वेष्टिताश्चैव प्रलिप्ताः कर्द्मेन च ।
करीषतुषवह्नौ च पच्यंते न म्रियंति च ॥४०॥
सुतीक्ष्ण चरितास्ते हि कर्कशासु शिलासु च ।
आस्फाल्य शतशः पापाः रच्यते तृणवत्ततः ॥४१॥
शरीराभ्यंतरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः ।
भक्ष्यते तीक्ष्णवदनैरात्मदेहक्षयाद् भृशम् ॥४२॥

जब कीड़ों से काटे हुए होकर उनके सब अङ्ग छिन्न एवं विदीर्ण हो जाते हैं तो फिर उन्हें अत्यन्त तपी हुई भूभलमें फेंक देते हैं ।३६। इस महान् ज्वालावाले नरकमें पापी परम उत्पीड़ित एवं दुःखित होकर रोया करते हैं और इधर-उधर लपट से भस्मीभूत होकर दौड़ लगाया करते हैं ।३७। मुखों द्वारा पीठपर लाकर कन्धे पर रखके बाहु तथा पीठ से या दोनोंके मध्यभाग से अत्यन्त वेगसे खींचकर पापकी रस्सोंसे बंधेहुए समस्त प्राणी महा-ज्वाल नामक नरकमें बद्ध पिण्ड हुए सब यातनाओं को देखा करते हैं ।३८-३९। नरक में पापी पुरुष रस्सी से बद्ध तथा कीचड़ से लिप्त आरण्यक उपलों व भुस की अग्नि में पकाये जाते हैं और मरते नहीं हैं, कष्टका घोर अनुभव किया करते हैं ।४०। कठोरतम शिलाओं पर बड़ी तेजीसे जाते हुए सैकड़ों स्थानों में ताड़न करके तिनकों की तरह भूने जाते हैं ।४१। शरीरके अन्दर प्रविष्ट तीव्र मुख वाले कीड़ोंसे अपने देहके होने के कारण खूबही खाये जाते हैं ।४२।

क्रमीणां निचये क्षिप्ताः पूयमांसस्थिराशिषु ।
तिष्ठत्युद्विग्नाहृदया पर्वताभ्यां निपीडिताः ॥४२॥
तप्तेन न वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते ।
अधोमुखोर्ध्वपादश्च तातप्यंते स्म वह्निना ॥४३॥
वदनांतः प्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम् ।
ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताड्यन्ते च मुद्गरैः ॥४४॥
इत्थं व्यास कुकर्माणो नरकेषु पचंति हि ।
वर्णयामि विवर्णत्व तेषां तत्त्वाथ कर्मिणाम् ॥४५॥

कीड़ों के समुदाय में फैंके हुए तथा पीब माँस और अस्थियों के मध्यमें डालेहुए अत्यन्त दुःखित मनमें उन्हें रहना पड़ता है ।४२। तपेहुए वज्रलेप से उनका शरीर लिप्त रहता है और उनका मुख नीचे की ओर और पैर ऊपर करके फिर ताप दिया जाता है जिसके कारण बड़ी वेदना होती है । ।४३। वहाँ पापी पुरुषों के मुखमें अन्दर अत्यन्त तप्त लोहेकी गदा दी जाती है जिसे वे विवश होकर खाते हैं और यमके दूतोंके द्वारा ऊपरसे खूब ही ताड़ित भी किया जाता है ।४४। हे व्यासजी ! इस संसार में बुरे कर्म करने वाले प्राणी परलोक में जाकर महान् से महान् नरकों की यातनायें भोगा करते हैं । अब मैं पापी पुरुषों के तत्त्व का वर्णन करता हूँ ।४५।

नरक के विशेष कष्टों का वर्णन

मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्ये च गच्छति ।
जिह्वार्द्धकोशविस्तीर्णैर्हलैस्तीक्ष्णैः प्रपीडयते ॥ १ ॥
निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातरं पितरं गुरुम् ।
विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखमापूर्य हन्यते ॥ २ ॥
ये शिवायतनारामवापीकूपतडागकान् ।
विद्रवंति द्विजस्थानं नरास्तत्र रमन्ति च ॥ ३ ॥
काममुद्वर्तनाभ्यंगं स्नानपानाम्बुभोजनम् ।
क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः ॥ ४ ॥

पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयंत्रादिपीडनैः ।
तिरयाग्निषु पच्यंते यावदाभूतसंप्लवन् ॥ ५ ॥
तेन तेनैव रूपेण ताडयन्ते पारदारिकाः ।
गाढमालिंग्यते नारी सुतप्तां लोहनिर्मिताम् ॥ ६ ॥
पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्वि समंततः ।
दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिगन्ति रुदंति च ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमार जी ने कहा-मिथ्या शास्त्रमें प्रवृत्ति रखने वाला पुरुष द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है और वहाँ जीव के समान आधे कोस तक फैले हुए हलों से पीड़ित होता है ।१। जो अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाला पुरुष अपने माता-पिता को ललकारता है । तथा गुरुको फटकार देता है वह वहाँ कीड़ों से पूर्ण विष्ठा मुखमें भरकर पीटा जाता है ।१। जो शिव के मन्दिर-बाग-बावड़ी तथा कूपको तोड़ते हैं या सरोवर को नष्ट करते हैं अथवा ऐसे स्थान का नाश किया करते हैं जहाँ मनुष्य रमण करते हैं किम्बा किसी ब्राह्मण के स्थान को नष्ट भ्रष्ट करते हैं वे प्रलय काल तक नरक की अग्नि में पड़े रहा करते हैं ।३। जो मनुष्य काम क्रीड़ा के मदमें डूबे हुए उद्वर्त्तन (उबटन) स्नान-पान-अल-भोजन क्रीड़ा और मैथुन तथा द्यूत करते हैं वे अनेक तरह के कोल्हू के घोर उत्पीड़िन से वहाँ नरक में क्लेशित किये जाया करते हैं और प्रलयके समय पर्यन्त नरक की महाग्नि में पड़े हुए दुःख भोगते रहते हैं ।४-५। जो पराई स्त्री के साथ भोग करते हैं वे वहाँ नरक गें उसी प्रकार से ताड़ित किये जाते हैं । लोहे की संप्त स्त्री से उन्हें आलिगन कराया जाता है जिससे उनका सारा शरीर झुलसा जाता है ।६। पूर्व के आर आकार वाले पुरुष सब ओर से जलते लगने लगते हैं और व्यभिचारिणी का बड़े वेग से आलिगन करके रोते जाते है ।७।

ये शृण्वंति सतां निंदां तेषां कर्णप्रपूरणम् ।
अग्निवर्णैभ्यः कीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ॥ ८ ॥
त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण च पुनः पुनः ।
सुतप्ततीक्ष्णतैलेन वज्रलेपेन वा पुनः ॥ ९ ॥

क्रमादापूर्य कर्णास्तु नरकेषु च यातनाः ।
अनुक्रमेण सर्वेषु भवंत्येताः समततः ॥१०॥
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः ।
भवन्ति घोराः प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च ॥११॥
स्पर्शदोषेण ये मूढ़ाः स्पृशंति च परस्त्रियम् ।
तेषाँ करोऽग्निवर्णाभिः पांसुभि, पूर्यते भृशम् ॥१२॥
तेषां क्षारादिभिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते ।
यातनाश्च महाकष्टाः सर्वेषु नरकेषु च ॥१३॥
कुर्वन्ति पित्रोर्भृकुटिं करनेत्राणि ये नराः ।
वक्त्राणि तेषां सांतानि कीर्यंते शंकुभिर्दृढम् ॥१४॥

जो यहाँ सत्पुरुषोंकी निन्दा किया करते हैं उनके वहाँ नरक में आगके तुल्य तप्त लोहे तथा तामेकी कीलोंसे कान भर दिये जाते हैं।८। इसके अनन्तर रांग और पीतल गलाकर जल-दूध या तप्त तेज तेलसे किम्बा वज्र लेपसे क्रमशः कानों को भरकर यह अत्यन्त वेदना सभी नरकों में क्रमसे दी जाती है।९-१०। इसीतरह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके द्वारा किये गये पापों से तथा प्रत्येक शरीर के अंगोंसे किये गये पापों के क्रम के अनुसार नरकमें बहुत सख्त यातना मिलती है।११। जो पुरुष केवल मूढ़ता वश स्पर्शके दोषसे ही पराई स्त्री का स्पर्श हाथ से किया करते हैं उनने हाथ अग्नि के समान सन्तप्त लाल धूलि से भरकर जलाये जाते हैं और उनका सम्पूर्ण शरीर गर्म राख आदिसे दिप्त किया जाता है। इस तरह सभी नरकों में बहुत ही कष्टदायक पीड़ा दी जाती है।१२-१३। जो मनुष्य संसारमें अपने माता-पिता को हाथ या आखें दिखाया करते हैं उनके मुँह ऊपर तक दृढ़ता के साथ कीलों से भर दिये जाते हैं।१४।

यैरिन्द्रियैर्नरा ये च विकुर्वंति परस्त्रियम् ।
इन्द्रियाणि च तेषाँ वं विकुर्वंति तथैव च ॥१५॥
परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्तब्धेन चक्षुषा ।
सूचीभिश्चाग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रप्रपूरणम् ॥१६॥

क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वा इहैव यमयातना: ।
भवन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न संशय: ।।१७।।
देवाग्निगुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुंजते ।
लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूर्यते ।।१८।।
ये देवारामपुष्पाणि लोभात्संगृह्य पाणिना ।
जिघ्रन्ति च नरा भूय: शिरसा धारयन्ति च ।।१९।।
आपूर्यते शिरस्तेषां तप्तैर्लोहस्य शंकुभि: ।
नासिका वातिबहुलैस्तत: क्षारादिभिर्भृशम् ।।२०।।
ये निंदन्ति महात्मान वाचकं धर्मदेशिकम् ।
देवाग्निगुरुभक्तांश्च धर्मशास्त्रं च शाश्वतम् ।।२१।।
तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दंतसन्धिषु ।
तालुन्योष्ट नासिकायाँ मूर्ध्नि सर्वांगसन्धिषु ।।२२।।
अग्निवर्णास्तु तप्ताश्च त्रिशाखा लोहशंकव: ।
आखिद्यते च बहुश: स्थानेष्वेतेषु मुद्‌चरैं: ।।२३।।

जिस अपनी इन्द्रियों से मनुष्य पराईस्त्रीको दूषित कियाकरते हैं उनकी वही इन्द्रिय विकृत होजाती है ।१५। रूपके लालची जो पुरुष चंचल नेत्रों से पराई स्त्रीको देखते हैं उनके नेत्र नरक में अग्नि के समान लाल गर्म सुईयोंसे तथा गर्म राखसे भर दिये जाते हैं ।१६। हे श्रेष्ठ मुनिवर ! नरक में इस प्रकारसे यमराजके द्वारा दी हुई यातनायें प्राप्यहोती है-यह सर्वथा अक्षरशः सत्य है-इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हैं ।१७। जो पुरुष देवता-अग्नि-गुरु और ब्राह्मणों को दिये बिना ही स्वयं खा लेते हैं, उनकी जीभ और मुँह लोहे की सैकड़ों कीलों से भर दिये जाते हैं ।१८। जो मनुष्य देवता और बागके पुष्पों को हाथ से लेकर सूँघते हैं और फिर शिर पर धारण कर लेते हैं उनका शिर तप्त लोहे की कीलोंसे ठोका जाता है और उनकी नासिका में गर्म राख आदि भरदी जाया करती है ।१९-२०। जो पुरुष महात्मा-धर्मात्मा-उपदेशक-देवता-अग्नि-गुरु और भक्तोंकी तथा सनातन धर्मकी एवं धर्मशास्त्रकी निन्दाकरते हैं उनके हृदय, कंठ तथा जिह्वा

में तथा दाँतों की सन्धियों में, तालु में, ओटों में, नासिका में, मस्तक में तथा समस्त अंगों के जोड़ों में अग्नि के तुल्य तप्त तीन शिखा वाली कीलें मुद्गरों से ठोक दी जीती हैं ।२१-२२-२३।

ततः क्षारेण दीप्तेन पूर्यंते हि समंततः ।
यातनाश्च महत्यो वै शरीरस्याति सर्वतः ।।२४।।
अशेषनरकेष्वेव क्रमन्ति क्रमश पुनः ।
ये गृह्णन्ति परद्रव्य पद्भ्यां विप्र स्पृशंति च ।।२५।।
शिवोपकरण गां च ज्ञानादिलिखित च यत् ।
हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्यते समंततः ।।२६।।
नरकेशु च सर्वेषु विचित्रा बहुयातनाः ।
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादेसमुद्भवाः ।।२७।।
शिवायतनपयन्ते देवारामेषु कुत्रचित् ।
समुत्सृजन्ति ये पापाः पुरीष मूत्रमेव च ।।२८।।
तेषाँ शिश्नं सवृषणं चूर्ण्यते लोहमुद्गरैः ।
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तथा त्वापूर्यते पुनः ।।२९।।

इसके पश्चात् जलती हुई राखसे समस्त अंग में लेपन किया जाता है जिससे सम्पूर्ण शरीरमें पूरी यातना होती है ।२४। जो कोई पराये धन को ले लेते हैं तथा पैरोंसे ब्राह्मण के शरीर का स्पर्श करते हैं वे क्रम से सभी नरकों में जाकर पूरी यातना भोगते हैं ।२५। जो शिव या किसी भी देवता की पूजा की वस्तुओं को, गायको मथा ज्ञान के लेख एवं ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ को पैरों से छूते हैं उनके हाथ पैर आदि कीलों से ठोके जाते हैं ।२४ उनको अन्य सभी नरकों में जाकर हाथ-पैरों की बहुत कड़ी यातनायें भोगनी पड़ती हैं जिनसे अत्यन्त कष्ट होता है ।२७। जो पापात्मा पुरुष शिव-मन्दिर की सीमा में देवोद्यान में किसी भी स्थान पर मल या मूत्र का त्याग किया करते हैं उनकी अण्डले सहित उपस्थेन्द्रिय लोहे के मुद्गरों से पीसी जाती है तथा अग्निके समान तप्त सुइयोंसे पीसी जाती है ।२८-२९

ततः क्षारेण महता तीव्रेण च पुनः पुनः ।

द्रुतेन पूर्यते गाढं गुदे शिश्ने च देहिपः ॥३०॥
मना सर्वेन्द्रियाणाँ च यस्माद् दुःखं प्रजायते ।
धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया ॥ ३१॥
अतिथिं चावमन्यंते काले प्राप्ते गृहाश्रमे ।
तस्मात्ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निरयेऽशुचौ ॥३२॥
येऽन्नं दत्वा हि भुजति न श्वभ्यः सह वायसैः ।
तेषाँ च विवृत्तं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम् ॥३३॥
कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ।
उपद्रवैर्बहुविधैरुग्रैरंतः प्रपीडयते ॥३४॥
श्यामश्च शबलश्चैव यममार्गानुरोधको ।
यो स्तस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥३५॥
ये वा वरुणवायव्यायाम्या नैर्ऋत्यवायासाः ।
वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णान्तु मे बलिम् ॥३६॥
शिवमभ्यर्च्य यत्नेन हुत्वाग्नो विधिपूर्वकम् ।
शैवैर्मन्त्रैर्बलिं ये च ददन्ते न च ते यमम् ॥३७॥

इसके अनन्तर उस पापीकी गुदा और लिंगमें बहुत ही गर्म राख या खारी बस्तु भर दीजाती है ।३०। इसमें उन्हें ऐसी तीव्रवेदना होती है कि जिससे मन तथा समस्त इन्द्रियों को बड़ाही अधिक कष्टहोता है । जो मनुष्य अपने पाप धन होने परभी तृष्णा या कृपणतासे बिल्कुल दान नहीं किया करते हैं और समयपर घरमें आये हुए अतिथिका तिरस्कार देते हैं इससे उन्हें बड़ाभारी पापलगता है और उस पापसे वे नरक में जाते हैं ।३१-३२ जो कुत्ते और काकोंको बलि न देकर स्वयं भोजनकर लेते हैं उनका कंठ और मुख दोनों कीलों के द्वारा नाड़ित किये जाते हैं ।३३। ऐसे पापी प्राणी कीड़े, हिंसक जन्तु, लोहेके समान सख्त चोंच वाले काकोंसे पीड़ित होते हैं और अन्य अनेक उपद्रवों से खूब ही नरकमें सताये जाते हैं ।३४। यमराज के श्याम और सबल नाम वाले दो श्वान हैं जो उनके मार्ग को रोका करते हैं–मैं उन दोनों को बलि समर्पित करता हूँ–वे दोनों इन

बलि को ग्रहण करें। इस प्रकार से ही जो पश्चिम-वायव्य दिशाके तथा उत्तर-नैऋत्य दिशाके पुण्यात्मा कहे हैं वे मेरा बलिदान ग्रहण करें। जो यत्न पूर्वक शिव की पूजा कर और विधि सहित अग्निसे हवन करके शिव मन्त्रों द्वारा बलिदान किया करते हैं वे फिर यमराज का मुख नहीं देखते हैं ।३५-३६-३७।

पश्यंति त्रिदिवं यांति तस्माद्द्याद्दिने ।
मण्डलं चतुरस्त्रं तु कृत्वा गंधादिवासितम् ।।३८।।
धन्वन्तर्यर्थमीशान्यां प्राच्यामिद्राय नि क्षिपेत् ।
याम्यां यमाय वारुण्या सुदक्षोमाय दक्षिणे ।।३९।।
पिपृभ्यस्तु विनिःक्षिप्य प्राच्यामर्यंमण ततः ।
धातुश्चैव विधातुश्च द्वारदेशे विनिक्षिपेत् ।।४०।।
श्वभ्यश्च श्वपतिभ्यश्च वयोभ्यो विक्षिपेद् भुवि ।
देवः पितृमनुष्यश्च प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैं ।।४१।
वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते ।
स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारस्तृतीयकः ।

ऐसा विधान नित्य नियमसे करने वाले लोग सीधे स्वर्ग लोक को ही चले जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन चार हाथका मण्डल बनाकर उसे गन्धाक्षतादिसे सुगन्धित करे। फिर ईशानदिशामें धन्वन्तरि वैद्य और पूर्वदिशा में इन्द्रदेवको बलिदानदेवे। उत्तरमें यमको और पश्चिममें सुदक्षोमको तथा दक्षिणमें पितरोंको बलिदेवे ।३८-३९। प्राच्य दिशामें सूर्यको भाग देवे-द्वार देशमें धाता तथा विधाताको भाग देवे ।४०। श्वानोंके लिये तथा श्वपतियों के वास्ते एवं पक्षियों के लिये जो भाग देना है उसे भूमि पर ही रख देना चाहिये। देवोंसे पितर और मनुष्यों से प्रेत-भूतों से गुह्यकों से पक्षी कृमि-कीटोंसे गृहस्थी मनुष्य उपजीवित होते हैं ।४१-४२।

हंतकारस्तथैवान्यो धेन्वाः स्तनचतुष्ठयम ।
स्वहाकारं स्तने देवाः स्वधां च पितरस्तथा ।।४३।।
वषट्कारं तथैवान्ये देवा भूतेश्वरास्तथा ।

हंतकारं मनुष्याश्च पिबंति सततं स्तनम् ।।४४।।
यस्त्वेतां मानवो धेनुं श्रद्धया ह्यनुपूर्विकाम् ।
करोति सतत काले साग्नित्वायोपकल्प्यते ।।४५।।
यस्तां जहाति वा स्वस्थस्तामिस्रे स तु मज्जति ।
तस्माद्दत्वा बलिं ताभ्यो द्वारस्थश्चितयेत्क्षणम् ।।४६।।
क्षुधार्तमतिथिं सम्यगेकग्रामनिवासिनम् ।
भोजयेत्तं शुभान्नेन यथाशक्त्यात्मभोजनात् ।।४७।।
अतिथियस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृत्त दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।४८।।
ततोऽन्न प्रियमेवाश्नन्नरः शृङ्खलवाग्पुनः ।
जिह्वावेगेन विद्धोऽत्र चिरं काल स तिष्ठति ।।४९।।

स्वाहाकार-स्वाधाकार-वषट्कार तथा हन्तकार ये चारों गायकों स्तनों में रहते हैं। इस स्तन में से देवता स्वाहाकार को-पितृगण स्वधा को-देवता वषट्को और भूतेश्वर भी इसी को एवं मनुष्य हन्तकार को निरन्तर पान करते हैं ।४३-४४। जो मनुष्य गाय को श्रद्धाके साथ निरन्तर समय पर स्वभोजन देता है उसकी कल्पना साग्नित्व की जाती है ।४५। जो गाय को त्याग देता है, वह अस्वस्थ रहता है और तामिस्र नामक नरक में जाया करता है इसलिये इन उपर्युक्त सबको बलि देकर एक क्षण के लिए अपने द्वार पर स्थित होकर विचार करना चाहिये ।४६ प्रत्येक मनुष्य का परम आवश्यक कर्तव्य है कि प्रतिदिन यथाशक्ति अपने भोजनमें से किसी एक भूखे अभ्यागत को या किसी भी ग्रामके निवासीको सविधि श्रेष्ठ अन्नसे भोजन करावे ४७। जिसके घरमें कोई अभ्यागत निराश लौटजाता है वह उस गृहस्थी को पापका पुन्ज प्रदान समस्त पुण्य के सञ्चय को लेकर चला जाया करता है ।४८। अभ्यागत के निराश हो लोटजाने पर जो स्वयं भोजन करता है और स्वाद लिया करता है वह बहुत समय तक शृङ्खलायुक्त जीभ के वेग से विंधा हुआ रहता है ।४९।

यतस्तन्मांसमुद्धृत्य तिलमात्रप्रमाणतः ।

खादितुं दीयते तेषाँ भित्त्वा चैव तु शशोणितम् ॥५०॥
निःशेषतः कशाभिस्तु पीडयते क्रमशः पुनः ।
बुभुक्षयातिकष्टं हि तथा चातिपिपासया ॥५१॥
एवमाद्या महाघोरा यातनाः पापकर्मणाम् ।
अन्ते यत्प्रतिपन्नं हि तत्संक्षेपेण सम्शृणु ॥५२॥
यः करोति महापापं धर्मं चरति वै लघु ।
धर्मं गुरुतरं वापि तथाबस्थे तयोः शृणु ॥५३॥
सुकृतस्य फल नोक्तं गुरुपापप्रभावतः ।
न मिनोति सुखं तत्र भोगैर्बहुभिरन्वितः ॥५४॥
तथोद्विग्नोऽतिसंतप्ता न भक्ष्यैर्मन्यते सुखम् ।
अभाववादग्रतोऽन्यस्थ प्रतिकल्यं दिने दिने ॥५५॥
पुमान्यो गुरुधर्माऽपि सोपवासी यथा गृही ।
वित्तवान्न विजानाति पीडां नियमसंस्थितः ॥५६॥
तानि पापानि घोराणि सन्ति यैश्च नरो भुवि ।
शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥५७॥

नरक में ऐसे पापात्मा प्राणी के जीभके माँस को उचेल कर तिल भर प्रमाण के जन्तुओं को खानेको दिया जाता है । फिर उसके रुधिरको भेदन करके सारे शरीरको क्रमशः पीड़ित एवम् ताड़ित कियाजाता है । तब उस प्राणी से भूख-प्यासके कारण अत्यन्त कष्टके साथ चलाजाता है ।५०-५१ इस रीति से संसार के जीवन में पापकर्म करनेवालों की बहुतसी यातनायें होती हैं । अन्त में जो भी कुछ उन्हें प्राप्त होता है उसको बतलाताहूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।५२।जो पुरुष पापतो बहुत बड़ा और पुण्यबहुतही स्वल्प करता है या बहुत धर्म करता है -इन दोनोंकी दशा बतलाता हूँ उसे श्रवण करो ।५३। बड़े पापका प्रभाव भी बड़ा होता है और उससे थोड़े धर्म का फल नहीं मिला करता है। उस पापके प्रभावसे बहुत भोगोंमें फँसाहुआ भी उनमें सुख का अनुभव नहीं कियाकरता है ।५४। ऐसा पुरुष परम दुःखित एवं हृदयमें जलता हुआ रहकर भोजनके योग्य पदार्थोंमें कभी भी सुख नहीं

माना करता है। वह सर्वदा अपने लिये उनका अभाव ही माना करता है और दूसरों के आगे देख कर उसे दुःख होता है।५५। जो अधिक धर्म करने वाला है वह उपवास करने वाले एक गृहस्थ के तुल्य धनवान् होकर सर्वदा नियममें स्थित रहकर अपनी पीड़ाका होना मानता ही नहीं है।५६। ऐसे भी अत्यन्त महा घोर पाप हैं जिनके कारण मनुष्य पृथ्वी पर वज्रसे तड़ित हुए पर्वतके समान सैकड़ों ही भेद वाला हो जाता है।५७।

॥ तर्पण तपस्या आदि परमार्थ का फल ॥

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा।
सर्वेषाँ जीवपुंजानां तर्पण जीवनं स्मृतम् ॥ १ ॥
प्रपादानमतः कुर्यात्सुस्नेहादनिवारितम्।
जलाश्रयविनिर्माणं महानन्दकर भवेत् ॥ १ ॥
इह लोके परे वापि सत्य सत्यं न संशयः।
तस्माद्वापीश्च कूपाँश्च तडागान्कारयेन्नरः ॥ ३॥
अर्द्ध पापस्य हरित पुरुषस्य विकर्मणः।
कूपः प्रवृत्तपानायः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः ॥ ४ ॥
सर्वं तारयते वंश यस्य खाते जलाशये।
गावः पिवंति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा ॥ ५ ॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम्।
सुदुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्यते ॥ ६ ॥
तडागानां च बक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमाजी ने कहा-जलका दान समस्त दानों में बहुत ही श्रेष्ठ एवं बड़ा दान है। यह सदा समस्त जीवोंकी पूर्णतृप्ति करनेवाला होता है। यह जीवन देनेवाला मानागया है।१। इसलिये बड़े ही प्रेम के साथ प्याऊ लगाकर जलका दान करनाचाहिए। जलाशयोंका निर्माण कराना बहुत हीं आनन्दका देने वाला होता है।२। मनुष्यको कूपतथा बावड़ी का निर्माण अवश्यही करना चाहिए। इससेइस लोक और परलोकदोनों स्थानों में परम

आनन्दकी प्राप्ति होती है यह अक्षरशः सत्य है। इसमें कुछ भी किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए ।३। जल परिपूर्ण कूप नित्यही पापकर्ममें प्रवृत्त होनेवाले पुरुषका आधापाप नष्टकर देता है ।४। जिसके द्वारा निर्मित झील या सरोवरमें गो,ब्राह्मण,साधु और मनुष्य सदा जलपीते हैं उसका वंशतर जाया करता है ।५। ग्रीष्म कालमें जिसका जल बिना रोके हुए ही स्थित रहता है वह निर्माणकर्त्ता कभी-कभी घोर कठिनता तथा बड़ा दुःख नहीं पाया करता है ।६। बनाये हुए सरोवरोंके जो गुण बतलाये गये हैं अब मैं उनका वर्णन करता हूँ। जो तालाबके निर्माण करानेवाला मनुष्य होता है वह तीनों लोकों में सर्वत्र आदर के सहित पूजित होता है ।७।

अथवा मित्रसदने मैत्रं मित्रार्विवर्जितम् ।
कार्तिसंजननं श्रेष्ठ तडागानां निवेशनम् ॥ ८ ॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ।
तडागः सुकृतो येन तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ९ ॥
चतुर्विधानां भूतानां तडागः परमाश्रयः ।
तडागादीनि सर्वाणि दिशन्तिश्रियमुत्तमाम् ॥१०॥
देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसः ।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयंति जलाशयम् ॥११॥
प्रावृड्तौ तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अग्निहोत्रफलं तस्य भवतीत्याह चात्मभूः ॥१२॥
शरत्काले तु शलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।
गोसहस्रफल तस्य भवेन्नैवात्र संशय ॥१३॥
हेमन्ते शिशरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति ।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥१४॥

तालाबोंका निर्माण करना, मित्रके घर में मित्रसे दुःख रहित मित्रता तथा कीर्त्तिका विस्तारकराने वाला अत्यन्तश्रेष्ठ होता है ।८। जिस व्यक्ति ने अपने किये हुए शुभ कर्मसे सरोवर बनवाया है उसका अनन्त पुण्य उसे मिलता है। बुद्धिमान मनुष्य धर्म अर्थ और कामको इस कारणसेही सफल

कहा करते हैं ।६। सरोवर चारप्रकार के प्राणियोंका परमआश्रय होता है। तड़ाग आदि समस्त जलाशय उत्तम लक्ष्मी के प्रदान करने वाले होते हैं ।१०। देव, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस, स्थावर, भूत (प्राणी) आदि सब जलाशय को आपका आश्रय बनाया करते हैं ।११। जिसके द्वारा निर्मित जलाशयमें वर्षा ऋतुमें जल रहता है उसकी अग्नि-होत्र करने के तुल्य पुण्य होता है ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ।१२। जिसके बनायेहुए सरोवरहे शरत्काल में जल भरा रहता है उसे एक सहस्र गोदान के समान पुण्यकी प्राप्ति हुआ करती है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।१३। जिसके सरोवरमें हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में जल ठहरता है वह अत्यधिक सुवर्ण के दान के समान पुण्य का फल प्राप्त करता है ।१४।

वसंते च तथा ग्रीष्मे सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अतिरात्राश्वमेधानां फलमाहुर्मनीषिणः ॥१५॥
मुने व्यासाथवृक्षाणां रोपणे च गुणाच्छृणु ।
प्रोक्तं जलाशयफल जीवप्रीणनमुत्तमम् ॥१६॥
अतीतानागतान्सर्वान्पितृवंशाँस्तु तारयेत् ।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षाँस्तु रोपयेत् ॥१७॥
तत्र पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ।
परं लोक गतः सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षय न् ॥१८॥
पुष्पैः सुरगणान्सर्वान्फलैश्चापि तथा पितॄन् ।
छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयन्ति महीरुहाः ॥१६॥
किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानरवः ।
तथैवर्षियणाश्चैव संश्रयंति महीरुहान् ॥२०॥
पुष्पिताः फलवंतश्च तर्पयतीह मानवान् ।
इह लोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥२१॥

वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें जिसके निर्मित सरोवर में जल रहता है उसे अतिरात्रि तथा अश्वमेध यज्ञोंका फलप्राप्त होना मनीषी लोग करते हैं ।१५ हे मुने ! हे व्यास महर्षे ! मैंने जीवोंको संतुष्ट करनेवाले जलाशयके निर्माण

का पुण्य फल बता दिया है । अब वृक्षों के पुण्य के विषयमें वर्णन करते हैं उसे आप श्रवण करें ।१६। जो कोई व्यक्ति वन में वृक्षोंको लगाता है वह व्यतीत हुए तथा आगे आनेवाले समस्त पितृ-वंशोंका उद्धार करदेता है । इसलिये वृक्षारोपण का पुण्य कार्य अवश्यही करना चाहिये ।१७। ये लगाये हुए वृक्ष दूसरे जन्म में उस लगाने वाले के पुत्र सम होते हैं । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । वह वृक्षारोपण कर्त्ता भी मृत्युगत होकर अक्षय लोकों को प्राप्त होता है ।१८। लगाये हुए वृक्ष पुष्पोंके द्वारा देवगण को, फलों से पितरों को, छाया से अतिथियों के इस तरह सबमें पूजक होते हैं ।१८। किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य यथा ऋषिगणसे सभी वृक्षों को अपना आश्रय बनाया करते हैं ।२०। लोक में पुष्पित तथा फलित वृक्ष मनुष्योंको पूर्ण मानसिक एवं शारीरीक तृप्ति प्रदान कियाकरते हैं। इसलिये वे इस लोक तथा परलोक में धर्मके पुत्र कहे जाते हैं ।२१।

तडागकृद् वृक्षरोपी चेष्टयज्ञश्च यो द्विजः ।
एते स्वर्गान्न हीयते ये चान्ये सत्यवादिनः ।।२२।।
सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः ।
सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव पर श्रुतम् ।।२३।।
सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ।
सत्येनैव घृता पृथ्वी सत्ये सव प्रतिष्ठितम् ।।२४।।
तपो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने ।
आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।२५।।
सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्वती ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च ।।२६।।
सत्येन वायुरम्येति सत्येन तपते रविः ।
सत्येनाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति ।।२७।।
पालनं सर्व वेदानां सवतीर्थावगाहनम् ।
सत्येन वहते लोके सर्वं माप्नोत्यसंशयम् ।।२७।।

जो द्विज सरोवर, बाग बनाने वाला तथा पंच महायज्ञ करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्गलोकसे नीचे नहीं पतित होता है ।२१। सत्य ही

परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही परम यज्ञ है और सत्य ही परम आदरणीय शस्त्र है ।२३। सत्य ही सोने वालोंको जगाता है, सत्यही परम पद है, इस सत्य ने ही पृथ्वी मंडल को धारण कररखा है,इस परम श्रेष्ठ सत्य ही में कुछ विद्यमान रहता है ।२४। तप, यज्ञ, पुण्य, देव, ऋषि, पितृ,पूजन,जल और विद्या आदि सभी इस एक सत्य ही में प्रतिष्ठित होते हैं ।२५। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, ब्रह्मचर्य है । सत्य ही ओंकार है और सत्य ही मन्त्रों वाली देवी सरस्वती है ।२६। सत्यके प्रभाव से यह वायु चलता है । सत्यकी शक्तिसे सूर्यदेव संसारमें तपा करते हैं । सत्यसेही अग्नि जलती है और सत्यसेही स्वर्गकी प्राप्ति हुआकरती है ।२७। समस्त वेदोंकी प्राप्ति तथासमस्त तीर्थोंमें स्नानकरने का फलकेवल एक सत्यसेही प्राप्त हो जाता है। सत्यसे सभीकुछ मिलजाता है, इसमें कुछभी संशय नहीं है ।२८।

अश्वमेघसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते ।।२६।।
सत्येन देवा: पितरो मानवोरगराक्षसा: ।
प्रीयन्ते सत्यत: सर्वे लोकाश्च सचराचरा: ।।३०।।
सत्यमाहु: परं धर्मः सत्यमाहु: परं पदम् ।
सत्यमाहु: प ं ब्रह्म तस्मात्सत्य सदा वदेत् ।।३१।।
मुनयः सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
सत्यधर्मरत: सिद्धास्तत: स्वर्वं च ते गता: ।।३२।।
अप्सरोगणसंविष्टैर्विमानै: परिमातृभि: ।
वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् ।।३३।।
अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचि ह्रदे ।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानं तत्परमं स्मृतम् ।।३४।।
आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवा: ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।।३५।।

सहस्त्रों अश्वमेधों का फल तथा लाखों अन्य यज्ञों का पुण्य तराजू में एक ओर रखो और एक ओर दूसरे पलड़ेमें सत्यको रखो तो सत्य वाला

पलड़ाही नीचेकी ओर झुकेगा। अतः सत्य इन सबसे विशेष होता है।२९ सत्यसे देवता, पितृगण, मनुष्य, सर्प, राक्षस आदि चर एवं अचरके सहित सम्पूर्णलोक प्रसन्न होते हैं।३०। सत्यही सबसे श्रेष्ठ परम धर्म कहा गया है, सत्यही सर्वोत्तम परमपद बतायागया है और सत्यहीको साक्षात् पर-ब्रह्मका स्वरूप माना गया है। इसलिये सर्वदा सत्यका ही भाषण करना चाहिये।३१। सत्यमें परायण मुनि अति कठिन तपश्चर्या करके तथा सत्य स्वरूप धर्ममें प्रवृत्त सिद्ध सभी स्वर्गको प्राप्त हुए हैं।३२। अप्सराओं से प्रविष्टहुए विमानों के सहित परिमाताओंको सदा सत्य कहना चाहिये क्यों कि सत्य से अधिक धर्म कुछभी नहीं है।३३। सत्यरूपी तीर्थका ह्रद परम अगाध, परम सिद्ध एवं अतिपवित्र है इनमें मनसहित स्नान करके अतुल सुख प्राप्त करना चाहिए। इसे सर्वोपरि परम स्थान कहागया है।३४। जो सत्पुरुष अपने लिए, पराये काज के लिये या अपने पुत्र के हित के लिये झूंठ नहीं बोलते हैं वे मनुष्य निश्चय ही स्वर्ग के गामी होते हैं।३५

वेदा यज्ञास्तथा मंत्राः संति विप्रेषु नित्यशः।
नो भांत्यपि ह्यसत्येषु तस्मात्सत्य समाचरेत् ॥३६॥
तपसो मे फल ब्रूहि पुनरेव विशेषतः।
स्वर्षां चैव वर्णानां ब्रह्मणाना तपोधने ॥३७॥
प्रवक्ष्यामि तपोऽध्याय सर्वकामार्थधकम्।
सुदुश्वरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु ॥३८॥
तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विद्यते फलम्।
तपोरता हि ये नित्य मोदत सह दवतैः।३९॥
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
तपसा प्राप्यते कामस्तपः सर्वार्थसाधनम् ॥४०॥
तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विदते महत्।
ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च ॥४१॥
नानाविधानि वस्तूनि तपसा लभते नरः।
तपसा लभते सर्व मनसा यद्यदिच्छति ॥४२॥

वेद, यज्ञ तथा मन्त्र आदि असत्य बोलने वाले ब्राह्मणों में कभी शोभा नहीं दियाकरते हैं। इसलिये सदा सत्यही बोलना चाहिये।३६। व्यासजी ने कहा-हे तपोधन ! अब समस्त वर्णोंके तथा ब्राह्मणोंके तपस्याके फलका वर्णन कीजिये। मेरी पुनः एकबार सुननेकी इच्छाहोती है।३७। सनत्कुमार जी ने कहा-अब मैं समस्तकाम और अर्थका साधक और द्विजातियों द्वारा कठिनतासे करनेयोग्य तपके अध्यायका वर्णन करता हूँ। आपसब मुझसे श्रवण करिये।३८। तपको सबसे बड़ा बताया गया है, तपस्यासे ही विशेष फलकी प्राप्ति हुआ करती है,जो नित्यही तपश्चर्यासे अपनी प्रवृत्ति रखते हैं, वे देवताओं के सहित आनन्द का लाभ लिया करते हैं।३९। तपसे स्वर्ग मिलता है, तपहीसे यशकी प्राप्ति होती है,तपसे समस्त कामनाओंका लाभ होता है और तप ही सम्पूर्ण अर्थों का साधन होता।४०। तप से परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है। तपसे ज्ञान तथा विज्ञान की सम्पत्ति मिलती है तपसे परम सौभाग्य और लोकोत्तर रूप-लावण्य प्राप्त होता है।४१। मनुष्य तपके द्वारा अनेक तरहकी वस्तुओं को पा लेता है, अधिक क्या-क्या बताया जावे तपका ऐसा विलक्षण प्रभाव है कि इसमें रत व्यक्ति मन से जो-जो भी इच्छा करता है सो उसे मिल जाता है।४२।

नातप्ततपसो यांति ब्रह्मलोकं कदाचन।
नातप्ततपसां प्राप्यः शङ्करः परमेश्वरः ॥४३॥
यत्कार्यं किंचिदास्थाय पुरुषस्तपते तपः।
तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥४४॥
सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुंचति ॥४५॥
अपि सर्वेश्वरः स्थाणुर्विष्णुश्चैव सनातनः।
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसान्विताः ॥४६॥
अष्टाशिति सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
तपसा दिवि मोदन्ते समेता दैवतैः सह ॥४७॥
तपसा लभ्यते राज्यं स च शक्रः सुरश्वरः।

तपसाऽपालयत्सर्वमहन्यहनि वृत्रहा ॥४८॥
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहिते रतौ ।
तपसैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥४९॥

तपस्या के बिना न तो कभी ब्रह्म को पा सकते हैं और न परमेश्वर शिव ही प्राप्त किये जासकते हैं ।४३। मनुष्य जिस कार्य का उद्देश्य लेकर तप किया करता है वह सभी इसलोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त हो जाता है ।४२। मदिरा पान करने वाला, पराई स्त्री के साथ रमण करने वाला ब्रह्म-हत्यारा और गुरु-पत्नीसे गमन करने वाला महा पातकी भी तप से तर जाया करता है और समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है ।४५। सबके स्वामी शिव, सनातन विष्णु, जगत्स्रष्टा ब्रह्मा, देवेन्द्र, इन्द्र, अग्नि आदि सब तपसे युक्त हैं ।४६। ऊर्ध्वरेता अट्ठासी सहस्र मुनिगण देवताओं के सहित सभी स्वर्ग लोक में तप से ही आनन्द करते हैं ।४७। तपके अतुल-असीम प्रभाव से राज्य की प्राप्ति होती है । तपसे सुरराज इन्द्र देव प्रति दिन सबका पालन किया करते हैं ।४८। समस्त लोकों के हित करने वाले सूर्य और चन्द्र देव, नक्षत्र, ग्रहादि सभी तप से ही नित्य प्रकाशित होते हैं ।४९।

न चास्ति तत्सुख लोके यद्विना तपसा किल ।
तपसैव सुख सवमिति वेदविदो विदुः ॥५०॥
ज्ञानं विज्ञानमारोग्य रूपवत्त्वं तथैव च ।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते सर्वदा सुखम् ॥५१॥
तपसा सृज्यते विश्वं ब्रह्माविश्वं बिना श्रमम् ।
पाति विष्णुर्हरोऽप्येति धत्ते शेषोऽखिलाँ महीम् ॥५२॥
विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ।
क्षत्रियोऽथाभवद्वि प्रः प्रसिद्धं त्रिभवे त्विदम् ॥५३॥
इत्युक्तं ते महाप्राज्ञ तपोमाहात्म्यमुत्तमम् ।
शृण्वध्ययनमाहात्म्यं तपसोऽधिकमुत्तमम् ॥५४॥

संसार में ऐसा कोईभी सुख नहीं है जो बिना तपके प्राप्तहोजाताहो । तपसे ही सब सुख मिलता है वेदके ज्ञाता ऐसा ही कहते हैं ।५०। तपस्यासे

ज्ञाव-विज्ञान, आरोग्य, रूपवत्ता और सौभाग्य, सुखादि निरन्तर प्राप्त हुआ करते हैं ।५१। तप से ब्रह्मा बिना किसी परिश्रम के संसार की विशाल रचना किया करते हैं, विष्णु इस महान् जगत्‌का रक्षण एवं पोषण करते हैं, शिव इस समस्त विश्व का संहार करते हैं और शेष इस भूमण्डल को धारण कियाकरते हैं।५२हे महामुने ! तपसेही गाधिके पुत्र विश्वामित्रजी ने क्षत्रिय जातिसे ब्राह्मणत्वको प्राप्तकिया और तीनोंलोकोंमें विख्यात होगये ।५३। हे महाप्राज्ञ! मैंने यह तपका उत्तम महात्म्य बतादिया, अब तप से अधिक श्रेष्ठ अध्ययनका माहात्म्य वर्णनकरताहूँ उसेआप श्रवण करें।५४।

पुराण माहात्म्य वर्णन

तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशनः ।
योऽधीते ऋचमेकां हि फल स्यात्तत्समं मुने ॥ १ ॥
श्रुतेरध्यनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः ।
तदध्यापनतश्चापि द्विगुणं फलमश्नुते ॥ २ ॥
जगत्तथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम् ।
बिना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा ॥ ३ ॥
तप्यमानं सदाज्ञानान्निरये योऽपि शास्त्रतः ।
सम्बोधयति लोकं तं तस्मात्पूज्यः पुराणग ॥ ४ ॥
सर्वेषां चैव पात्राणां मध्ये श्रेष्ठ पुराणवित् ।
पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम् ॥ ५ ॥
र्यबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञ कदाचन ।
पुराणज्ञः सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरो गुरुः ॥ ६ ॥
धनं धान्यं हिरण्यं च वासांसि विविधानि च ।
देयं पुराणविज्ञाय परत्रेह च शर्मणे ॥ ७ ॥

श्री सनत्कुमारजी ने कहा-हे मुने ! वन में कन्द, मूल, फल खाकर तप करने के तुल्य एक वेद की ऋचा के पढ़ने का फल होता है ।१। श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके अध्ययनसे जो पुण्य प्राप्त करता है उसकेपाठ करनेसे दुगुना फल प्राप्त कियाकरता हैं ।२। हे मुने ! जिस तरह बिना दिवाकर औरचंद्र

के जगत् प्रकाशहीन रहता है, उसी तरह बिना पुराणके ज्ञानके यह सारा संसार प्रकाशशून्य-सा रहता है। अतः सदा पुराणों का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए।३। सर्वदा अज्ञानसे परिपूर्ण लोक को शास्त्र के द्वारा ही समझा जाता है। पुराण अज्ञान का भली भाँति निराकरण कर देता है। इसलिये पुराणों का वक्ता सदा पूजा के योग्य होता है।४। समस्त प्रकार के पात्रों के मध्य में पुराणों का ज्ञाता अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यह वस्तुतः पतनसे रक्षा किया करता है इसलिये इसे पात्र कहा जाता है।५। पुराणों के ज्ञान रखने वाले ब्राह्मण में मनुष्य बुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पुराणों का ज्ञानी विद्वान् सर्वज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, शिव गुरु होता है।६। परलोक तथा इस लोक में अपने कल्याणके लिये पुराण के ज्ञाता विद्वानको धन धान्य, सुवर्ण और वस्त्रादि देने चाहिए।७।

यो ददाति महीप्रीत्या पुराणज्ञाय सज्जनः।
पात्राय शुभवस्तूनि स याति परमां गतिम् ॥ ८ ॥
महीं गांवा स्यदनांश्च गजानश्वांश्च शोभनान्।
यः प्रयच्छति पात्राय यस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९॥
अक्षयान्सर्वकामांश्च परत्रेह च जन्मनि।
अश्वमेधफल चापि स फल लंभते पुमान् ॥१०॥
महीं ददाति यस्तस्मै कृष्टां फलवती शुभाम्।
स तारयति वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥११॥
इह भुक्त्वाखिलान्कामानते दिव्यशरीरवान्।
विमानेन च दिव्येन शिवलोकं स गच्छति ॥१२॥
न यज्ञैस्तुष्टिमायाति देवाः प्रोक्षणकैरपि।
बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः ॥१३॥
शभोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम्।
विष्णोरर्कस्य कस्यापि शृणु तस्यापि तत्फलम् ॥१४॥
राजसूयाश्वमेधानां फलमाप्नोति मानवः।
सूर्यलोकं च भित्त्वाशु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥१५॥

जो सत्पुरुष पुराणवेत्ता को जो कि सच्चा सुपात्र होता है, श्रेष्ठ पदार्थ सप्रेम अर्पण करता है वह परम गतिको प्राप्त कियाकरता है ।८। जो कोई उत्तम सुपात्रको भूमि, गौ, रथ, अश्व और शोभन हाथीदेता है उसके महापुण्य का फल यह है कि दातामनुष्य इस जन्ममें तथा परलोकमें अक्षय मनोरथों की प्राप्तिके साथ-साथ अश्वमेघ यज्ञके पुण्यका फलभी प्राप्तकिया करता है ।९-१०। जो जुतीहुई सूफल देनेवाली भूमिका दानकरता है वह दश पहिले और दश अगले वंशजोंको तार दिया करता है ।११। इस जन्म में समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें सुन्दर शरीर धारण करके दिव्य विमानके द्वारा वह शिव लोकमें चला जाता है ।१२। सभी देव प्रोक्षणयुक्त यज्ञादि से तथा भेटोंसे और पुष्पादि उपचारों से, पूजा से इतने सन्तुष्ट नहीं होते जैसे कि पुराण-वाचनसे प्रसन्न होते हैं ।१३। शिवालय अथवा विष्णुदेवालय तथा सूर्य या अन्य किसीभी देव-मन्दिर में धर्म पुस्तक पुराण आदि का वचन जो कोई भी व्यक्ति करता है उसका फल यह होता है कि वह राजसूर्य तथा अश्वमेध यज्ञोंके पुण्यका फल प्राप्त करता है और सूर्यलोक का भेदन करके सन्त में ब्रह्मलोक को चला जाता है ।१४-१५।

स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजा भवति भूतले ।
भुंक्ते निष्कटक भोगा न्नात्र कार्या विचारणा ।।१६।।
अश्वमेघसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत् ।।१७।।
इतिहासपुराणाभ्यां शम्भोरायतने शुभे ।
नान्यत्प्रीतकरं शम्भोस्तथान्येषां दिवौकसाम् ।।१८।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् ।
तथास्य श्रवण प्रेम्णा सवकामफलप्रदम् ।। ९ ।।
पुराणश्रवणाच्छंभोर्निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाच्छिवलोकमवाप्नुयाम् ।।२०।।
राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च ।
तत्पुण्य लभते शभोः कथास्रवणमात्रतः ।।२१।।

वह व्यक्ति ब्रह्मलोकमें सैकड़ों कल्पोंतक निवास कर फिर पृथ्वी पर राजाहोता है और निष्कंटकरूपसे भोगोंका उपभोग किया करता है। इसमें तनिक भी सन्देहका कोई अवसरनहीं है ।१६। देव प्रतिमाके सामनेबैठकर जोकोई जाप करता है वहभी सैंकड़ों अश्वमेघोंके फलके तुल्यही पुण्य का भागी होता है ।१७। शिवालयमें इतिहास पुराणों की गाथाके प्रवचन के बिना शिव तथा अन्यकिसी देवताको प्रसन्न एवं सन्तुष्टकरनेका अन्यकोई उपाय ही नहीं है ।१८। इसीलिए पूर्ण प्रयत्न से पुराण ग्रन्थों का वाचन तथा श्रवण हरएक कल्याणकामी को करना चाहिए, क्योंकि यह एक ही उपाय ऐसा जो समस्तकामनाओंकी पूर्ति करदेनेवालाहोता है ।१९। शिव पुराणश्रवण करनेसे मनुष्य पापरहितहोजाता है और समस्तभोगोंकोपाकर शिव लोकको जाता है ।२०। राजसूय यज्ञ से तथा सौ अग्निष्टोम यज्ञों के करनेसेजो पुण्य मिलता है वही पुण्य शिवकीकथा सुनने से होता है ।२१।

सव तीर्थावगाहेन गवाँ कोटिप्रदानतः ।
तत् फलं लभते शम्भोः कथाश्रवणतो मुने ॥२२॥
ये श्रृण्वन्ति कथाँ शम्भोः सदा भुवनपावनीम् ।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः ॥१३॥
श्रृण्वतां शिवसत्कीर्ति सताँ कीर्तयताँ ताम् ।
पदाम्बुजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२४॥
गतुं निःश्रंयप्तं स्थानं येऽभिवाँछन्ति देहिनः ।
कथां पौराणिकीं शैवीं भक्तया श्रृण्वन्तु ते सदा ॥२५॥
कथां पौराणिकीं श्रोतुं यद्यशक्तः सदा भवेत् ।
नियतात्मा प्रतिदिन श्रृणुयाद्वा मुहुर्टकम् ॥२६॥
यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्ता मानवी भवेत् ।
पुण्यमासादिषु मुने श्रृणुयाच्छांकरीं कथाम् ॥२७॥
शैवी कथां हि श्रृण्वानः पुरुषो हि मुनीश्वर ।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥२८॥

हे मुने ! समस्त शुभ तीर्थोंमें स्नान से तथा करोड़ गोदानसे जो महा-पुण्यका उदयहोता है वही फल मनुष्य शिवकी गाथाके सुनने या बांचनेसे

प्राप्त कर लेता है ।२२। जो कोई लोक पावनी शिव-कथा सुनते हैं वेदर असल मनुष्य नहीं माने जाने चाहिए, किन्तु वे तो साक्षात् रुद्रही हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।२३। भगवान् शिव की सुन्दर कीर्त्ति का श्रवण करने वालों तथा कहने वालों के चरण की धूलि को मुनिगण ने पवित्र तीर्थ बताया है ।२४। जो मनुष्य किसी भी कल्याणकारण स्थान को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि सदा नियम पूर्वक शिवपुराण की कथा का श्रवण या वाचन किया करें ।२५-२६। यदि सदा पुराण-कथा सुनने में किन्हीं कारणों से असमर्थ हों तो किसी पुण्य मास में एक बार अवश्य ही कथा का श्रवण करें ।२७। हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य शिव कथा सुनते हैं वे अपने कर्म रूपी विशाल वन को भस्म करके संसार से तर जाते हैं ।२८।

कथां शैवीं मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा क्षणं च वा ।
ये श्रृण्वंति नरा भक्त्या य तेषां दुर्गतिर्भवेत् ।।२९।।
यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ।
शंभोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चल भवेत् ।।३०।।
विशेषतः कलौ व्यास पुराण श्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ।।३१।।
पुराणश्रवणं शंभोर्नामसंकीर्तनं तथा ।
कल्पद्रुमफलं रम्यं मनुष्याणां न संशयः ।।३२।।
कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचरोज्झितात्मनाम् ।
हिताय विदधे शंभुः पुराणाख्यं सुधारसम् ।।३३।।
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नवामृतं पुमान् ।
शंभोः कथामृतापोनात्कुलमेवाजरामरम् ।।३४।।
या गतिः पुण्यशीलानां यज्विनां च तपस्विनाम् ।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात्खलु ।।३५।।

जो पुरुष क्षणमात्र भी भक्तिपूर्वक शिवकी कथा सुनते हैं उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है ।२९। हे मुने जो समस्त दानोंमें या सम्पूर्ण यज्ञों में पुण्य होता है वह फल भगवान् शिवके पुराणके सुननेमात्रसेही होजाता

है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।३०। हे व्यासजी ! कलयुग में खास तौर से पुराण स्रवण के बिना मनुष्यों को मुक्ति दान में परायण अन्य कोई भी धर्म नहीं कहा गया है ।३१। मनुष्यके लिये शिवपुराणका स्रवण और नाम-संकीर्तन कल्पवृक्ष के फलके समान सुन्दर बताया गया है,इसमें कुछभी संशय नहीं है ।३२। इस कलियुग में धर्माचार के त्याग देने वाले दुर्बुद्धि मानवों के हितके लिये भगवान् शिवने अपने नाम वाला पुराण नामक अमृत रसका विधान किया है ।३३। अमृत के पान से केवल पान करने वाला एकही मानव अजर-अमर हो जाता है, किन्तु शिव-कथारूपी अमृत के पान करनेसे समृत के पान करने से समस्त कुलही अजर-अमर होता है ।३४। हे तात ! पुण्यात्माओं की तथा यज्ञकर्त्ता और तापसों की जो गतिहोती है वही गति एकबार पुराणके स्रवण करने से होती है ।३५

ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः ।
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्र श्रोतव्यमेव च ।।३६।।
पापं संक्षीयते नित्य धर्मश्चव विवर्द्धते ।
पुराणस्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ।।३७।।
अतएव पुराणानि स्रोतव्यानि प्रयत्नतः ।
धर्माथकमलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा ।।३८।।
यक्षैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया ।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणस्रवणान्नरः ।।३९।।
न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु ।
यद्यत्र यद्व्रती स्थाता चात्र पारत्रिकीं कथाम् ।।४०।।
षड्विंशतिपुराणानां मध्येऽप्येकं शृणोति यः ।
पठेद्वा भक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ।।४१।।

अन्यो न दृष्टः सुखदा हि मार्गः पूराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः ।
शास्त्रं बिना सर्वमिदं न भाति सूर्येण हीना इव जीवलोकाः ।४२।

ज्ञानकी प्राप्ति के अभावमें यत्न सहित योग-शास्त्रों को पढ़ना चाहिए और परायण शास्त्रोंका स्रवण करना चाहिये ।३६। पुराणके स्रवणसे पाप

छूटते हैं,धर्म नित्यबढ़ता है । उससे यहहोता है कि वह ज्ञानीहोकर संसार के आवागमनसे मुक्त होजाता है ।३७। इसीसे धर्म,अर्थ,काम एवं मोक्ष की प्राप्तिके लिये यत्नपूर्वक पुराणोंका श्रवण प्रत्येकको करना चाहिये ।३८। यज्ञ,दान, तप तथा तीर्थ सेवन से जो फल मिलता है वही पुराण श्रवण से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।३९। यदि धर्म के मार्ग दर्शक पुराण न होते तो इस लोक और परलोक की कथा सुनाने वाला कोई व्रती न रहता ।४०। छब्बीस पुराणों में किसी एक भी कोई श्रवण कर लेता है अथवा भक्ति के साथ पढ़ लेता है तो वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता हैं ।४१। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सुखप्रद मार्ग देखने में नहीं आता है । पुराण श्रवण का मार्ग ही परम श्रेष्ठ है । बिना शास्त्र के यह संसार भी इस तरह शोभायुक्त नहीं है, जिस प्रकार बिना सूर्य देव के यह जीव लोक शोभा नहीं पाया है ।।४२।।

किस पाप के फल से किस नरक में जाना पड़ता है तथा प्रायश्चित वर्णन

तेषां मूर्द्धोपपरिष्टाद्वै नरकास्ताञ्छृणुष्व च ।
मत्तो मुनिवरश्रेष्ठ पच्यन्ते यत्र पापिनः ।। १ ।।
रौरवः शूकरो राधस्ताला विवमनस्तथा ।
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽपि विलोहितः ।। २ ।।
वैतरणी पूयवहा कृमिणः कृमिभोजनः ।
असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षश्च दारुणः ।। ३ ।।
तथा पूयवहः प्रायो वह्निर्ज्वालो ह्यधशिराः ।
संदशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरोधनः ।। ४ ।।
श्वभोजनोऽथ रुष्टश्च महारौरवशाल्मली ।
इत्याद्या बहवस्तत्र नरका दुःखदायकाः ।। ५ ।।
पच्यते तेषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ।
क्रमद्वक्ष्ये तु तान् व्यास सावधानतया श्रृणु ।। ६ ।।

कूटसाक्ष्यं तु यो वक्ति विना विप्रान् सुराश्च गाः ।
सदाऽनृतंवदेद्यस्तु स नरो याति रौरवम् ।। ७ ।।

श्री सनत्कुमारजीने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! उन लोगोंके ऊपर जो नरक हैं उनका बृत्तान्त अब आप मुझसे श्रवणकरो जहाँपर पापात्माजीव जाकर दुःख भोगा करते हैं ।१। रौरव,शूकर, रोध,ताल तथा विवसन,महाज्वाल, तप्तकुम्भ,लवण विलोहित,वैतरणी,पूयवहा,कृमी-कृमि भोजन,घोर असिपत्र वन,दारुण, लालाभक्ष, पूयवह,बहिर्ज्वाल, अधश्शिर, सदश कालसूत्र, तमश्चावी, चिरोधन, श्वभोजन, रुष्ट,महारौरव,शाल्मि,इत्यादि वहाँ बहुत से परमदुःखदायक नरक हैं ।२-५। हे व्यासजी ! इन नरकोंमें जोभी पापात्मा पुरुषोंका पातनकियाजाता है मैं उनके विषयमें क्रमसे सबसुनाता हूं । आप सावधान चित्तसे श्रवणकरें ।६। जो मनुष्य बिना ब्राह्मण,बिना देवता और बिना गौ के कूटसाक्ष्य अर्थात् झूँठी गवाही देता है और सर्वथा मिथ्या बोलता है वह रौरव नामक नरक में डाला जाता है ।।७।।

भ्रूणहा स्वर्णहर्त्ता च गोरोधी विश्वघातकः ।
सुरापो ब्रह्महंता च परद्रव्यापहारकः ।। ८ ।।
यस्तत्सङ्गी स वै याति मृतो व्यासगुरोर्वधात् ।
ततः कुम्भ स्वसुर्मातुर्गोश्चव दुहितुस्तथा ।। ९ ।।
साध्व्या विक्रयकृच्चाथ वार्द्धकी केशविक्रयी ।
तप्तलोहेषु पच्येत यश्चा भक्तं परित्यजेत् ।।१०।।
अवमंता गुरूणां यः पश्चाद् भोक्ता नराधमः ।
देवदूषयिता चैव देवविक्रयिकश्चा यः ।।११।।
अगम्यगामी यश्चांते याति सप्तबलं द्विज ।
चौरो गोघ्नो हि पतितो मर्यादादूषकस्तथा ।।१२।।
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ।
स याति कृमिभक्ष वै कृमिमत्ति दुरिष्टकृत् ।।१३।।
पितृदेवसुरान् यस्तु पर्यश्नाति नराधमः ।
लालाभक्ष स य त्यज्ञो यः शास्त्रकूटकृन्नरः ।।१४।।

जो भ्रूण हत्यारा, सुवर्ण चोर, विश्वासघातक, मद्यपी, ब्रह्म हत्यारा परधनापहारी और गायको रोकनेवालाहोता है तथा हे व्यासजी! जाइनका सङ्ग-साथ देने वाला होता है ये सब और गुरुके वधकर्त्ता, बहिन, माता, गौ पुत्रीके वधकरने वाला तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाते हैं।८-६।साध्वी स्त्री को बेच देनेवाला, व्याज खानेवाला, केशोंका बेचनेवाला और भक्तोंकात्याग करनेवाला ये सब 'तप्तलोह' नामक नरकमें जायाकरते हैं।१०।जो गुरुजन का तिरस्कार करने वाला पीछे भोजन करने वाला, मनुष्योंमें नीचदेवताओं को दूषित बताने वाला और जो देव प्रतिमाओंका विक्रय करनेवाला है, हे द्विज ! जो अगम्य स्त्रीमें गमनकरता है-ये सब तप्त बलके अन्तमें जाते हैं। चोर, गौ हत्या करने वाला, पतित, मर्यादा तोड़ने वाला, देव, ब्राह्मण और पितरोंसे द्वेषकरनेवाला और रत्नोंमें मेलमिलाप करनेवाला-ये सब कृमि-भक्ष नामक नरकमेंजाते हैं और वहाँ कीड़ोंको खाते हैं ।११-१३। जोनीच मनुष्य देवता, पितर, मनुष्य और अतिथियों के बिना स्वयं खाता है तथा शस्त्रकूट है, वह लालाभक्ष नामक नरक में जाता है ।।१४।।

यश्चांत्यजेन ससेव्यो ह्यसद्ग्राही तु यो दिजः ।
अयाज्ययाजकश्चैव तथैवाभक्ष्यभक्षकः ।।१५।।
रुधिरौघे पतंत्येते सोमविक्रयिणश्च ये ।
मधुहा ग्रामहा याति क्रूरां वैतरणी नदीम् ।।१६।।
नवयौवनमत्ताश्च मर्यादाभेदिनश्च ये ।
ते कृम्य यांत्यशौचाश्च कुलकाजीविनश्च ये ।।१७।।
असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यः ।
क्षुरभ्रका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतंति तेः ।।१८।।
भ्रष्टाचारो हि यो विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च ।
यात्यंते दिज तत्रैव यः श्वकाकेषु वह्निनयः ।।१९।।
व्रतस्य लोपका ये च स्वाश्रमादिच्युताश्च ये ।
संदशयातनामध्ये पतंति भृशदारुणे ।।२०।।

वीर्यं स्वप्नेषु स्कंदेयुर्ये नरा ब्रह्मचारिणः ।
पुत्रा नाध्यापिता यैश्च ते पतित श्वभोजने ॥२१॥

ब्राह्मण होकर अन्त्यज के साथ सेबन करने वाला दुर्जनों से ग्रहण करने वाला, बिना याचकों के यज्ञ कराने वाला तथा अभक्ष्य पदार्थों को खाने वाला सोमरसको बेचने वाला—ये सब रुधिरौघ नामक नरक में जाते हैं। मधुका हरण करने वाला, ग्राम की हत्या करने वाला—ये क्रूर वैतरणी नदी में जाया करते हैं।१५-१६। जो अपने नये यौवन में उन्मत्त होकर मर्यादा तोड़ने वाला अपवित्र हैं—जो स्त्री के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं वे सब कृम्य नामक वाले नरक में जाया करते हैं।१७। बृथाही वृक्षों को काटने वाले जो होते हैं वे असिपत्रवन नामक नरक में जाते है। जो क्षुरभ्रक और मृग हिंसक व्याघ्र हैं वे वहिन-ज्वाला नाम वाले नरक में जाते है।१८। हे द्विज ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य अपने आचार से भ्रष्ट हैं श्वपाक में आग देने वाले हैं वे सब अन्तमें उक्त नरकों में जाया करते हैं।१९। जो व्रत के लोप करने वाले तथा जो अपने आश्रम से भ्रष्ट है ये सब अति कठोर नामक तथा सदृश यातना में जाकर पढ़ते हैं।२०। जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्न में वीर्य को स्खलित करते हैं वे श्वभोजन नामक नरक में पड़ते हैं।२१।

एत चान्ये च नरकाः शतशोऽथ शहस्रशः ।
येषु दुष्कर्मकर्माणः पच्यते यातनागताः ॥२२॥
तथैव पापन्युक्तानि तथान्यनि सहस्रश ।
भुज्यते यानि पुरुषैनरकांतरगोचरैः ॥२३॥
वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वन्ति ये नराः ।
कर्मणा मनसा वाचा निरये तु पतन्ति त ॥२४॥
अधःशिरोभिदृश्यन्ते नरका दिवि दैवतैः ।
देवानधोमुखान्सर्वानधः पश्यन्ति नारकाः ॥२५॥
स्थावराः कृमिपाकाश्च पक्षिणः पशवो मृगाः ।
धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥२६॥

यावंतो जंतव: स्वर्गे तावंतो नरकौकस। ।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्गमुख: ।।२७।।
गुरूणि गुरुभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा ।
प्रायश्चित्तानि ह्यन्येच मनु: स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।।२८।।

ये पूर्वोक्त तथा अन्य सैकड़ों एवं सहस्रों नरक हैं जिनमें पापात्मा मनुष्य यातना भोगने के लिये पटके जाते हैं ।२२। पापभी सहस्रों प्रकार के होते हैं। ये बताये गए तथा अन्यभी बहुतसे हैं जिनके कारण मनुष्य नरकों में पड़कर उनका फल भोगा करते हैं ।१२। जो मनुष्य मन, वाणी और कर्म से अपने वर्ण तथा आस्रम के विपरीत कर्म किया करते हैं वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं ।२४। ऐसे नरकों में निवास करने वाले पुरुष देवों के द्वारा नीचेकी ओर मुख करके देखे जाते हैं और नरकवासी स्वयं नीचेकी ओर मुख करके देवों को देखा करते हैं ।२५। जिस तरह स्थावर कृमिपाक पक्षी मृग है इसी तरह क्रमसे वार्षिक स्वर्ग—मोक्ष वाले जीव हैं ।२६। जितने जीव-जन्तु स्वर्ग में रहते हैं ठीक उतने ही नरक में स्थित होते हैं । जो मनुष्य अपने किए हुए दुष्कर्मों का कोई भी प्रायश्चित शास्त्रानुसार नहीं किया करते हैं वे ही पापात्मा प्राणी नरक में जाया करते हैं ।२७। स्वायम्भुव मनुने तथा अन्य महर्षियों ने भी बड़े पापों के बड़े प्रायश्चित और छोटे-छोटे पाप कर्मों के छोटे प्रायश्चित बतलाये है ।२८।

यानि तेषामशेषाणां कर्माण्युक्तानि तेषु वै ।
प्रायश्चित्तमशेषेण हरानुस्मरणं परम् ।।२९।।
प्रायश्चित्तं तु यस्यैवं पापं पुंस: प्रजायते ।
कृते पापेऽनुतापोऽपि शिवसंस्मरणं परम् ।।३०।।
महेश्वरमवाप्नोति मध्याह्न दिषु संस्मरन् ।
प्रातर्निशि च सन्ध्यायां क्षीणपापो भवेन्नर: ।।३१।।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम् ।
शिवस्य स्मरणादेव तस्य शंभोरुमापते: ।।३२।।
पापास्तरायो विपेन्द्र जपहोमार्चनादि च ।
भवत्येव न कुत्रापि त्रैलोक्ये मुनिसत्तम ।।३३।।

महेश्वरे　मतियस्य　जपहोमार्चनादिषु ।
यत्पुण्प्र तत्कृत तेन देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।।३४।।
पुमान्न नरकं याति यः स्मरेद् भक्तितो मुने ।
अहर्निशं शिवं　तस्मात्स क्षीणाशेषहातकः ।।३५।।

उनमें जितनेभी कर्म बतलाये हैं उन सभीके सम्पूर्ण प्रायश्चित भी हैं, किन्तु भगवान्‌शिवका स्मरणार्चनकरना समस्तप्रायश्चित्तोंसे बड़ा है । इसी रीतिसे जिसव्यक्तिको प्रायश्चितकरना है उसे पापकर्म कियेजानेका पश्चात्ताप करके शिवका स्मरण करना बतलाया गया है ।२९-३०। जो प्राणी प्रातःकालमें सन्धामें, रात्रिमें और मध्याह्नकेसमयमें किसीभी समयमें नित्य नियमसे भगवान्‌शिवका स्मरणकरता है वह समस्तपापोंसे विमुक्तहोजाता है ।३१। ऐसा दुष्कर्मकर्त्ता पापात्मा प्राणी उमेश्वर शिवके केवल स्मरणसे ही समस्त दुःखोंसे दूर होकर स्वर्ग या मोक्ष पदको पहुंच जाता है ।३२। विपेन्द्र ! हे मुनिवर ! त्रिभुवनों में कहींभी पापोंका प्रायस्चित जप, होम और अर्चन आदि कुछभी नहीं होते हैं और जिसकी बुद्धि शिवके चरणोंमें संलग्नहो उसको जप, होम अर्चनादिसे जो पुण्यमिलता है वह सबपुन्यऔर देवराजइन्द्रका पद फल प्राप्त करता है ।३३-३४। हे मुनिराज ! जो मनुष्य अहर्निश भक्तिपूर्वक शिवकास्मरण कियाकरता है वहकभी नरकगामीनहीं होता है, क्योंकि इससे ही वह पापरहित हो जाया करता है ।।३५।।

नरकस्वर्गसंज्ञायै　पापपुण्यै　द्विजोत्तम ।
दयोस्त्वेक तु दुःखायान्यत्सूखायोद्भवाय च ।।३६।।
तदेव पीयते भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति न किंचित्सुखात्मकम् ।।३७।।
मनसः　पारणामोऽयं　सुखदुःखोपलक्षणः ।
ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं तत्वाय कल्पते ।।३८।।
ज्ञानात्मकामिद विश्वं सकलं सचराचरम् ।
परविज्ञानतः किंचिद्विद्यते न परं मुने ।।३९।।

हे द्विजोत्तम ! ये पाप और पुन्य ही नरक और स्वर्गके नामोंके अर्थ हैं । इन दोनों स्थानों में पाप दुःखोंके भोगके वास्ते और पुन्य सुखोपभोग

के लिये हुआ करते हैं।३६।ऐसा भी होता है कि वही पुन्य प्राप्तिके लिये होकर फिर दुखके लिये भी हो जाता है। इस कारणसे न कुछ दुःख देने वाला है और कुछ सुख देनेवाला है।३७। यह प्राणियोंके मनकापरिणाम ही दुःख-सुखका लक्षण होता है। इसलिये ज्ञान ही परब्रह्म का स्वरूप है और ज्ञानहीकी तत्वके लिये कल्पना की जाती है।३८। हे मुनिवर! यह चराचरात्मक समस्त संसार ज्ञानात्मक है परा विज्ञानसे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है ॥३९॥

तप से शिव लोक की प्राप्ति तथा मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता

सनत्कुमार सर्वज्ञ तत्प्राप्तिं वद सत्तम।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शिवभक्तियुता नरः ॥ १ ॥
पराशरसुत व्यास शृणु प्रीत्या शुभां गतिम्।
व्रतं हि शुद्धभक्तानां तथा शुद्धं तपस्विनाम् ॥ २ ॥
ये शिवं शुद्धकर्माणः सुशुद्धतपसान्विताः।
समर्चयन्ति तं नित्यं वन्द्यास्ते सर्वथान्वहम् ॥ ३ ॥
नातप्ततपसो यांति शिवलोकमनामयम्।
शिवानुग्रहसद्धेतुस्तप एव महामुने ॥ ४ ॥
तपसा दिवि भोगन्ते प्रत्यक्षं देवतागणः।
ऋषयोमुनयश्चैव सत्यं जानीहि मद्वचः ॥ ५ ॥
सुदुर्द्धरं दुराध्यं सुधूरं दुरतिक्रमम्।
तत्सर्व तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ६ ॥
सुस्थितस्तपसि ब्रह्मा नित्यं विष्णुर्हरस्तथा।
देवा देव्योऽखिलाः प्राप्तस्तपसा दुर्लभं फलम् ॥ ७ ॥

श्री व्यासजीने कहा-हे सनत्कुमारजी! अब आपकृपाकर उस पदकी प्राप्तिके विषयमें वर्णनकररें जहाँ प्राप्तहोकरश्रीशिवकी परम भक्तिमेंपरायण प्राणी नहीं लौटा करते हैं।१। सनत्कुमारजीने कहा-हे पराशर पुत्र श्री व्यासजी! अच्छा अब आप मुझसे वही शुभगति तथा शुद्ध एवं पवित्र भक्त और तपस्वियों के व्रतके विषयमें श्रवण करें।२। जो भी शुद्ध कर्मोवे

करने वाले तथा शुद्ध तपस्या में युक्त मनुष्य शिवका अर्चन कियाकरते हैं वे सर्वदा सभीके बन्दनीय और पूजा करने के योग्य होते हैं ।२। हे महा-मुने ! बिना तप किये नीरोग भी शिवलोक नहीं जाया करते हैं शिवकी कृपा भी तपश्चर्यासे बतलाईगई है ।४। आप सब मेरे इस कथनको सर्वथा सत्य समझें कि तपसे ही देवगण प्रत्यक्ष होकर स्वर्गमें आनन्दोपभोग किया करते हैं और तपश्चर्या से ही ऋषि-मुनि भी परमहर्षितहोते हैं ।५। जो सबसे कठिन, दुराराध्य और धुरधारी तथा अत्यन्त कठिनाई से अतिक्रमण करने के योग्य होता है, वह सब तपस्यासे साध्य हो जाता है किन्तु यह तपही एक परम दुस्साध्य वस्तु है ।६। इसी तपमें ब्रह्मा स्थित रहा करते हैं–तपमें ही विष्णु मग्न रहते हैं और तपस्या में शिव सदा प्रवृत्त रहते हैं तथा समस्त देवगण और देवियोंने भी तपके प्रभावसे ही दुर्लभ फलकी प्राप्ति की है ।।७।।

येन येन हि भावेन स्थित्वा यत्क्रियते तप: ।
तत: संप्राप्यतेऽसौ तैरिह लोके न संशय: ।। ८ ।।
सात्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविध स्मृतम् ।
विज्ञेयं हि तपो व्यास नून हि सर्वसाधनम् ।। ९ ।।
सात्विकं दैवतानां हि यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
राजसं दानवानां हि मनुष्याणां तथैव च ।।१०।।
त्रिविधं तत्फलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि: ।
जपो ध्यानं तु देवानामर्चनं भक्तिव: शुभम् ।।११।।
सात्विकं तद्धि निर्दिष्टमशेषफलसाधकम् ।
इह लोके परे चैव मनोभिप्रेतसाधनम् ।।१२।।
कामनाभलमुद्दिश्य राजसं तप उच्यते ।
निजदेह सुसंपीड्य देहशोषकदु:सहै: ।।१३।।
तपस्तामसमुद्दिष्टं मनोऽभिप्रेतसाधनम् ।।१४।।

यह तप जिस-जिस भावना से स्थित होकर किया जाता है वही फल इस लोकमें उन करने वालोंको निश्चय ही मिलता है । इस कथनमें संशय नहीं करना चाहिए ।८। हे व्यासजी ! यह तप सात्विक-राजस और तामस

तीन तरहका होता है। तपही सबका साधन है,देवगण तथा संन्यासियों का एवं ब्रह्मचारियों का तप सात्विक अर्थात् सतोगुणी होती है। दैत्य और मनुष्यों का तप राजस अर्थात् रजोगुणी होता है और राक्षस लोग तथा दुष्ट कर्म करने वालोंका तप तामस हुआ करता है।१०। तत्वदर्शी मुनियोने तप का फलभी तीन प्रकार का ही बतलाया है। जप-ध्यान और भक्ति के सहित देवताओं का अर्चनकरना यह सात्विकतप समस्त फलों का प्रदाता एवं साधक बतलाया गया है। यह इसलोकमें एवं परलोकमें मानवों की मनोकामनाओं का पूर्ण करने वाला होता है।११-१२। कामना के फलका उद्देश्य करके देह के शोषक तपस्या से जो शरीर को पीड़ित किया जाता है वह राजस तपकहा गया है।१३। जो केवल अपने मनोरथों की सिद्धि के लिए ही तप किया जाता है वह तामस तप कहा जाता है।१४।

उत्तमं सात्विकं विद्याद्धर्मबुद्धिश्च निश्चला।
स्नान पूजा जपो होमः शुद्धशौचमहिंसनम् ॥१५॥
व्रतोपवासचर्या च मौनमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दानं क्षाँतिर्दमो दया ॥१६॥
वापीकुपतड़ागादेः प्रासादस्य च कल्पना।
कृच्छ चान्द्रायणं यज्ञः सुतीर्थान्याश्रमाः पुनः ॥१७॥
धर्मस्थानानि चैतानि सुखदानि मनीषिणाम्।
सुधर्मः परमोः व्यास शिवभक्तेश्च कारणम् ॥१८॥
संक्रांतिविषवद्योगो नादमुक्ते नियुञ्वताम्।
ध्यानं त्रैकालिकं ज्योतिरुन्मनीभावधारणा ॥१९॥
रेचकः पूरकः कुम्भः प्राणायामस्त्रिधा स्मृतः।
नाडीसंचारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम् ॥२०॥
तुरीयं तदधो बुद्धिरणिमाद्यष्टसंयुतम्।
पूर्वोत्तमं समुद्दिष्टं परज्ञानप्रसाधनम् ॥२१॥

सात्विक तप सबसे उत्तम तप समझना चाहिए। इसमें निश्चय धर्म की बुद्धि,स्नान पूजा, जप, होम,शुद्धि शौच, अहिंसा ये होते हैं।१५। इस

तप में व्रत, उपवासचार्या, मौन, इन्द्रिय,निरोध,बुद्धि,विद्या,सत्य,अक्रोध, दान,शान्ति,दम और दया का भाव होता है।१६। सात्विक तपमें बावड़ी कूप, सरोवर एवं महल आदिका निर्माण, कृच्छचान्द्रायण, यज्ञ, श्रेष्ठ तीर्थोंका अटन और आश्रय करना होता है।१७। हे व्यासजी ! ये सब धर्म के स्थान हैं, बुद्धिमानोंको सुख देने वाले और शिवकी भक्तिके कारण स्वरूप होते हैं।१८। संक्रान्ति विषुवत् योग नादयुक्त हमें प्रयोग करना चाहिए, तीनों कालोंमें ध्यान,ज्योति,उन्मनी-भाव यह धारण कही जाती है।१६। रेचक, पूरक और कुम्भक ये तीन प्रकार का प्राणायाम कहा जाता है। नाड़ी सञ्चारका ज्ञानकरना तथा प्रत्याहारका रोकनाहोता है २०। चतुर्थ अणिमा आदि आठ सिद्धियोंके सहित अघोबुद्धि करना यह पूर्वोक्तम परम ज्ञानका साधन बताया गया है। २१।।

काष्ठावस्था मृतावस्था हरिता वेति कीर्तिता: ।
नानोपलब्धयो ह्येता: सर्वपापप्रणाशना: ।।२२।।
नारी शय्या तथा पानं वस्त्रधूपविलेपनम् ।
ताम्बूलभक्षणं पंच राजैश्वर्याविभूतय: ।।२३।।
हेमभारस्तथा ताम्रं गृहाश्च रत्नधेनव: ।
पांडित्यं वेदशास्त्राणां गीतनृत्य विभूषणम् ।।२४।।
शङ्खवीणामृदङ्गाश्च गजेन्द्रश्छत्रचामरे ।
भोगरूपाणि चैतानि एभि: सक्तोऽनुरज्यते ।।२५।।
आदर्शवन्मृने स्नेहैस्तिलवत्स न पीडयते ।
अर गच्छेति चाप्येनं कुरुते ज्ञानमोहित: ।।२६।
जानन्नपीह संसारे भ्रमते घटियन्त्रवत् ।
सर्वयोनिषु दुखार्त: स्थावरेषु चरेषु च ।।२७।।
एवं योनिषु सर्वासु प्रतिक्रम्य भ्रमेण तु ।
कालांतरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम् ।।२८।।

काष्ठावस्था,मृतावस्था और हरितावस्था ये तीन अवस्थायें कही गयी है। ये अनेक तरहकी उपलब्धियाँ और समस्त पापोंको नाश करने वाली

होती है ।२२। नारी-शय्या-पान-वस्त्र-धूप-लेपन और ताम्बूल भक्षण-ये पाँच राजैश्वर्य विभूतियाँ होती हैं ।२३। हेम भार-ताम्र-गृह-रत्न-धेनु-वेद-शास्त्रोक पाण्डित्य-गीत-नृत्य-आभूषण-शंख-वीणा-मृदंग-गजेन्द्र-छत्र-चामर ये सब उपादान भोगस्वरूप हैं। इनमें आरक्तहुआ मानव अनुरागको प्राप्त होजाया करता है ।२४-२५। हे मुनिवर ! जो संसारी प्राणी हैं वे दर्पणके तुल्य तथा तेलके तिलोंकी भाँति पेरेजाते हैं। भ्रमणको प्राप्तहोकर इनको ज्ञानसे मोहित करता है ।२६। सब कुछ ज्ञान रखता हुआ भी इस संसारमें घड़ीके यन्त्रके समान भ्रमण किया करता है और स्थावर एवं चर स्वरूप समस्त योनियोंमें परम दुःखित होकर विचरण करता रहता है ।२७। इस तरह समस्त योनियों में पर्यटन करके कालान्तर में जाकर कहीं उसे यह मनुष्य योनि प्राप्त हुआ करती है। यह मानव-जन्मका प्राप्तकरना अत्यन्त दुर्लभ होता है ।२८।

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात् ।
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ।।२९।।
मानुष्यं च समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ।
न चरत्यामनः श्रेयः स मृतः शोचते चिरम् ।३०।
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यं चातिदुर्लभम् ।
तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ।३१।
स्वर्गाग्विगलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः ।
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं बृथा तज्जन्म कीर्तितम् ।३२।
सर्वस्य मूलं मानुष्यं चतुर्वर्गस्य कीर्तितम् ।
संप्राप्य धर्मतो व्यास तद्यत्नादनुपालयेत् ।३३।
धर्ममूलं हि मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् ।
यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षेत्स्वय ततः ।३४।
मानुष्येऽपि च विप्रत्वं यः प्राप्य खलु दुर्लभम् ।
नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तमादचेतनः ।३५।

व्युत्क्रम से भी पुण्य की गुरुता से यह मानव-जन्म प्राप्त किया जाता

है। कर्मोंके बड़ेहोने तथा छोटेपनकी अत्यन्त अद्भुतगति बतलाई गई है। ।२९। जो जीवात्मा स्वर्ग प्राप्ति तथा मोक्ष के साधक इस अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीरमें जन्मपाकर भी अपने कल्याणकारक कर्म नहीं कियाकरता है वह मृत्युके पश्चात् बहुत समय तक शोक एवं चिन्तामें डूबा रहता है ।३ समस्त देवगण और असुरोंमें भी यह मनुष्यशरीरका जन्मपरदुर्लभ होता है। इस मानवशरीरको सौभाग्यसे प्राप्तकरके ऐसाही करना चाहिये जिससे नरकों में गमन न करना पड़े ।६१। यदि इस परम दुर्लभ मनुष्य के जन्मका लाभ प्राप्तकरके भी स्वर्ग तथा अपवर्गकी प्राप्तिकेलिए कुछ उद्यम नहींकिया जावे तो यह मानव-जन्मही व्यर्थ समझनाचाहिए ।३२। हे व्यासजी ! समस्त धर्म-अर्थ, काम और मोक्षका आदिकारण मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करना ही बतलाया गया है। इसलिये इस प्राप्तकरके अवश्यही धार्मिक-पद्धति से यत्नपूर्वक इसका यथोचित उपयोग करतेहुए पालन करना चाहिए ।३३। यदि समस्त पदार्थोंके साधन स्वरूप एवं धर्मकेपालक तथा मूलभूत मनुष्य के जन्मको प्राप्तकर अपने लाभके लिये यत्न किया जावे तो स्वयं मूलकी रक्षा होजावे ।३४। इस मानव जन्म में भी ब्राह्मण का शरीर प्राप्त करना महान् दुर्लभ होता है। इसे पाकर भी जो अपने कल्याण कारक कर्म नहीं किया करता है उससे अधिक मूढ़ एवं जड़ और कौन होगा ? ॥३४॥

द्वीपानामेव सर्वेषां कर्मभूरियमुच्यते ।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते समुपार्जितः ॥३६॥
देशेऽस्मिन्भारते वर्षे प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ।
न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वंचितः ॥३७॥
कर्मभूमिरियं विप्र फलभूमिरसौ स्मृता ।
इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदनुभुज्यते ॥३८॥
यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किंचित्कर्तुमुत्सहेत् ॥३९॥
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं यो न प्रसाधयेत् ।
ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव च ॥४०॥

आयुषः खंडखंडानि निपतंति तदग्रतः ।
अहोनात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते ॥४१॥
यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विदति कस्तथा ॥४२॥

समस्त द्वीपों में इस भूमि को कर्म करने का क्षेत्र बतलायागया है । यहाँ पर स्वर्ग और मोक्ष का अर्जन कियाजाता है।३६। इस भारववर्ष में इस अति अस्थिर मानव शरीर को प्राप्त कर यदि अपना कल्याण नहीं किया जाता है तो यही कहनाचाहिए कि निश्चितरूपसे उसनेअपनी आत्मा को वञ्चित किया है ।३७। हे विप्र ! यह कर्मभूमि बतलाई गई है और यही फलभूमि भी बताई गई है ; यहाँ पर जो सत्कर्म किया जाता है वह स्वर्ग में जाकर भोगा जाया करता है.३७।जब तक यह सत्कम का साधन भूत शरीर स्वस्थता प्राप्ति किये हुए रहे तभी तक धर्म के कृत्य करे, क्योंकि स्वस्थताके अभाव में औरों की प्रेरणाप्राप्त करतेहुयेभी फिर कुछ भी नहीं कर सकता है और अस्वस्थ शरीर में कोई भी उत्साह शेष नहीं रहा करता है ।३८। जो मनुष्य इस अनिश्चित क्षण.भंगुर शरीर के द्वारा परम स्थिर एवं निश्चल धर्म की सिद्ध नहीं करता है उसका ध्रुव धर्म तो नष्ट हो ही जाता है और अध्रुव यह शरीर है वह तो निश्चय ही नष्ट होने वाला होता ही है ।४०। इस मानव शरीर की आयु के खण्ड २ होकर यों ही उसके आगे नष्ट होते चले जाते हैं । दिन और रात सदा उपदेश दे रहे हैं फिर भी नहीं जगते है ।४१। जब कि यह नहीं ज्ञात रहता है कि कब किसकी मृत्यु होती है फिर अचानक मृत्यु हो जाने पर कौन ऐश्वर्य की खोज करता है ।४२।

परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यति ध्रुवम् ।
न ददाति कदा कस्मात्पाथेयाथमिदं धनम् ॥४३॥
गृहीतदानपाथेयः सुख याति यमालयम् ।
अन्यथा क्लिश्यते जंतुः पाथेयरहिते पथि ।४४॥
येषां कालेय पुण्य नि परिपूर्णानि सर्वतः ।

गच्छतां स्वर्गदेशं हि तेषां लाभः पदे पदे ।४५।
इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् ।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यो नरकं व्रजेत् ।४६।
ये मनागपि देवेश प्रपन्ना शरणं शिवम् ।
तेऽपि घोरं न पश्यति यमं न नरकं तथा ।४७।
किंतु पापैर्महामोहैः किंचित्काले शिवाज्ञया ।
वसंति तत्र मानुष्यास्ततो यान्ति शिवास्पदम् ।४८।
ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्नाः महेश्वरम् ।
न ते लिम्पन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।४९।

मृत्यु के प्राप्त होने पर प्राणी अपने समस्त धनादि वैभव को यहीं त्याग करके अकेला निश्चय ही चला जायेगा तो फिर मार्गमेंअपने पाथेय के लिये धनका दान क्योंनहीं करताहै?।४३। जिस प्राणीने दानरूपी चबेना अपने साथ बाँध लिया है वह सुखपूर्वक यमलोककी यात्राकियाकरता है। अन्यथा यहदान पुण्यके बिना यमलोककी यात्रामें बहुत दुःखहोता है।४४। हे व्यासदेव ! जिन पुरुषों के पुण्यसभीओरसे परिपूर्ण हैं स्वर्गलोकमें जाने वाले उन प्राणियों को पद-पदमें लाभहोता है।४५। यही समझकर मनुष्य को सर्वदा पुण्य-कार्य अवश्य ही करने चाहिए। मानवको पाप कभी नहीं करने चाहिये। पुण्य से ही देवत्वकी प्राप्ति होती है औरपापकर्मोसे नरक की प्राप्ति हुआ करती है।४६। जो मनुष्य किसी भी प्रकार से भगवान् शिव की शरण में प्राप्तहोजाते हैं वे फिर कभी भी यमराजको तथा उसके द्वारा दिये जाने वाले नरक को नहीं देखतेहैं।४७। पापों से और महामोह के कारण थोड़े से समय के लिये शिवकी आज्ञासे नरक में निवास किया करते हैं और इसके पश्चात् वे शिव लोक की प्राप्ति किया करते हैं।४८। जो अपने सम्पूर्ण भाव से भगवान् शिव को प्राप्त किया करते हैं, वे जलसे कमल की भाँति अर्थात् कमल पत्रके समान पापोंसे लिप्त नहींहोते हैं।४९।

उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च ।
न तेषाँ नरकाद् भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम ।५०।

परलोकस्य पाथेयं मोक्षोपायमनामयम् ।
पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षारद्वयम् ।५१।
शिवनामैव संसारमहारोगैकशमाकम् ।
नान्यत्संसार रोगस्य शामकं दृश्यते मया ।५२।
ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कशः ।
शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा ।५३।
तस्माद्विवर्द्धयेद् भक्तिमीश्वरे सततं ब्रधः ।
शिवभक्त्या महाप्राज्ञ भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ।५४।

जिन्होंने कभी भी अपने मुख से भगवान् शिव का नाम या 'हर-हर' ऐसा कहा है, हे मुनिसत्तम ! उनको नरकों का और यमराजका कुछ भी भय नहीं रहता है ।५०। परलोक का चबेना और निरामय मोक्षका उपाय,पुण्य समुदायका एकमात्र स्थान'शिव' ये महेश्वर नामके दो अक्षर ही होते हैं—ऐसा शास्त्र बताते हैं ।५१। यह भगवान् शिवका परम पावन नाम ही संसार के समस्त महारोगों को शान्तकरनेका एकमात्र उपाय है । इसके अतिरिक्त संसार के महारोगों के शमन करने वाला अन्य कोई भी उपाय नहीं देखाजाताहै ।५२। प्राचीनसमयमें सहस्रोंकी सँख्यामें ब्रह्महत्या जैसा पाप करने वाले लोगोंने 'शिव-शिव'—यह निर्मल नाम का श्रवण करके मोक्षपद की प्राप्तिकी है ।५३। हेमहाप्राज्ञ । इसलिए विद्वान् व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह निरन्तर शिवकी भक्तिको हृदयमें बढ़ावे । शिव भक्तिसे मुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है ।५४।

॥ मृत्यु काल का ज्ञान ॥

भगवन्स्त्वत्प्रसादेन ज्ञातं मे सकलं मतम् ।
यथाचैन तु ते देव यो मन्त्रश्च यथाविधि । १ ।
अद्यापि संशयस्त्वेकः कालचक्र प्रति प्रभो ।
मृत्युचिह्नं यथा देव किं प्रमाणं तथायुषः । २ ।
सर्वं कथय मे नाथ यद्यहं वल्लभा ।
इति पृष्ठस्तया देव्या प्रत्युवाच महेश्वरः । ३ ।

सत्यं ते कथयिष्यामि शास्त्रं सर्वोत्तमं प्रिये ।
ये न शास्त्रेण देवेशिनरैः कालः प्रबुध्यते ॥ ४ ॥
अहः पक्षं तथा माससमृतुं चायनवत्सरौ ।
स्थूलसूक्ष्मगतैश्चिह्नै वाह्यरंतर्गतैस्तथा ॥ ५ ॥
तत्तेऽह सम्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्वेन सुन्दरि ।
लोकानामुपकारार्थं वैराग्यार्थमुमेऽधुना ॥ ६ ॥
अकस्मात्पांडुर देहमूर्ध्वंराग समंततः ।
तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥ ७ ॥

पार्वतीजी ने कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने सद्ज्ञान प्राप्त कर लिया है । हे देव ! यन्त्रोंसे तथा मन्त्रों से जिस तरह विधि के सहित आपका अर्चन किया जाता है वह अब कृपा करके मुझे बतलाइये ।१। हे प्रभो ! हे देव । इस काल चक्रके विषयमें मुझे अभीतक संशय होता है । मृत्यु का चिन्ह और आयुका प्रमाण जिस तरह होता है वह मुझे बताने की कृपा करें ।।२। हे स्वामिन ! यदि आप मुझपर अपनी परम प्रिया समझ कर प्यार करते हैं तो मुझे सब बातें बताइये । इस रीतिसे देवी के द्वारा कहे जाने पर शिवजी ने कहना प्रारम्भ किया ।३। शिवजी ने कहा—हे प्रिये ! हे देवेशि ! मैं अब तुमको उस परम सत्य शास्त्र का वर्णन करता हूँ जिसके द्वारा मनुष्यों के काल का ज्ञान हो जाता है ।४। जिस तरह मृत्युके चिह्नों का ज्ञान होता है वे चिह्न दिन, पक्ष, मास ऋतु,अयन और वत्सर आदि होते हैं । ये बाहरी तथा भीतरी स्थूल तथा सूक्ष्म हुआ करते हैं ।५। हे सुन्दरी ! हे पार्वती ! मैं ये सभी लोकों के उपकार तथा वैराग्य के लिये तुम्हें बतलाता हूँ सो तुम भलीभाँति श्रवण करो ।६। हे प्रिये ! यदि अकस्मातही चारों ओरसे पीत वर्ण वाला शरीर ऊपरसे लाल होजावे तो छः महीने के अन्दर मृत्यु जाव लेनी चाहिये।७।

मुख कर्णौ तथा चक्षुर्निह्वास्तम्भो यदा भवेत् ।
तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥ ८ ॥
रोरवानुगतं भद्रे ध्वनिं नाकर्णयेद्द्रुतम् ।
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्ज्ञातव्यः कालवेदिभिः ॥ ९ ॥

रविसोमाग्नि संयोगाद्यदोद्योतं न पश्यति ।
कृष्णं सर्वं समस्तं च षण्मासं जीवितं तथा ।१०।
वामहस्तो यदा देवि सप्ताहं स्पंदते प्रिये ।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशय ।११।
उन्मीलयंति गात्राणि तालुकं शुष्यते यदा ।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेक न संशयः ।१२।
नासा तु स्रवते यस्य त्रिदोषे पक्षजीवितम् ।
वक्त्रं कठ च शुष्येत षण्मासांते गतायुषः ।१३।
स्थूलजिह्वा भवेद्यस्य द्विजाः क्लिद्यन्ति भामिनि ।
षण्मासाज्जायते मृत्युश्चिन्हैस्तैरुपलक्षि-त् ।१४।

हे प्रिये ! जिस समय मुख,कान,आँख और जिह्वाका स्तम्भ होजावे तो उस समय भी यह समझ लेना चाहिये कि छः मासके भीतर मृत्यु हो जायगी ।८। हे भद्रे ! यदि कोई व्यक्ति मनुष्योंके समुदायके द्वारा की हुई ध्वनिको शीघ्रता से सुनने में असमर्थ होतो सालके ज्ञाताओंको छः मासके अन्दर उसकी मृत्यु जानलेनी चाहिये।९।जो कोई सूरज,चाँद और अग्निके संयोगसे होने वाले प्रकाश को न देख पावे और सभी वस्तु काले वर्ण की दिखाईदें तो उसके जीवनके केवल छैमासही शेष समझ लेने चाहिए।१०। हे प्रिये ! हे देवि ! जो किसीका वामहस्त बराबर एकसप्ताहतक फड़कता रहे तो उस व्यक्ति का जीवन काल केवल एक मासका ही होता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।११। जब शरीरके सभीअवयोंमें टूटनसी होवे और तालु बराबर सूखतारहे तो समझलेना चाहियेकि उसप्राणीका जीवनकाल एकमासही शेष रहगया है इसमें तनिकभी संशय नहीं है ।१२। बातपित्त कफ इन तीनोंके दूषित होने वाले त्रिदोष रोगमेंजिस प्राणीकी नाकबहती हो तो एकपक्ष उसका क्षेष जीवन कालहोता है और यदि मुख तथा गला सूखतारहता है छैमासकी शेष आयु समझलेनी चाहिये ।१३। हे भामिनी हे द्विजगण ! जिस मनुष्यकी जीभ स्थल होजावे और दाँत एकसाथ कीट को प्राप्त हो जावे छैमासकी शेष आयु रहती है ।१४।

अंम्बुतैलघृतस्थं तु दर्पणे वरवर्णिनि ।
न पश्यति यदात्मानं विकृतं पलमेव च ।।१५।।
षण्मासायुः स विज्ञेयः कालचक्रं विजानता ।
अन्यच्च शृणु देवेशि येन मृत्युर्विशुद्ध्यते ।।१६।।
शिरोहीनाँ यदा छायाँ स्वकीय भुपलक्षयेत् ।
अथवा छायया हीनो मासमेकं न जीवति ।।१७।।
आङ्गिकानि मयोक्तानि मृत्युचिन्हानि पार्वति ।
बाह्यस्थानि प्रवे भद्रे चिन्हानि शृणु साँप्रतम् ।।१८।।
रश्मिहीनं यदा देवि भवेत्सोमार्कमण्डलम् ।
दृश्यते पाटलाकारं मासार्द्धेन विपद्यते ।।१९।।
अरुंधती महायानमिंदुं लक्षणवर्जितम् ।
अदृष्टतारको योऽसौ मासमेकं स जीवति ।।२०।।
दृष्टे ग्रहे च दिङ.मोहः षण्डमासाज्जायते ध्रुवम् ।
उतथ्य न ध्रुवं पश्येद्यदि वा रविमण्डलम् ।।२१।।
रात्रौ धनुर्यदा पश्येन्मध्यान्हे चोल्कपातनम् ।
वेष्ट्यते ग्रध्रकाकैश्च षण्डमासायुर्न संशयः ।।२२।।

जिस आदमी को जल, तेल और घृतमें अथवा निर्मल दर्पणमें अपना मुख न दिखाई दे किम्वा उसको अपनी शक्ल विकृत रूप में दिखलाई देवे तो काल-चक्रके ज्ञाता पुरुषको ऐसे व्यक्तिकी आयु सिर्फ छैमासकी होबता देनीचाहिये। हे देवि ! मैं अब इनकेअतिरिक्त अन्यभी मौतहोजानेके लक्षण या चिह्न तुम्हें बताता हूं उन्हे सुनो ।१५-१६। जिस मनुष्यको अपनीछाया बिना शिरके दिखलाईदेवे किम्वा उसेअपनी परछाँई बिल्कुल दिखलाईहीन देवे तो समझलो कि ऐसा व्यक्ति एकमहीना भी जीवित नहीं रहेगा।१७। हे गिरिजे ! हे भद्रे ! यहाँतक मानवके अङ्गोंसे सम्बन्धित मृत्युके चिह्न मैंने बतलाये हैं अब मैं अन्य बाहरीचिह्नभी बतलाता हूं। उन्हें तुमश्रवण करो।१८। हे देवि ! जिसको सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल बिनाकिरणोंके लाल आकार वाला दिखलाई देवे तो वह पन्द्रह दिनमें मर जायगा ।१९।

जो व्यक्ति अरुन्धती महायान, नागवीथी चन्द्रमा और तारागणको न देख सके वह एकमासही और जीवित रहाकरता है ।२०। जिसे ग्रहोंके दिखाई देनेपर भी दिशाओंका भ्रम होजावे तो उसकी छैमासमें मौत आजाती है। यदि उतथ्य अथवा ध्रुव एवं सूर्य-मण्डलको देखने में भी असमर्थ हो और रात्रि में धनुष दिखाई दे या मध्यान्ह के समय उल्कापात दृष्टिगत हो एवं गिद्ध और काकों से लिपटा दिखाई दे तो वह निस्सन्देह छैमासमें अवश्य मर जायेगा । २१-२२।।

ऋषयः स्वर्गपथाश्च दृश्यते नैव चाम्बरे ।
षण्मासायुर्विजानीव त्प्ररुषैः कालवेदिभिः ।।२३।।
अकस्माद्राहुणा ग्रस्तं सूर्यं वा सोममेव च ।
दिक्चक्रं भ्रांतवत्पश्येत्षण्मासान्म्रियते स्फुटम् ।।२४।।
नीलाभिर्मक्षिकाभिश्च ह्यकस्माद्वेष्ट्यते पुमान् ।
मासमेकं हि तस्यायुर्ज्ञातव्यं परमार्थतः ।।२५।।
मूर्ध्नि काकः कपोतश्च शिरश्चाकम्य तिष्ठति ।
शीघ्रं तु म्रियते जतुर्मासैकेन न संशयः ।।२६।।
एव चारिष्टभेदस्तु बाह्यस्थः समुदाहृतः ।
मानुषाणां हितार्थाय संक्षेपेण वदाम्यहम् ।।२७।।
हस्तयोरुभयोदेवि यथा कालं विजानते ।
वामदक्षिणयोर्मध्ये प्रत्यक्षं चेत्युदाहृतम् ।।२८।।

यदि किसी व्यक्तिको स्वर्गके मार्ग वाले ऋषिगण आकाशमें न दिखलाईदेवें तो कालकेज्ञान रखने वालोंको उसकी छःमासकी आयु समझलेनी चाहिये ।२३। जो अकेलाही राहसेग्रस्त चन्द्रमा अथवा सूरजको देखाकरता है या दिकचक्रको भ्रान्तिके साथ देखता है तो निश्चय रूपसे ही छःमास में मर जाया करता है ।२४। जिस मानवका शरीर अचानकही नीले रंग की मक्खियों से व्याप्त हो जाता है वह एक मासकी ही आयु वाला होता है ।२५। जो मनुष्य गिद्ध काक और कबूतरोंके द्वारा आक्रमण करके शिर पर बैठते देखे तो निस्सन्देह उसे समझ लेना चाहिये कि वह एक मास में

अवश्य ही मृत्युके मुखमें चला जायगा ।२६। इस रीतिसे मानवोंके हितार्थ ये बाहरी मौत के चिह्न तुम्हें बतला दिये हैं अब मैं संक्षेप में बतलाता हूं ।२७। हे देवि जिस तरह वाम और दक्षिण दोनों हाथों के मध्यमें काल प्रत्यक्ष है सो बतला दिया ।२८।

एवं पक्षौ स्थितौ द्वौ तु समासात्सुरसुन्दरि ।
शुचिभूर्त्वा स्मरूदेवं सुस्नातः संयतेन्द्रियः ।२९।
हस्तौ प्रक्षाल्य दुग्धेनालक्तकेन विमर्दयेत् ।
गंधैःपुष्पौ करो कृत्वा मृगयेच्चा शुभाशुभम् ।३०।
कनिष्टामादितःकृत्वा यावदगुष्ठकं प्रिये ।
पर्वत्रायकमेणैव हस्तयोरुभयोरपि ।३१।
प्रतिपदादि विन्यस्य तिथि प्रतिपदादितः ।
सम्पुटाकारहस्तौ तु पूर्वदिडमुखः संस्थितः ।३२।
स्मरेन्नवात्मक मंत्रं यावदष्टोतर शतम् ।
निरीक्षययेत्ततो हस्तौ प्रतिपर्वणि यत्नतः ।३३।
तस्मिन्पर्वाणि सा रेखा दृश्यते भृङ्गसन्निभा ।
तत्तिथौ हि मृतिज्ञेया कृष्णे शुक्ले तथा प्रिये ।३४।
अधुना नादजं वक्ष्ये संक्षेपात्काललक्षणम् ।
गमागमं विदित्वा तु कर्म चुर्याच्छृणु प्रिये ।३५।

हे सुरसुन्दरि ! इसतरह जब दोनोंही पक्ष स्थित हों उस समय पवित्र होकर भगवान्‌शिवका स्मरणकरता हुआ अच्छी तरह स्नानकर जितेन्द्रिय होवे ।२९। उस समय हाथ धोकर दूध अथवा अलक्तसे केशोंको मले तथा गन्ध और फूलोंसे हाथोंकोभरकर शुभऔरअशुभ चिन्तवनकरना चाहिये। ।३०।हे प्रिये ! अपनी कनिष्ठिकाअगुलीसे लेकर अंगुष्ठतक अपने दोनोंहाथों में तीन पर्वके क्रमसे प्रतिपदा आदि तिथियोंकी गणना करके पूर्व दिशाकी ओर मुखकरलेवे और सम्पुटाकार हाथोंसे एकसौ आठबार नौअक्षर वाला मन्त्रका जाप करे ओर प्रत्येक पर्वमें यत्नके सहित हाथोंको देखे।३१-३२। ।३३।जिस पर्वमें भ्रमरके तुल्य वहरेखा दिखाई देवे,कृष्णपक्षहो या शुकल

पक्ष हो, हे देवि ! उसही तिथि में उसकी मौत समझ लेनी चाहिये।३४। हे प्रिये ! अब नादकेद्वारा प्रकट होजाने वाले कालचक्रका वर्णन करता हूं जोकि अतिसक्षिप्त ही होगा। उसका श्रवणकरो। गमन और आगमनका ज्ञान करके ही कर्म करना चाहिये।३५।

आत्मविज्ञानं सुश्रोणि वारं ज्ञात्वा तु यत्नतः ।
क्षणं त्रुटिर्लवं चैव निमेषं काष्टकालिकम् ॥३६॥
मुहूर्तक त्वहोरात्रं पक्षमासर्तुवत्सरम् ।
अब्दं युगं तथा कल्पं महाकल्पं तथैव च ॥३७॥
एवं स हरते कालः परिपाट्या सदाशिवः ।
वामदक्षिणमध्ये तु पथि त्रयमिदं स्मृतम् ॥३८॥
दिनादि पञ्च चारभ्य पञ्चविंशद्दिनावधिः ।
वामाचारगतौ नादः प्रमाणं कथितं तव ॥३९॥
भूररंध्रं दिशश्चैत्रः स्वजश्च वरवर्णिनि ।
वामचारगतो नादः प्रमाणं कालवेदिनः ॥४०॥
ऋतोर्विकारभूताश्च गुणास्तत्रैव भामिनि ।
प्रमाणं दक्षिणं प्रोक्तं ज्ञातव्य घ्राणवेदिभिः ॥४१॥
भूतसंख्या यदा प्राणान्वहते च इडादयः ।
वषस्याभ्यंतरे तस्य जीवितं हि न संशयः ॥४२॥

हे सुश्रोणि ! आत्म विज्ञान को चार तरह के यत्नसे जानना चाहिए अर्थात् क्षण त्रुटि,लव,निमेष और काष्ठकालिक। मुहूर्त,दिनरात,पक्ष,मास ऋतु,वत्सर,अब्द,युग,कल्प और महाकल्प यह परिपाटी है।३६-३७। इसी उपर्युक्त परिपाटीसे सदाशिव कालहरण कियाकरते हैं। वाम और दक्षिण के मध्यमें तीन मार्ग बतलाये गये हैं।३८। पाँच दिन से आरम्भ करके पच्चीसदिन पर्यन्त वामाचारगतिमें नादहोता है। यह नादका प्रमाण मैंने तुमको बतला दिया है।३९। हे परमसुन्दर वर्णवाली ! कालके वेत्ता पुरुष को वामचारगतिमें भूत, रन्ध्र,दिशा और ध्वजारूप नादजान लेना चाहिए ।४०। हे भामिनि ! यदि उसमें ऋतु के विकार वाले गुण प्रतीत होते

होंतो उसे प्रमाणके ज्ञान रखने वालोंके द्वारा दक्षिण प्रमाणवाला नादकहा गया है ।४१। जिससमय भूत सख्यक इडाआदि नाड़ी प्राणोंका वहनकिया करती है तो एकवर्षके अन्दरही उसकी मृत्यु होजाया करती है,इसमें कुछ भी संशय नहीं होता है ।।४२।।

दशघस्रप्रवाहेण ह्यब्दमानं स जीवति ।
पञ्चदसप्रवाहेण ह्यब्दमेकं गतायुषम् ।।४३।।
विंशद्दिनप्रवाहेण षण्मासं लक्षयेत्तदा ।
पञ्चत्रिंशद्दिनमितं वहते वामनाडिका ।।४४।।
जीनितं तु तदा तस्य त्रिमासँ हि गत युषः ।
षड् विंशद्दितमानेन मासद्वयमुदाहृतम् ।।४५।।
सप्तविंशद्दितमितं वहते त्वत्यविश्रमा ।
मासमेकं समाख्यातं जीवितं वामगोचरे ।।४६।।
एतत्प्रमाणं विज्ञेयं वामवायुप्रमाणतः ।
सव्येतरे दिनान्येव चत्वारश्चानुपूर्वशः ।।४७।।
चतुःस्थाने स्थिता देवि षोडशैताः प्रकीर्तिताः ।
तेषाँ प्रमाणं यक्ष्यामि सांप्रतं हि यथार्थत ।।४८।।
षड् दिनान्यादितः कृत्वा संख्यायाश्च यथाविधि ।
एतदन्तर्गते चैव वामरंध्रे प्रकाशितम् ।।४९।।

दश दिन पर्यन्त बराबर चलते रहने से वह वर्षभर तक जीजित रहा करता है और पन्द्रहदिनतक चलनेसे एकवर्षकी उसकी शेषआयु जानलेनी चाहिए ।४३। बीसदिनकेप्रवाहसे छःमासकी आयुही शेषसमझनीचाहिए । यदि वामनाड़ी पच्चीसदिन तक वहनकरती है तो तीनमास और छब्बीस दिनके मानसे दो मास शेष आयु होती है ।४४-४५। और यदि वामभाग से अविश्रान्त रूपसे सत्ताईस दिनतक नाड़ी चलतीरहे तो एकमासका ही शेष जीवन होता है ।४६। इसी रीतिसे वाम वायुके प्रमाण से नाद का प्रमाण समझ लेना उचित है तथा दाहिनी ओरके क्रमसे चारदिन तकही जीवन समझे ।४७। हे देवि ! चारस्थानोंमें नाडीस्थित हुआकरती है। इस

तरह वे सभी सोलह नाड़ियाँ बतलाईगई हैं। अब मैं उन सबका यथातथ्य ठीक प्रमाण बतलाता हूँ।४८। छ:दिनसेलेकर विधिकेसाथ संख्याके अन्तर्गत दिनों में वाम रन्ध्र में प्राण प्रकाशित होता है।४९।

षड् दिनानि यदारूढं द्विवर्ष स च जीवति।
मासानष्टौ विजानीयाद्दिनान्यष्ट च तानि तु ॥५०॥
प्राणाः सप्तदशे चैव विद्धि वर्ष न संशयः।
सप्तमासान्विजानीयाद्दिनैः षड्भिर्न संशयः ॥५१॥
अष्टघस्त्रप्रभेदेन द्विवर्षं हि स जीवति।
चतुर्मासा हि विज्ञेयाश्चतुर्विंशद्दिनावधि ॥५२॥
यदा नवदिनं प्राणा वहंत्येव त्रिमासकम्।
मासद्वयं च द्व मासे दिना द्वादश कीर्तिताः ॥५३॥
पूर्ववत्कथिता ये तु कालं तेषां तु पूर्वकम्।
अवांतरदिना ये तु तेन मासेन कथ्यते ॥५४॥
एकादशप्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति।
मासा नव तथा प्रोक्ता दिरान्यष्टनितान्यपि ॥५५॥
द्वादशेन प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति।
मासान् सप्त विजानीय त्षड् घस्रांश्चाप्युदाहरेत् ॥५६॥

जिस समय छः दिनतक नाद प्राणचढ़ा रहे तो समझो वह आदमी दोवर्ष आठमहीने और आठदिनतक जीवित रहेगा ५०। जो सत्रह दिवस तक प्राण आरूढ़रहे तो वहप्राणी एकवर्ष सातमास, छ:दिन तक जिन्दारहा करता है इसमें कुछभी सन्देह नहीं होता है।५१। यदि आठ दिन बराबर चलेतो वह दोवर्ष चारमास और चौबीसदिनतक जीवित रहता है।५२। जबकि नौ दिनतक इसीओर प्राणवायु चले और पाँचमहीने बारहदिनतक इधरही प्राण चले तो दो मासका जीवनक्षेत्र रहाकरता है।५३ जो प्राण पहलेकेतुल्य कहे हैं उनका काल पहिलेकेतुल्य बतायागया है और जोअन्तर्गत दिन बताये हैं उनसे मास कहेजाते हैं।५४।इधर ग्यारहदिन चलनेपर वह मनुष्य एकवर्ष नौमास और आठदिन तक जिन्दारहा करता है।५५।

बारह दिन तक इधर चलने पर एक वर्ष सात मास छै दिन पर्यन्त जीवित रहना उसको होता है ।५६।

नाडी यदा च वहति त्रयोदशदिनावधि ।
सवत्सरं भवेतस्य चतुर्मासाः प्रकीर्तिताः ॥५७॥
चतुर्विशद्दिन शेषं जीवति च न संशयः ।
प्राणवाहा यदा वामे चतुर्द्दश दिनानि तु ॥५८॥
संवत्सरं भवेत्तस्य मासाः षट् च प्रकीर्तिताः ।
चतुर्विशद्दिनान्येव जीवितं च न संशयः ॥५९॥
पञ्चदशप्रवाहेण नव मासान्स जीवति ।
चतुर्विशद्दिनान्येव कथितं कालवेदिभिः ॥६०॥
षोडशाह प्रवाहेण दशमासांस जीवति ।
चतुर्विशद्दिनावधिवयं कथितं कालवेदिभिः ॥६१॥
सप्तदशप्रवाहेण नवमासैर्गतायुषम् ।
अष्टादश दिनान्यत्र कथितं साधकेश्वरि ॥६२॥
वामाचारं यदा देवि ह्यष्टादश दिनावधि ।
जीवितं चाष्टमासं तु घस्रा द्वादस कीर्तिताः ॥६३॥

जब तेरहदिनतक इधर रही नाड़ीचलती है तो फिर उस व्यक्तिकी आयु एकवर्ष चारमास और चौबीस दिनकी शेष रहती है । इसमें कुछभी संशय नहीं है जब वाम भागमें चौदह दिन पर्यन्त प्राण वहन किया करते हैं तो उसका जीवन काल एक वर्ष छै मास चौवीस दिन तकका शेष रहता है- इसमें बिल्कुल भी सन्देह नहीं है ।५७-५८-५९। कालके ज्ञाता लोगों का कथन है कि पन्द्रह दिनके प्रवाहमें मनुष्य नौ मास और चौबीस दिन तक जीवित रहा करता है ।६०। सोलह दिनके प्रवाहमें दश मास चौवीस दिन का जीवन काल शेष रहता है ।६०। हे साधकेश्वरि ! सत्रह दिन तकके प्रवाह होनेपर नौमास अट्ठारह दिनतक जीवन शेष बताया गया है ।६१॥ हे देवि ! अठारह दिन तक यदि वामाचार होता है तो आठ मास बारह दिन तक जीवन रहता है ।६३।

चतुर्विंशद्दिनान्यत्र निश्चयेन वधारय ।
प्राणवाहो यदादेवि त्रयोविंशद्दिनावधिः ॥६४॥
चत्वारः कथिता मासाः षड् दिनानि तथोत्तरे ।
चतुर्विंशप्रवाहेण त्रीन्मासांश्च स जीवति ॥६५॥
दिनान्यत्र दशाष्टौ च संहरत्येव चारतः ।
अवांतरदिने यस्तु संक्षेपात्तो प्रकीर्तिताः ॥६६॥
वामचारः समाख्यातो दक्षिणं शृणु सांप्रतम् ।
अष्टाविंशप्रवाहेण तिथिमानेन जीवति ॥६७॥
प्रवाहेण दशाहेन तत्संस्थेन विपद्यते ।
त्रिंशद्धस्त्रप्रवाहेण पञ्चाहेन विपद्यते ॥६८॥
एकत्रिंशद्यदा देवि वहते च निरंतरम् ।
दिनत्रयं तदा तस्य जीवित हि न सँशयः ॥६९॥
द्वात्रिंशत्प्राणसंख्या च यदा हि वहते रविः ।
तदा तु जीवितं तस्य द्विदिनं हि सँशयः ॥७०॥
दक्षिणः कथितः प्राणो मध्यस्थं कथयामि ते ।
एकभागगतो वायुप्रवाहो मुखमण्डले ॥७१॥
धावमानप्रवाहेण दिनमेकं स जीवति ।
चक्रमेतत्परासोर्हि पुराविद्भिरुदाहृतम् ॥७२॥
एतत्ते कथितं देवि कालचक्रं गतायुषः ।
लोकानाँ च हितार्थाय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥७३॥

हे देवि ! तेईसदिन पर्यन्त प्राणप्रवाह होता है तो केवल चौवीसदिन तकका ही जीवन शेष रहता है यह निश्चित है ।६४। यहाँ चारमास और छै दिन अधिक बताये गये हैं । चौवीस दिनके प्रवाहमें वह तीन मास और अठारह दिन तक जीवित रहा करता है।६५। इस रीतिसे प्राणके सञ्चार से अवान्तरके दिनके कालवर्णन तुम्हारे सामने करदिया है ।६६। अवतक वाम सञ्चार का वर्णनकिया अब दक्षिण संचार का वर्णन करते हैं उसका श्रवण करो । यदि अट्ठाईस के प्रवाहसे दक्षिणसंचार होता है तोवहव्यक्ति

पन्द्रह दिन तक जीवित रहा करता है ।६७। दशदिनके प्रवाहमें दश ही दिनमें और तीसदिनके प्रवाहमें पाँच दिनमें मृत्युको प्राप्त होजाया करते हैं ।६८। हे देवि ! जिस समय इकत्तीस दिनतक प्राणचलते हैं तो निश्चयही तीनदिनतक उसका जीवन शेषरहता है ।६९। जब सूर्य बत्तीसकी संख्यामें वहनकिया करता है तो उसकाजीवन निस्सन्देह दोदिन शेषरहता है ।७०। अबतक दक्षिण प्राणके संचारका वर्णनकिया था अब आगे मध्यस्थ प्राण के विषयमें वर्णन किया जाता है जबकि वायुका प्रवाह एक भागसे मुखमें छोड़तेहुए प्रवाहसे रहता है तो वह व्यक्ति केवल एकही दिन जीवित रहा करता है । पूर्व वेत्ताओंने इसीप्रकारका कालचक्र बताया है ।७१-७२।। हे देवि ! आयुके गतहोजाने वाले पुरुषोंका इस तरहका काल-चक्र लोकोंसे कल्याण के लिए ही वर्णित किया गया है, इसके आगे अन्य जो कुछ तुम सुनना चाहती हो सो मुझे बतलाओ ।।७३।।

ज्ञान, क्रिया, भक्तियोग तथा नवरात्रिकी श्रेष्ठता का वर्णन

व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम ।
अपरं श्रोतुमिच्छामः किमप्याख्यानमीशितुः ।। १ ।।
उमाया जगदम्बायाः क्रियायोगमनुत्तमम् ।
प्रोक्तं सनत्कुमारेण व्यासाय च महात्मने ।। २ ।।
धन्या यूयं महात्मानो देवीभक्तिदृढव्रताः ।
पराशक्तेः परं गुप्तं रहस्यं श्रृणुतावरात् ।। ३ ।।
सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र महामते ।
उमायाः श्रोतुमिच्छामि क्रियायोग महाद्भुतम् ।। ४ ।।
कीदृक्च लक्षणं तस्य किं कृते च फलं भवेत् ।
प्रियं यच्च पराम्बायास्तदशेष वदस्व मे ।। ५ ।।
द्वैपायन यदेतत्वं रहस्यं परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबुद्धे सर्वं मे सर्व वर्णयिष्यतः ।। ६ ।।
ज्ञानयोगः क्रियायोगो भक्तियोगस्तथैव च ।
त्रयो मार्गाः समाख्याताः श्रीमातुर्भुक्तिमुक्तिदाः ।। ७ ।।

मुनिगण ने कहा—हे व्यासजीके शिष्य ! हे महाभाग ! हे पौराणिकोत्तम, हे सूतजी ! अब हमारी इच्छा शिवजीके और इतिहासके सुननेकी होती है ।१। सनत्कुमारजीके जगज्जननी पार्वतीजीका परम श्रेष्ठ क्रिया-योग व्यासजीसे कहा था । हम अब आपके मुखसे उसे ही श्रवण करनेकी इच्छा रखते हैं ।२। सूतजी ने कहा—तुम सब लोग पूरे महात्मा एवं परम धन्यहो तथा देवीकी दृढ़भक्ति करनेमें भी दृढ़व्रतहो । अब में आपके समक्ष में पराशक्तिके अत्यन्त गुप्तरहस्यकी वर्णनकरता हूँ । आपलोग आदरपूर्वक सुनें ।३। व्यासजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे महामते ! मैं पार्वतीके परम सुन्दर क्रिया योगके सुननेका इच्छुक हूँ ।४। आपकृपाकरके मुझे यहबतानेकी उदारता अवश्यकरेंकि उसका क्यालक्षण है एवं उसके करनेसे क्या फलहोता है ? जोकि पराम्बाको अत्यन्तप्रिय है ।५। सनत्कुमारजी ने कहा हे व्यासजी ! हे महाबुद्धे ! आप जिस तरहके विषयमें पूछ रहे हैं में अब उसे पूर्ण रूपसे वर्णनकरता हूँ सो सब श्रवण करो ।६। जगदम्बा श्रीमाताके भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले ज्ञान योग, क्रिया-योग और भक्ति योग के तीन मार्ग होते हैं । ७ ।

ज्ञानयोगस्तु संयोगश्चित्तस्यैवात्मना तु यः ।
यस्तु वाह्यार्थसंयोगः क्रियायोगः स उच्यते ॥ ८ ॥
भक्तियोगो यतो देव्या आत्मनश्चैक्य भावनम् ।
त्रयाणामपि योगानां क्रियायोगः स उच्यते ॥ ९ ॥
कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञान प्रयायते ।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥१०॥
प्रधानं कारणं यागो विमुक्तेर्मुनिसत्तम ।
क्रियायोगस्तु योगस्य परमं ध्येयसाधनम् ॥११॥
मायाँ तु प्रकृतिं विद्यान्मायावि ब्रह्म शश्वतम् ।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१२॥
यस्तु देव्यालय कुर्यात्पाषाणं दारवं तथा ।
मृन्मयं वाथ कालेय तस्य पुन्यफलं शृणु ।
अहन्यहनि योगेन यजतो यन्महाफलम् ॥१३॥

प्राप्नोति तत्फलं देव्या यः कारयति मन्दिरम् ।
सहस्रकुलमागामि व्यतीतं च सहस्रकम् ।
स तारयति धर्मात्मा श्रीमातुर्धाम कारयन् ।।१४।।

मानवके चित्तका आत्माकेसाथ जो संयोग होजाता है यही ज्ञानयोग के नामसे कहा जाता है । जिसमें बाहरी अर्थोंका सँयोग है वह क्रियायोग कहागया है ।५६। भगवतीदेवी और आत्माका एक होजाना ही भक्तियोग के नामसे विख्यात है । इन तीनों योगोंको क्रियाभोग कहते हैं ।६। कर्मसे ही भक्तिका उदय होता है और भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति हुआ करती है—ऐसाही शास्त्रकारोंने निश्चय किया है।१०। हे मुनिवर ! योगही मुक्तिका प्रमुख कारण होता है और क्रियायोग,योग का परमध्येय साधन होता है ।११। प्रकृतिको मायाजानकर और सनातन ब्रह्म को मायावी समझकर तथा इन दोनों के अभिन्न शरीरका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सांसारिक बन्धन से विमुक्त हो जाता है ।१२। हे व्यासजी ! जो कोई मनुष्य पाषाण—काष्ठ अथवा मिट्टीसे देवीके मन्दिर का निर्माण करायाकरता है उसके पुण्यका महान्फल होता है । प्रतिदिन यजनकरनेसे जो पुण्य-फल मिलता है वही इस मन्दिरके निर्माण करानेसे होता है।१३। देवीके मन्दिरके करानेका फल नैत्यिक योग-यजनके ही तुल्य हुआ करता है । श्रीमाता के धामका निर्माता धर्मात्मा पुरुष अपने अतोत और आगामी एक-एक सहस्र कुलको तार दिया करता है ।।१४।।

कोटिजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
श्रीमातुर्मन्दिरारम्भक्षणादेव प्रणश्यति ।।१५।।
नदीषु च यथा गंगा शोणः सर्वनदेषु च ।
क्षमायां च यथा पृथ्वी गांभीर्य्ये च यथोदधिः ।।१६।।
ग्रहाणां च समस्तानां यथा सूर्यो विशिष्यते ।
तथा सर्वेषु देवेषु श्रीपराऽम्बा विशिष्यते ।।१७।।
सर्वदेवेषु सा मुख्या यस्तस्यः कारयेद् गृहम् ।
प्रतिष्टां सपवाप्नोति स जन्मनि जन्मनि ।।१८।।

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे प्रयागे पुष्करे तथा ।
गंगासमुद्रतीरे च नैमिषेऽमरकण्टके ॥१९॥
श्रीपर्वने महापुण्ये गोकर्णे ज्ञानपर्वते ।
मथुरायामयोध्यां द्वारावत्यां तथैव च ॥२०॥
इत्यादिपुण्यदेशेषु यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ।
कारयन्मातुरावासं मुक्ता भवति बन्धनात् ॥२१॥

करोड़ों जन्म के किये हुए पाप तो माता के मन्दिर के निर्माण का आरम्भ करते ही नष्ट हो जाया करते हैं ।१५। समस्त नदियोंमें गङ्गा सम्पूर्ण नदोंमें शोण,क्षमामें भूमि और गाम्भीर्य में समुद्र सर्वोत्तम शिरोमणि होता है । इसी प्रकार समस्त ग्रहों में भुवन भास्कर कहा गया है वैसेहीसमस्त देवताओंमेंपराम्बासभीसे अधिक मानी गईहै'१६-१७।समस्त देवों में परम प्रधान देवीके धामका निर्माण कराने वाला प्रत्येक जन्म में प्रतिष्ठा की प्राप्ति किया करता है ।१८। वाराणसी,कुरुक्षेत्र,प्रयाग,पुस्कर में तथागङ्गाया समुद्र तटपर,नैमिषारण्य में अमरकंटक में,महापवित्र पर्वत पर, गोकर्ण में ज्ञान पर्वत पर,मथुरा,अयोध्या और द्वारका इत्यादि परम पवित्र स्थलोंमें अथवा अन्यकिसीभी समुचित स्थानमें जो देवी के मन्दिर का निर्माण कराता है वह मनुष्य निश्चयहीं संसार के बन्धनों से विमुक्त होजाता है ।।१९-२१-२२॥

इष्टकानां त विन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि मणिद्वीपे महीयते ॥२२॥
प्रतिमाः कारयेद्यस्तु सर्वलक्षणलक्षिताः ।
स उमायाः परं लोकं निर्भयो व्रजति ध्रुवम् ॥२३॥
देवीमूर्ति प्रतिष्टाप्य शुभतु ग्रहतारके ।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो योगमायाप्रसादतः ॥२४॥
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पात्पुरुषाःकुले ।
तांस्तांस्तारयते देव्या मूर्ति संस्थाप्य शोभनाम् ॥२५॥
त्रिलोकीस्थापनात्पुण्यं यद् भवेन्मुनिपुंगव ।
तत्कोटिगुणित पुण्पं श्रीदेवीस्थापनाद् भवेत् ॥२६॥

मध्ये देवी स्थापयित्वा पंचायतनदेवताः ।
चतुर्दिदक्षु स्थापयेद्यस्तस्य पुण्यं न गण्यते ।।२७।।
विष्णोर्नाम्नां कोटिजपाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
यत्फलं लभ्यते तस्माच्छतकोटिगुणोत्तरम् ।।२८।।

मन्दिर की चुनाई में जो ईंट लगीहैं वे जितनेवर्षतकटिकी रहती हैं उतने वर्षोंके सहस्र पर्यन्त निर्माता मनुष्य मणिद्वीपमें निवासकिया करता है ।२२। जो सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न देवीकी प्रतिमा निर्माण करता है वह निडर होकर पार्वतीके परमलोककी प्राप्ति किया करता है । शुभ ऋतु,ग्रेह, नक्षत्रादि के शुद्ध समय में जो देवीकी प्रतिमा को प्रतिष्ठितकरके विराजमान करता है वह योगमायाके प्रसाद से कृतकृत्य होजाताहै ।२३। २४। कल्प के आरम्भसे लेकर जो भी वंशमें उत्पन्न हुयेथे या भविष्य में भी उत्पन्नहोंगे उन सबको देवीकी सुन्दर मूर्तिकी स्थापना करने वाला पुरुष तार देता है ।२५। हे मुनि श्रेष्ठ ! इस त्रिभुवनके स्थापन करने से जितना पुण्य होता है उससे एककरोड़ गुना पुण्य केवल भगवती देवी की मूर्ति की स्थापनासे हुआ करता है ।२६। जो कोई बीच में देवी को स्थापित करके उनके चारों ओर गणेश-गौरी आदि की पचायतन स्वरूप देवताओं की स्थापना किया करता है उसका कोई भी पुण्य नहीं समझा जा सकता है ।२७। चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण के समय में विष्णु के एक करोड़ नाम से जो फल मिलता है उससे सौ कोटि गुना फल प्राप्त होता है ।२।

शिवनाम्नो जपादेव तस्मात्कोटिगुणोत्तरम् ।
श्रीदेवीनामजापत्तु ततः कोटिगुणोत्तरम् ।।२९।।
देव्याः प्रासादकरणात्पुण्य तु समवाप्यते ।
स्थापिता येन सा देवी जगन्माता त्रयीमयी ।।३०।।
न तस्य दुर्लभं किंचिन्छ्रीमातः करुणावशात् ।
वर्द्धन्ते पुत्रपौत्राद्या नश्यत्यखिलकश्मलम् ।।३१।।
मनसा ये चिकीर्षन्ति मूर्तिस्थापनमुत्तमम् ।
तेऽप्युमायाः परं लोकं प्रयान्ति मुनिदुर्लभम् ।।३२।।

क्रियमाणं तु यः प्रेक्ष्य केतसा ह्यनुचिन्तयेत् ।
कारयिष्याम्यहं यर्हि संपन्मे सभविष्यति ॥३३॥
एवं तस्य कुलं सद्यो याति स्वर्ग न संशयः ।
महामायाप्रभावेण दुर्लभं किं जगत्त्रये ॥३४॥
श्रीपराम्बां जगद्योनिं केवलं ये समाश्रिताः ।
ते मनुष्या न मन्तव्याः साक्षाद् देवीगणाश्च ते ॥३५॥
ये व्रजन्तः स्वपन्तश्च तिष्ठन्तो वाप्यहर्निशम् ।
उमेति द्व्यक्षरं नाम व्रुवते ते शिवागणाः ॥३६॥

शिव नाम के जपने से जो पुण्य-फल होता है। उसके करोड़ गुना फल श्रीदेवी के नाम के जाप से प्राप्त होता है।१६। तीनों देवताओं के स्वरूप वाली देवी को स्थापित किसी ने किया, उसका प्रसाद बनाने का भी पुण्य मिलता है। जिस पर श्री माता की कृपा हो जावे उसके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है। देवी के प्रसाद से समस्त पापों का क्षय और पुत्रपोत्रादि की वृद्धि होती है।३०-३१। जो मन में भी कभी श्री माताकी उत्तममूर्त्ति की स्थापना करने की इच्छा रखते हैं वे मुनियों को भी अत्यन्त दुर्लभ पार्वती के लोक की प्राप्ति किया करते हैं।३२। जो मनुष्य किसी अन्य के द्वारा विनिर्मित मन्दिर को देखकर अपने चित्त में भी यह विचार करता है कि अगर मेरे पास धन हो जायगा तो मैं भी देवी का मन्दिर बनवाऊँगा, ऐसे मन के संकल्प से ही उसका समस्त कुल शीघ्र ही स्वर्ग को निस्सन्देह चला जाता है। श्री महामाया का ऐसा प्रभाव है कि उसे तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है।६६-३४। जो इस मानव जगत् को उत्पन्न करने वाली श्री पराम्बा भगवती का केवल आश्रयही ग्रहण करते हैं उनको सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। वे तो साक्षात् भगवती के गण ही होते हैं।३५। जो मनुष्य रात दिन स्थिति होतेहुये सोते-जागते उमा के दो अक्षरों के नाम का उच्चारण करते रहा करते हैं ये शिवा के गण होते हैं ॥३६॥

नित्ये नैमित्तिके देवीं ये यजन्ति परां शिवाम् ।
पुष्पधूपैस्तथा दीपैस्ते प्रयास्यन्त्युमालयम् ॥३७॥

ये देवीमण्डपं नित्यं गोमयेन मृदाऽथवा ।
उपलिम्पन्ति मार्जन्ति ते प्रयास्यत्युमालयम् ।।३८।।
येर्देध्या मन्दिरं रम्यं निर्मापितमनुत्तमम् ।
तत्कुलानाञ्जनान्माता ह्याशिषः संप्रयच्छति ।।३९।।
मदीयाः शतवर्षाणि जीवन्तु प्रेमभाजनाः ।
नापदामयनानीत्थं श्रीमातावक्त्यहर्निशम् ।।४०।।
येन मूर्तिर्महादेव्या उमायाः कारिता शुभा ।
नरायुत तत्कुलजं मणिद्वीपे महीयते ।।४१।।
स्थापयित्वा महामायामूर्ति सम्यक्पूज्य च ।
य य प्राथयते काम तं त प्राप्नोति साधकः ।।४२।।

जो नित्य ही तथा नैमित्तिक कर्ममें पुष्प, धूप, दीप स परा श्री शिव का पूजनकिया करतेहैं, वे अन्त समयमें पार्वतीके धामको प्र प्तकियाकरते हैं ।३७। जो प्रतिदिन देवीके मन्दिर या मण्डपको गोमय मिट्टीसे लीपते हैं तथा मण्डपका मार्जनकरते हैं वे पुरुषभी उमा के लोक को प्राप्तहोतेहैं ।३८। जिन्होंने माता के परम सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया है, उन कुलीन मनुष्यों को माता भगवती प्रसन्न होकर बहुत-से आशीर्वाद दिया करती है ।३९। भगवती ऐसेभक्तोंके लिये आशीष देतीहैकिमुझमेअनुराग रखने वाले मेरे भक्त सौ वर्षतक बिना आपत्तिके जीवितरहें।४०। जिसने जगदम्बाकी शुभमूर्तिका निर्माण कराया और उसे स्थापित कियाहै उसके कुलके मनुष्य दशसहस्र वर्षतक मणिद्वीपजाकर निवासकियाकरतेहैं ।४१। भगवती महामायाकी प्रतिमाकी स्थापना करके भलीभाँति उसका अर्चन किया करतेहैं, वेमनमें जो-जो भी कोईमनोरथकरतेहैं उन्हें निश्चित रूप से प्राप्तकिया करते हैं । देवी की मूर्तिकोऐसाअद्भत चमत्कार है ।४२।

यः स्नापयति श्रीमातुः स्थापितां मूतिमुत्तसाम् ।
घृतेन मधुनाऽऽक्तेन तत्फलं गणयेत्तु कः ।।४३।।
चन्दना गुरुकर्पूरमांसीमुस्तादियुग्जलः ।
एकवर्णगवां क्षीरैः स्नापयेत्परमेश्वरीम् ।।४४।।

धूपेनाष्टादशांगेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ।
नीराजनं चरेद् देव्याः साज्यकर्पूरवर्तिभिः ।४५
कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वाऽमायां वा पचदिक्तिथौ।
पूजयेज्जगतां धात्री गधपुष्पविशेषतः ।४६
सपठञ्जननीसूक्तं श्रीसूक्तमथवा पठन् ।
देवीसूक्तमथो वाऽपि मूलमन्त्रमथापि वा ।४७
विष्णुक्रान्तां च तुलसीं वर्जयित्वाऽखिलं शुभम् ।
वीप्रातिकरं ज्ञेयं कमलं तु विशेषतः ।४८
अर्पयेत्स्वर्णपुष्पं यो देव्यै राजतमेव वा ।
स याति परमं धाम सिद्धकोटिभिरन्वितम् ।४९

जो जगदम्बा भगवती की प्रतिमा की स्थापना कर उसका मधु घृत आदि से स्नान कराता है उसका ऐसा महान् फल होता है कि उसे कोई बता नहीं सकता है ॥४३॥ भगवती के स्नान का विधान है कि चन्दन कर्पूर,अगर,जटामांसी,नागरमोथा आदि परम सुगन्धित पदार्थों सेसमन्वित सलिलसेकिम्वा एकहीरंगवालीगायकेदूधसेपरमेश्वरीका स्नानाभिषेक करना चाहिए। ४४॥ फिर इसके अनन्तर अठारह वस्तुओं सेप्रस्तुत धूह की आहुतियाँ देनी चाहिये और घृत तथा कपूर कीं बतियों से भगवती जगदम्बा की आरती करनी चाहिए ॥ ४५ ॥ कृष्णपक्ष की अष्टमी अथा नवमी एवं अमावस्या वा पंच दिक्पालों की तिथियोंमें गन्धपुष्पोंसे जगद्धारिणी देवी का विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये॥४६॥ देवीसूक्तअथवा श्रीसूक्तका पाठ करके या देवी के मूलमन्त्र (नवार्ण) का जाप करके विष्णुक्रान्ता या तुलसी दलोंको चढ़ाते हुए विशेष रूपसे कमलों को देवी पर चढ़ा देवें कि ये सब पुष्प देवी का प्रसन्नता के देनेवाले हैं ॥४७-४८॥ जो कोई भक्त देवीकीसेवासे स्वर्ण पुष्प या राजनिर्मित कुसुम समर्पित किया करता है वह करोड़ों सिद्धोंके सहित परम धाम को प्राप्त होता है । ४९॥

पूजानाते सदा कार्यं दासैरेन क्षमापनम् ।
प्रसीद परमेशानि जगदानददायिनि ।५०

इति वाक्यैः स्तुवन्मन्त्री देवीभक्तिपरायणः ।
ध्यायेत्कण्ठीरवारूढ़ा वरदाभयपाणिकाम् ।५१
इत्थं ध्यात्वा महेशानी भक्ताभीष्टफलप्रदाम् ।
नानाफलानि पक्वानि नैवेद्यत्वे प्रकल्पयेत् ।५२
नैवेद्यं भक्षयेद्यस्तु शंभुशक्तेः परात्मनः ।
स निर्धयाखिल पङ्क निर्मलो मानवो भवेत् ।५३
चैत्रशक्लतृतीयायां या भवानीव्रतं चरेत् ।
भवबन्धननिर्मुक्तः प्राप्नुयात्परमं पदम् ।५४
थस्यामेव तृतीयायां कुर्याद्दोलोत्सवं बुधः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीमुमां शंकरसंयुताम् ।५५
कुसुमैः कुंकुमैर्वस्त्रैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ।
धपैर्दीपैः सनैवेद्यैः स्त्रग्गन्धैरपरैरपि ।५६

जब पूजनकी समाप्ति हो उस समय देवीके किंकरों को हाथ जोड़कर सर्वदा पापोंका क्षमापन कराना उचित है कि हे परमेशानि ! हे जगदानन्द-दायिनी ! आप हमपर प्रसन्न होवें ।५०। मन्त्रोंकेपाठक इन उपर्युक्तवाक्यों के द्वारा देवीका स्तवनकर और परमभक्ति भावमें तत्परहोते हुए मयूरपर समारूढ़ वर प्रदात्री तथा अभय धन देनेवालीं भगवती जगदम्बाका ध्यान करना चाहिए ।५१। इस रीतिसे भक्तोंके अभीष्ट फलोंके प्रदान करनेवाली महेश्वरीका ध्यानकर विविधफल तथा नैवेद्य अर्पणकरे ।५२। जोपरमेश्वरी जगदम्बाके प्रसाद स्वरूप नैवेद्यको भक्षण करता है वह अपने समस्त पाप रूपी कीचड़को धोकर निर्मल चित्त होजाता है ।५३। जो कोई चैत्र शुक्ला तृतीयाको भवानीके व्रतकोकरता है वह समस्तसाँसारिक वन्धनोंसे विमुक्ति होकर परमपदका लाभ कियाकरता ।५४ पार्वतदेवी उसे अभीष्ट फलदिया करती है जो पूर्वोक्त तृतीयाके दिन देवीका सुन्दर दोलोत्सवकरे और जगत् के धारण करनेवाली पार्वतीकेसहित शिवका पूजनकरता है ।५५। पार्वती का अर्चन पुष्प कुकुम वस्त्र, कर्पूर,अगर चन्दन, धूप, दीप नैवेद्य तथा और भी अनेक अन्य सुन्दर गन्धो से करना चाहिए ।।५६।।

आनन्दोलयेत्ततो देवी महायाँ महेश्वरीम् ।
श्रीगौरीं शिवसयुक्तां सर्वकल्याणकारिणीम्।५७
प्रत्यब्द कुरुते योऽस्या व्रतमान्दोलन तथा ।
नियमेन शिवा तस्मै सर्वमिष्ट प्रयच्छति ।५८
माधवस्य सिते पक्षे तृतीया याऽक्षयाभिधा ।
तस्याँ यो जगदम्बाया व्रत कुर्यादतन्द्रितः ।५९
मल्लिकामालतीचंपाजपाबन्धूकपंकजैः ।
कुसुमै पूजयेद् गौरीं शङ्करेण समन्विताम् ।६०
कोटिजन्मकृत पाप मनोवाक्कायसम्भवम् ।
निर्धूय चतुरो वर्गानक्षयानिह सोऽश्नुते ।६१
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां व्रत कृत्वा महेश्वरीम् ।
योऽर्चयेत्परमप्रीत्या तस्यासाध्यं न किंचन ।६२
आषाढ़शुक्लपक्षीयतृतीयायां रथोत्सवम् ।
देव्याः प्रियतम कुर्य्याद्यथावित्तानुसारतः ।६३

इसके अनन्तर महामाया महेश्वरी श्री शिव से श्री गौरी की जो कि समस्त कल्याणोंकेप्रदान करनेवाली देवी हैं आन्दोलनाकरे ।५७। जो पुरुष इस तिथिमें हर एक वर्ष में नियमपूर्वक व्रत तथा आन्दोलन कियाकरता है परमप्रसन्न पार्वतीदेवी उसके समस्त अभीष्टोंको प्रदानकियाकरती हैं ।५८। वैसाखमासके शुक्लपक्षमें होनेवाली अक्षय तृतीयाके दिन निरालस्य होकर जगदम्बाका व्रत जो कोईभी करता है और मालती, मल्लिका, जपा चम्पा बन्धूक और कमलों से कुसुमों से शिवके सहित भगवती पार्वतीकी अर्चना करता है वह मनुष्य करोड़ों जन्मके कियेहुए मनवचन और शरीरके महा-पापोंको नष्टकरधर्म अर्थ, काम और मोक्ष इनचारों पुरुषार्थों का लाभ करता है ।५९-६०-६१। ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को जो मानव इस माहेश्वरी व्रतको करतेहुए देवीकाअर्चन कियाकरता है उसको इस संसारमें कुछभी असाध्य एवं अप्राप्य नहीं रहता है ।६२। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि आषाढ़ शुक्लकी तृतीया तिथिकेदिन भगवतीके परम प्रिय रथोत्सवको अपनी धन शक्ति अनुसार करे ।६३।

रथं पृथ्वीं विजानीयाद्रथाँगे चन्द्रभास्करौ ।
वेदानश्वान्विजानीयात्सारथिं पद्मसम्भवम् ।६४
नानामणिगणाकीर्णं पुष्पमाला विराजितम् ।
एवं रथ कल्पयित्वा तस्मिन्संस्थापयेच्छिवाम्।६५
लोकसंरक्षणार्थाय लोकं दृष्टं पराम्बिका ।
रथमध्ये सस्थितेति भावयेन्मतिमान्नरः ।६६
रथे प्रचलिते मन्दजयशब्दमुदीरयेत् ।
पाहि देवि जनानस्मान्प्रपन्नान्दीनवत्सले ।६७
इति वाक्यैस्तोपयेच्च नानावादित्रनिःस्वनैः ।
सीमांते तु रथं नीत्वा तत्र सपूजयेद्रथे ।६८
नानास्तोत्रैस्तततःस्तुत्वाप्यानयेत्तां स्ववेमनि ।
प्रणिपातशत कृत्वा प्रार्थयेज्जगदम्बिकाम् ।६९
एवं यः कुरुते विद्वान्पूजाव्रतरथोत्सवम् ।
एवं यः कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि ।७०

इस भूमिको रथ समझकर तथा चन्द्र एवं सूर्यको इस रथ के पहिये जानकर वेदोंको उसमें जोते जाने वाले अश्व तथा ब्रह्माजीकोउसकाहांकने वाला सारथि समझ कर अनेक मणि-रत्नों से परिपूर्ण पुष्प-मालाओं से सुशोभित होनेवाले रथकी इसीभाँति कल्पना करके उसमेंभगवती पार्वती को विराजमानकरना चाहिये।।६४-६५।।बुद्धिमानभक्तको चाहिये कि उस समय अपने मनमें ऐसी भावनाकरेकिभगवतीपराम्बिका लोकों के कल्याण, रक्षाऔर देखनेकेलियेही रथके मध्यमें आजविराजमानहो रहीहैं।६६। रथ जब धीरे-धीरे चलनेलगे तो जयकार'का उच्चारणकरे औरमुखसे यह भी कहे-हेदेवि ! हेदीनवत्सले। हम सबतुम्हारीशरणगतिमेंआये हैं, आप हमारी सबकी रक्षाकरें।६७। इस सुन्दर रीति से वाक्यों को कहतेहुए अनेकवाद्यों को वजाते-गाने भगवतीको पूर्ण सन्तुष्ट करे और रथ कोसीमाके अन्तिम स्थल तक ले जाकर फिर उसका पूजन करे।६८। वहाँ अर्चन के पश्चात् अनेकों स्तोत्रोंके द्वारा देवी का स्तवन करना चाहिए । इसके उपरान्त देवीको घर लौटाकरलावेऔर प्रणाम करे एवंजगज्जननीकी प्रार्थनाकरनी

चाहिए ।।६९।। जो प्रवीण भक्त इस विधिसे जगदम्बाका पूजन व्रत और रथोत्सव को किया करते हैं वह निस्सन्देह इस लोक में समस्त भोगों का उपभोग करके अन्त में देवीके पदको प्राप्त किया करता है ।।७०।।

शुक्लायां तु तृतीयायामेवं श्रावणाभाद्रयोः ।
यो व्रतं कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि ।७१
मोदिते पुत्रपौत्राद्यैर्धनाद्यैरिह सन्ततम् ।
सोऽन्ते गच्छेदुमालोकं सर्वलोकोपरि स्थितम् ७२
आश्विने धवले पक्षे नवरात्रव्रतं चरेत् ।
यत्कृते सकलाः कामाः सिद्ध्यन्त्येव न संशयः।७३
नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावं वक्तुमीश्वरः ।
चतुरास्योन पञ्चास्यो न षडास्यो न कोऽपरः।७४
नवरात्रव्रतं कृत्वा भूपालो विरथात्मजः ।
हृतं राज्यं निजं लेभे सुरथो मुनिसत्तमाः ।७५
ध्रुवसंधिसुतो धीमानयोध्याधिपतिर्नृपः ।
सुदर्शनो हृतं राज्यं प्रापदस्य प्रभावतः ।७६
व्रतराजमिमं कृत्वा समाराध्य महेश्वरीम् ।
संसारबन्धनान्मुक्तः समाधिर्मुक्तिभागभूत् ७७

इसी तरह से श्रावण मासतथा भाद्रपद मासकी शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिके दिन जो मानव श्रीमातादेवीका व्रत तथासविधि समर्चनकरता है वह संसारमें अपने पौत्र-पौत्रादिके परमसुखतथा धन-धान्यादि की समृद्धि काअनुपम आनन्दप्राप्तकरजीवनके अन्तमे समस्तलोकोंके ऊपरस्थित उमा के लोककोजायाकरताहै।७१ ७२। आश्विनमासको नवरात्रिकी तृतीया के दिन व्रत अवश्यही प्रत्येक को करनाचाहिये । इस व्रत के करने से समस्त मानव मनोरथोंकी सिद्धि हुआकरतीहै इसमेंकुछभी सन्देहका अवसर नहीं है ।७३। नवरात्रिके व्रतका ऐसा अतुल एवम् अद्भुत माहात्म्यहोताहै जिसे ब्रह्मा, शिव, स्वामिकार्तिकेय तथा अन्य कोई देवभी वर्णनकरने में असमर्थ होतेहैं।।७४।। हे मुनिश्रेष्ठो । इस नवरात्रिके व्रतको करके पहिलेविरथ के

पुत्र राजा सुरथने अपने अपहृत राज्यकी प्राप्ति की थी ।७५। इसी महाव्रत के प्रभावसे महामनीषी ध्रुवसन्धिके पुत्र अयोध्याके अधीश्वर राजासुदर्शन ने छिने हुए राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया था ।७६। इसी व्रत को करके समाधि नामक वैश्य महेश्वरी भगवतींकी कृपासे उसकी आराधनाके द्वारा संसारके बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो गया था ७७।

तृतीयायां च पञ्चम्यां सप्तम्यामष्टमीतिथौ ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां यो देवीं पूजयेन्नरः ।७८
आश्विनस्य सिते पक्षे व्रतं कृत्वा विधानतः ।
तस्य सर्वमनोभीष्टं पूरयत्यनिशं शिवाः ।७९
यः कार्तिकस्य मार्गस्य पौषस्य तपसस्तथा ।
तपसस्य सिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत् ।८०
लोहितैः करवीराद्यैः पुष्पैर्धूपैः सुगन्धितैः ।
पूजयेन्मङ्गलां देवीं स सर्वमङ्गलं लभेत् ।८१
सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यमेतन्महाव्रतम् ।
विद्याधनसुताप्त्यर्थं विधेयं पुरुषैरपि ।८२
उमामहेश्वरादीनि व्रतान्यन्यानि यान्यपि ।
देवीप्रियाणि कार्याणि स्वभक्त्यैवं मुमुक्षुभिः ।८३

जो मनुष्य तृतीया पञ्चमी सप्तमी, अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी को भगवती महामायाका अर्चन करता है और आश्विनके शुक्लपक्षमें पूर्ण विधि-विधानके साथ व्रत किया करता है उसके सब मनोरथों की पूर्ति भगवती जगदम्बा सर्वदा पूर्ण किया करती है ।७८-७९। जो कार्तिक मार्गशीर्ष पौष और माघ मासों की कृष्णपक्ष की तृतीया को व्रत करता है और रक्त करवीर आदिके पुष्पोंसे तथा सुगन्धित धूपादिसे मङ्गलादेवीका यजन किया करता है, उसे समस्त मङ्गलोंका लाभ अवश्यही हो जाता है ।८०-८१। यह महान् व्रत सौभाग्य सुख पाने के उद्देश्य सर्वदा स्त्रियों को करना चाहिए और विद्या धन एवं सन्तान पानके लिए पुरुषों को करना चाहिए ।८२। इसी तरह इनके अतिरिक्त सभी मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको भक्ति-भावकेसाथ ही करना चाहिए । इनसे बड़ा लोकोत्तर कल्याण होता है ।८३।

संहितेयं महापुण्या शिवभक्ति विवर्द्धिनी ।
नानाख्यान समायुक्ताभुक्तिमुक्तिप्रदाशिवा।८४
य एनां श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमां गतिम् ।८५
यस्य गेहे स्थिता चेय लिखितालतिताक्षरैः ।
संपूजिता च विधिवत्सर्वान्कामान्स आप्नुयात् ।८६
भूतप्रेतपिशाचादिदुष्टेभ्यो न भयं क्वचित् ।
पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिर्लभेदेव न संशयः ।८७
तस्मादियं महापुण्या रम्योमासंहिता सदा ।
श्रोतव्या पठतव्या च शिवभक्तिमभीप्सुभि ।८८

इस शिवकी भक्तिको बढ़ाने वाली और बहुत से ऐतिहासिक बातोंसे परिपूर्ण तथा भोग एवं मोक्ष दोनों दुर्लभवस्तुके प्रदानकरने वाली महाद् पुण्यदायक संहिताका जो श्रवणकिया करता है या सुनता है-पढ़ता है या पढ़ाता है वह परम गतिकी प्राप्ति किया करता है ।८४-८५। जिसके घरमें अत्यन्त सुन्दर अक्षरोंसे लिखीहुई यह संहिता विराजमानहो और नित्यही विधि के साथ इनकी पूजा की जाती हो वह घर का स्वामी अपने समस्त अभीष्ट मनोकामनाओं की प्राप्ति किया करता है ।८६। उस गृह स्वामीको कभी भी भूत प्रेत, पिशाच आदि दुष्टोंसे तनिक भी भय नहीं हुआ करताहै और पुत्र-पौत्र,धन-धान्य आदिकी सम्पत्तिका विस्तार अधिक होजाता है- इसमें कुछभी संशय नहीं है ।८७। इसलिये शिव-भक्तिके इच्छुक पुरुषोंको इस महान् पुण्यवाली उमा-संहिता को नित्य ही नियमपूर्वक सुननी तथा पढ़नी चाहिए ।८८।

—◈—

कैलास-संहिता

मुनियों की व्यास के प्रति ओंकार जिज्ञासा

साधु साधु महाभागा मुनयः क्षीणकल्मषाः ।
मतिर्दृढतरा जाता दुर्लभा साऽपि दुष्कृताम् ।१
पाराशर्येण गुरुणा नैमिषारण्यवासिनाम् ।
मुनीनामुपदिष्टं यद्वक्ष्ये तन्मुनिपुंगवाः ।२
यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम् ।
सावधाना भवतोऽद्य शृण्वन्तु परयामुदा ।३
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्व तपस्यन्तो दृढव्रताः ।
ऋषयो नैमिषारण्ये सर्वसिद्धनिषेविते ।४
दीर्घ सत्रं वितन्वन्तो रुद्रमध्वरनायकम् ।
प्रीणयन्तः परं भावमैश्वर्यं ज्ञातुमिच्छवः ।५
निवसन्ति स्मस्ते सर्वे व्यासदर्शनकांक्षिणः ।
शिवभक्तिरता नित्यं भस्मरुद्राक्षधारिणाः ।
तेषां भावं समालोक्य भगवान्बादरायणाः ।
प्रादुर्बभूव सर्वात्मा पराशरतपः फलम् ।७

श्री सूतजी ने कहा-हे निष्पाप मुनिवृन्द ? आप लोग सभी परमधन्य एवम महान् भाग्यशाली हो इसमें कुछ भी सन्देह नहींहै। तुम्हारी ऐसी दृढ़ मति कभी भी दुष्कर्म करने वालों की नहीं हुआ करतीहै।१। हमारे परम गुरुवर्य व्यासजी ने नैमिषारण्य के निवासींमुनियोंको जोउपदेशदियाथावही उपदेश में आपलोगोंको श्रवणकराताहूँ।२।यह ऐसा अद्भुत उपदेश है कि इसके श्रवणकरने मात्रसे ही मनुष्योंके हृदयोंमें भगवान् शिवकी भक्ति का सञ्चार हो जाता है। आपलोग सावधान होकर सुनें और प्रसन्नता के साथ मनमें धारण करें।३। स्वारोचिष मन्वन्तरके अन्तसमयमें समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले नैमिषारण्य में दृढ़व्रत धारण कर तपश्चर्या

भी यही कहतीहैऔर यहएक परम निश्चतबात है॥३॥ मैंने यह खूब देख व समझ लिया है कि आप लोगोंने यहां एक दीर्घ याग भगवान् शिव की, जो अम्बिका के स्वामी है,उपासना आरम्भ करदीहै ।४। इसलिये मैं आप लोगों को एक परम प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ हेआस्तिको ! यह परम पवित्र उप-महेश का ही सुन्दर सम्वादहै।५ पुरातनसमयमें प्रजापतिदक्ष की पुत्री जगन्मातासती ने शिव की निन्दा सुनकर पिता यज्ञ में ही अपने शरीर का त्याग कर दियाथा ।६। इसके अनन्तर अपनी तपस्या के प्रभाव से हिमाचल के यहां दूसरा जन्म ग्रहणकिया औरदेवर्षि नारदकेउप देश से शिव कीप्राप्ति के लिए अति उग्र निश्चलतपस्याकी थी ।७। उस हिमाचल गिरिराज ने गिरिजाका स्वयम्वर विधानकीपद्धति से शिवके साथ विवाह कर दिया ।८।

उपदिष्टास्त्वया देव मन्त्राः सप्रणवा मताः ।
तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थ विनिश्चतम्।९
कथ प्रणव उत्पन्नः कथं प्रणाव उच्यते ।
मात्राः कति समाख्याताः कथं वेदादिरुच्यते।१०
देवता कति च प्रोक्ताः कथं वेदादि भावना।
क्रियाः कतिविधाः प्रोक्ता व्याप्यव्यापकता कथम् ।११
ब्रह्माणि पञ्च मन्त्रेऽस्मिन्कथ तिष्ठन्त्यनुक्रमात् ।
कलाः कति समाख्याताः प्रपचात्मकता कथम् ।१२
वाच्यावाचकसम्बन्धस्थानानि च कथं शिव ।
कोऽत्राधिकारी विज्ञेया विषयः क उदाहृतः १३
सम्बन्धः कोऽत्र विज्ञेयः किं प्रयोजनमुच्यते ।
उपासकस्तु किं रूपः किंवा स्थानमुपासनम् ।१४

पार्वती ने कहा-हे देव ! आपने ओंकार के सहित मन्त्रों का उपदेश किया है ।९। इस कारण से मैं ... प्रणव के अर्थ के ज्ञान को प्राप्त करनेकी इच्छा रखती हूँ ।८। प्र... की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई ? वह प्रणव'-इस नाम से क्यों ... ? प्रणव में वस्तुतः कितनी मात्रायें

बाणीसे गम्भीरतापूर्वक उन ऋषियों से कहा व्यासजी बोले-हे ऋषियो ! आपके इस यज्ञमें सबतरहसे कुशलता तो हैं न ! क्या आप लोगोंनेयज्ञपति का भली भाँति सविधि पूजन कर लिया है ।९ १०। जो महेश्वर अपनी प्रिया पार्वतीके सहित इस संसारके भयसे मुक्तकर देने वाले हैं उनका इस यज्ञमें आप लोगों ने किस इच्छा से प्रेरित होकर भक्तिभावके साथ पूजन किया है ! ।११। मैं ऐसाजानता हूं कि यह आप लोगोंकी प्रवृत्ति तथासेवा पहिले ही से हैं जिससेकि अब मुक्तिकी भावनासे आपने शिवकी आराधना की है ।१२। महातेजके धारण करने वाले महर्षि व्यासजीने जब इस तरह कहा तो नैमिषारण्य के निवासी–महापराक्रमी ऋषि अत्यन्त तेज पूर्ण पराशरकेपुत्र तथा शिवके प्रेममें परायण महात्माव्यासजीको प्रणामकरके कहने लगे ।१३-१४।

भगवन्मुनिशार्दूल साक्षान्नारायणांशज ।
कृपानिधे महाप्राज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो १५
त्व हि सर्वजगद्भर्तुर्महादेवस्य वेधसः ।
साम्बस्य सगणस्यास्य प्रसादानां निधिः स्वयम् ।
त्वत्पादाब्जरसास्वादमधुपायितमानसाः ।
कृतार्था वयमद्यैव भवत्पादाब्जदर्शनात् ।१७
त्वदीयचरणाम्भोजदर्शनं खलु पापिनाम् ।
दुर्लभ लब्धमस्माभिस्तस्मात्सुकृतिनी वयम् ।१८
अस्मिन्देशे महाभाग नैमिषारण्यसंज्ञके ।
दीर्घसत्रान्विताः सर्वे प्रणवार्थप्रकाशकाः ।१९
श्रोतव्यः मरमेशान इति कृत्वा विनिश्चिता ।
परस्परं चिन्तयन्तः परं भावं महेशितुः ।२०
अज्ञातवन्त एवैते वयं तस्माद् भवान्प्रभो ।
खेतुमर्हसि तान्सर्वान्सिशयानल्पचेतसाम् ।२१

ऋषियों ने कहा-हे भगवान् ! हे मुनि शार्दूल ! हे कृपासागर । हे साक्षात् नारायणके अंशसे समुत्पन्न । हे महाप्राज्ञ ! हे समस्त विद्याओं के

अधिपति ! हे प्रभो ! आपतो सबजगत्के स्वामी,सृष्टिके करनेवाले महादेव की माया शक्ति तथा गणोंके प्रसादके पूर्णसमुद्र हैं ।१५-१६। आपके चरण कमलोंके मधुर मकरन्दके अनुपम आस्वादन के लोलुप भ्रमरके स्वरूपवाले हम सब अब आपके चरणकमलके दर्शनपाकर आनन्दमत्त एवं कृतकृत्यहो गये हैं ।१७। आपके चरणों के दर्शन पापियों के लिये बहुत ही दुर्लभ हैं। आज हमलोग उसेप्राप्तकर अत्यन्तही कृतकृत्य होगये ।१८। हे महाभाग ! हमलोग इस समय इस नैमिषारण्यमें ओंकारके अर्थकाप्रकाशक दीर्घयज्ञ का अनुष्ठान कररहे हैं ।१९। परमेश्वरको सुनना तथा जानना चाहिए ऐसा विचारकर परस्परमें महेश्वरका परमभाव विचारकरते हैं ।२०। हे प्रभो ! हम उसको भलीभाँति नहींजानते हैं इसलिए अबआपकीशरणागतिमेंप्रस्तुत हुए हैं। आप समर्थ हैं कृपा करके हमारे अल्प बुद्धि वाले मनकेसन्देहका निवारण कर दीजिये ।२१।

त्वदन्यः संशयस्यास्याच्छेता न हि जगत्त्रये ।
तस्मादपारगंभीरव्यामोहाब्धौ निमज्जतः ।२२
तारयस्व शिवज्ञानपोतेनास्मान्दयानिधे ।
शिवसद्भक्तितत्त्वार्थं ज्ञातुं श्रद्धालवो वयम् ।२३
एवमभ्यर्थितस्तत्र मुनिभिर्वेदपारगैः ।
सर्ववेदार्थविन्मुख्यः शुकतातो महामुनिः ।
वेदान्तसारसर्वस्वं प्रणवं परमेश्वरम् ।२४
ध्यात्वा हृत्कर्णिकामध्ये सांब संसारमोचकम् ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा व्याजहार महामुनिः ।२५

इस त्रिभुवनमें आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस तरहके सन्देहका निवारण करने वाला नहीं है अतएव हे दयाके सागर ! आप भ्रमके समुद्र में डूबते हुये हम सबको शिवके ज्ञान रूपिणी नौका से तार दीजिये । हम सबके हृदयमें शिवकी भक्तिके तत्वको जानने की उत्कट अभिलाष है और उसमें परम श्रद्धा भी है ।२२-२३। उस समय वेद के ज्ञाता ऋषियों ने इस प्रकार नम्रता से जब उनसे प्रार्थना की तब तो सम्पूर्ण वेदों के संपूर्ण

अर्थ के—तत्व के ज्ञाता शुकदेवजीके पिता महामुनि व्यासजी ने वेदान्त शास्त्र सार स्वरूप एवं ओंकारके स्वरूपमें स्थित तथा संसार से विमुक्त करने वाले उमा के सहित परमेश्वर शिव का अपने हृदय कमल में ध्यान करके परम प्रसन्न मनसे उन ऋषियोंसे कहना आरम्भकिया ।२४-२५।

शिवजी का पार्वती को मन्त्र दीक्षा देना

साधु पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिर्भाग्यवत्तमैः ।
दुर्लभं हि शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ।१
येषाँ प्रसन्नो भगवान्साक्षाच्छूलवरायुधः ।
तेषामेव शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ।२
जायते न हि सन्देहो नेतरेषामिति श्रुतिः ।
शिवभक्तिविहीनानाममिति तत्वार्थनिश्चय ।३
दीर्घसत्रेण युष्माभिर्भगवानम्बिकापतिः ।
उपासित इतीद मे दृष्टमद्य विनिश्चतम् ।४
तस्म द्वक्ष्यामि युष्माकमितिहासं पुरातनम् ।
उमामहेशसंवादरूपमद्भुतमास्तिकाः ।५
पुराऽखिलजगन्माता सती दाक्षायणी तनुम् ।
शिवनिन्दाअसगेन त्यक्त्वा च जनकाध्वरे ।६
तपः प्रभावात्सा देवी सुताऽभूद्धिमवद्गिरेः ।
शिवार्थमतपत्सा वै नारदस्योपदेशतः ।७
तस्मिन्भूधरवर्ग्ये तु स्वयंवरविधानतः ।
देवेश च कृतोद्वाहे पार्वती सुखमाप सा ।८

महर्षि व्यासजी ने कहा हेमहान् भाग्य वाले ब्राह्मणो ! आपलोगों ने इस समय बहुतही अच्छाप्रश्न पूछा है । प्रणवके अर्थका प्रकाशक शिव का ज्ञान ससारमें अत्यन्त दुर्लभ है ।१। जिनके ऊपर त्रिशूल धारण करने वाले भगवान् शिवकी कृपाहोती है उन्हींको प्रणवके अर्थकाप्रकाश करने वाला शिवका ज्ञान प्राप्तहोताहै ।२। इसमें कुछभी सन्देह नहींहै कि शिव के ज्ञानका प्रकाश शिवकी भक्तिसेरहितजीवोंकोकभीनहीं होता है । श्रुति

करने वाले ऋषिगण यज्ञों के स्वामी रुद्रदेव का एक सहस्र वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ करने में प्रवृत्त हो गये और ऐश्वर्य के जानने की इच्छा से भावतःपूवक प्रणाम किया ।।४-५।। महर्षि व्यासजी के दर्शन पाने की इच्छा से वे वहाँ निवास करने लगे और शिव-भक्ति में परायण होकर भस्म तथा रुद्राक्ष की माला धारण करने लग गये ।। ६ ।। उन समस्त ऋषियों की प्रीति भावना को समझकर भगवान् व्यासजी जोकि नारायण के अंश से उत्पन्न समस्त जगत् के गुरु,पराशरऋषि के तपस्या के फल स्वरूप और सर्वात्मा हैं, वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये ।।७।।

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे प्रहृष्टवदनेक्षणाः ।
अभ्युत्थानादिभिः सर्वैरुपचारैरुपाचरन् ।८
सत्कृत्य प्रददुस्तस्मै सौवर्णं विष्टरं शुभम् ।
सुखोपविष्टः स तदा तस्मिन्सौवर्णविष्टरे ।
प्राह गम्भीरया वाचा पाराशर्य्यो महामुनि ।९
कुशलं किं नु युस्माकं प्रब्रूतास्मिन्महामखे ।
अर्जितः किं नु युष्माभिः सम्यगध्वरनायक ।१०
किमर्थमत्र युष्माभिरध्वरे परमेश्वरः ।
स्वर्चितो भक्तिभावेन साम्बः संसारमोचकः ।११
युष्मत्प्रवृत्तिर्मे भाति शुश्रूषाऽपूर्वमेव हि ।
परभावे महेशस्य मुक्तिहेतोः शिवस्य च ।१२
एवमुक्ता मुनीन्द्रेण व्यसेनामिततेजसा ।
मुनया नेमिषारण्यवासिनः परमौजसः ।१३
प्रणिपत्य महात्मानं पराशर्यं महामुनिम् ।
शिवानुरागसहृष्टमानसं च त ब्रुवन् ।१४

उनका दर्शनकर मुनियों के मनमें और नेत्रों में अत्यन्त आनन्द हुआ और उनका आगे बढ़कर स्वागत सत्कार करते हुए सबने पूजन किया ।७।वहाँ सबमुनिगण ने महर्षिव्यासजी को विराजमान करनेके लिए सुवर्ण निर्मित्तआसन दिया।उसहेमासनपरबैठकर महामुनिव्यासजीनेअपनीपरममधुर

होती हैं? यह किनरो वेदके आदि में कहा जाता हैं।१०। प्रणवके कितने देवता होते हैं। किस रीतिसे वेद आदि की भावना की जाया करती है। क्रियायें कितने प्रकार की होती हैं और इसकी व्याप्य-व्यापकता किस प्रकार से होती।११। इन आपके उपदिष्ट मन्त्रों में अनुक्रम से किस तरह पाँच ब्रह्म स्थित रहा करते हैं। कलायें कितनीहोतीहैं और प्रपञ्चात्मकता का क्या स्वरूप है।१२। हे शिव! वाच्य-वाचक का सम्बन्ध और स्थान किस रीति से होता है। और यह बतानेकी कृपा करें कि इसका अधिकारी कौन है और विषय क्या है।१३। हे महेश्वर! कृपा कर यह समझाइये कि इसका सम्बन्ध और प्रयोजन क्या है। यह भी बताइए कि इसका उपासक कैसा व्यक्ति होता है और उपासना करनेका स्थान कौन-सा उचित होता हैं॥१४॥

उपास्यं वस्तु किंरूपं किंवा फलमुपासितुः।
अनुष्ठानविधिः कोवा पूजास्थान च किं प्रभो।१५
पूजायां मण्डल किंवा किंवा ऋष्यादिकं हर।
न्यासजापविधि-का वा को वा पूजाविधिक्रम।१६
एतत्सर्वं महेशान समाचक्ष्व विशेषतः।
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन यद्यस्ति मयि ते कृपा।१७
इतिदेव्या समापृष्ठो भगवानिन्दुभूषणः।
तां प्रशस्य महेशानीं वक्तुं समुपचक्रमे।१८

इसकी उपास्य वस्तु किस प्रकार की होती है और इसकी उपासना करनेवालेको क्या फल मिला करता है। इसके अनुष्ठान करनेकी विधियाँ होती है और पूजाका कौन सा उपयुक्त स्थल हुआ करता है।१५। इसकी पूजाकेमण्डल और उनके ऋषिआदि कौन होते हैं उसके न्यास आदि करने की विधि किस प्रकार की होती है और उसका क्रम क्या होता है।१६। हे शिव! यदि आप मुझपर पूर्ण कृपा रखते है तो मेरे सामने यह सबवर्णन कीजिए। मेरी तत्वोंके विषयोंमें श्रवण करने की बड़ीही तीव्र अभिलाषा

है ।१७। जगदम्बा पार्वतीने महेश्वरसे इस तरह बहुत-सी बातेंपूछीं तो महादेवजी पार्वतीके प्रश्नोंको सुनकर उनकी प्रशंसा करतेहुए कहो लगे ।१८

ओंकार का स्वरूप तथा विरजा होम विधि

श्रणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण जीवः साक्षाच्छिवो भवेत् ।१
प्रणपार्थपरिज्ञा मेव ज्ञानं मदात्मकम् ।
बीजं तत्सर्वविद्यानां मंत्रं प्रणवनामकम् ।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेय तद् वटबीजवत् ।
वेदादि वेदसारं च मद्रू पं च विशेषतः ।३
देवो गुणत्रयातीत सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ।
ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोऽहं सवगःशिवः ।४
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणाप्राधान्ययोगतः ।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ।५
सर्वार्थसाधकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम् ।
तेनौमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः ।६
शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवःस्मृत।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंत विद्यते यतः ।७

शिवजीने कहा--हे देवि ! तुमने जितनी भी बातें पूछी हैं वह तुमसे सब कहता हूँ । इसके श्रवणकरने भरसे ही यह जीवात्मा साक्षात् शिवके स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।१। प्रणवका अर्थ जान लेना ही मेरा ज्ञान प्राप्तकरा देता है, वहमन्त्र समस्त विद्याओंका बीज होता हैं ।२।वह प्रणव वटका वृक्ष और उसके बीजके तुल्य महान् सूक्ष्म तथा बहुतही स्थूलहोता है । वही प्रणव वेदकाआदि सारतया मेरा रूपहोता है ।३। वहीदेव तीनों गुणों से परे-सर्वज्ञ और सबका सृजन करने वाला है ऊँ'-इस अक्षर वाले मन्त्र में सर्वगत शिवजी विद्यमान रहते है ।४। यह जो कुछभी वस्तुहै वह सवगुण और प्रधानके सयोगसे समस्तसमष्टिरूप विराट् और व्यष्टि स्वरूप स्थावर जङ्गमात्मक प्रणव का अर्थही होता है ।५। इस कारण से वहएक

अक्षर वाला ब्रह्म ही सम्पूर्ण अर्थों का साधक है। इसी सर्वार्थ साधकता से ॐ ऐसे आकार वाले प्रणवसे भगवान महेश्वर सर्वप्रथम इस समस्त जगत् का निर्माण किया करते हैं ।।६।। भगवान् शिव प्रणव स्वरूप हैं और प्रणव साक्षात् शिव स्वरूप हैं। वाच्यार्थ और उसके वाचक में कुछ भी भेद नहीं होता है ।७।

तस्मादेकाक्षर देवं माँ च ब्रह्मर्षयो विदुः ।
वाच्यवाचःकयोरक्य मन्यमाना विपश्चितः ।८
अतस्तदेव जानीयात्प्रणव सर्व कारणम् ।
निर्विकारी मुमक्षुर्मा निर्गुण परमेश्वरम् ।९
एनमेव हि देवेशि सर्वमन्त्रशि रोमणिम् ।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहतवे ।१०
तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारमम्बिके ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत् ।११
निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्धनं च ततः परम् ।
काल समुद्धरेत्पश्चाद्दण्डमीश्वरमेव च ।१२
वर्णपञ्चकरूपोऽयमेवं प्रणवउद्धृतः ।
त्रिमात्रबिन्दुनादात्मा मुक्तिदो जपतां सदा ।१३
ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ।
प्राणः प्रणव प्रवाय तस्मात्प्रणव ईरितः ।१४

इसी कारण से ब्रह्म ऋषि गुरु को एकाक्षर स्वरूप कहा करते हैं। बाच्य और बाचक की एकता को मानते हुए जो विद्या होते हैं, मैं भी उन्हींके द्वारा प्राप्त होनेवाला होताहूँ ।८ हे परमेश्वरि। इसलिये प्रणव को सबका कर्त्ता मानना चाहिए। जो मुमुक्षु या मुक्त होतेहैं वे निर्गुणपरमेश्वरको निर्विकार अर्थात् समस्त विकारियों से रहित जानतेहैं ।९।हे देवि। काशीमें अपना प्राणत्याग करनेवालेप्राणियोंको अन्यसमयमें मैं इस समस्त मन्त्रोंके शिरोमणि ओंकारका ही उपदेशकियाकरताहूँ ।१०। हे अम्बिके। मैं अब तुम्हारे सामने सबसे पहिले प्रणवके उद्धारकोवर्णनकरता हूँ जिसके

विज्ञान मात्रसेही परम सिद्धि प्राप्त हुआकरती है ।११। सर्वप्रथम ओङ्कार में अकारके आश्रित निवृत्ति कलाका उद्धारकरना चाहिए । उकारमें ईंधन कलाका-मकारमें काल कलाका--नाद में दण्ड कलाका और बिन्दुमें ईश्वर कलाका उद्धारकरना चाहिए ।१२। इस रीतिसे उक्त पाँचवर्णोंके रूपवाले प्रणव का उद्धार होता है । यह प्रणव तीन मात्रा और बिन्दु नाद स्वरूप जपने वालोंको महामुक्ति प्रदान करने वाला होता है ।१३। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त यह सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण होता है, इसी से इसका नाम 'प्रणव'-यह होता है ।१४।

आद्यं वर्णमकारं च उकारमुत्तरे ततः ।
मकार मध्यतश्चैव नादांतं तस्य चोमति ।१५
जलवद्वर्णमाद्यं तु दक्षिणे चोत्तरे तथा ।
मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम ।१६
अकारश्चाप्युकारोऽयं मकारश्च त्रयं क्रमात् ।
तिस्रो मात्राः समाख्याता अर्द्धमात्रा ततः परम् ।१७
अर्द्धमात्रा महेशानि बिन्दुनास्वरूपिणी ।
वर्णनिया न वै चाद्धा ज्ञेया ज्ञानभिरेव सा ।१८
ईशानः सर्वविधानामित्याद्याः श्रुतयः प्रिये ।
मत्त एव भवन्तीति वेदाः सत्यं वदति हि ।१९
तस्माद् वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः ।
वाचकत्वान्ममैषोऽपि वेदादिरिति कथ्यते ।२०
अकारस्तु महद् बीज रजः स्रष्टा चतुर्मुख ।
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्वं पालयिता हरिः ।२१

अकार, उकार और मकार के क्रमसे से तीन मात्रा और पीछे आधी मात्रा होती है । इस तरह से 'ओम' होता है ।१५। हे पार्वति । यह जल के तुल्य दक्षिण-उत्तरमें स्थित है । हे मुनिश्रेष्ठ ! इसकेमध्यमें मकारहोता है । इस तरह से इस ओंकार की स्थिति होती है ।१६। हे महेशानि ! अकार, उकार और मकार ये तीनमात्रायें है इसके पीछे आधी मात्रा होती

है ।१७। हे परमेश्वरि ! वह आधी मात्राही नाद विन्दु स्वरूप वाली है। यहांपर'ईशान:: सर्व विद्यानां ईश्वर:सर्वभूतानाम्'और'यो वै ब्रह्माण विद-धाति पूर्वम्' इत्यादि श्रुतिवचन प्रमाणहोते हैं ।१८। ये सब मुझसेही होते हैं, वेदोंने यह बात बिल्कुल सत्य प्रतिपादित की है ।१९। इस कारणसेवेद के आदिमेंओंकारात्मक भी मैं ही विद्यमान रहा करता हूँ। ओंकार मेरा वाचक होने से वेद के आदि में कहा जाता है ।२०। अकार इसका महान् बीज है। इसी के रजोगुण से ब्रह्मा हुआ करते हैं। उकार उसकी प्रकृति योनि है। सत्व गुण के पालन करने वाले हरि होते हैं ।२१।

मकार: पुरुषो बीजी तमः संहारकोहर: ।
विन्दुर्महेश्वरो देवस्तिरोभाव उदाहृतः ।२२
नादः सदा शिव प्रोक्तः सर्वानुग्रहकारकः ।
नादमूर्द्धनि सचिन्त्य- परात्परतर शिवः ।२३
स सर्वज्ञ सर्वकर्त्ता सर्वशो निर्मलोऽव्ययः ।
अनिर्देश्यः परब्रह्म साक्षात्सदसतः परः ।२४
अकारादिषु वर्णेषु व्यापक चोत्तरोत्तरम् ।
व्याप्यां त्वधस्तन वर्णमेवं सर्वत्र भावयेत् ।२५
सद्यादीशानपर्यतान्यकारादिषु पश्चसु ।
स्थितानि पञ्च ब्रह्माणि तानि मन्मूर्त्तयः क्रमात् ।२६
अष्टौ कलाः समाख्याता अकारे सद्यजाः शिवे ।
उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिताः ।२७
अष्टावघोररूपिण्यो मकार संस्थिता कलाः ।
बिन्दौ चतस्र संभूता कला पुरुषगोचराः ।२८

इसमें मकार पुरुष बीज होता है। इसके तमोगुणसेयुक्त सृष्टिकेसंसार करनेवालेशिव हैं। बिन्दुस्वरूप साक्षात्महेश्वरदेव हैं,उससे तिरोभावहोता है ।२२। नाद स्वरूप सबके अनुग्रह करने वाले साक्षात् शिव हैं। नाद का मस्तकमें विचारकरतेही वहाँ शिवध्यान करनेके योग्यहोते हैं। वे परात्पर मंगल स्वरूप वाले हैं ।।२३।। वे सर्वज्ञ हैं, सबके कर्त्ता--सबके स्वामी —

निर्मल-अविनाशी और अद्वैत हैं। निर्देशनकरनेमें अयोग्य सत्‌आसनसे भी परे साक्षात् परब्रह्म है।२४। अकार जिनके आदिमें है उन सब अक्षरों में क्रमसे व्यापक हैं,अकारकी अपेक्षा ओंकार व्यापक है, उकारसे अकार वर्ण नीचेके भागमें व्याप्त है। इसी तरहसे इनवर्णोंमें भी भावना करनीचाहिए।२५।अकारादि पाँचवर्णोंमें ब्रह्मके स्वरूप वाले सद्य:-वाम देव घोर-पुरुष ईशान हैं वे सब क्रमसे से मेरी ही मूर्तियाँ हैं।२६। सद्य:-इससे होने वाले अकारके स्वरूप शिवमें आठकलाओं का वर्णन कियागया है और उकार में वाम देव रूप तेरह कलायें हैं।२७। मकार में अघोर रूपिणी आठ कलायें विद्यमान हैं और बिन्दुमें पुरुष गोचर चार कलायें होती हैं।२८।

नादे पंच समाख्याताः कला ईशानसंभवाः।
षड्विधैक्यानुसंधानात्प्रपंचात्मकतोच्यते ।२९
मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपंचो गुरुरेव च।
शिष्यश्च षट्पदार्थानामेषामर्थं शृणु प्रिये ।३०
पंचवर्णसमष्टिः स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः।
स एव यंत्रतां प्राप्तो वक्ष्ये तन्मण्डलक्रमम् ।३१
यन्त्रं तु देवमारूप देवता विश्वरूपिणी।
विश्वरूपो गुरुः प्रोक्त शिष्यो गुरुवपु स्मृत ।३२
ओमितीदं सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति चश्रुते।
वाच्यवाचकसम्बन्धोऽप्ययमेवार्थ ईरितः ।३३
आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम्।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ।३४
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीत परात्परम्।
अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम् ।३५

नादमें ईशान स्वरूपवाली पाँचकलायें स्थित हैं। आगे बताये जाने वाले छ:पदार्थोंकी एकताके अनुसन्धानसे प्रणवकी प्रपञ्चात्मकता होती है ॥२९॥ मंत्र-यंत्र-देवता विश्व और गुरु तथा शिष्य ये छै पदार्थ होतें हैं। हे प्रिये ! अब मैं इनका अर्थ बतलाता हूँ उसको तुम श्रवण करो ।३०।

पूर्वोक्त यह प्र० वमात्र पाँचवर्णोंकी सदष्टिस्वरूपहै । वही मंत्रकीस्वरूपता को प्राप्तकर लिया करता है अब उसके मण्डलका क्रम बतलाया जाता है ।३१। यन्त्र देवता रूप हैं, देवता विश्व रूप हैं और विश्वरूप गुरु है तथा शिष्य-गुरु का ही एक शरीर है ।३२। 'ओमितीद सर्वम्' इसका अर्थ यह होता हैकि यह सब ओंकारस्वरूपही है-ऐसा श्रुति कहती है वाच्य-वाचक के सम्बन्धका यही अर्थ होता है ।३३। अब स्थान बतलाते हैं—आधार-मणिपुर-हृदय-विशुद्धि चक्र-आज्ञा चक्र-शक्ति और शान्त कला ये क्रम से स्थान बतलाये गये हैं ।३४। हे देवि ! शान्त्यतीत को ही परात्पर कहा जाता है । जिसको दृढ़ वैराग्य हो जाता है वही इसका योग्य अधिकारी होता है ।६३।

विषयः स्यामह देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात् ।
सम्यन्ध श्रृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः ।३६
जीवात्मनोर्मया सार्द्धमैक्यस्य प्रणवस्य च।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः ।३७
व्रतादिनिरतः शान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ।
शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठितः ।३८
विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च ।
देवानां ब्राह्मणोऽपीह लोकजेषु शिवव्रती ।३९
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञ वेदान्तज्ञानपारगम् ।
आचार्यमुपसंगम्य यतिं मतिमतां वरम् ।४०
दीर्घ दण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नयः सुधीः ।
शांतादिगुणसंयुक्तः शिष्यः सौसील्यवानूवर ।४१
यो गुरु स शिवः प्रोक्तो य शिव स गुरु स्मृतः ।
इति निश्चत्य मनसा स्वविचारं नित्रेदयेत् ।४२

हे देवि ! मैं ही इसका विषय हुँ । जीव ब्रह्मकी एक भावना करनी चाहिए । हे देवि ! विषयको बतलादियागया अब सम्बन्धको श्रवणकरो ! ।३६। मेरे समेत जीवत्मा की प्रणव की एकता होती है । यहां बोध्य

बोधक भावहोता है अर्थात् जीवात्मा और ब्रह्मकी एकताका बोधकप्रणव होता है यही सम्बन्ध है। ३७। व्रत आदिने तत्पर, शान्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय पवित्र आचरण वाला, ब्राह्मण, वेदमें निष्ठा रखने वाला, विषयोंसे विरक्त, लोक एवं परलोककी इच्छासे दीन, देवता और ब्राह्मण में भक्तिरखनेवाला, शिव व्रतको धारण करने वाला, सम्पूर्ण शास्त्रार्थके तत्व का ज्ञाता, वेदान्त ज्ञानके पारगामी यति, श्रेष्ठ बुद्धि वाला पुरुष आचार्य के पास जाकर दीर्घ दण्डके समान प्रणामकरे और यत्नपूर्वक आचार्यको पूर्णरूपसे सन्तुष्ट करे और शान्ति प्रभृति गुणों से युक्त, शीलवान् तथा शक्ति आदि गुण से युक्त, बुद्धिमान् शिष्यको ऐसा जानना चाहिए कि जो गुरुदेव हैं सो साक्षात्शिव ही हैं और साक्षात्शिव हैं वहीगुरुदेव हैं ऐसा अपनेमनमें सुदृढ़निश्चयकरके ही पीछे उनसे अपना विचार निवेदित करें। ३--३९-४०-४१-४२।

लब्धानुज्ञस्तु गरुणा द्वादशाह पयोव्रती ।
समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये ।४३
शुक्लपक्षे तु पचम्यामेकादश्यां तथापि वा ।
प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्यक्रिय सुधीः ।४४
गरुमाहुय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च ।
क्षौर च कारियत्वाऽथ कक्षोपस्थविवर्जितम।४५
केशश्मश्रुनखानां वै स्नात्वा नियतमानस ।
सक्तु प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा स ध्यामुपास्य च ।
सायमौपासनं कृत्वा गरुणा सहितो द्विजः ।
शास्त्रोक्तदक्षिणा दत्या शिवाय गुरुरूपिणे :४७
होमद्रव्याणि सपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः ।
अग्निमाधाय विधिवल्लौकिकादिविभेदतः ।४८

अपने गुरुदेवकी आज्ञा प्राप्तकर बारह दिन पर्यन्त पयोव्रत करे अर्थात केवलजल का पान करके रहे। समुद्र तट पर अथवा पर्वत की चोटी या गुफा में किम्बा शिला पर निवास करे।४३। बुद्धिमान शिष्य को चाहिए

मासके शुक्ल पक्षका पञ्चमी अथवा एकादशीकेदिन परमपवित्र मनसेप्रात: कालमें नित्य क्रिया के उपरान्त स्नान करे। ४४। फिर अपने गुरुदेव को बुलाकर विधि-विधानके सहित नान्दीमुख श्राद्ध करके बगल तथा उपस्थको छोड़कर क्षौर कर्मकरावे।४५। माथेके केश,दाढ़ी-मूँछ और नाखूनोंको दूर कराके जितेन्द्रिय रहते हुए स्नानकरके सायंकालीन सन्ध्योपासनाकरे।४६ सतूका आहारकरे औरफिर स्नानकर सन्ध्याकर्मकरे। इसतरह गुरुकेसहित ब्राह्मण सन्ध्याकालकी उपासनाकरके शिवस्वरूप अपने गुरुदेवकी सेवा में वस्त्र और दक्षिणादेनी चाहिए।४७। जोभी अपना सूत्र हा उसकी विधिके अनुसार होम द्रव्य लेकर विधि पूर्वक लौकिक आदिके भेदके साथ अग्न्याधान करना चाहिए ॥४८॥

आहताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्येष्टिनाहिते।
श्रौते वैश्वानरे सन्यक् सर्ववेद सदक्षिणम ।४९
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात ।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्तामदन्नाज्यभेदतः ।५२
पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवान् ।
हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः ।५१
हुत्वोपरिसात्तन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः ।
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ।
यावद् ब्राह्ममुहुर्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ।५२
ततः स्नात्वा यथापूर्व श्रपयित्वा चरुं तत ।
पौरुषं सूक्तमारभ्य विराजातं हुनेत् बुधः ।५३
वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन वा ।
तत्रं मुख्य वामदेव्य गर्भयुक्तो यतो मुनिः ।५४
होमशेष समाप्याथ प्रातरौपासनं हुनेत् ।
ततोऽग्निमात्मन्यारोप्य प्रातः सन्ध्याम गास्य च ।५५
सवितर्युदिते पश्चात्मावित्रीं द्राविमेत्क्रमात्
एषणानां त्रयं त्यक्त्वा प्रेषमुच्चार्य च क्रमात् ।५६

जो कोई अहिताग्नि प्राजापत्य यज्ञ के अनुसार हवन कर चुकता है उसकोचाहिए अपने सर्वस्वधन की दक्षिणदेकर इस वेदोक्त वैश्वानर अग्नि को आत्मा में धारण कर ब्राह्मणको घरसे निकलकर संन्यासी हो जाना चाहिए। समिधा-अन्न और घृतयुक्त चरुलेकर पुरुषसूक्तके एकमत्रसे हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने सूक्तके विधानसे स्विष्टकृत सम्बन्धित आहुतियों से हवन करे।४९-५०-५१। तन्त्र के आगे उत्तर दिशाकी तरफ आसनपर बैठकर जोकि कुशाका आसन होनाचाहिए स्वयं मृग चर्म धारण करे,जब तक ब्राह्म मुहूर्त रहे तबतक मनकी पूर्ण दृढ़ताके साथ गायत्री का जाप करना चाहिए।५२। इसके अनन्तर पुनः स्नान करके चरुका निर्माण करे और पुरुष सूक्तसे आरम्भकर विरजा होम पर्यन्त आहुतियाँ देवे।५३। वामदेव या शौनक मन्त्रसे हवनकरे। इनमें वामदेवका मतश्रेष्ठ है क्योंकि इसका कारण यही है कि यह महापुरुष गर्भ में स्थित ही मुक्त होकरफिर जीवन्मुक्त रहते हुए विचरण करते रहे हैं।५४। इसके पश्चात् शेषहवनको पूरा करे और फिर प्रातः कालीन उपासनाका हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् पुनः अग्निको अपनी आत्मामें आरोपित कर प्रातःकालकी सन्ध्योपासना करनी चाहिए।५५। लोकेषणा अर्थात् लोकमें मानादि की इच्छा रखना.वित्तेषणा और पुत्रेषणा इनतीनोंका त्याग करके सूर्यके समुदित हो जानेपर क्रमपूर्वक गायत्रीका जपकरना चाहिए फिर क्रमसे प्रेषका उच्चारण करे।५६।

शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिक ततः ।
विसृन्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोऽपि वा।५७
गृह्णोयाद्दण्डकौपीनाद्युचिवृत लोकवर्तने ।
विरक्तश्चेन्न गृह्णीयाल्लोकघृत्तिविचारिणे।५८
गुरोः समीपं गत्वाऽथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम् ।
समुत्थाय ततस्तिष्ठेद्गुरुपादसमीपतः ।५९
ततो गुरुः समादाय विरजानलजं सितम् ।
भस्म तेनैव तं शिष्यं समुद्धूल्यं यथाविधि।६०

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड धारयेत्ततः ।
हृत्पङ्कजे समासीनं मां त्वया सह चिंतयेत् ।६१
हस्त निधाय शिरसि शिष्यस्य प्रीतमानसः ।
ऋष्यादिसहित तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत् ।३२
प्रणवं त्रिप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत् ।
षड विधार्थ परिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ।६३

इसके पश्चात् अपनी शिखा (चोटी),उपवीत (जनेऊ) और कटिसूत्र आदि सबको छोड़कर पूर्व या उत्तर दिशाका गमनकर चले जाना चाहिये ।५७। लोककी वृत्ति (व्यवहार) के निभानेकेलिये केवल एक कोपीन और एकदण्डका ग्रहणकरे और यदि पूर्ण विरक्तिमे लोकवृतिकी कठिनाईप्रतीत होती होतो इनका विचारकर त्यागकर देना चाहिए ।५८। अपने गुरुदेवके निकट पहुँचकर भूमिमें पतित दण्डके तुल्यगिरकर प्रणामकरे और उठकर श्री गुरुदेवके चरणोंमें स्थित होजावे ।५९। उससमय गुरुदेव विरजाअग्नि से समुत्पन्न श्वेत भस्म उस समय शिष्य के शरीर में मलकर 'अग्नि रिति भस्म'-'वायु रिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मसे तिलक करावें और फिर, आपके सहित मेरा अर्थात् शिव और पार्वती का ध्यान करना चाहिए । ।६०-६१। इसके पश्चात् गुरुदेव प्रसन्न चित्तसे शिष्यके मस्तक पर अपना हाथ रखकर ऋषि आदि का स्मरण कर उसके दाहिने कान में मन्त्र का उच्चारण करें ।६२, सूक्ष्म स्थूल आदि प्रणव, जो पहिले तीन प्रकार के बताये जाचुके हैं,उसका और उस प्रणवके अर्थका उपदेश करना चाहिए । शिष्यको उस समय छः प्रकारके प्रणवका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये दण्डवत् करनी चाहिए ।५३।

द्विषट्प्रकार स गुरु प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
तदधानो भवेन्नित्य वेदान्त सभ्यगभ्यसेत् ।६४
मामेव चिंतयेन्नित्यं परमात्मानमात्मनि ।
विशुद्धं निर्विकार वै ब्रह्मसाक्षिणमव्ययम् ।६५
शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः ।
अत्राधिकाही स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः ।६६

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदं परम् ।
अष्टपत्रं केसराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम् ।६७
आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्वान्तमय पदम् ।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योमभावयेत् ।६८
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह ।
चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः ।६९
एवं विधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च ।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये ।७०

इस तरह बारह प्रकारसे गुरुदेवको प्रणाम करे औरफिर सदा गुरुदेव की अधीनता में रहकर नित्य प्रति वेदान्तका अभ्यास करना चाहिए ।६४। सदा अपनी आत्मा में मुझ परमात्माका ध्यान करते रहना चाहिये जोकि विशुद्ध विना विकारोंवाला शुद्ध अविनाशी हैं ।६५। शम-दम आदिकेधर्ममें विशेष रूपसे रति रखताहुआ वेदान्त दर्शनशास्त्रका पारगामी होकर अभिमानसे एकदमरहित रहतेहुए जो रहता है वही यतिकहलाता है और ऐसा यति पुरुषही इसका अधिकारी भी होता है।६६। हृदय पुण्डरीकमें विराजमान,परम स्वच्छ शोकरहित अति उज्ज्वल अष्टदल कमलके तुल्य,मकरन्द से युक्त कर्णिका से शोभित हृदय-कमलके मध्यमें आधार शक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरक हृदयके तत्वान्तमय आधारका विचारकर उस समय दहर प्रकाश की भावना करनी चाहिए ।६७-६८। 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका उच्चारण आपकेसहित मेराअत्यन्त उत्कण्ठाकेसाथ स्मरणकरता हुआ उस दहरा प्रकाशके मध्यमें नित्यही मेरा स्मरणकरता रहे ।६९। हे परम प्रिये ! इस विधिसे मेरी उपासना करते रहनेवाले पुरुषको मेरेलोककी प्राप्ति हुआ करती है और वह मुझसे ज्ञान प्राप्तकर अन्तमें मेरेही सायुज्य मोक्ष पदकी प्राप्ति किया करता है ।७०।

पूजा स्थान में मण्डल रचना विधि

परीक्ष्य विधिवद्भूमिं गंधवर्णरसादिभिः ।
मनोऽभिलषिते तत्र वितानवितताम्बरे ।१

सुप्रलिपे महीपृष्ठ दर्पणोदरसन्निमे ।
अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत् ।२
तालपत्रं समादाव तत्समायामविस्तरम् ।
तस्मिन्भायान्प्रकुर्वीत त्रयोदशसमां कलाम् ।३
तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थित ।
तत्पूर्वभागे सुदृढ़ सूतमादाय रंजितम् ।४
प्राक् प्रात्यग्दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत् ।
सूत्राणि देवदेवेशि नवशष्ट्युत्तर शतम् ।५
कोष्ठानि स्युस्ततस्तस्य मध्य कोष्ठं तु कर्णिका ।
कोष्ठाष्टकं बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते ।६
दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत् ।
पीतरूपां कर्णिका च कृत्वा रक्तां च वृत्तकम् ।७

श्री भगवान् शिवने कहा-गन्ध, वर्ण, रस आदिसे पृथ्वीकी भली-भाँति परीक्षाकरके फिर अपने मनकी अभिलाषा के अनुसार जोभी परम अभीष्ट एवं सुन्दर हो वैसा एक वितान (चन्दोवा) वहाँ तानना चाहिये ।१। वहाँ भूमिको लीपकर दर्पणके समान एकदम चिकनी बनादेवे । दो हाथके बरा-बर चार अस्त्र चौकोर स्थानके मण्डपकी रचना वहाँ करे ।२। फिर ताल-पत्रोंमे उसीकेसमान लम्बे तथा चौड़ेस्थानमें बराबर तेरहभाग करनेचाहिए ।३।उस चतुरस्त्र मण्डलमें उस पत्रको रखकर फिर स्वयं पश्चिम दिशाकी ओर मुखकरके स्थित होवे और उसके पूर्व भागमें कलायेसे पूर्वसे दक्षिण-उत्तरके क्रमसे चौदह डोरे वहाँ रखने चाहिए । हे देवि ! ऐसा करने पर उस कोष्ठमें एक सौ उनहत्तर कोठे बन जाँयगे ।४-५। कोष्ठोंके मध्य में जो कर्णिका है उससे आठ कोष्ठकके बाहर उस मध्य कोष्ठक का दलाष्टक होता है ।६। श्वेत वर्ण के दल और श्याम अग्र भाग की कल्पना करे, उसकी पीली कर्णिका बनाकर लाल-पीली रंग दे ।७।

वनभिद्दलदक्षं तु समारभ्य सुरेश्वरि ।
रक्तकृष्णाः क्रमेणैव दलसन्धीन्विचित्रयेत् ।८

कर्णिकायां लिखेद्यंत्रं प्रणवार्थप्रकाशकम् ।
अधः पीठ समालिख्य श्रीकण्ठ च तदूर्ध्वत ।९
तदुपर्यमरेशं च महाकाल च मध्यतः ।
तन्मस्तकस्थं दन्डं च तत ईश्वरमालिखेत् ।१०
श्यामेन पीठ पीतेन श्रीकन्ठ च विचित्रयेत् ।
अमरेशं महाकालं रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात् ।११
कुर्यात्सुधूम्रं दन्डं च धवलं चेश्वरं बुधः ।
एवं यन्त्रं समालिख्य रक्त सद्येन वेष्टयेत् ।१२
तदुत्थेनैव नादेन विद्यादीशानमीश्वरि ।
तद्वासपक्तीर्गृह्णीयादाग्नेयादिक्रमेण वै ।१३
कोष्टानि कोणभागेषु चत्वार्येतादि सुन्दरि ।
शुक्लेनापूर्य वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः ।१४

हे सुरेश्वरि ! इस तरह कमल के दलों को लाल तथा पीला बनाकर क्रमसे दलसन्धिको लाल तथा काली बनावे ।८ उसकी कर्णिकामें प्रणव अर्थका प्रकाशयन्त्र लिखनाचाहिए । उसके नीचे पीठ और उसकेऊपर श्रीकण्ठ लिखे ।९। इसके ऊपर अमरेश, मध्य में महाकाल और महाकाल के मस्तकके समीपमें दण्डलिखकर फिर ईश्वरको लिखनाचाहिये ।१०। श्याम रंगसे सिंहासनको चित्रितकरे तथा पीले रंगसे श्रीकण्ठको रगे । अमरेशको रक्त वर्णसे तथा महाकाल को कृष्ण वर्णसे रंगे ११। दण्ड का वर्ण धूम्र बनावे और ईश्वरकावर्ण धवलबनाना चाहिए । इसरीतिसे लालयन्त्रलिख कर सद्योजात मन्त्र से आच्छादन करना चाहिये ।१२। हे ईश्वरि ! उसमे उत्थित नादसे ईशानको भेद करे तथा अग्नय क्रमसे उसको वाह्य पंतिको ग्रहणकरे ।१३। हे सुन्दरि ! उसके कोणोंमें चारकोष्टोंको श्वेत और लाल धातुसे रगे औरफिर चारद्वारोंकी कल्पनाकरनी चाहिये और उसके इधर-उधरके कोष्ठपीले रंगसे परिपूर्ण करे ।१४।

आपूर्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पयेत् ।
ततस्तत्पार्श्वयोर्द्वंद्व पीतेनैव प्रपूरयेत् ।१५

आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्त्रके ।
अष्टपत्र लिखेत्पद्म रक्ताभ पीतकर्णिकम् ।१६
हकारं विलिखेन्मध्ये विन्दुयुक्तं समाहित ।
पद्मस्य नर्ऋते काष्ठे चतुरस्रं तदा लिखेत् ।१७
पद्ममष्टदल रक्त पीतकिंजल्ककर्णिकम् ।
शवर्गस्य तृतीय तु षष्टस्वरसमन्वितम् ।१८
चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादविभूषितम् ।
एतद्बीजवरं भद्रे पद्ममध्ये समालिखेत् ।१९
पद्मस्येशानकोष्ठे तु यथा पद्मं समालिखेत् ।
कवर्गस्य तृतीयं तु पञ्चमस्वरसंयुतम् ।२०
विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुकण्ठे स्वल कृतम्।
तद्बाह्यपक्तित्रियते पूर्वादिपरितः क्रमान् ।२१

अग्नेय दिशाके कोष्ठके मध्य चार अस्त्र प्रमाणवाला आठ दलका एक कमल बनावे । इसको पखुरीलालवर्णकी बनावे और कर्णिकाको पीतवर्ण की बनानी चाहिये।१५-१६। इससे मध्यमें विन्दुयुक्त दकारलिखे औरफिर कमलकी नैऋत्यकीओरके कोष्ठमें चारअस्त्र मध्यवाला अष्टदल कमलवनावे। उसका रङ्ग लाल बनावे और कणिका का रंग पीला बनावे । शवर्गका तीसरा अक्षर (स) छठवें स्वरसे संयुक्त (सू) लिखे ।१७-१८। चौदहवाँ स्वर (औ) बिन्दु नाद से युक्त (औं) यह बीज है । भद्रे ! इसको पद्म मध्यमे लिखना चाहिए ।१९। इसी तरहमे कमल के ईशान कोष्ठमें लिखे । कवर्ग का तृतीय अक्षर (ग) पंचम स्वर उकारके सहित (गु) लिखे ।२०। उस ईशान दिशा के कमल के कन्ठ भागमें बिन्दु लिखे,इसकी बाहिर तीन पक्तियाँ हैं उनमें पूर्व दिशाके क्रमसे लिखना चाहिए ।२१।

कोष्ठानि पञ्च गृह्णीयाद गिरिराजसुते शिवे।
मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम् ।२२
दलानि रक्तवर्णानि कल्पयेत्कल्पवित्तमः ।
दलबाह्ये तु कृष्णेन रन्ध्राणि परिपूरयेत् ।२३

आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत् ।
पूर्वं षड्बिन्दुसहित षटकोण कृष्णमालिखेत्।२४
रक्तवर्ण दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः ।
श्वेताभमर्द्धचन्द्रं च पीतवर्ण च पश्चिमे ।२५
चतुरस्त्र क्रमातेषलिखेत् वीज चतुष्टयम् ।
पूर्व बिन्दुं समालिख्य शुभ्रं कृष्णं त दक्षिणे ।२६
उकारमुत्तरे रक्तं मकार पश्चिमे ततः ।
अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णचतुष्टयम् ।२७
सर्वोर्ध्वपक्त्यधः पक्तौ समारभ्य च सुन्दरि ।
पीत श्वेतां च रक्तां च कृष्ण चेति चतुष्टयम् ।२८
तदधो धवलं श्यामं पीत रक्तं चतुष्टयम् ।
अधस्त्रिकोणके रक्तां शुक्लं पीतां वरानने ।२६

हे पार्वति ! पाँच कोष्ठ बनाकर उनमें मध्यकोष्ठका पीतवर्णका बनावे और शेष बृत्तको रक्तवर्णका बनाना चाहिये ।२२। विधिके ज्ञाता पुरुषको चाहिएकि कमल दलोंको लालवर्णका बनावे और दलके बाहिरके छिद्रोंको कृष्णवर्णसे रङ्गनाचाहिये ।२३। अग्नि दिशाकी ओर वाले चार कोष्ठोंको शुक्ल रङ्गसे चित्रित करे और पूर्व दिशाके छै बिन्दुओंके सहितषट्कोणों को कृष्णवर्णसे लिखे ।२४। दक्षिण दिशामे उत्तर दिशाकी ओर तीनकोणों में लालरङ्ग तथा श्वेत कान्तिसेयुक्त अर्द्ध चन्द्रके आकारका पीतवर्ण पश्चिम कोणमे रङ्गना चाहिए ।२५। चारों बीजों को क्रमसे चौकोरके प्रमाण से क्रमशः लिखना चाहिये । पूर्वकी ओर तो शुभ्र बिन्दु तथा दक्षिणमें कृष्ण वर्णके लिखे ।२६। उत्तरकी ओर रक्त वर्ण उकार, मकार पश्चिमकी ओर लिखेहुए आकारको पीलेवर्णका करे । इस प्रकार से चारों वर्णोंमें लिखना चाहिये ।२७। हे सुन्दरि ! नीचे की पंक्ति से आरम्भ करके ऊपर वाली चारों पक्तियाँ पीत.श्वेत. रक्त और कृष्ण वर्णकी बनावे ।२८। उसके नीचे श्वेत,श्याम पीत और रक्त रङ्ग से रगे हुए नीचेके त्रिकोण में लाल, शुक्ल और पीत रङ्ग करना चाहिए ।२९।

एवं दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि ।
तद्बाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्त विचित्रयेत् ।३०
पीतं च कृष्णं च श्याम श्वेतं च पीतकम् ।
आग्नेयादि समारभ्य रक्तं श्याम सितं प्रिये ।३१
रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्कमेवं प्रकीर्तितम् ।
दक्षिणाद्य महेशानि पूर्वाविधि समीरितम् ।३२
नैऋताद्य तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि ।
वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेरितम् ।३३
वायव्याध महादेवि नैऋतावधि चेरितम् ।
इशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यविधि चाम्बिके ।
इत्युक्तो मन्डलविधिर्मया तुभ्यं च पार्वति।३५
एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिः स्वत ।
सौरपूजां प्रकुर्वीत स हि तद्गस्त तत्पर ।३६

हे ईश्वरि ! इस प्रकार दक्षिणस आरम्भकरके सोमान्ततक करे और उसकी बाह्य पक्ति पूर्वादि मध्यमान्त में चित्रितकरे ।३०। पीत, रक्त श्वेत श्याम,कृष्ण रंग आग्नेय दिशा से आरम्भ करे, रक्त श्याम और श्वेत और लाल कृष्ण तथा लाल यह छै रंगभरे, हे महेशानी ! यह दक्षिणके आदिसे लेकर पूर्वतक करनाचाहिए ।३१-३२। हे ईश्वरि ! नैऋत्यदिशासे आग्नेय दिशा पर्यन्त और वरुण दिशासे लेकर दक्षिण दिशा पर्यन्त,हे महादेवि ! वायव्यसे लेकर नैऋत्य दिशातक,हे परमेश्वरि ! पूर्व आदिसे पश्चिमतक और ईशानसे लेकर वायव्य दिशापर्यन्त यही करे हे पार्वति ! यह समस्त मण्डलकी रचनाकरनेके पश्चात् ब्रह्ममें परायणहोकर भगवान्भुवनभास्कर सूर्यदेव की पूजा करनी चाहिए ।।३३ से ।३६।।

आसन प्राणायाम विधान

दक्षिण मण्डलस्याथ वैयाध्र चर्म शोभनम् ।
आस्तीर्य शुद्धतोयेने प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ।१

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत् ।
पश्चाच्छक्तिकमलं चतुर्थ्यंतं नमोऽन्तकम् ।२
मनुमेव समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ्मुख ।
प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम् ।३
अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म सधारयेत्ततः ।
शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डलं रचयेत्पुनः ।४
त्रिकोणवृत बाह्ये तु चतुरस्रात्मकं क्रमात् ।
अभ्यर्च्यौमिति साधारं स्वाप्य शंख समर्चयेत् ।५
आपूर्य शुद्धतोयेने प्रणवेन सुगन्धिना ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै प्रणवेन च सप्तधा ।६
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
शङ्खमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ।७

शिवजी ने कहा—दक्षिण मण्डल सुन्दर बाघम्बर बिछाकर अस्त्रमंत्रसे शुद्ध जलके द्वारा प्रोक्षण करना चाहिए ।१। प्रथम प्रणव फिर आधार का उद्धार करे । इसके पश्चात् शक्ति कमल का उद्धार करे । इन सबके साथ चतुर्थी विभक्ति और अन्त में 'नमः' लगाकर उच्चारण करना चाहिए ।२। 'शक्ति कमलाय नमः' इत्यादि रीतिसे इसका उच्चारणकरना चाहिये ।३। 'अग्निरीति भस्म'-इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मधारण करे । श्री गुरुदेवको मस्तक झुकाकर नमस्कार करके फिर मन्डलकी रचनाका आरम्भ करना चाहिए ।४। बाहर की ओर त्रिकोण वृत क्रमसे चार शस्त्र (चौकोन) प्रमाण करे 'ओम अर्चन' इस मन्त्रसे पीठको धारणकर शखङ्का अर्चनकरे ।४। प्रणव से शुद्ध एवं सुगन्धित जल को अभिमन्त्रित करके गन्ध पुष्पादि से सात वार ओंकार से पूजन करना चाहिए ।५-६। इस रीति से मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके धेनु मुद्राबनाकर दिखानी चाहिए और इसी तरह अस्त्रमन्त्रसे शंख मुद्रा भी दिखानी चाहिए ।७।

आत्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणानि च ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत् ।८

अस्य श्रीसौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिस्ततः ।
छन्दो गायत्रमित्युक्तं देवः सूर्यो महेश्वरः ।९
देवता स्यात्षडङ्गानि ह्लामित्यादीनि विन्यसेत् ।
ततः सम्प्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रेणाग्नेरगोचरम् ।१०
तस्मिन्समर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपि ।
सारां चाथ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमात् ।११
अथ कालाग्निरुद्रं च शक्तिमाधारसंज्ञिताम्।
अनन्तां पृथिवीं चैव रत्नद्वीप तथैव च ।१२
सङ्कल्पवृक्षोद्यानं च गृहं मणिमय ततः ।
रक्तपीठ च सपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात् ।१३
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम् ।
अधर्माग्निकोणादिकाणेष च समर्चयेत् ।१४

इसके अनन्तर स्वयं अपनी आत्माको गन्ध क्षत पुष्पादि समस्तअर्चना की सामग्रीसे शुद्धकर तीनबार प्राणायाम करे और ऋषि आदिका स्मरण करनाचाहिये।८।इससौरमन्त्रका देवभागऋषि गायत्रीछन्द और सूर्यमहेश्वर देवता हैं।९। ह्लाँ,ह्लीं, 'ह्लू'इत्यादि बीज मन्त्रों से छै अंकों में सविधि न्यास करे फिर अस्त्रमन्त्र से अग्नि कोणके कमल का प्रोक्षण करनाचाहिए ।१०। साधक विद्वान्को उस आग्नेय दिशाके कमल का महा उज्जवलताके साथ सारवस्तुसे आराधनकर पूर्वादि दिशामें अर्चन करना चाहिए ।११। कालाग्नि,रुद्र,आधार शक्ति,अनन्त पृथ्वी,रत्नद्वीप,सकल्प वृक्ष का बगीचा मणिमय गृह और चरणोंमें मनको संलग्न करके रक्त पीठका पूजनकरना चाहिये ।१२-१३। धर्म,ज्ञान,वैराग्य और ऐश्वय इन चारों का तथा अधर्म तथा अज्ञानादि का अग्निकोण के कोनेमें पूजन करना चाहिए ।१४।

मायाधश्छदन पश्चाद्विद्योर्ध्वैच्छदन ततः ।
सत्वं रजस्तमश्चैव समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ।१५
सम्पूज्य पश्चात्सौराख्य योगपाठ समर्चयेत् ।
पीठोपरि समाकल्प्य मूर्ति मूलेन मूलवित् ।१६

निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः ।
शक्तिमुत्थाप्य तत्तेजः प्रभावात्पिंगलाध्वना ।१७
पुष्पांजलौ निर्गमय्य मण्डलस्थस्य भास्वतः ।
सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्द्धदयितस्य च ।१८
अक्षस्त्रक्पाशखट्वाङ्गकपालांकुशपङ्कजम् ।
शङ्ख चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः १९
राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पङ्कजोदरे ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्रांह्रींसस्तदनन्तरम् ।२०
प्रकाशशक्तिसहितं मातण्डं च ततः परम् ।
आवाहयामि नम इत्यावाह्यावाहनाख्यया ।२१
मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्राः सदर्शयेत्ततः ।
विन्यस्यांगानि ह्रांह्रींह्नू मेतेन मनुना तत ।२२

माया से नीचे के भाग का आच्छानन और विद्या से ऊर्ध्व भाग का आच्छादन करके फिर रज-तम इनका विधि के साथ पूजन करे ।१५। इस प्रकारसे पूजनकरके सौर नामक योग पीठकी पूजाकरनीचाहिये । सिंहासन पर मूलमन्त्रसे प्रतिमकी स्थापना करे ।१६। इसके अनन्तर मूलमन्त्रसे ही मूलाधारमें प्राण वायुको रोककर आसनपर बैठकर पिंगला नाड़ीके प्रभाव से आधार शक्ति को उठाना चाहिये ।१७। वहाँ मण्डल में विराजमान, प्रकाशयुक्त,सिंदूरके तुल्य अरुण देहके धारणकरने वाले भगवान्‌को पार्वती के सहित पुष्पांजलि समर्पितकरे ।१८। जो देव वहाँ रुद्राक्ष माला धारी पाश खट्वाङ्ग कपाल-अकुश-कमल-शख धारण करते हुए चार मुख और बारह नेत्र वाले हैं ।१९। उनके हृदय कमल के मध्यमें प्रथम प्रणव का उद्धार करे इसके पश्चात् ह्नां ह्नीं सः'इस मन्त्रसे प्रकाश शक्तिधारी सूर्य का आवाहन करता हूँ-यह कहकर पीछे 'नमः' लगा कर उनका आवाहन करना चाहिये ।२० २१। मुद्रादिक की स्थापना करके फिर मुद्रा बना कर दिखावें और समस्त अङ्गोंमें ह्नां ह्नीं ह्नू" इन बीज मन्त्रोंसे अन्तके मंत्र से न्याय करना चाहिये ।२२।

पञ्चोपचारांसंकल्प्य मूलेनाभ्यर्चयेत्त्रिधा ।
केशरेषु च पद्मस्य षडङ्गानि महेश्वरि ।२३
वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः ।
द्वितीयावरणे पूज्याञ्चतस्रो मूर्तय क्रमात् ।२४
पूर्वाद्युत्तरपर्यंतं दशमूलेषु पार्वति ।
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वश ।२५
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनःप्रिये ।
ईशानादिष सपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः ।२६
सोमँ कुजं बुधं जीवं कविं मंद तमस्तमः ।
समंततौ यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः ।२७
अथवा द्वादशादित्यान् द्वितीयावरणे यजेत् ।
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत् ।२८

पञ्च उपचार करके संकल्प करे और तीनबार पूजन करनाचाहिये। हे महेश्वरि ! पद्मके केशरोंमें तथा छैअङ्गोंमें यजनकरे ।२३।अग्नि,ईश्वर राक्षस और वायु आदिकी चारोंप्रतिमाओंका दूसरे आवरणमें क्रमसे यजन करनाचाहिए ।२४ हे पार्वति ! पूर्वसे आदि लेकर उत्तरपर्यन्त कमलदलके मूलमें आदित्य,भानु,रवि और भास्करकी क्रमके अनुसार अर्चनाकरे।२५। सूर्य ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु तथा ईशानादि का तीसरे आवरण में यजन करना चाहिये ।२६। सोम, मंगल, बुध और महाबुद्धिमान् देवगुरु बृहस्पति तेजस्वी शुक्र, शनैश्चर और महा भीषण राहु तथा केतु का पूर्वादि दलके मध्य से चारों ओर पूजन करे ।२७। अथवा द्वितीय आवरण में बारह आदित्यों का ही यजन करे और तृतीय आवरण में बारह राशियों का पूजन करे ।२८।

सप्तसागरगङ्गाश्च वहिरस्य समंततः ।
ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ।२९
ग्रामण्यश्च तथा यक्षांयातुधानांस्तथत हयान्।
सप्त छन्दोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत् ।३०

एवं त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरम् ।
विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्रं समाहितः ।३१
स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम्।
पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः ।३२
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः ।
अर्घ्यपात्रं समादाय भ्रूमध्यांतं समुद्धरेत् ।३३
ततो ब्रूयादिमं मंत्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम् ।
शृणु तच्च महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ।३४
सिंदूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सुपंकजाय ब्रह्मेंद्रनारायणकारणाय ।३५
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुंकुमाढयं सकुशं सपुष्पम् ।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ।३६

सातों समुद्र, भागीरथी गङ्गा, इसके बारह देवता तथा ऋषि, गधर्व, पन्नग, अप्सराओं के गण, ग्रामीणयक्ष यातुधान सप्तछदमें बालखिल्यऋषियों को लिखकर सबका यजन करे ।३०। इस रीतिसे तीनआवरण वाले दिवाकर देवका यजनकरके पीछे अत्यन्त सावधानीसे चतुरस्र (चौकोर) मण्डल की रचनाकरनी चाहिए ।३१। एकसेर जल आजाने वाले एक ताम्रपात्रको स्थापनाकरके कुंकुम आदि वस्तुओंसे सुगन्धित कियेहुए जलको उसमें भर देवे ।३२। इसके उपरान्त गन्धाक्षत पुष्पादिसे यजन करके जांघोंके बलपर पृथ्वीपर बैठकर अर्घ्यपात्रको बाहोंके मध्य तक लेजाकर भुक्तिमुक्तिप्रदान करने वाले सूर्यके मन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्घ्य देवे ।३३-३४। सिन्दूर के तुल्यवर्ण वाले सुन्दर मण्डलसे सुशोभित, हीरे आदिके आभूषणोंसेभूषण आपको मेरा नमस्कार है । कमलके समान नेत्रवाले पङ्कज भू (ब्रह्मा) इन्द्र और नारायणके भी कारण आपको नमस्कार है ।३५। लाल रङ्गके चूर्ण के समान अति सुन्दर रङ्गका जल, माला, कुंकुम, कुश, पुष्प ये सब हेमपात्र में रख कर मैं आपको अर्घ्य देता हूँ । हे भगवन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होव ।३६।

एवमुक्त्वा ततो दत्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्तये ।
नमस्कुर्यादिमं मंत्रं पठित्वा सुसमाहितः ।३७
नमः शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे ।
रुद्राय विष्णवे तुभ्य ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये ।३८
एवमुक्त्वा ·मस्कृत्य स्वासने समवस्थितः ।
ऋष्यादिकं पुन कृत्वाकर संशोध्य वारिणा ।३९
पुनश्च भस्म संमार्यं पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
न्यासजात प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये ।४०
पञ्चोपचारै सपूज्य शिरसा श्रीगुरुं बुधः ।
प्रणवं श्रीचतुर्थ्यंतं नमोऽन्तं प्रणमेत्ततः ।४१
पञ्चात्मकं बिन्दुयुतं पञ्चमस्वरसंयुतम् ।
तदेव बिन्दुसहितं पञ्चमस्वरवर्जितम् ।४२
पञ्चमस्वरसयुक्त मत्रीशं च सबिबिन्दुकम् ।
उद्धृत्य बिन्दुसंहितं संवर्तकमथोद्धरेत् ।४३

यह करतेहुए सूर्य मूर्ति भगवान् को अर्घ्य देवे और इस अगले मन्त्रको पढ़कर सावधानीकेसाथ नमस्कार करे ।३७। जगदम्बा भवानी तथा गणोंके समेत इस समस्त विश्वके आदि कारणभूत भगवान् शिवको नमस्कार है । रुद्र ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य स्वरूप आपको सादर नमस्कार है ।३८। इस तरहसे कहकर प्रणामकरे और अपने आसनपर संस्थित होकर ऋषि आदि का स्मरण कर जलसे हाथोंको शुद्धकरे ।३९। उपर्युक्त विधिसे पुनः भस्म को धारण करना चाहिए और भगवान् शिव की भक्तिके लिए अङ्गन्यास करन्यासादि करनेचाहिए।४०।मतिमान् साधकका कर्त्तव्य है कि नतमस्तक होकर विनम्र भावसे पञ्चोपचार द्वारा श्रीगुरुदेवका पूजन करे और 'श्री' पूर्वमें-चतुर्थी विभक्तिलगाकर अन्तमें 'नमः' योजितकर'ॐ गुरवेनमः' इस तरह अर्चनमें उच्चारणकरता हुआही पूजनकरे ४१। पंचवर्णात्मक बिन्दु-युक्त पंचमस्वर उकारसहित और वहीं विन्दुसमेत पंचमस्वरसेरहित पंचम स्वरके सहित बिन्दु सहित मन्त्रीशका उद्धार करके बिन्दु सहित अकारका उच्चारण करे ।४२।

एतैरेवं क्रमाद् बीजैरुद्धृतैः प्रणमेद् बुधः ।
भुजयोरूरुयुग्मे च गुरुं गणपतिं तथा ।४४
दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धाञ्जलिपुटः स्थितिः ।
ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात् ।४५
अपसर्पन्त्विति प्रोच्यं प्रणवं तदनंतरम् ।
अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु ।४६
उद्धृत्य विघ्नान्भूयिष्ठान् करतालत्रयेण तु ।
अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान् ।४७
निरुद्धप्राण आसीनो हंसमंत्रमनुस्मरन् ।
हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाडया समानयेत् ।४८
द्वादशांतः स्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे ।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम् ।४९

इस प्रकारसे क्रमशः इन बीजोंका उद्धारकरके क्रमसे भुजा और दोनों जघाओंमें देवोंकाप्रणाम ध्यान करे-भुजामें गुरु और गणपतिको और दोनों ऊरुओंमें दुर्गादेवी और क्षेत्रपालको प्रणामकरे ओर दोनों हाथजोड़कर 'ॐ अस्त्राय फट्'यह उच्चारणकर षडङ्गन्यासकरके अपने हाथोंको छैबार शुद्ध शुद्धकरे ।४४-४५। इसके अनन्तर 'अपसर्पन्तु इत्यादि मन्त्रको पढ़कर फिर प्रणवका उच्चारणकर और 'अस्त्राय फट्'कहकर भूमिमें तीन बार पार्ष्णि-घातकरे ।४६। भूमिमेंसे विघ्नोंका निवारणकरके तीनताली बजाकर अन्त-रिक्षमें जानेवाले विघ्नोंको देखकर तथा स्वर्गके विघ्नोंकोदेखकर उन्हें भी दूरकरे ।४७। प्राण वायुको रोकते हुए स्थितरहकर हंस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ हृदयमें स्थित जीव चैतन्यको सुषुम्ना नाड़ीकेद्वारा परमेश्वरसे मिला देवे ।४८। इसके उपरान्त द्वादश कमल हृदय में स्थित परमोज्ज्वल सहस्र दलोंसेयुक्त महापद्ममें चिदात्मक चन्द्रमण्डल में विराजमान चित्स्वरूप परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए ।४९।

शीपदाहप्लवान् कुर्याद्रेचकादिक्रमेण तु ।
सषोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंशद्गणनायुतैः ।५०

वाय्वग्निसलिलाद्यै स्तैः स्ववेदाद्यै रनुक्रमात् ।
प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलींब्रह्मरन्ध्रगाम् ।५१
आनीय द्वादशांतःस्थसहस्राराम्बुजोमरे ।
चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ।५२
संसिक्तायां यनौ भूयः शुद्धदेहुः सुभावनः ।
सोऽहमित्यवतीर्याथ स्वात्मान हृदयाम्बुजे ।५३
आत्मन्यावेश्य चात्मानममृत सृतिधारया ।
प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः ।५४
एकाग्रमानसो योगी विमृश्यातां च भातृकाम् ।
तुष्टितां प्रणवेनाथ न्यसेद् ब्राह्ये च मातृकाम् ।५५
पुनश्च संयतप्राणः कुर्यादृष्टयादिकं बुधः ।
शङ्करं संस्मरंश्चिते संन्यसेच्च विमत्सरः ।५६

अब भूत शुद्धि का प्रकार बतलाया जाता है रेचक आदि के क्रम से शोष और दाह दूरकरके सोलह चौसठ अथवा बत्तीस अक्षरादि वर्णोसेवायु अग्नि, जलके क्रमसे अकारादि वर्णवाले अपने वेदके मंत्रोसे सावधान होकर सविधि प्राणायाम करे और ब्रह्म रन्धृतक जाने वाली कुण्डलीको जगावे ।५०-५१। फिर जहाँसे चन्द्रमण्डलकी धारानिकलती है वहाँ द्वादश कमल और सहस्त्रकमलमें उसको लेजावे ।५२। उसमें शरीरका स्नानकराकर देह की शुद्धिकरे और अपने हृदयकमलमें वह मैं हूँ-ऐसीभव्य भावनाकरे ।५३। आत्माके द्वाराही आत्माका अमृतींकरण करके ससृमि धारसे विधिके साथ प्राण प्रतिष्ठाकरे और बहुतही सावधानरहे ।५४। इस रीतिसे योगी एकाग्र मनसे अन्तकी मात्राको प्रणवसे सत्रुटितकर उस पूर्वकथित मात्राको बहिर्भाग में स्थित करे ।५५। इसके पश्चात् प्राण और दृष्टि आदि को रोककर अपने चित्तमें भगवान् शङ्करका ध्यान करते हुए मात्सर्यका सर्वथा त्याग करके न्यास करना चहिये ।५६।

प्रणवस्य ऋष्टिर्ब्रह्मा देवि गायत्रीमीरितम् ।
छन्दोऽत्र देवताहं वं परमात्मा सदाशिव ।५७

अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते ।
मकारः कीलक प्रोक्त मोक्षार्थे विनियुज्यते ।५८
अंगुष्ठद्वयमारम्भ तलांतं परिमार्जयेत् ।
ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यास समारभेत् ।५९
दक्षहस्तस्थितांगुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम् ।
वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यस्तेपूर्ववत्क्रमात् ।६०
अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ।
नमोऽन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ ।६१
अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत् ।
ङेंतं नमोंतं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः ।६२
उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत् ।
मकारं रुद्रसहितं शिखायां नु प्रविन्यसेत् ।६३

इसके पश्चात् ऋषि आदिका स्मरण कर उन्हें प्रणामकरे । प्रणवका ब्रह्माऋषि, देवी गायत्री छन्द, सदाशिव परमात्मा देवता हैं ।५७। अकार बीज है-उकार शक्ति हे मकार कीलक हैं और मोक्षके लिये इसका प्रयोग किया जाता है ।५८। हे देवि ! दोनों अंगूठेलेकर हथेली तक शुद्धकरफिर 'ओम्'ऐसा उच्चारण करके करन्यास करना चाहिए ।५९। दाहिने हाथके अंगूठेसे प्रारम्भकरके बाँयेहाथकी कनिष्ठिका पर्यन्त दक्षिण हस्तकी तर्जनी आदिका क्रमसे न्यासकरे ।६०। ओंकार-उकार और बिन्दुकेसहित मकार सबके अन्तमें 'नमः -यह योजित हस्तमें करके हृदयमें न्यासकरना चाहिए ।६१। सर्वप्रथम अकारको उद्धारकर ब्रह्म आत्मा उच्चारणकरे । यथा-'अ ब्रह्मात्मने नमः'-इस रीतिसे चतुर्थी विभक्तिके एक बचनके अन्तमें 'नमः' लगाकर हृदयमें न्यासकरे अर्थात् स्पर्शकरे ।६२। उकार वा विष्णके सहित ध्यानकरके शिरोदेशमें विनियोग करे और रुद्रकेसहित मकारको शिखाके स्थानमें विनियोग करना चाहिए ।६३।

एवमुक्त्वा मुनिर्मंत्री कवचं नेत्रमस्तके ।
विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा ।६४

अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पञ्च ब्रह्मणि विन्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि विन्यसेत् ।६५
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात् ।
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि ।६६
चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ।
हृत्कंठांसेषु नाभो च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि ।६७
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथ क्रमम् ।
पश्चात्त्रयोदशकलाः पायुमेढ़ोरुजानुषु ।६८
जङ्घास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत्।
सद्यस्यापि कलाश्चाष्टो नेत्रेषु च यथाक्रमम् ।६९
कीर्तितास्ता कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयो ।
प्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः ।७०

इस तरह 'अं ब्रह्मात्मने नमः' इत्यादिके क्रमसे कहकर कवच आदि का विधानकरे । हे देवि ! अस्त्र मंत्रसे नेत्रोंमें सावधानहोकर चित्तलगाकर अङ्ग,मुख,कलाके भेदसे पाँचईशानदिका न्यासकरे । पूर्वोक्त ईशानादिका शिर,वदन हृदय,गुह्य और चरणोंमें न्यासकरना चाहिए ।६४-६५। ईशान की पांच कलाकोक्रमपूर्वक शरीरके पाँचोंस्थानोंमें न्यासकरना चाहिए फिर पूर्व आदि दिशाके योगसे चारोंमुखोंमें पूर्व आदि क्रमसे पुरुषकी चारोंकला स्थितकरे हृदय,कण्ठ,स्कन्ध,नाभिकोष, पीठ छातीइन स्थानोंसे अघोरकीआठ कला स्थित करे पीछे पायु जानुस्फिक् कूला कमर,पार्श्व भागोंमें वामदेवकी तेरहकलाकी भावनाकरनीचाहिए । सद्योजातकी आठकला यथाक्रम नेत्रोंमें कल्पित करे ।६४ ६५-६६ ६७। इन कलाओंकी कल्पना, हाथ, चरण,प्राण शिर और बाहुमें कल्पनाकरे ।६८ से ७०।

अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः ।
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत् ।७१
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयौ ।
पार्श्वतोदरजङ्घेष पादयो पृष्ठतस्तथा ।७२

इत्थं प्रणयविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ।
हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविबोधिनि ।।७३

दोनों बाहु कूर्पर (कुहनी) तथा मणिबन्ध,पार्श्व,उदर,जघा,पाद और पीठमें न्यास करे । इस तरह बुद्धिमान् साधक को अट्ठाईस कलाओं का न्यास करने के पश्चात् प्रणव का ध्यान करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष को इस रीति से प्रणव न्यास पहिले करके पीछे परमात्मा के बोध कराने वाले इस न्यास को करना चाहिये ।७१-७२-७३।

।। ध्यान, आवाहन अर्घ्य विधान पूर्वक शिवपूजा ।।

स्ववामे चतुरस्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत् ।१
औमित्यभ्यर्च्य तस्मिंस्तु शंखमस्त्रोपशोधितम् ।
स्थाप्य साधारक तं तु प्रणवेनार्चयेत्ततः ।
आपूर्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगंधिना ।२
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यः प्रणवेन च सप्तधा ।
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ।३
शखमुद्रां च पुरतश्चतुरस्र प्रकल्पयेत् ।
तदन्तरेऽर्द्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे ।४
षट्कोणं वृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत् ।
शभ्यर्त्य गंधपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः ।५
साधारमर्घ्यपात्रं च स्थात्य गंधादिनार्चयेत् ।
आपूर्य शुद्धतोयेने तस्मिन्पात्रे विनीःक्षिपेत् ।६
कुशाग्रण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि ।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं च वरानने ।७

श्री ईश्वरने कहा-अपने बांई तरफ चतुरस्त्र (चौकोर) मण्डल की रचना करे और ॐ का इस प्रकार से अर्चन करके शंख अस्त्र से अर्थात् अस्त्रमन्त्र से शोधित करना चाहिये ।१। उसको आधार पर स्थित करके प्रणव से यजन करे और चन्दनादिकी सुगन्ध वाले जलसे पूर्णकरदेवे ।२। प्रणवके द्वारा सातबार गन्धाक्षत पुष्पादिसे पूजन करनाचाहिए इस प्रकार

से अभिमन्त्रित करके उसमें धेनु-मुद्रा बनाकर दिखानी चाहिए ।१। इसके आगे चौकोन शंख मुद्रा की कल्पना करनी चाहिए । उसके अन्तर में अर्ध चन्द्र और उसके अन्तरमें त्रिकोण की कल्पना करे ।४। इसरीतिसे षट्-कोण मण्डलकी रचना करनी चाहिये । औरउसके मध्यमेंही केवलओंकार से गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा अर्चना करे ।५। इसके पश्चात् उस आधार वाले अर्घ्य पात्रको स्थापित करके गन्धाक्षतादि यजन करे और पवित्र जलसे उसे परिपूर्ण कर देवे ।६। हे वरावने ! कुशका अग्र भाग, अक्षत, यव, व्रीहि,तिल, घृत,श्वेत सरसोंके पुष्प और भस्म उनमें डाले ।७।

सद्योजातादिभिर्मन्त्रः षडंगैः प्रणवेन च ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै रभिमंत्र्य च वर्मणा ।८
अवगुंठयास्त्रमन्त्रेण सरक्षार्थं प्रदर्शयेत् ।
धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः ।९
स्वात्मानं गन्धपुष्यादिपूजोपकरणान्यपि ।
पद्मस्येशानदिक्पद्मं प्रणवोच्चारपूर्वकम् ।१०
गुर्वासिनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत् ।
गुरोमूर्तिं च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः ।११
प्रणवंगुं गुरुभ्योऽन्ते नमःप्रोच्यापि देशिकम् ।
समावाह्य ततो ध्यातेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम् ।१२
सुप्रसन्नमुखं सोम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।
वरादाभयहस्तं च द्विनेत्रं शिवविग्रहम् ।१३
एवं ध्यात्वा यजेद् गन्धपुष्पादिभिरणुक्रमात् ।
पद्मप्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यापनोपरिः ।१४
मूर्ति प्रकल्प्य तत्रैव गणानां त्वेति मंत्रतः ।
समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमानसः ।१५

सद्योजातादि मन्त्र षडङ्ग और प्रणवसे गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारोंके द्वारा अभिमन्त्रित करके फिर कवचमन्त्रसे अभिमन्त्रित करना चाहिये ।८। अस्त्र मन्त्रसे संयुक्त कर रक्षा के लिए धेनुमुद्राको उसे दिखाना चाहिये ।

अस्त्र-मन्त्रके द्वारा ही धेनुमुद्राका प्रोक्षण करे।९। अपने आत्मा में गन्धाक्षत पुष्पादि की पूजा सामग्रीमें अस्त्र-मन्त्रके द्वारा प्रोक्षण करे और कमल के ईशान के तरफ की दिशामें कमल में ओंकार के उच्चारण के साथ 'गुरु आसनाय नमः' इस तरह कहते हुए आसनकी कल्पना करे और गुरुदेव के उपदेश के अनुसार वहाँ पर श्रीगुरुदेव की प्रतिमा की कल्पना भी करनी चाहिए।१०। 'प्रणवगुं गुरुभ्यो नमः'—इस रीति से श्री गुरुदेव के प्रति कहकर दक्षिण दिशा के सामने स्थित होकर उनका आवाहन करके ध्यान करना चाहिए।१२। ध्यान करने का प्रकार बतलाते हैं—सुन्दर एवं प्रसन्न मुख है-स्फटिक मणिके तुल्य अति निर्मल वरदान करने वाले दोनों हाथहैं जो अभयका दान भी साथमें किया करते हैं। दो नेत्रोंसेयुक्तऐसे शिवके शरीर वाले गुरुदेव हैं।१३। इस उक्त प्रकारसे गुरुदेव का ध्यान करके क्रमशःगन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों से उनका अर्चन करे और उस पद्म के नैऋत्य दिशाकी ओर वाले पद्म पर स्थित गणेशके आसन पर 'गणानां त्वा' इत्यादि मन्त्रसे गणपतिकी मूर्ति की कल्पना कर देवता का वहाँ आवाहन करे तथा उनका ध्यान भी करना चाहिए।१४-१५।

रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम् ।
पाशांकुशेष्टदशनन्दधानङ्करपङ्कजः ।१६
गजाननं प्रभुं सर्वविघ्नौघघ्नमुपासितुः ।
एवं ध्यात्वा यजेद् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः।१७
कदलीनारिकेलाम्रफललड्डुकपूर्वकम् ।
नैवेद्यं च समर्प्याथ नमस्कुर्याद् गजाननम् ।१८
पद्मस्य वायुदिक्पद्म सकल्प्य स्कान्दमासनम्।
स्कन्दमूर्ति प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद् बुध ।१९
उच्चार्य्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमारकम्।
उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम् ।२०
चतुर्भुजमुदारांगं मुकुटादिविभूषितम् ।
वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम् ।२१

गणपति का लाल वर्ण है, महान् विशाल शरीर है जो कि समस्त आभरणोंसे युक्त हैं। पाश अंकुश इष्ट दर्शन कर कमलों में धारण किये हुए हैं। इसतरह सब विघ्नोंकेनाशकरनेवालेअस्त्ररूप प्रभु गणपतिकाध्यान करके फिर उनका षोड़श उपचारोसे विधिवत्पूजनकरनाचाहिए।१६-१७। कदलीफल,नूतन वस्तु, नारियल, आम, लड्डू आदि नैवेद्य सादर समर्पित करके श्रीगणेशजीको नमस्कार करे।१८। कमलके वायुकोण के पद्म में स्कन्द का आसनकल्पितकरे उस पर भगवान् स्कन्दकी प्रतिमाकीकल्पना करे, फिर स्कन्दका आवाहन करनाचाहिये।१९। स्कन्द गायत्रीका उच्चारणकर कुमारका आवाहन करे। भगवान् स्कन्द का ध्यान करेजो सूर्य के तुल्य कान्ति वालेहैं, मयूर ऊपर समारूढ़ हैं चार भुजा वाले, उदार शरीर, मुकुटआदि से विभूषितहैं, वर तथा अभयकेदान करने वाले हैं और शक्ति मुकुटके धारण करनेवालेहैं ऐसा ध्यान करेऔर गन्धाक्षत पुष्पादिसे सविधि अर्चनकरे। इसके पश्चात् पूर्वद्वारमेंस्थित अन्तःपुरके अधिप साक्षात् नंदीश्वरकीपूजाकरे जो कि सुवर्णतुल्य समस्त आभूषणोंसेविभूषितहै।२०-२१।

एवं ध्यात्वाऽथ गधाद्यैरुपचारैरनुक्रमात् ।
संपूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखामुपाश्रितम् ।२२
अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ।
चामीकराचलप्रख्य सर्वाभरणभूषितम् ।२३
बालेन्दुमुकुट सोम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ।
दीप्तमूलमृजीटंकहेमवेत्रधरं विभुम् ।२४
चद्रबिम्बाभवदन हरिवक्त्रमथापि वा ।
उत्तरस्यां तथातस्य भार्या च मरुतां सुताम् ।२५
सुयशां सुव्रतामम्बपादपण्डनतत्पराम् ।
संपूज्य विधिवद् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकः ।२६
ततः संप्रोक्षयेत्पद्मं सास्त्रशंखादबिदुभिः ।
कल्पयेदासन पश्चादाधारादि यथाक्रमम् ।२७
आधारशक्ति कल्याणीं श्यामध्यायेदधोभुवि ।
तस्याः पुरस्तादुत्कठमनन्तं कुंडलाकृतिम् ।२८

नन्दीश्वर बालचन्द्र का मुकुट धारन करने वाले, सौम्य मूर्ति, तीन नेत्र और चार भुजाये धारण करने वाले अतिशय दीप्तिसे युक्त हैं। शूल, भृगी, टक और सुवर्णके नेत्र धारण करनेवालेहैं तथा सर्वज्ञ हैं। नन्दीश्वर चन्द्रमण्डल एव सिंहकेसमान मुखवाले हैं। ऐसेनन्दीश्वरका पूजनकरे।२४। २५। उत्तर की ओर मरुतों की कन्या उनकी भार्या सुयशा नाम की है जो शोभन व्रत वाली पार्वतीके चरणकमलों में तत्परहो चन्दन पुष्पादि अनेक उपचारों से यजन करे।२६। इसके उपरान्त उसकमल को अस्त्र मन्त्रके सहित शंखके जलकी विन्दुओं से प्रोक्षणकरे और इसके पश्चात् आधारादि आसन की कल्पना करनी चाहिये।२७। आधार शक्ति श्याम स्वरूप कल्याणरूपकी नीचे भूमि में ध्यान करना चाहिये उसके आगे ऊर्ध्व कण्ठमें कुण्डलाकार सुशोभित भगवान् अनन्तका ध्यान करे।२८।

धवल पंचफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम् ।
तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम् ।२९
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यश्वर्यं च पदानि वै ।
आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः ।३०
अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात् ।
राजादर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत् ।३१
अधोर्ध्वच्छदनं पश्चात्कंदं नालं च कण्ठवान् ।
दलादिकं कर्णिकाञ्च विभाव्य क्रमशोऽर्चयेत् ।३२
दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः ।
रुद्रां वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिपरितः क्रमात् ।३३
कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः ।
वामाद्या एव पूर्वादि तदन्ते च मनोन्मनी ।३४

अनन्तदेव का श्वेत वर्ण वाला शरीर है जोकि पाँच फण-मण्डलसे युक्तहै और आकाश को चाटते हुए हैं। उनके निकटही में सिंहके समान आकार वाले, चार चरणोंसे युक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य के चरणों को आसन पर कल्पित करें। आग्नेयी आदि दिशा श्वेत, पीत, रक्त श्याम वर्णऔरअधर्मादिकों को पूर्व आदि दिशाके अनुक्रम सेपधारनेऔरराजावर्त

नामकी मणि (एक तरहके उपरत्नका नाम हैं) आदिकी इनके कलेवर में भावनाकरे ।२९ से ३१। इसके पश्चात् नीचे तथा ऊँचे में इनअग्नि का इसी रत्न से आच्छादनकी कल्पना करे फिर स्कन्ददेवका नाल कटक कमल के दल और कर्णिका की भावना करके क्रमशः यजन करना चाहिये ।३२। दलों में तोसिद्धिकी कल्पना करनी चाहिये, केशरों में शक्ति की कल्पना करे और पूर्वादि दिशाओंमें रुद्र तथा नामादि आठ शक्तियों की कल्पना करनी चाहिये ।३३। कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नवशक्तिकी कल्पना करे वामादि शक्तियों की पूर्वादि दिशा में कल्पना करे ।३४।

कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ।
कर्णिकोपरि वाह्नेय मण्डलं सौरमैन्दवम् ।३५
आत्मविद्या शिवाख्य चतत्वत्रयमतः परम् ।
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ।३६
परव्योमावकाशाख्यवित्तयाऽतीव भास्वरम् ।
परिकल्प्यासनं मूर्त्तं पुष्पविन्यासपूर्वकम् ।३७
आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि ।
ऊँथारादिचतुर्थ्यंत नाममँत्रं नमोन्तकम् ।३८
उच्चार्य पूज्येद्विद्वान्सर्वत्रैवं विधिकभः ।
अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पच ब्रह्माणि पूर्ववत् ।३९
यिन्यसेत्क्रमशौ मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः ।
आवाहयेततो देवं पुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः ।३०
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यारभ्यौमन्तमुच्चरन् ।
आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः ।४१
ब्रह्मरंध्रातमुच्चार्यं ध्यायेदोंकारगोचरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाश देवं निष्कलमक्षरम् ।४२

इसके पश्चात् मनोन्मनी शक्ति को कन्द में, शिवात्मक धर्म नालमें, शिवाश्रय ज्ञानकर्णिकाके ऊपर आग्नेयमण्डल चन्द्र सूर्यसम्बन्धिका ध्यान करना चाहिये ।३५। आत्मविद्या ज्ञान शिवब्रह्मादिक तीन तत्वइसमें परे

हैं । समस्तआसनों पर मुखके साथविचित्र उज्जवलपुष्प स्थित करे ।३६। और दहर विद्या से महा उज्जवल आसन मूर्त्तिकी कल्पना कर पुष्प रक्खे ।३७। आधार शक्तिसे आरम्भ करके शुद्धविद्यासे आसन पर्यन्त ओङ्कार सहितचतुर्थी विभक्तिसे अन्तमें "नमः"-यह लगाकरही सर्वत्र यजन करे । ।३८। विद्वान् साधको उचित है किसब स्थानों में विधि विधान के साथ पूजन करना चाहिये अङ्ग, मुख तथा कलाके भेदसेउन ईशान प्रभृति पञ्च ब्रह्मको पूर्वकी भाँति उनकी मूर्त्ति में सस्थित कर मुद्रा दिखावेइसके पश्चात पुष्पोंको अंजलि ग्रहण कराकर देवीका आवाहन करे ।३९-४०। 'सद्योजात प्रपद्यामि' यहाँसे आरम्भ करके शिवोंमें वस्तु सदा शिवोम्' यहाँ पर्यंत उच्चारण करे,मूलाधार से उठे हुए नाद बारहचक्रकी ग्रन्थि तोड़कर ब्रह्मरघ्रमे उच्चारण कर ओकार गोचर परमेश्वर का ध्यान ऐसा करना चाहिए किशुद्धस्फटिकमणि के तुल्य हैं, कला से रहित हैं और अक्षर उनका स्वरूप हैं ।४१-४२।

कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमय परम् ।
अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्प महत्तमम् ।४३
भक्तनामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ।४४
वेदसारं च विद्वद्‌भिरगोचरमिति श्रुतम् ।
आदिमध्यान्तरहित भेषज भवरोगिणाम् ।४५
समाहितेन मनसा ध्यात्वैबं परमेश्वरम् ।
आवाहनं स्थापनं च सन्निरोध निरीक्षणम् ।३६
नमस्कारं च कुर्वीत बद्‌ध्वा मुद्राःपृथक्पृथक्।
ध्यायेत्सदाशिव साक्षाद्देव सकलनिष्कलम् ।४७
शुद्धस्फटिककसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ।
विद्युद्वलयसंकाशं जटामुकटभूषितम् ।४८
शार्दूलचर्मवसनं किंचित्स्मितमुखाम्बुजम् ।
रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम् ।४९

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यायुधकरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।३०

परमेश्वरका स्वरूप परम दिव्य है और इन समस्त लोकों के कारण भूत है। समस्त देवोंसे परिपूर्ण रूप वाले हैं। पर अन्तर बाहरसर्वत्र व्याप्त रहने वाले और अणु स्वरूप तथा परम महान् भीहैं।भक्तोंको बिना प्रयत्न कियेही दिखाई देने वाले ईश्वर हैं। उनका स्वरूप विनाश रहित है और ब्रह्मा इन्द्र, विष्णु रुद्र आदि बड़े बड़े देवताओं को भी अगोचर अर्थात् न दिखलाई देने वाले हैं।४३ ४४। परमात्मा का स्वरूप वेदों का सारमय है और पूर्ण विद्वानों के द्वारा प्राप्त होने के योग्य होताहै। उनकास्वरूप ऐसा अद्भुत है जिसमें आदि और अन्त कुछ भी नहीं होता है। परमेश्वर का स्वरूप संसार के रोगियों के रोग निवारण करनेकेलिए भेषजके समान होता है।४५। ऐसे उक्त विलक्षण गुणोंसे युक्त परमात्माका ध्यानअत्यन्त सावधान मनसे करना चाहिय औरफिर उनका आवाहन,स्थापन,सन्निरोध दर्शन कर हाथों को जोड़कर नमस्कार करना चाहिये। पृथक् २ मुद्रायें बांधे और निष्फल साक्षात् देव शिवका ध्यानकरे।४६-४७। अब भगवान् शिव के ध्यान करनेके लिये उनके अट्ठीस कलामय स्वरूपका वर्णनकिया जाताहै जिससे उसी प्रकारका ध्यान किया जा सके। विशुद्धस्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ स्वरूप वाले, परम प्रसन्न रहने वाले,शीतलकांतिसे युक्त बिजली के वलय (कड़ा) के तुल्य और मस्तक पर जट जूटोंका मुकुटजैसा धारण करने वाले शिवका स्वरूप होता है।४८। शार्दूल के चर्म का वस्त्र ओढ़े हुए हास्यसे युक्त मुख कमल वाले, रक्त कमलके तुल्य हस्तएवं चरण वाले तथा अधरों वाले, समस्त सुलक्षणों से युक्त तथा सम्पूर्ण सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाले, श्रेष्ठ औरपरमदिव्य अनेकआयुधोंसे युक्त और दिव्य गन्धलेपको लगाने वाला भगवान् शिवका स्वरूप है।४९-५०।

पञ्चवक्त्रं दशभुजञ्च द्रखण्डशिखामणिम् ।
अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बाल र्कसदृशप्रभम् ।५१
त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम् ।
दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ।५२

भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृतत्रिलोचनम् ।
दंष्ट्राकराल दुष्प्रेक्ष्य स्फुरिताधारपल्लवम् ।५३
उत्तरं विद्रुमप्रख्य नीलालकविभूषितम् ।
सद्विलास्त्र त्रिनयनं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।५४
पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ।
चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मंदस्मितमनोहरम् ।५५
अतीवसौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम् ।५६

भगवान् शिवका स्वरूप पाँच मुख वाला, दश भुजाओं वाला, शिखा-मणिसे चन्द्रकलाको धारण करने और पूर्व दिशाकी ओर रहने वाला मुख परम सौम्य तथा सूर्य की कान्तिके तुल्यकांति वाला है ।५१। भगवान् शिव तीन नेत्र धारणकरनेवाले हैं और कमलके तुल्य शाभासेयुक्तहैं जिनके मस्तक पर सर्वदा बालचन्द्रमा विराजमान रहता है और दक्षिण दिशाकी ओर रहने वाला मुख नील मेघके तुल्यकांति वाला होता है ।५२। भगवान् शिवके स्वरूप का ध्यान ऐसा ही करना चाहिए कि उनकी भृकुटियाँ टेढ़ी रहतीहैं, अतिघोर रक्त नेत्र हैं, बहुत ही भीषण कराल दाढ़े हैं और सर्वदा सृष्टि का सँहार करने की मुद्रा में ओठों को फड़काते रहते हैं ।५३। उत्तर की ओर वाला मुख मूँगाकेतुल्यहैं, नीले वर्णवाली अलकें उस मुखके ऊपर शोभायमान हैं, परम सुन्दर विलाससे परिपूर्ण तीन नेत्र धारण करने वाले और मस्तक पर चन्द्रमाका अर्द्ध भाग शोभितहोरहाहै ।५४। भगवान् शिव के पाँच मुख बतलाये गयेहैं उनमें जो मुख पश्चिमदिशाकी ओरहै वह पूर्ण चन्द्र के समान कान्तिसे युक्त होताहैं, वहाँभी उसमुखमें तीन नेत्र विराज-मानहैं और अर्ध चन्द्र शोभा दे रहा है तथा सौम्य एवं मन्द हास्यसे परम मनोहर हैं ।५५। अब शिवके पञ्चम मुखका वर्णन कियाजाता है जिसका ध्यान ऐसा करना चाहिये कि वह स्फटिकके समान उज्ज्वल, चन्द्र रेखा से युक्त, अत्यन्त समुज्ज्वल एवं मनोहर, तीन नेत्र से युक्त है ।५६।

दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् ।५९

सर्वे पिनाकनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ।
निवृत्या जनुपर्यन्तमानाभि च प्रयिष्ठया ।५८
आकण्ठ विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया ।
तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा ।५९
पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलाश्चकविग्रहम् ।
ईषानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् ।६०
अधोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम् ।
सद्योजातं च तन्मूर्तिमष्टविंशत्कलामयम् ।६१
मातृकामयमीशान पञ्चब्रह्ममयं तथा ।
ऊँकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयं नथा ६२
पंचाक्षरमयं देवं षडक्षरमयं तथा ।
अगषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ।६३

दक्षिण भाग में शूल, परशु, वज्र और खग अग्नि के तुल्य उज्ज्वल है और बाँई ओर नाराच,घण्टा पाश औरअंकुशसे अग्नि केसमानउज्ज्वल हैं जो जानुतक निवृत्या नामकला और नाभिमें प्रतिष्ठित नाम की कला से कण्ठ पर्यन्त विद्या तथा ललाट पर्यन्त शान्ता नामवाली कला और इससे भी उपर शान्त्यतीत पराकलासे युक्त तथा पाँच स्थानमें व्यापक होने के कारण निवृत्ति आदि पंच कलामयशरीर है । ईशानदेव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ।५७-५७-६०। अघोर हृदय है, बामदेव गुह्य है, सद्योजात चरण है, इस तरह अड़तीस कलाओं से पूर्ण उसकी मूर्ति है ।५१। ईशान मातृका पूर्णहै तथा पंच ब्रह्ममयहै, ओंकारमय तथा हसन्यासमयहै ६२।यह देव पञ्चाक्षरमय है तथा षडक्षर है, छँ अंकमय और जातिसेयुक्त है।६३।

एवं ध्यात्वाथ मद्वामभागे त्वां च मनोन्मनीम् ।
गौरीमिमाय मन्त्रेण प्रणवा द्येन भक्तितः ।६४
आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारान्तमीश्वरी ।
ध्यायेत्ततस्त्वां देवेशि समाहितमना मुनिः ।६५
प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम ।

पूर्णाचन्द्राभवदनां नीलकुंचित्तमूर्द्धजाम् ।६६
नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
अतिवृत्तघनोत्तुंगास्निग्धपीनपयोधराम् ।६७
मनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतरूक्ष्मतराम्बराम् ।
सर्वाभरणसम्पन्नां ललाट तलकोज्ज्वलाम् ।६८
विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ।
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम् ।६९
हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षणे करे ।
दण्डवच्चामरं हस्त न्यस्यासीनां सुखासने ।
दण्डवच्चामर हस्तं न्यस्यासीनां सुखासने ।७०

मेरे बाम भागमें आप मनोन्मनी रूप गौरी को लेकर स्थित है, ऐसा ध्यान करना चाहिए और 'गौरीमिमाय'-इस मन्त्र तथा ओंकारके सहित ध्यान करे ।६४। हे ईश्वरि ! आवाहन करके पूर्व की भाँति नमस्कार करना चाहिए।६५। अब ध्यान करने का स्वरूप बतलाया जाता है, विकसित कमलके तुल्य कांतिमे पूर्ण विशाल नेत्रों वाली हैं, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली हैं, नीच वर्ण वाले कुंचित केशोंसे शोभित हैं ।६६। नील वर्णके कमलके दलके समान अर्ध चन्द्रको मस्तकपर धारण करने वाली हैं निस्तीर्ण, घने.ऊँचे और स्निग्धपयोधरोंसे सुशोभित हैं ।६७। सूक्ष्म कटि तट वाली तथा परिपुष्ट श्रोणिभाग वाली, पीत तथा बारीक वस्त्र धारण करने वाली हैं,समस्त आभूषणों को धारण करन वाली हैं तथा मस्तक पर उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए हैं ।६८। अद्भुत पुष्पों से सुशोभित केश पाप वाली हैं समस्त सद्गुणों स परिपूर्ण हैं, लज्जा के कारण अपना मुख नीचे की ओर करने वाली है ।६९। अपने दाहिने हाथ में क्रीड़ा के लिये सुवर्ण का कमल लियेहुएहैं और दूसरा हाथ सिंहासनपररक्खे हुए हैं ।७०।

एवं मां त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः ।
स्नापयेच्छ्खतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात् ।७१
भवे त्कवेनातिभव इति पाद्यं प्रकल्पयेत् ।

वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम् ।७२
ज्येष्टाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्र प्रकल्पयेत् ।
श्रेष्टाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ।७३
रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम् ।
कालाय नम इत्युक्त्वा गन्ध दद्यात्सुसंस्कृतम् ।७३
कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत् ।
बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत् ।७५
बलाय नम इत्युक्त्वा धूप दद्यात्प्रयत्नतः ।
बलप्रमथनायेति सुदीपं चैव दापयेत् ।७६
ब्रह्मभिश्च षडंगैश्च ततो मातृकया सह ।
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ।७७
मुद्राः प्रदर्शयेन्मह्यं तुभ्यश्च वरवर्णिनि ।
मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि ।७८
यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीलिंगं योजयेत्तदा ।
इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन ।७९
एवं ध्यानं पूजन च कृत्वा सम्यग्विधानतः ।
ममावरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः ।८०

हे देवि ! इस तरहसे अपना मन लगाकर हमारा और आपका ध्यान किया करताहै तथा शंख के जल से स्नान कराकर ओंकार सेप्रोक्षणकिया करता है वह सिद्ध होता है ।७१। 'भवे भवेनाति भवे'—इसमन्त्रसे पाद्य तथा 'वामदेवाय नमः'—यह उच्चारण करके आचमन देना चाहिये ।७२। 'ज्येष्ठाय नमः' इसको पढ़कर शुभ्र वस्त्र समर्पित करे । 'श्रेष्ठायनमः'-यह पढ़कर यज्ञोपवीत का समर्पण करना चाहिये ।७३। 'रुद्राय नमः'–इसको पढकर आचमन करावे और 'कालात नमः' इसको बोल कर सुन्दर गन्ध को देवे ।७४। 'कक्ष विकरणाय नमः'-यह मन्त्र पढ़कर अक्षत तथा बल-विकरणाय नमः'-यह बोलकर पुष्पों का समर्पण करना चाहिये ।७५। 'बलाय नमः'-यह उच्चारण करधूपका आघ्रापन करावे । बलप्रमथनाय

नमः'-यह पढ़कर दीप दर्शनकरावे ।७६। ब्रह्म षडङ्ग और मात्रा के सहित प्रणव शिव और शक्तिकेसहित क्रमसे मुझे और तुमको मुद्रादिखावे सर्व-प्रथम मेरा पूजनकरे इसकेअनन्तर तुम्हारे पूजनके लिए समस्तवस्तु अर्पित करे ।७७-७८। जिससमय तुम्हारी पूजाकरे तब स्त्री-लिंग लगादेनाचाहिए। केवल इतनाही भेदहोता है अन्यकुछ नहीं है है।७९। हे देवि ! इसीविधिसे पूर्ण विधानकेसाथ ध्यान तथा पूजन करके फिर बुद्धिमान् साधक भक्तको मेरी आवरण पूजाका विधान करना चाहिये ।८०।

। शिव के आठ नामों का अर्थ और लिंग-पूजा विधि ।

शिवो महेश्वरचैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।१
नामाष्टकमिदं नित्य शिवस्य प्रतिपादकम् ।
आद्यान्तपञ्चकं तत्र शांत्यतीताद्यमुक्रमात् ।२
सज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात् ।
उपाधधिनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते ।३
पदमेव हितं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ।
पदानां परिवृत्तिः स्यांमुच्यंते पदिनो यतः ।४
परिवृत्यन्तरे त्वेवं भूयस्तस्याप्युपाधिना ।
आत्मांतराभिधानं स्यातपदाद्यनामपञ्चकम् ।५
अन्यतु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः ।
त्रिविधोपाधिरचनाच्छिव एव तु वर्तते ।६
अनादिमलसश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः ।
अत्यंतपरिशुद्धा मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ।७

ईश्वरने कहा—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार वैद्य, सर्वत्र, परमात्मा ये मुख्य आठ परमात्मा शिव के नाम हैं, जो शिव के नित्य प्रतिपादक हैं । इसमें पितामह तक प्रथम पाँच नामोंमें शांत्यतीत के क्रमसे पाँच उपाधियों के ग्रहण करने से शिवादि की संज्ञा ग्रहण की है । उपाधि के निवृत्त होने यह संज्ञा भी निवृत्त हो जाती है ।१-२-३। पद

सत्य है और सदाशिवादि मूर्ति अनित्य हैं पदोंका ही विनिमय होता है इससे मूर्ति अ दि छूटजाती है ।४। पदान्तरकी प्राप्तिमें फिर उपाधिसे उस पदकी प्राप्तिहोती है । जो यह आदिका पञ्चक अन्य आत्माके जानने वाला होतो दूसरे तीननामोंका इसजगत्‌के उपादान कारणस्वरूप प्रकृति आदिके योगसे तीनतरहकी उपाधि कहनेके कारण ये तीननामभी शिव रूपही होते हैं ।५-६। अनादि मलके सङ्गके स्वभावसे जिस तरह जल स्वच्छ होता है तथा स्वादिष्ट होता है परन्तु वही जल अन्य देशमें प्राप्त हो जानेपर खारी तथा गदला होजाता है परन्तु जलका स्वभावतो निर्मलता युक्त ही होता है । इसीतरह उपाधिरहित होनेसे वह एकही निर्मल शिव है जो उपाधि से युक्तहोनेपर अनेकनाम धारण कर लेते हैं । अब उन नामोंका अर्थ बत-लाया जाता है,अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा होनेसे महादेवको शिव कहा करते हैं ।७

अथवा शेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः ।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शेवतष्वार्थवेदिभिः ।८
त्रयाविंशतितत्वेभ्यः पराः प्रकृतिरुच्यते ।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ।९
यद्वेदादो स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ।
वेदैकवेद्यं याथात्म्य द्वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् ।१०
स एव प्रकृतो लीना भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः ।
तस्य प्रकृतिलीतस्य यः परः स महेश्वरः ।११
तदधानप्रवृत्तित्वात्वकृतेः पुरुषस्य च ।
अथवा त्रिगुणं तत्व माये यमिदमव्ययम् ।१२
म यां तु प्रकृतं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
मायाविमाचकाऽनन्तो महेश्वरसमन्वयात् ।१३
रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्रावयति यः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ।१४
यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णिवन्द्र पूर्वकत् ।

अथवा समस्त कल्याणकारी गुणों के एक ही आधार होने के कारण

उन ईश्वरको शिव तत्वके ज्ञाता महात्मा लोग उन्हें शिव कहाकरते हैं।८। महेश्वर शब्दका अर्थ है तेईस तत्वों से परे प्रकृति है उस प्रकृतिसे भी परे पच्चीसवाँ पुरुष होता है।९। वाच्य तथा वाचक भाव से जिसको वेदके आदिमें ॐकार कहते है,वह वेदके द्वार ही जानने के योग्य है और आत्म-स्वरूप में वेदान्त में प्रतिष्ठित है।१०। वह प्रकृति में उसके भोग के लिये लीनरहता है। उस लीन होनेवाले पुरुषसे भी जो परे है वही महेश्वरकहा जाता है।११: प्रकृति और पुरुष की प्रकृति उसके ही अधीन है अथवा त्रिगुण तत्वकी कभी विनाश को प्राप्त न होने वाली यह माया है।१२। माया को ही प्रकृति और मायी को महेश्वर जानना चाहिये। महेश्वर को प्राप्तिसे हो नारायण मायासे मोक्षपद प्रदान किया करते है।१३। रुद्र यह नाम रुद्र अर्थात् दुःखको अथवा दुःखके कारणको दूरकर देने से ही इनको नाम 'रुद्र' यह पड़ गया है और इसीलिये ही इन्हें रुद्र कहा करते है,वही परम कारण शिव है।१४।

शिवतत्वादिभूम्यन्तं शरीरादि घटादि च ।
व्याव्याधितिष्ठति शिवस्तस्माद्विष्णुरुदाहृत ।१५
जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि ।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ।१६
निदानज्ञो तथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारक ।१७
संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्त्तक ।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्वार्थवेदिभिः ।१८
सर्वात्मा परमरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ।१९
इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम् ।
दत्वा पराङ्मुखाद्यञ्च पश्चादीशानमस्तके ।२०
पुनरभ्यर्च्य देवेशं प्रणवेन समाहितः ।
हस्तेन बद्धाञ्चलिना पूजापुष्पं प्रगृह्य च ।२१

शिवके तत्त्वादि पर्यन्त शरीर घटादि सबमें व्याप्त होकर स्थित होनेके कारणही शिवको विष्णुकहते हैं ।१५। इन समस्तजगत्के पितृस्वरूप ब्रह्मादिक और मूर्ति आत्मावाले होनेसे सबके पितामह वह पितामह कहलाते है ।१६। जिस प्रकार निदानका ज्ञाता वैद्य रोगको निवारण कर देने में समर्थ हुआकरता और उसका उपाय तथा औषधिका ज्ञानरखता है इसी प्रकारसे भोग मोक्षके प्रदान करनेके पूर्ण अधिकार रखनेसे सम्पूर्ण संसार के ईश्वर स्थूल कारणकी निवृत्ति करनेवाले शिवतत्त्वके ज्ञाताओंके द्वारा यह ससार वैद्य-इस नामसे कहे जाया करते है ।१७-१८। वे सर्वज्ञ प्रभृति समस्त गुण गणसे युक्त होकर सबके आत्मा-परे से भी परे अपने से और परमात्मा से भी परे होनेसे स्वयंशिव परमात्मा कहे जाते हैं ।१९। इस तरह प्रणवात्म अविनाशी महादेव के लिए प्रणाम करके अपने सन्मुख अर्घ्य देना चाहिए ।२०। फिर ईशानके मस्तकमें प्रणवसेयुक्त देवेशका पूजनकरे और अञ्जलि बाँधकर अर्चाके पुष्पों को करना चाहिये ।२१।

उन्मनांतं शिवं नीत्वावामनासापुटाध्वना ।
दैवीमुद्वास्य च ततो दक्षनासापुटाध्वना ।२२
शिव एवाहमस्मीति तदैक्यमनुभूय च ।
सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेत् धृदि ।२३
विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ।
शङ्खपात्रमंत्रांश्च हृदये विंयसेत्क्रमात् ।२४
निर्माल्यश्च समार्प्याथ चण्डेशायेशगोचरे ।
पुनश्च संयतप्राण ऋष्यादिकमथोच्चरेत् ।२५
एतच्छ्रुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम् ।
स्तुत्वा विविधैः स्तोत्रैर्देवं वेदार्थगर्भितैः ।२६
श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणामं परमेश्वरी ।
अतिप्रहृष्टहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः ।२७
अतिगुह्यमिदं विप्राः प्रचवार्थप्रकाशकम् ।
शिवज्ञानपरं ह्येतद् भवतामार्तिनाशनम् ।२८

फिर वाम नासा पुटके मार्ग में उन्मनी नाड़ी के अन्त तक ले जाकर अर्थात् शिवको लेजाकर और दक्षिण नासा पुट के मार्ग से जगदम्बा देवी को लेजाकर 'मैं स्वयं शिव हूँ'ऐसा अनुभव करे इसके पश्चात् हृदयमें समस्त आवरणके देवताओंका ध्यान करना चाहिए।२२-२३। इसके अनंतर क्रमसे विद्या और गुरुदेवका अर्चन करे फिर शङ्ख, अर्घ्यपात्र तथा अन्य मंत्रों को क्रमसे हृदयमें धारण करना चाहिये २४।इसके पश्चात् निर्माल्यको शिवके अर्थात् चण्डेशके आगे समर्पण करे और पश्चात् प्राणायाम करे तथा समस्त ऋषि आदिका स्मरण करना चाहिए।२५। व्यासजीने कहा–हे देवेशि ! इस प्रकार शिवके बचनोंको सुनकर शिवजीके वेदार्थसे भरे हुए अनेक तरह के स्तोत्रोंसे स्तुति करती हुई परमेश्वरी श्रीमच्चरण कमलमें बारम्बार प्रणाम करने लगीं। हे मुनिगण ! परमाह्लाद से मनमें पार्वती महाहर्षित हुई। ।२६-२७। हे ब्राह्मणो ! प्रणव के अर्थ का प्रकाश करने वाला यह परम गुप्त विधान है। यह भगवान् शिवका परम ज्ञान समस्त दुःखोंका विनाश करने वाला होता है।२८।

नान्दी श्राद्ध, ब्रह्मयज्ञादि विधि

साधु साधु महाभाग वामदेव मुनीश्वर।
त्वमतीव शिवे भक्तः शिवज्ञानवतां वरः ।१।
त्वया त्वविदितं किंचिन्नास्ति लोकेषु कुत्रचित्।
तथापि तव वक्ष्यामि लोकानुग्रहकारिणः।२।
लोकेस्मिन्पशवः सर्वे नानाशास्त्रविमाहिताः।
वञ्चिताः परमेशस्य माययाऽतिविचित्रया।३।
न जानन्ति परं साक्षात्प्रणवार्थं महेश्वरम्।
सगुण निर्गुणं ब्रह्म त्रिदेवजनक परम्।४।
दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रब्रवीमि ते।
सत्य सत्य पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः।५।
प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तितः।
श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च।६।

यतो वाचो निवर्त्तन्ते प्रप्राप्य मनसा सह।
आनन्द यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ।७।

स्कन्दजीने कहा हे वामदेव मुने ! हे महाभाग ! आप धन्य हैं,आप धन्य हैं,आप परम शिवभक्त और शिवज्ञान के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं ।१। त्रैलोक्य कुछभी ऐसा नहीं,जिसे आप जानते हों, फिरभी लोक कल्याणकी दृष्टिसे मैं आपके प्रतिकहता हूँ।२।इस लोक में मनुष्य अनेकभाँतिके शास्त्रों के कारण भ्रमित होगये हैं तथा वे परमेश्वरी की अद्भुत मायासे वंचित हैं ।३। वे साक्षात् प्रणवरूप शिवको नहीं जानते,जो शिव सगुण-निर्गुण ब्रह्म हैं तथा त्रिदेव जिनके द्वारा प्रकट हुए हैं ।४। मैं अपनी दक्षिणभुजा उठाकर सौगन्ध पूर्वक कहता हूँ कि यह नितान्त सत्य है,इसमें सन्देह नहीं है ।५। स्वयं भगवान्शङ्कर ने ही प्रणवके अर्थोंका वर्णन किया है,यह बात श्रुति, स्मृति,शास्त्र,पुराण और आगम ग्रन्थोंने भी कही हैं।६। जहाँ पहुँच कर मनयुक्त वाणी की भी निवृत्ति होजाती है, जिनके द्वारा आनन्दको प्राप्त विद्वान् किसी प्रकार भी भयभीत नहीं होता है ।७।

यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णिवन्द्र पूर्वकम् ।
सहभूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं संप्रसूयते ।८।
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन।
यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्य्यो न चन्द्रमाः ।९
यस्य भासा विभातीदञ्जगत्सर्वं समन्ततः।
सर्वैश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ।१०।
यो वै मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाशमध्यगः ।
सर्व्वव्यापी प्रकाशात्मा भासरूपी हि चिन्मयः ।११।
यस्य पुंसां परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा ।
निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ।१२।
तदीयं त्रिविध रूप स्थूलं सूक्ष्मं परं ततः।
ध्येय मुमुक्षुभिर्नित्यं क्रमतो योगिभिर्मुने ।१३।
निष्कलः सर्वदेवानामादिदेवः सनातनः ।
ज्ञानक्रियास्वभावो यः परमात्मेति गीयते ।१४।

जिससे ब्रह्मा,रुद्र,इन्द्र आदि यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट होता है,भूतेन्द्रिय सहित ये ही इस विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता हैं ।८। वह कहीं भी उत्पत्तिको प्राप्त नहीं होते,जिनमें विद्युत भास्कर तथा चन्द्रमाभी प्रकाश करने योग्य नहीं हैं ।९। जिसके आभा से ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशवान् होता है, सम्पूर्ण ऐश्वर्य उनसे प्राप्त होने से ही वे परमेश्वर कहे जाते हैं ।१०। जो आकाशके मध्य निवास करने वाले शिव मुमुक्षुओं द्वारा ध्यान किये जाते हैं, जो सबमें व्याप्त, प्रकाश रूप आत्मस्वरूप एव चिन्मय हैं ।११।जिसकी पराशक्ति का ज्ञान ज्ञानसे होता है वह निर्गुण निष्कल, सगुण एवं साक्षात् शिव हैं ।१२। जिनके स्थूल सूक्ष्म और परे यह तीन भेद हैं,हे मुनीश्वर ! मुमुक्षुजनों को उसी का ध्यान करना श्रेयकर है ।१३। यह सभी देवों के अधीश्वर, सनातन, कला-रहित तथा ज्ञान क्रिया के स्वभाव वाले होने से परमात्मा कहे जाते हैं ।१४।

तस्य देवाधिदेवस्य मूर्तिः साक्षात्सदाशिवः ।
पञ्चमन्त्रतनुर्देवः कलापञ्चकविग्रहः ।१५।
शुद्धस्फटिकसकाशः प्रसन्नः शीतलद्युतिः ।
पञ्चवक्त्रो दशभुजस्त्रिपञ्चनयन; प्रभुः ।१६।
ईशानमुकुटोपेतः पुरुषास्यः पुरातनः ।
अघोरहृदयो वामदेवगुह्यप्रदेशवान् ।१७।
सद्यपादश्च तन्मूर्तिः साक्षात्सकलनिष्कलः ।
सर्वज्ञत्वादिषट्शक्तिषडंगीकृतविग्रहः ।१८।
शब्दादिशक्तिस्फुरितहृत्पङ्कजविराजितः ।१९।
मन्त्रादिषड्विधार्थानामर्थोपन्यासमार्गतः ।
समष्टिव्यष्टिभावार्थं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ।२०।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यति ।
इत्युक्तं परमेशेन वेदमार्गप्रदर्शिना ।२१।

उनकी मूर्ति सदाशिवस्वरूप है,वे पंच मंत्रात्मक देह वाले और पचक

विग्रह वाले देवता हैं ।१५। स्वच्छ स्फटिक मणि जैसे प्रसन्न और शीतल कान्तिसे समन्न्त,पञ्चमुख पञ्चदश नयन तथा दश भुजा वाले हैं ।१६। वे मुक्तिसे सुशोभित ईशानदेव,पुरातन पुरुष अघोर हृदय,वामदेव गुह्यभूत तथा मूर्त-स्वरूप हैं ।१७। सद्यपाद तन्मूर्ति, सम्पूर्ण निष्फल मूर्ति.सर्वज्ञत्व आदि छः शक्ति और छः प्रकारसे देहको अङ्गीकृत करने वाले ।१८। अब्द आदि से स्फुरित,हृदय पद्ममें प्रतिष्ठित तथा अपनी शक्तिसे वामभागमें सुशोभित हैं ।१९।अब मैं मन्त्र आदिके छः प्रकार, उपन्यासके ढङ्ग तथा समष्टि-व्यष्टि के प्रणवात्मक अर्थको कहता हूँ, ध्यान से सुनो ।२०। श्रुति, स्मृति द्वारा बताये गये धर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है,वेद मार्ग दर्शक ईश्वर का यही कथन है ।२१।

वर्णाश्रमाचारपुण्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम् ।
तत्सायुज्यं गताः सर्वे बह्वो मुनिसत्तमाः ।२२।
ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाऽध्वना ।
पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिब्रवीत् ।२३।
एवं ऋणत्रयान्मुक्तो वानप्रस्थाश्रमं गतः ।
शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुर्विजितेन्द्रियः ।२४।
तपस्वी विजिताहारो यमाद्यं योगमभ्यसेत् ।
यथा दृढतरा बुद्धिरविचाल्या भवेत्तथा ।२५।
एव क्रमेण शुद्धात्मा सर्वकर्माणि विन्यसेत् ।
संन्यस्य सर्वकर्माणि ज्ञानपूजापरो भवेत् ।२६।
सा हि साक्षाच्छिवैक्येन जीवन्मुक्तिफलप्रदा ।
सर्वोत्तमा हि विज्ञेया निर्विकारा यतात्मनाम् ।७।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहकाम्यया ।
तव स्नेहहान्महाप्राज्ञ सावधानतया श्रृणु ।२८।

वर्णाश्रमके आचार रूप पुण्यके द्वारा प्रभु-पूजन करने से अनेकों मुनि-जन उनके सायुज्य पदको प्राप्त हो चुके हैं ।२२। श्रुतियों का कथन है कि ब्रह्मचर्यके द्वारा ऋषि,यज्ञ क्रियाके द्वारा देवता और स्ववाके द्वारा पितर

तृप्ति को प्राप्त हो गये हैं।२३। इस प्रकार प्रथम तीनों ऋणसे उऋण होकर वानप्रस्थआश्रम ग्रहण करे और शीत,उष्णता,सुख दुःख आदि सहन करे तथा जितेन्द्रिय रहे।२४। तपस्वी,आहार पर संशय रखने वाला, मय-नियम पालन पूर्वक योगाभ्यास करने वाला तथा बुद्धि को दृढ़ और निश्चल रखने वाला बने।२५। शुद्धिपूर्वक सभी कर्म करे और सम्पूर्ण काम्य कर्मों का त्याग कर दे और ज्ञानमय पूजन में तत्पर होजाय।२६। यह ज्ञानमय पूजन शिवजी से सङ्गति तथा जीवनसे मुक्तिप्रदान करने वाला है,यह सर्वोत्तम विकार रहित यतियों के लिए ज्ञातव्य है।२७। हे महाप्राज्ञ ! आपके स्नेहवश तथा लोक कल्याणार्थ ही उसका वर्णन करता हूँ उसे सावधानी से श्रवण करो।२८।

सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम् ।
आचार्यमुपगच्छेत्स यतिर्मतिमतां वरम् ।२९।
तत्समीपमुब्रज्यं यथाविधि विचक्षणः ।
दीर्घदण्डप्रणामाद्यस्तोषयेद्यत्नतः सुधीः ।३०।
योगुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुस्मृतः ।
इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत् ।३१।
लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां वा दशम्यां वा विधानतः ।३२।
प्रातः स्नात्वाः विशुद्धात्मा कृतनित्यक्रियः सुधीः ।
गुरुमाहूय विधिना नाँदीश्राद्धं समारभेत् ।३३।
विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञावन्तः प्रकीर्तिताः ।
देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेशाः कथितास्त्रयः ।३४।
ऋषिधाद्धे तु सम्प्राक्ता देवक्षेत्रमनुष्यजाः ।
देवश्राद्धे वसुरुद्रादित्यास्तु सम्प्रकीर्त्तिताः ।३५।

सभी शास्त्रों के तत्वार्थ ज्ञाता,वेदान्त के पारगामी मेधावी आचार्य के निकट बुद्धिमान् यतीजाय।२९। और उन्हें दण्डवत् प्रणामों में भले प्रकार सन्तुष्ट करे।३०। जो गुरु है, वह शिव है और जो शिव है वह गुरु है इस

प्रकार मनमें विचारे उस विचार को गुरु के प्रति निवेदन करे ।३१। फिर गुरु की आज्ञा से बारह दिन तक तथा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी या दशमीको विधिवत् पयोव्रतकरे ।३२। स्नान करके प्रातः कृत्यकरे और शुद्ध होने पर विधिसे गुरु को बुलाकर नान्दी श्राद्ध करना चाहिए ।३३। हे ऋषि ! उसमें विश्वदेवा सत्यवसु संज्ञक हैं। श्राद्धमें ब्रह्मा विष्णु,महेश वर्णन किये हैं ।३४।श्राद्धमें देवक्षेत्र मनुष्य तथा द्रव्य श्राद्ध में वसु,रुद्र,और आदित्यकहे हैं ३५।

चत्वारो मानुषश्राद्धे सनकाद्या मुनीश्वराः ।
भूतश्राद्धे पञ्च महाभूतानि च ततः परम् ।३६।
चक्षुरादीन्द्रियग्रामो भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
पितृश्राद्धे पिता तस्य पिता तस्य पिता त्रयः ।३७।
पितृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही ।
आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ ।६६।
प्रपितामहनामा च सपत्नीकाः प्रकीर्त्तिताः ।
मातामहात्मकश्राद्धे त्रयो मातामहादयः ।३९।
प्रतिश्राद्धं ब्राह्मणानां युग्मं कृत्वोपकल्पितान् ।
आहूय पादौ प्रक्षाल्य स्वयमाचम्य यत्नतः ।४०।
समस्तसपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः ।४१।
अपाद्वनध्वान्तसहस्रभानव समीहितार्थर्पणकामधेनवः ।
समस्ततीर्थाबुपवित्रमूर्त्तयो रक्षतु मां ब्राह्मणपादपांसवः।४२

मनुष्य श्राद्धमें चार सनकादि तथा भूताश्राद्ध में पच महाभूत कैसे हैं। ।३६। चक्षु आदि इन्द्रियाँ और जरायुज अण्डज स्वेदज,उद्भिज्ज यह चार प्रकारके प्राणी कहे हैं, पितर श्राद्धमें पिता,पितामह और प्रपितामह कहे हैं ।३७। मातृ श्राद्धमें माता,पितामही तथा प्रपितामही और आत्म श्राद्ध में पिता और पितामह कहे हैं।३८।प्रपितामह सपत्नीक तथा मातामह (नाना) के श्राद्ध में मातामह, तथा उनके पिता (परनाना) कहे हैं ।३९। प्रत्येक श्राद्ध में दो ब्राह्मणोंको भोजन करावे,उनकोबुलाकर स्वयं आचमनकर पवित्र

हो और उनके चरण धोवे ।४०। और कहे कि सम्पूर्ण सम्पत्ति की प्राप्ति के कारणरूप,विपत्ति-नाशके लिए अग्निरूप तथा अपार भवसागरसे पार होने के लिए सेतुस्वरूप ब्राह्मणों की चरणरज मुझे पवित्र बनावे।४१।विपत्ति रूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य, काम्य पदार्थ प्राप्त कराने को कामधेनु तथा सम्पूर्ण तीर्थों के जल की पवित्र मूर्ति ब्राह्मणों की पग-रज मेरी रक्षक बने ।४२।

इति जप्त्वा नमस्कृत्य साष्टांग भुवि दण्डवत् ।
स्थित्वा तु प्राङ्मुखः शम्भोः पादाब्जयुगलं स्मरन् ।४३।
सपवित्रकरः शुद्ध उपवीती दृढासनः ।
प्राणायामत्रयं कुर्याच्छ्रुत्वा तिथ्यादिक पुनः ।४४।
मत्सन्यत्सांगभूत यद्विश्वेदेवादिकं तथा ।
श्राद्धमष्टविधं मातामहान्तं पार्गणेन वै ।४५।
विधानेन करिष्यामि युष्मदाज्ञापुरः सरम् ।
एवं विधाय संकल्पं दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ।४६।
उपस्पृश्याप उत्थाय वरणक्रममारभेत् ।
पवित्रपाणिः संस्पृश्य वाणीं ब्राह्मणयोर्वदेत् ।४७।
विश्वेदेवार्थ इत्यादि भयद्भूयां क्षण इत्यपि ।४८।
प्रसादनीय इत्यन्त सर्वत्रैवं विधिक्रमः ।
एवं समाप्य वरणं मण्डलानि प्रकल्पयेत् ।४९।

इस प्रकार जपकर, पृथ्वीमें दण्डवत् होकर प्रणाम करे और शिवजी के सम्मुख पूर्वाभिमुख खड़ा होकर उनके चरणों का ध्यान करे ।४३। और पवित्र हाथकर शुद्ध होकर नवीन यज्ञोपवीत धारण करे,दृढ़ चित्तसे आसन ग्रहण करे और तीनबार प्राणायामकर,तिथ्यादि सुने ।४४।मेरे संन्यास का अङ्गभूत वैश्वदेवादि कर्म क्रम पूर्वक पूर्वोक्त विधि से देवश्राद्धादि भेद के क्रम से नानातक पार्वणश्राद्ध ।४५। विधिवत् आपके आदेशानुसार करूँगा, इस प्रकार सङ्कल्पकर उत्तरकी ओर कुशों को छोड़दे ।४६। फिर ब्राह्मणों का हाथ स्पर्श करता हुआ वरण का क्रम आरम्भ करे तथा पवित्रीको स्पर्श

कर ब्राह्मणों से कहे ।४७। मैंने विश्वदेवा के हेतु आपका वरण किया है, इसे आप क्षण भरको स्वीकार करें ।४८। सबको इस प्रकार प्रसन्न करे, वरण का क्रम सर्वत्र यही है,इसे समाप्त करके मण्डल बनावे ।४९।

उदगारभ्य दश च कृत्वाऽभ्यर्चनमक्षतैः ।
तेषु क्रमेण संस्थाप्य ब्राह्मणान्पादयोः पुनः ।५०।
विश्वेदेवादिनामानि स सम्बोधनमुच्चरेत् ।
इदं वः पाद्यमिति सकुशपुष्पाक्षतोदकैः ।५१।
पाद्यं दत्वा स्वयमपि क्षालितांघ्रिरुदङ्मुखः ।
आचम्य युग्मक्लृप्तांस्तानासनेषूपवेश्य च ।५२।
विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्येदमासनम् ।
इति दर्भासन दत्वा दर्भपाणिः स्वयं स्थितः ।५३।
अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थ इत्यपि ।
भवद्भयां क्षण इत्युक्त्वा क्रियतामिति संवदेत् ।५४।
प्राप्नुतामिति सम्प्रोच्य भवन्ताविति संवदेत् ।
वदेतां प्राप्नुयावेति तौ च ब्राह्मणपुंगवौ ।५५।
सम्पूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्विति तान्प्रति ।
भवन्तोऽनुगृह्णंत्विति प्रार्थयेद् द्विजपुंगवान् ।५६।

उत्तर से प्रारम्भ कर दशों मण्डलों का पूजन अक्षत से करे, ब्राह्मणों को उन मण्डलों पर बैठाकर अक्षत से उनके चरण पूजे ।५०। विश्वदेवा रूप ब्राह्मणों से कहे कि आपके लिये यह पाद्य है,इस प्रकार कर, कुश पुष्प, अक्षत और जलदे ।५१। फिर पाद्य देकर मुख धुलावे और उत्तराभिमुख बैठाकर आचमन करावे तथा बैठने के लिए श्रेष्ठ आसनदे ।५२। विश्वेदेवा स्वरूप ब्राह्मणों के लिये यह आसन है, यह कहकर कुशका आसन दे और स्वयं भी हाथमें कुश लेकर बैठे ।५३। और कहे कि इस नान्दी मुख श्राद्ध में आप विश्व देवों के निमित्त क्षणमात्र स्थित हों।५४।आप दोनों स्वीकार करें और दोनों ब्राह्मण भी कहें कि हम दोनों स्वीकार करते है ।५५। तुम्हारे सङ्कल्प की पूर्ण रूपेण सिद्धि हो, तब ब्राह्मणों से निवेदन करे कि आप अनुग्रह करें ।५६।

तत्रः शुद्धकदल्यादिपात्रेषु क्षालितेषु च ।
अन्नादिभोज्यद्रव्याणि दत्वा दर्भैः पृथक्पृथक् ।५७
परिस्तीर्य स्वयं तत्र पषिच्योदकेन च ।
हस्ताभ्यामवलम्ब्याथ पात्रं प्रत्येकमादरात् ।५८
पृथिवी ते पात्रमित्यादि कृत्वा सत्र व्यवस्थितान् ।
देवादींश्च चतुर्थ्यन्तानन्नूद्याक्षतसंयुतान् ।५९
उदग्गृहीत्वा स्वाहेति देवार्थेऽन्न यजेत्पुनः ।
न ममेति वदेदन्ते सर्वत्राय विधिक्रमः ।६०
यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्य नामजपादपि ।
न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णं त वन्दे साम्बमीश्वरम् ।६१
ज्ञात जप्त्वा ब्रूयान्मया कृतमिदं पुनः ।
नान्दीमुखश्राद्धमिति यथोक्तं व वदेत्ततः ।५२
अस्त्विति ब्रूतेति च तान्प्रसाद्य द्विज पुङ्गवान् ।
विसृज्य स्वकरस्थोदं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।६३

फिर केलेकेस्वच्छ पत्तों को धोकर बनाये हुए अन्नादि पदार्थ परोसे और अगल२ कुछ बिछाकर ।५७। तथा जलसे छिड़ककर प्रत्येक पात्र को हाथ में उठावे ।५८। और सादर उन पात्रों को पृथिवी पर रखकर 'पृथिवातेपात्रम्' का उच्चारण कर देवता आदिकी चतुर्थी विभक्ति का उच्चारण करे ।५९। फिर अक्षत सहित जल लेकर 'देवाय स्वाहा' कह कर उस अन्न को छोड़दे और अन्त में 'इदं न मम'कहे, ऐसा सर्वत्र करना चाहिए ।६०। जिन महेश्वर के पादपद्म के स्मरण मात्र से और जिनके नाम जपके द्वारा न्यून कर्म भी अपूर्ण नहीं रहता, उन्हें पार्वतीजीसहित नमस्कार करताहूँ ।६१। ऐसा कहकर उनसे कहे कि मैं जो कुछ कर सका हूँ, उसे इस नांदी मुख श्राद्ध के द्वारा आप यथा-योग्य कहें ।६२। ब्राह्मण 'ऐसा ही हो कहें तब उन विप्रवरों को प्रसन्न कर अपने हाथसे जल छोड़े और पृथिवी में लेटकर दण्डवत् करे ।६३।

उथात्य च ततो ब्रूयादमृतं भवतु द्विजान् ।
प्रार्थयेच्च परं प्रीत्या कृतांजलिरुदोरधीः ।६४

श्रीरुद्र चमकं सूक्तं पौरुष च यथाविधि ।
चित्ते भदाशिवं ध्यात्वा जपेद्ब्रह्माणि पञ्च च ।६५
भोजनान्ते रुद्रसूक्तं क्षमापय्य द्विजान्पुनः ।
तन्त्रमन्त्रे च ततो दद्यादुक्तरापोशन पुरः ।६६
प्रक्षालितांघ्रिराचम्य पिण्डस्थानं व्रजेततः ।
आसीनः प्राङ्‌मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ।६७
नान्दीमुखोक्तश्रांद्धांगं करिष्ये पिंडदानकम् ।
इति संकल्प्य दक्षाणि समारभ्यादकान्तिकम्।६८
नव रेखाः समालिख्य प्रागग्रान्ष्टादश क्रमात्।
सस्तीर्य दर्भान्दिक्षादिस्थानपञ्चकम् ।६९
तूष्णी दद्यात्साक्षतीदं त्रिषु स्थानेषु च क्रमात् ।
स्थानेष्वन्येषु मातृषु माज्र्ज यंस्तास्ततः परम् ।७०

और फिरउठकरकहे कि ब्रम्ह्मणोंको यह अमृत स्वरूप हो और उदार बुद्धिपूर्वक अत्यन्त प्रीतिसहित हाथ जोड़ता हुआ प्रार्थना करे ।६४। ग्यारह अनुवाक 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि पुरुषसूक्तको था ईशान आदि ब्रह्मा के पाँच नामोंको लेता हुआ शिवजीका ध्यान करे ।६५। भोजन के अन्त में रुद्र को समाप्त करे और 'अमृतापिधानमसीति' मन्त्रसे उनब्राह्मणोंको जलदे ।६६। फिर चरण धोकर आचमन करे और पिंड-स्थानमें स्वयंजाकर पूर्वाभिमुख होकर मौन बैठे तथा तीन प्राणायाम करे।६७। और कहेकि अब मैं नांदी मुख श्राद्धका अङ्गरूप पिंडदान करूंगा, इस प्रकार सङ्कल्प पूर्वकदक्षिणा-दि से आरम्भ करउत्तर पर्यन्त ।६८।नौ रेखा खींचे और उनके आगेकमसे देवादिके पांच स्थानमें दो २ कुशविछावे ।६९। फिर मौन होकर क्रम से तीनस्थानों में अक्षर सहित जल दे, दूसरे स्थान में माताओं का मार्जन करे ।७०।

आपेति पितरः पश्चात्साक्षतोदं समर्च्या च ।
दद्यात्ता कृमेर्णव देवादिस्थानपञ्चके ।७१
तत्तद्दे व विनामानि चतुर्थ्यन्तान्युदीर्य्या च ।

स्वगृह्योक्तेन मार्गेण दद्यात्पिण्डान्पृथक् पृथक् ।
दद्यादिद साक्षत च पितृसाद्‌गुण्यहेतवे ।७३
ध्यायेत्सदाशिव देवं हृदयाम्भोजमध्यत ।
तत्पादतपद्मस्मरणादिति श्लोकं पठन् पुन ।७४
नमस्कृत्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च स्वशक्तितः ।
दत्वा क्षमापय्य च तान्विसृज्य च तत क्रमात् ।७५
पिण्डानुत्सृज्य गोग्रास दद्यान्नोचेज्जले क्षिपेत् ।
पुण्याहवाचन कृत्वा भुजीत स्वजनैः सह ।७६
अन्येद्युः प्रातरुत्थाय कृतनित्यक्रियः सुधीः ।
उपोष्य क्षौरकर्मादि कक्षोपस्थविवर्जितम् ।७७

'यहाँ पितर स्थित हों' इस प्रकार कहकर अक्षत और जल दे, इसी प्रकार देवताओं के पाँच स्थानों में करे ।७१। फिर उन-उन देवताओं के चतुर्थ्यन्त नाम लेकर उन पाँच स्थानों में प्रत्येक को पिंडदे ।७२। पितरादि पचक स्थानमें मौनपूर्वक जल अक्षत अर्पणकरे और अपने गृह्य-सूत्रके अनु-सार पिंडदानकरे और श्रेष्ठ गुणार्थ जल अक्षतदे ।७३ फिर हृदयकमलके मध्यमें शिवजीका ध्यानकरे और यत्पादपद्म स्मरणात्, इत्यादि श्लोकका उच्चारण करे ।७४। और ब्राह्मणों को नमस्कार पूर्वक शक्ति के अनुसार दक्षिणा दे और क्षमाकराकर उनको विदाकरे ।७५। फिर पिंडको छोड़कर गोग्रास दे या जलमें छोड़ दे फिर पुण्याहवाचन कर इष्टजनोंके साथ स्वयं भी भोजनकरे ।७६। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्मकरके बगल और उपस्थ के बालों को छोड़कर-क्षौर कर्म करावे ।७७।

केशश्मश्रुनखानेव कर्मविधि विसृज्य च ।
समष्टिकेशान्विधिवत्कारयित्वा विधानतः ।७८
स्नात्वा धौतपटः शुद्धो द्विराचम्याथ वाग्यत ।
भस्म सधार्य विधिना कृत्वा पुण्याहवाचनम् ।७९
तेन संप्रोक्ष्य संप्राप्य शुद्धदेहस्वभावतः ।
होमद्रव्यार्थमाचार्यां दक्षिणार्थं विहाय च ।८०

द्रव्यजात महेशाय द्विजेभ्यश्च विशेषतः ।
भक्तेभ्यश्च प्रदायाथ शिवाय गुरुरूपिणे ।८१
वस्त्रादिदक्षिणां दत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
धौतकौपीनवसनं दण्डाद्यं क्षालितं भुवि ।८२
आदाय होमद्रव्याणि समिधादीनि च क्रमात् ।
समुद्रतीरे नद्यां वा पर्वते वा शिवालये ।८३
अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य स्थानमुत्तमम् ।
स्थित्वाचम्य ततः पूर्वं कृत्वा मानसमञ्जरीम् ।८४

क्षौर कर्म में उपस्थ के बालों को छोड़कर केश, दाढ़ी, मूंछ, नाखून आदि को कटवावे, यह कर्म-विधि से करे ।७८। स्नानकर, धोती धारण करे और दो आचमन कर विधि सहित भस्म धारण करे और पुण्यावाचन करावे ।७९। फिर प्रोक्षण करे, शुद्ध देहसे होम द्रव्य तथा आचार्य दक्षिणा के निमित्त द्रव्यकोछोड़े ।८०। तथा शिवजी, ब्राह्मणों और भक्तोंकेहेतु सम्पूर्ण द्रव्यदेकर गुरुरूप शंकरके लिए ।८१। वस्त्र दक्षिणा आदि दे और प्रणाम पूर्वक पृथिवीमें दण्डवत्करे तथा धोयेहुये धागा, कौपीन, वस्त्र, दण्डादि लेकर ।८२। होम द्रव्य और समिधा आदि को लेकर समुद्र तट पर, नदी तट पर अथवा पर्वत या शिवालय में ।८३। अथवा वन, गोष्ठ आदि श्रेष्ठ स्थान का विचार कर आचमन करे और मानस जप रूपी मंजरी करे ।८४।

ब्राह्मोंकारसहित नमो ब्राह्मणा इत्यपि ।
जपित्वा त्रिस्ततो ब्रूयादग्निमीले पुरोहितम्।८५
अथ महाव्रतमिति अग्निर्वै देवनामतः ।
तथैतस्य समाम्नायमिषे त्वोर्ज्जेत्वा वेति तत् ।८६
अग्न आयाहि वीयते शन्नो देवीरभीष्टये ।
पश्चात्प्रोच्य मयरसतजभनलगैः सह ।८७
संमितं च ततः पञ्चसंवत्सरमयं ततः ।
समाम्नायः समाम्नातः अथ शिक्षं वदेत्पुन ।८८
अथातो धर्मजिज्ञासेत्युच्चार्यपुनरंजसाः ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा देवादीनपि संजपेत् ।८९
ब्रह्माणमिन्द्रं सूर्यञ्च सोमं चैव प्रजापतिम् ।
आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मान मतः परम् ।९०
परमात्मानमपि च प्रणवाद्यं नमोंतकम् ।
चतुर्थ्यन्तं जपित्वा सक्तुमुष्टिं प्रगृह्य च ।९१

फिर ओंकार सहित ब्रह्ममन्त्र का और 'नमो ब्रह्मणे'को तीनबार जप करे 'अग्निमीडे पुरोहितम्'कहे ।८५। फिर 'महाव्रतमिति' और 'अग्निर्देवानामवमः तथा इसका समाम्नाय 'इषेत्वोर्जेत्वा' ।८६। 'अग्नआयाहिवीतये' और 'शन्नोदेवी०'इत्यादि कहकर म य र स त ज भ न ल ग का उच्चारण करे ।८७। इनका समाम्नाय पांच संवत्सरमय कहा है 'मैं फिर कहूँगा' यह कहकर वृद्धिरादैच्'सूत्रका उच्चारणकरे ।८८। फिर 'अथातो धर्म जिज्ञासा' इस दर्शन सूत्रका उच्चारणकर पुनः 'ब्रह्मजिज्ञासा' यत्रका उच्चारण करे अथा केवल वेदमन्त्रोंका उच्चारणकरे ।८९। ब्रह्मा-इन्द्र-सोम-सूर्य-प्रजापति आत्मा-अन्तरात्मा और ज्ञानात्मा ।९०। तथा परमात्माका उच्चारण आदि में प्रणव और अन्तमें नमः संयुक्तकर चतुर्थी विभक्तियुक्त उच्चारण करके एक मुट्ठी सत्तू ग्रहण करे ।९१।

प्राश्याथ प्रणवेनैव द्विराचम्याथ संस्पृशेत ।
नाभिमन्त्रं क्ष्वयमाण प्रणवाद्यान्नमोन्तकान् ।९२
आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मान पर पुनः ।
आत्मानं च समुच्चार्य प्रजापतिमतः परम् ।९३
स्वाहांतान्प्रजपेत्पश्चात्पयोदधिघृतं पृथक् ।
त्रिवारं प्रणवेनैव प्राश्याचम्य द्विधाः पुनः ।९४
प्रागास्य उपविश्याथ दृढचित्तः स्थिरासन ।
यथोक्तविधिना सम्यक् प्राणायामत्रयञ्चरेत् ।९५

भक्षण करके प्रणव सहित दो बार सत्तू का आचमन करे और वक्ष्यमाण मन्त्रों से नाभि स्पर्श करे, उन मन्त्रों के आदि में प्रणव अन्त में नमः संयुक्त करे ।९२। फिर आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा,

निज आत्मा और प्रजापतिका उच्चारणकरे।९३। अन्तमें स्वाहा लगाकर जपकरे,फिर दूध, दही और घृतको पृथक्-पृथक् तीन वार प्रणव उच्चारण पूर्वक चाटकर दोबार आचमनकरे।९४। फिर पूर्वाभिमुख होकर दृढ़चित्त से स्थित होकर आसन पर बैठे और विधिवत् तीन प्रणायाम करे।९५।

। प्रणव जप के अधिकार में विरजा होम,गायत्री जप।

अथ मध्याह्नसमये स्नात्वा नियतमानसः ।
गन्धपुष्पापाक्षतादीनि पूजाद्रव्याण्युपाहरेत् ।१
नैर्ऋत्ये पूजयेद्देव विघ्नेश देवपूजितम् ।
गणानां त्वेति मन्त्रेणावाहयेत्सुविधानतः ।२
रक्तवर्ण महाकार्य सर्वाभरणभूषितम् ।
पाशांकुशाक्षामीष्टश्च दधानं करपङ्कजे ।३
एवमावाह्य सन्ध्यायां शम्भुपुत्र गजाननम् ।
अभ्यर्च्या पायसापूपनालिकेरगुडादिभिः ।४
नैवेद्यमुत्तमं दद्यात्ताम्बूलादिमथापरम् ।
परितोष्य नमस्कृत्य निर्विघ्नं प्रार्थयेतत ।५
औपत्सनाग्नौ कर्त्तव्यं स्वगृह्योक्तविधानत ।
आज्यभागान्तमाग्नेयं मखतन्त्रमतः परम् ।६
भूः स्वाहेति त्रयृचा पूर्णाहुतिं हुत्वा समाप्य च ।
गायत्रीं प्रजपेद यावदपराह्णामवन्द्रितः ।७

स्कन्दजीने कहा-फिर मध्याह्न के समय प्रसन्न मनसे स्नान करे तथा गंध,पुष्प,अक्षत आदि पूजन-सामग्री को ।१। विधिवत् नैर्ऋत्यकी ओर देव पूजित विघ्नेशकी पूजाकर 'गणानात्वा' मंत्रसे आह्वाहनकरे।२। लालवर्ण वाले,महाकाव, सभी आभूषणों को धारण किये हुए,हाथों में पाश अंकुश, अक्ष लिए हुए।३। इस प्रकार शंकर सुवन गणेशजी का ध्यानपूर्वक क्रमसे गंधादि के द्वारा पूजन करे और खीर,पुआ,नारियल, मिष्टान्न इत्यादि।४। तथा नैवेद्यसे सन्तुष्टकर ताम्बूल भेंट करे तथा विघ्नेशकी प्रार्थनाकर उन्हें प्रसन्न करके नमस्कार करे।५। अपने गृह्य-सूत्रकी विधिसे आज्यके श्रेष्ठ

भागका सोमकरे, उसमें जो अग्नि मुख तन्त्र है ।६। उस करके 'भूःस्वाहा' उच्चारणकर श्रुत्वासे पूर्णाहुति दे और हवन समाप्त करके अपराह्न समाप्त होने तक गायत्री का जप करता रहे ।७।

अथ सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य स्नानपूर्वकम् ।
सायमौपासन हुत्वा मौनी विज्ञापयेद् गुरुम् ।८
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः ।
जुहुयाद्रौद्रसूक्तेन सद्योजातादिपञ्चभिः ।९
ब्रह्मभिश्च महादेवं सांबं वह्नौ विभावयेत् ।
गौरीर्मिमाय मन्त्रेण हुत्वा गौरीमनुस्मरन् ।१०
ततोऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति जुहुयात्सकृत् ।
हुत्वोपरिष्टाद्यन्त्रं तु ततोऽग्नेरुत्तरे बुधः ।११
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ।
आब्राह्मं च मूहुर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ।१२
ततः स्नात्वात्वशक्तश्चेद्भस्मना वा विधानताः ।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्नग्नावेवाभिधारितम् ।१३
उदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्याज्येन चरुं ततः ।
अभिधार्य्य व्याहृतीश्च रौद्रसूक्तञ्च पञ्च च ।१४

फिर स्नान करके सन्ध्याकालकी सन्ध्यापूर्ण करके और सायंकालीन हवनकरके, मौनरहता हुआ गुरुको आज्ञाप्राप्त करे ।८। समिधा, अन्न, आज्य के चरुको एकत्रकर रुद्र सूक्त अथवा सद्योजात आदि पाँचमन्त्रोंसे होमकरे ।९। ईशादि पाँच ब्रह्म मन्त्रोंसे पार्वती सहित शिवजी का अग्निमें ध्यान करें तथा 'गौरीर्मिमाय' मन्त्रसे हवन कर पार्वतीजी का स्मरण करे ।१०। फिर 'अग्नेय स्विष्ट कृते स्वाहा' मन्त्र से एक बार आहुति देकर हवन युक्त तन्त्रको समाप्तकर अग्निके उत्तर ओर ।११। मौन होकर कुश या मृगचर्म के आसन पर बैठकर ब्रह्ममुहूर्त्त होने तक दृढ़ मनसे गायत्री का जप करे ।१२। फिर स्नान करे, यदि जल स्नान न कर सके तो भस्म स्नान करे, फिर उस चरुको संयुक्तकर अग्निपर रखे ।१३। उसके जलकी अलग करके

कुश पर बैठकर उरु को घी में मिलावे और व्याहृती का उच्चारण कर रुद्र सूक्त का जप करे ।१४।

जपेद् ब्रह्माणि सन्धार्य चित्तं शिवपदांबुजे ।
प्रजापतिमथेन्द्रञ्च विश्वेदेवास्ततः परम् ।१५
ब्रह्माणं सचतुर्थ्यन्तं स्वाहातान् प्रणवादिकान् ।
सजप्य वाचयित्वाऽथ पुण्याऽहं क्ष ततः परम् ।१६
परस्तात्तंत्रमग्नये स्वाहे यग्निमुखावधि ।
निर्वत्य पश्चात्प्राणाय स्वाहेत्यारभ्य पंचभि ।१७
साज्येन चरुणा पश्चादग्निं स्विष्टकृतं हनेत् ।
पुनश्च प्रजतेत्सूक्तं रौद्रं ब्रह्माणि पञ्च च ।१८
महेशादि चतुर्व्यूहमन्त्रांश्च प्रजपेत्पुनः ।
हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं तु स्वशाखोक्तेन वर्त्मना ।१९
तत्तद्देवान्समुद्दिश्य सांग कुर्याद्विचक्षणः ।
एवमग्निमुखाद्य यत्कर्म तन्त्र प्रवर्तितम् ।२०
अतः परं प्रजुहुयाद्विरजाहोममात्मनः ।
षड्विंशत्तत्वरूपेऽस्मिन्देहे लीनस्य शुद्धये ।२१

फिर ईशानादि पंचब्रह्म का उच्चारण कर शिवजी के चरण कमल में मन लगावे, फिर प्रजापति इन्द्र, विश्वेदेवा ।१५। तथा ब्रह्माके नाम के अन्त में नमः जोड़े तथा आदि में प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति सहित उच्चारणकरे। इस प्रकार जप और पुण्याहवाचन करके ।१६। तंत्र के समक्ष 'अग्नये स्वाहा' कहे और अग्नि के मुखकी ओर से निवृत्त होकर प्राणाय स्वाहा, अपनाय स्वाहा आदि मंत्रों से पञ्चाहुति दे ।१७। फिर समिधा, अन्न, घृतकेभेदसे हवनकरे और चरुतथा घृतसे अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' उच्चारण पूर्वक होम करे, फिर रुद्रसूक्त और पञ्चब्रह्म के मत्रोंका जप करे ।१८। फिर महेशादि चतुर्व्यूहके मंत्रोंका जपकर अपनीशाखा कीविधिसे महेशादि मंत्रोंसे होम करे ।१९। उन-उन देवताओं के लिए तंत्र के ऊपर आहुतिदे, इस प्रकार अग्नि मुखसे कर्मतंत्रको प्रवृत्त करे ।।२०। फिर अपनी शुद्धि के लिए विरजा होम करे। प्रकृतिआदिजो छब्बीस तत्व इस देह में हैं ।२१।

तत्वान्येतानि मद्देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन् ।
तत्रात्मतत्वशुद्ध्यर्थं मन्त्रै रारुणकेतुकैः ।२२।
पठ्यमानैः पृथिव्यादिपुरुषांतं क्रमान्मुने ।
साज्येन चरुणा मौनी शिवपादाम्बुज स्मरन् ।२३।
पृथिव्यादि च शब्दादि वागाद्यं पंचकं पुनः ।
श्रोत्राद्यं च शिरःपार्श्वं पृष्टोदरचतुष्टयम् ।२४।
जँघा च योजयेत्पश्चात्त्वगाद्य धातुसप्तकम् ।
प्राणाद्यं पचकं पश्चादन्नाद्यं कोशपंचकम् ।२५।
मनश्चित्तं च बुद्धिश्चाहङ्कृतिः ख्यातिरेव च ।
सङ्कल्प स्तु गुणाः पश्चात्प्रकृतिःपुरुषस्ततः ।२६।
पुरुषस्य तु भोक्तृत्वं प्रतिपन्नस्य भोजने ।
अन्तरङ्गतया तत्वपंचकं परिकीर्तितम् ।२७।
नियतिः कालरागश्च विद्या च तदन्तरम् ।
कला च पचकमिदं मायोत्पन्नं मुनीश्वर ।२८।

उनकी शुद्धि के लिए बिरजा हवन करके कहे मेरे शरीर के यह सब तत्व शुद्ध हो जाँय फिर आत्मशुद्धि के लिए तैत्तिरीय आरण्य के भद्र प्रपाठक में अरुण केतुक मन्त्र ।२२। अश्वयोनिमष्ट से सप्त पुरुषा तक उच्चारण कर घृत लेकर मौन होकर शिवजीके चरणकमलका स्मरण करे ।२३। पृथिवी आदि, शब्द आदि और वर्ग आदि पाँच तथा श्रोत्र आदि पाँच इन्द्रिय, शिर,पीठ, उदर, पाद यह चार ।२४। तथा जांघ को युक्त कर फिर त्वक् आदि सप्त धातु फिर प्राणादि पाँच और अन्नादि पाँच कोष ।२५। मन, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण और प्रकृति पुरुष ।२६। पुरुष का भोक्तापन पाँच तत्व कहे हैं.नियति, काल सहित, राग, विद्या, कला पंचक यह सब माया से ही उत्पन्न हैं ।२७।२८।

मायां तु प्रकृतिं विद्यादिति माया श्रुतीरिता ।
तज्जान्येतानि तत्त्वानि श्रुत्युक्तानि न संशयः ।२९।
कालस्वभावो न्यियतिरिति च श्रुति र्ब्रवीत् ।
एतत्पचकमेवास्य पचक्रकंचक्रमुच्यते ।३०।

अजानन्पश्च तत्वानि विद्वानपि च मूढधीः ।
निपत्याधस्तात्प्रकृतेरुपरिष्टात्पुमानयम् ।३१।
काकाक्षिन्यायमाश्रित्य वर्त्तते पार्श्वताऽन्वहम् ।
विद्यातत्वमिदं प्रोक्तं शुद्धविद्यामहेश्वरौं ।३२।
सदाशिवश्च शक्तिश्च शिवश्चेदं तु पञ्चकम् ।
शिवतत्वमिद ब्रह्मन्प्रज्ञानब्रह्मवाग्यतः ।३३।
पृथिव्यादिशिवांत यत्तत्वजात मुनीश्वर ।
स्वकारणलय द्वारा शुद्धिरस्य विधीयताम् ।३४।
एकादशानां मन्त्राणां परस्मैपदपूर्वकम् ।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यंतमिदं पदमथोच्चरेत् ।३५।

श्रुति में प्रकृति को माया ही कहा गया है यह तत्व उसी से उत्पन्न हुए बताते हैं ।२९। श्रुति कहतीहैकि स्थिति कालस्वभावको ही कहते हैं । इसी पचक का नाम पंचक चुक है ।३०। इन पाँच तत्वों को जाने बिना विद्वान् भी मूर्ख हो जाता है, प्रकृति के नीचे नियत तथा ऊपर पुरुष है।३१। काकाक्षि न्यायसे यह पुरुष नियत प्रकृति में स्थित होता है, इसी को विद्या तत्व कहा है शुद्ध विद्या महेश्वर।३२।सदाशिव शक्ति और शिवयही पञ्च कहे । 'प्रज्ञान ब्रह्म' वाक्य से शिवतत्व ही कहा है।३३।जो पृथिवी से शिव तक तत्व हैं अपन कारण प्रकृतिमें लीन होने के द्वारा इसकी शुद्धि करे।३४। परस्मैपद पूर्वक ग्यारह मन्त्रों को शिव ज्योति तक उच्चारण करे ।३५।

न ममेति वदेत्पश्च उद्देशत्याग ईरितः ।
अतः पर विविद्यौति कष्टपोतेति मन्त्रयोः ।३६।
व्यापकाय पदस्यान्ते परमात्मन इत्यपि ।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्त विश्वभत पद पुनः ।२७।
धसनोत्सुकशब्दश्च चतुर्थ्यंतमथो वदेत् ।
परस्मैपदमुच्चार्य देवाय पदमुच्चरेत् ।३८।
उत्तिष्ठन्वेति मन्त्रस्य विश्वरूपाय शद्वतः ।
पुरुषाय पदं ब्रूय दोंस्वाहेत्यस्य सवेदत् ।३९।
लोकेत्रयपदस्यान्ते व्यापिने परात्मने ।
शिवायेदं न मम पदं ब्रूयादतः परम् ।४०

स्वशाखोक्तप्रकारेण पुस्तात्तन्त्रकर्म च ।
निर्वर्त्य सर्पिषा मिश्रं चरुं प्राश्य परोधसे ।४१।
प्रदद्याद्दक्षिणां तस्मै हेमादिपरिबृंहिताम ।
ब्रह्माणमुद्वास्य ततः प्रातरोपासनं हुनेत ।४२।

फिर 'इद न मम' कहे, प्रकृति देवता के लिए इसीको त्याग कहते हैं। ।३६। फिर विविद्यै स्वाहा, करोतकाय स्वाहा, व्यापकाय परमात्मने इदं न मम, इस प्रकार कहकर शिवा ज्योति चतुर्थी संयुक्त कर तथा ।३७। घसनोत्सुकायेदं इस प्रकार चतुर्थी विभक्ति से कहे तथा त्रैलोक्य व्यापि ने परमात्माने देवाय इद न मम कहे ।३८। 'उत्तिष्ठ' मन्त्रसे ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय स्वाहा इस प्रकार उच्चारण करे ।३९। फिर त्रैलोक्य व्यापि ने परमात्म ने इत्यादि मन्त्रसे भागदे ।४०। अपनी शाखा के विधान से तन्त्र कर्म करके गुरु के लिए घृतयुक्त चरुको किंचित् भक्षण करावे ।४१। और उन्हें सुवर्णादि की दक्षिणा दे फिर ब्रह्मा को विदा करे और प्रातःकालीन उपासना करता हुआ हवन करे ।४२।

समांसञ्चन्तु मरुत इति मन्त्रञ्जपेन्नरः ।
याते अग्न इत्यनेन मन्त्रणाग्नौ प्रताप्य च ।४३।
हस्तमग्नौ समारोप्य स्वात्मन्यद्वैतधामनि ।
प्रभातिकीं ततः सन्ध्यामुपास्यादित्यमप्यथ ।४४।
उपस्थाय प्रविश्याप्सु नाभिदघ्न प्रवेशयन् ।
तन्मन्त्रान्प्रजपेत्प्रीत्या निश्चलात्मा समुत्सुकः ।४५।
आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्र जापत्येष्टिमाहिते ।
श्रोते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणाम् ।४६।
अथाग्निसात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।
सावित्री प्रथमं पादं सावित्रीमित्युदीर्य च ।४७।
प्रवेशयामि शब्दान्ते भूरोमिति च संवदेत् ।
द्वितीय पादमुच्चार्य सावित्रीमिति पूर्ववत् ।४८।
प्रवेशयामि शब्दान्ते भुवरोमिति सवदेत् ।

फिर समाँ सिचन्तु मरुतः मन्त्र जपे और 'याते अग्न' इसमन्त्रसे अग्नि को प्रज्वलित करे ।४३। अद्वैत तेज वाले अग्निको हाथसे अपने आत्मा में

आरोपित करे और प्रातःकालीन सन्ध्योपासन करके सूर्य को नमस्कार करे। ।४४। फिर नाभि तक जलमें प्रविष्ट होकर प्रीयिपूर्वक उनमन्त्रों का जप करे ।४५। तथा अहिताग्नि प्राजापत्येष्टि करे, वह भले प्रकार से श्रौत वश्वानर में होम करके सब वेद और दक्षिणा सहित दान कर ।४६।अग्नि को आत्मा मे आरोपित कर घर से निकलकर सन्यासी होजाय तथा गायत्री के प्रथम पाद का उच्चारण करके ।४७। सावित्री प्रवेशयामि ऐसा कहे और भूरोम् उच्चारण कर फिर गायत्री का द्वितीय पाद कहे ।४८। फिर सावित्री प्रवेशयामि कहकर भूवरोम् कहे और तृतीयपादका उच्चारणकरे४९

प्रवेशयामि शद्वान्ते सुवरोमित्युदीरयेत्ः ।
त्रिपादमुच्चरेत्पूर्वं सावित्रीमित्यतः परम् ।५०।
प्रवेशयामि शद्वान्ते भूर्भुवः सवरोमिति ।
उदीरयेत्परं प्रीत्या निश्चलात्मा मुनिश्वर ।५१।
इयम्भगवती साक्षाच्छंकरार्द्धं शरीरिणी ।
पञ्चवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनोज्ज्वला ।५२।
नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्रलेखावतसिनी ।
शद्धस्फटिकसकाशा दशाधयुधरा शुभा ।५३।
हारकेयूरकटकंकिकिणीनूपुरादिभिः ।
भूषितावयवा दिव्यवसना रत्नभूषणा ।४५।
विष्णुना विधिना देवऋषिगन्धर्वनायकैः ।
मानवैश्च सदा सेव्या सर्वात्मव्यापिनी शिवा ।५५।
सदा शिवस्य परमा धर्मपत्नी मनोहरा ।
जगदम्बात्रिजननी त्रिगुणा निर्गुणाप्यजा ।५६।

फिर सावित्रीं प्रवेशयामि कहता हुआ सुवरोम् कहे और गायत्री के तीन पादों का उच्चारण करे ५०।फिर सावित्रीं प्रवेशयामि कह कर भूर्भुवः सुवरोम् इस प्रकारउच्चारण करे ।५१। यह भगवती साक्षात भगवान् शिव के आधे अङ्ग वाली है पाँच मुख दस भुजा पन्द्रह नेत्र तथा उज्ज्वल देह है। ।५२। नवरत्न किरीट से जगमगाती, उदय हुए चन्द्र जैसी कान्ति वाली स्वच्छस्फटिक मणिके समान दस आयुधधरिणी ।५३। हार, केयूर,खडुरा

कौंधनी तथा नूपुर आदि से विभूषित देह वाली दिव्य वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण किये हुए ।५४। विष्णु, ब्रह्मा, देव, ऋषि, गन्धर्व, दानव और मनुष्यों के द्वारा सेवा के योग्य तथा सबकी आत्मा में सदैव व्याप्त ।५५। शिवा भगवान् शिवकी मनोहारिणी पत्नी हैं । जो संसार की माता, त्रैलोक्य को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका तथा गुणों से परे हैं ।५६।

इत्येव सविचार्याथ गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः ।
आदिदेवीं च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदामजाम् ।५७।
यो ह्यन्यथा जपेत्पापो गायत्रीं शिवरूपपिणाम् ।
स पच्यते महाघोरे नरके कल्पसंख्यया ।५८।
सो व्याहृतिभ्यः सजाता तास्वेव विलयं गता ।
ताश्च प्रणवसम्भूताः प्रणवे विलय गता ।५९।
प्रणवः सर्ववेदादि प्रणवः शिववाचकः ।
मन्त्राधिराजराजश्च महाबीजं मनुः पर, ।६०।
शिवो वा प्रणवो ह्येष वा शिवः स्मृतः ।
वाच्यवावाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ।६१।
एनमेव महामन्त्रञ्जीवानाञ्च तनुत्यजाम् ।
काश्यां सश्रात्य मराणे दत्ते मुक्ति परां शिवः ।६२।
तस्मदेकाक्षर देवं शिवं परमकारणम् ।
उपासते यतिश्रेष्ठो हृदयांभोजनमध्यगम् ।६३।

इस प्रकार ध्यान कर गायत्री का जप करना चाहिये क्योंकि यही आदि देवी त्रिपदा ब्राह्मणत्व के देने वाली तथा स्वयं अजन्मा है ।५७ जो पापकर्मा मनुष्य शिव स्वरूप गायत्री को इसके विपरीत समझता है, वह घोरनरकगामी होता है।५८।वह गायत्री व्याहृतियोंसे उत्पन्नहुई तथा उन्हीं में लीन होती हैं और वह व्याहृतियां प्रणवसेउत्पन्नहोतीं तथा प्रणव मेंलय होती है ।५९। वेदों का आदि प्रणव ही है. यही शिव का वाचक है तथा मन्त्रों का अधीश्वर और बीज मन्त्र है ।६०। प्रणव ही शिव है तथा शिव ही प्रणव है,वाचक में किंचित् भेद नहीं है ।६१।काशी में शरीर त्याग करने वालों को इसी मन्त्र का उपदेश देकर शिवजी मुक्तकर देते हैं ।६२।

इस कारण इस एकाक्षर श्रेष्ठ परमदेव का जो यति अपने हृदय कमल में पूजन करते हैं ।६३।

मुमुक्षवोऽपरे धीरां विरक्ता लौकिका नराः ।
विषयान्मनसा ज्ञात्वोपासते परम शिवम् ।६४।
एव विलाप्यगायत्रीं प्रणवे शिववाचके ।
अहं वृक्षस्य रेरिवेत्यनुवाकं जपेत्पुनः ।६५।
यश्छन्दसामामृषभ इत्यानुवाकमुपक्रमात् ।
गोपायांतं जपन्पश्चादुत्थितीऽहमितीरयेत् ।६६।
वदेज्जपेत्रिधा मदन्मध्योच्छायक्रमान्मुने ।
प्रणवं पूर्वमद्धृत्य सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।६७।
तेषामथ क्रमाद् भूयाद् भूःसन्यस्तं भुवस्तथा ।
सन्यस्तं सुवरित्युक्त्वा संन्यस्तं पदमुच्चरन् ।
सर्वमंत्राद्यः प्रदेशे मयेति च पदं वदेत् ।
प्रणवं पूर्वमुदधृत्य समष्टिव्याहृतीर्वदेत् ।६९।
समस्तमित्यतो ब्रूयान्मयेति च समब्रवीत् ।
सदाशिवं हृदि ध्यात्वा मन्दादीति ततो मुने ।७०।

तथा जो अन्य धीर,मुमुक्षु, विरक्त अथवा लौकिक जन अपने मन को विषयों से हटाकर शिवजी की उपासना करते हैं ।६४। तथा जो गायत्री को शिव वाचक प्रणवमें लीनकर अहं वृक्षस्यरेरिव इस अनुवाक को जप कर ।६५। तथा यश्छन्दसाम ऋषभः इस अनुवाक का जप करते तथा अन्त में गोपाये इन तैत्तरीय शाखा के अनुवाकों को जपकर उदियताहम् कहे।६६। और तीनों इच्छाओंका त्याग करता हुआ कहे कि मैं पुत्रकी इच्छासे पृथक हुआ हूँ,धन की इच्छासे पृथक हुआ हूँ,लोकेषणासे पृथक हुआहूँ इस प्रकार क्रम से कहे । प्रथम मंद,फिर मध्यम, फिर अधिक शब्दसे जप करे, प्रणव का उद्धार कर सृष्टि,स्थिति औरलयके क्रमसे करे ।६७। उनका क्रम से—भूः संन्यस्तं,भुवःसन्यस्तं,सुवःसंन्यस्तं,ऐसाक्रम सेकहें६८ इन सब मन्त्रों के अन्तमें 'माया'लगावे और आदिमें प्रणव संयुक्तकरेऔर भूर्भुवःस्वःइससमष्टिभ्याहृतिका

उच्चारण करे।६९। संन्यस्तं मया कहकर हृदय में शिवजी का ध्यान करे तथा मन्द, मध्यम और उच्च स्वर से जप करे।७०।

प्रैषमंत्रांस्तु जप्त्वैवं सावधानेन चेतसा।
अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति संजपन् ।७१।
प्राच्यां दिश्यप उद्धृत्य प्रक्षिपेदं जलिं ततः।
शिखां यज्ञोपवीतं च यत्रोत्पाट्य च पाणिना ।७२।
गृहीत्वा प्रणव भूश्च समुद्रं गच्छ संवदेत्।
वह्निजायाँ समुच्चार्य सोदकांजलिना ततः ।७३।
अप्सु हुयादथ प्रैषैरभिमन्त्र्य त्रिधा त्वपः।
प्राश्य तीरे समागत्य भूमौ वस्त्रादिकं त्यजेत् ।७४।
उदङ्मुख प्राङ्मुखो वा गच्छेत्सप्तपदाधिकम्।
किञ्चिद् दूरमथाचार्यस्तिष्ठ तिष्ठेति संवदेत् ।७५।
लोकस्य व्यवहारार्थं कौपीनं दण्डमेव च।
भगवन्स्वीकुरुष्वेति दद्यात्स्वेनैव पाणिना ।७६।
दत्वा सूदीरं कौपीनं काषायवसनं ततः।
आच्छाद्याचम्य च द्वेधा तं शिष्यमिति संवदेत् ।७७।

सावधानी से इस प्रकार प्रैषमन्त्र को जपकरके कहे अभय सर्वभतेभ्यो मत्त:स्वाहा अर्थात् मुझसे सब जीवों को अभय हो,इसका जपकरे।७१। पूर्व दिशामें अन्जलीमें जललेकर छोड़ेतथा शिखा, यज्ञोपवीत को गायत्री मन्त्र पूर्वकहाथ से उखाड़कर।७२।ग्रहण करे तथाप्रणव सहित वह्निजाया स्वाहा तथ ॐभू-समुद्रं गच्छ स्वाहा कहकर हाथमें जलावे ।७३। तथा प्रैष मन्त्रों से शिखा और यज्ञोपवीत कोजलमें छोड़दे,और जलसे आचमन कर वस्त्रादि भी पृथ्वीमें त्यागदे ।७४। उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर सात पग चले। कुछ दूर चलने पर आचार्य ठहरो कहे ।७५। और आचार्य कहे कि लोक व्यवहारार्थ कौपीन स्वीकार करिये यह कहकर आचार्य अपने हाथ से कौपिन दे।७६। आचार्य की बात सुनकर धागे सहित कौपिन काषाय वस्त्र से देहको ढक करदो चार आचमन करे,तब आचार्य उससेकहें।७७

इन्द्रस्य वज्रोऽसि तत इति मन्त्रमुदाहरेत् ।
सम्प्रार्थ्य दण्डगृह्णीयात्सखाय इति सजपन् ।७८।
अथ गत्वा गुरोःपार्श्वं शिवपादाम्बुज स्मरन् ।
प्रणमेद्दंडवद् भूमौ त्रिवारं संयतात्मवान् ।-९।
पुनरुत्थाय च शनैः प्रेम्णा पश्यन्गुरुं नजम् ।
कृतांजलि पुटस्तिष्ठेद्गुरुपादसमापितः ।८०।
कर्मारम्भात्पूर्वामेव गृहीत्वा गोमयं शुभम् ।
स्थूलामलकमात्रेण कृत्वा पिण्डान्विशोषयेत् ।८१।
सौरैस्तु किरणैरेव होमारम्भाग्निमध्यगान् ।
निक्षिप्य होमसम्पूर्त्तौ भस्म सगृह्यगोपयेत् ।८२।
ततो गुरुः समादाय विरजानलजं सितम् ।
भस्म तेनैव त शिष्यमग्निरित्यादिभिः क्रमात् ।८३।
मत्रै रगानि संस्पृश्य मूर्द्धादिचरणान्ततः ।
ईशानाद्यैः पञ्चमत्रैः शिर आरभ्य सर्वतः ।८४।

इन्द्रस्य तज्रोसि तत् इस मन्त्र को जपता हुआ सखाय मां' कहता दण्ड ग्रहण करे ।७८।फिर शिवजी के चरण कमलों के ध्यान पूर्वक गुरु के समीप जाकर पृथ्वीमें लेटकर तीन बार प्रणामकरे ।७९। फिर उठकर प्रेमपूर्वक गुरु को देखे और उसके चरण के पास हाथ जोड़कर खड़ाहो।८०। कर्मका आरम्भ करने से पहिले ही गोबर लेकर बड़े २ आमलों के समान उसके गोले बनाकर सुखाले।८१।जब वे धूपसे सूखजाँय तब उन्हें होमाग्नि के बीच में रख दे,होमके सम्पूर्ण होनेके लिए उस भाग को रख ले ।८२। तब गुरु विरजाग्नि के बने श्वेत पिंडोंकी भस्म को अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोंसे ।८३। सब अङ्गों में लगाकर सिर से चरणों तक ईशानादि' पाँच मन्त्रों से आरम्भ करे ।८४।

समुधृत्य विधानेन त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः ।
त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च मूर्ध्न आरभ्य च क्रमात् ।८५।
ततः सद्भक्तियुक्तेन चेतसा शिष्यसत्तमः ।

हृत्पङ्कजे समासीनं ध्यायेच्छिवमुमासखम् ।८६।
हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य स गुरुर्वदेत् ।
त्रिवारं प्रणव दक्षकर्णे ऋष्यादिसंयुतात् ।८७।
ततः कृत्वा च करुणां प्रणवस्यार्थमादिशेत् ।
षड्विधार्तपरिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ।८८।
दिष्टप्रकारं स गुरुं प्रणमेद भुवि दण्डवत् ।
तदधीनो भवेन्नित्य नान्यत्कर्म समाचरेत् ।८९।
तदाज्ञया ततः शिष्यो वेदान्तार्थानुसारतः ।
शिवज्ञानपरो भूय त्सुगुणागुणभेदतः ।९०।
ततस्तत्रैव शिष्येण श्रवणाद्यङ्गपूर्वकम् ।
प्राभातिकाद्यनुष्टानं जपान्तं कारयेद् गुरुः ।९१।

तथा सब प्रकार देहमें भस्म मल कर त्रिपुण्ड धारण करे । त्रियायुषैः तथा त्र्यम्बकं यजांमहे मन्त्रोंसे आरम्भ करे ।।८५।। और उत्तम भक्ति से सम्पन्न श्रेष्ठ शिष्य अपने हृदय कमल में पार्वती सहित शिवजीकाध्यान करे ।८६। फिरप्रसन्न होकर गुरुशिष्यके शिर पर हाथ रखे और ऋषि आदि का उच्चारण कर उसके दक्षिण कान में मन्त्र कहे और प्रणव का तीन प्रकार से उच्चारण करे ।८७ फिर उसके अर्थ को कृपापूर्वक कहे । गुरुत्रो अध्याय में वर्णित छःप्रकार के अर्थका ज्ञानकराना चाहिये ।।८८।। फिर शिष्य बारह प्रकारसे गुरुको पृथिवीमें प्रणाम कर उनके अधीन रहे तथा उनकी आज्ञा के बिना अन्य कार्यों का आरम्भ न करे ।।८९।। तथा गुरु आज्ञा से शिष्य सदैव वेदान्त ज्ञानमें तत्पर रहे और सगुण-अगुण भेद से शिव ज्ञान प्राप्त करे ।।९०।। वेदान्त मार्ग के अनुसार नित्य प्रति गुरु की आज्ञा में रहे तथा श्रवणादि युक्त शिव ज्ञानमें तत्पर हो । प्रातः कालीन अनुष्ठान को गुरु जपके अन्त तक करावे। ।९१।।

पूजां च मण्डले तस्मिन्कैलासप्रस्तराह्वये ।
शिवोदितेन मार्गेण शिष्यस्तत्रैव पूजयेत् ।९२।
देवं नित्यमशक्श्चेत्पूजितुं गुरुणा शुभम् ।

स्फटिकं पीठिकोपेतं गृणहीयाल्लिंगमैश्वरम् ।९३
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे ।
न त्वनभ्यर्च्य भंजीयां भगवन्तं तिलोचनम् ।।९४
एवं त्रिवारमुच्चोर्य शपथं गुरुसन्निधौ ।
कुर्याद् दृढमनाः शिष्यः शिवभवित समुद्वहन् ।।९५
तत एवं महादेवं नित्यमुद्युक्तमानसः ।
पूजयेत्परया भक्तया पञ्चावरणमार्गतः ।।९६

तथा शिष्य कैलाश प्रस्तर नामक मंडल में शिव वर्णित मार्ग से पूजन करे।।९२।। गुरु पूजित देवता के पूजन करने में नित्यप्रति समर्थ न हो तो स्फटिक सिंहासन सहित एक शिवलिंग ग्रहणकरे तथानित्यप्रति देव-पूजन और गुरु पूजन न कर सके तो शिवलिंगकाही पूजनकरे । ९३।। चाहे प्राण चला जाय शिर कटजाय, परन्तु त्रिनेत्र भगवान् शंकरका पूजानकिये विना भोजन न करे ।।९४ इस प्रकार गुरुके निकट तीन बार सौगन्ध कर दृढ़ मनसे शिष्य शिवकी भक्तिकरे ।.९५।। तथा उत्कण्टित मनसे परम भक्ति पूर्वक नित्य उसी लिंग में प्रसन्न होकर शिवजीका पांच आवरण के मार्ग से पूजन करे ।९६।

।। षट् प्रकार कथन पूर्वक ओंकार स्वरूप वर्णन ।।

भगवन्षण्मुखाशेषविज्ञानमृतवारिधे ।
विश्वामरेश्वरसुत प्रणतार्त्तिप्रभंजन ।।१
षड्विधार्थपरिज्ञानमिष्टदं किमुदाहृतम् ।
के तत्र षड्विधा अर्थाः परिज्ञान च किं प्रभो ।।२
प्रतिपादश्च कस्तस्य परिज्ञाने च किं फलम् ।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यद्यत्पृष्टं महागुह ।।३
एतमर्थमविज्ञाय पशुशास्त्रविमोहितः ।
अद्याप्यहं महासेन भ्रान्त श्च शिवमायया ।।४
अहं शिवपदद्वंद्वज्ञानामृतरसायनम् ।
पीत्वा विगतसम्मोहो भविष्यामि यथा तथा ।।५

कृपामृतार्द्रया दृष्ट्या विलोक्य सुचिरं मयि ।
कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पाब्जशरणागते ॥६
इति श्रुत्वामुनीन्द्रोक्तं ज्ञानशक्तिधरो विभुः ।
प्राहान्यदर्शनमहासत्रासजनक वचः ॥७

वामदेव ने कहा—हे षडानन ! हे विज्ञानामृत्त के सिन्धो ! हे सर्वेश्वर हेदीन दुःखहर्ता शिवपुत्र ! ।।१।। छः प्रकारके अर्थका ज्ञानकौन-साहै ? वह किस प्रकार के इष्ट का दाता है ? छः प्रकारके अर्थ कौन-सेहैं तथा उनका ज्ञान क्या है ? । २।। इसका प्रतिपाद्य कौन है ?उससे ज्ञानका फल क्या है! हेस्कन्दजी ! आप इस अर्थ को हमारे प्रतिकहें ।।३।। मैं इसअर्थ के ज्ञान बिना जीवशास्त्र से भ्रमाहुआ शिवजीकी मायासे मोहित हो रहा हूँ । ४।। मैं शिवपद के ज्ञानमृत रसायनको पीनेका इच्छुक हूँ जिससे मैं मोह रहित होजाऊँ ।।५।। इस प्रकार कृपामृतमयी दृष्टि से मुझे देख कर मुझ पर अनुग्रह करें, में आपकी शरण में आया हूँ ।। मुनिकी यह बातसुन करज्ञान शक्ति से सम्पन्न स्कन्धजी ने शिवशास्त्रसे विरुद्ध शास्त्रों को मानने वाले के प्रति त्रास देने वाले वचन कहे ।७।

श्रूयतां मुनिशार्दूल त्वया यत्पृष्टमादरात् ।
समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञान महेशितुः ॥८
प्रणवार्थपरिज्ञानरूपं तद्विस्तरादहम् ।
वदामि षड्विधार्थैक्यपरिज्ञानेन सुव्रत ॥६
प्रथमो मन्त्ररूपः स्याद् द्वितीयो मन्त्रभावितः ।
देवतार्थस्तृतीयोऽर्थः प्रपञ्चार्थस्ततः परम्॥ १०
चतुर्थः पचमार्थःस्याद् गुरुरूपप्रदर्शकः ।
षष्टः शिष्यात्मरूपोऽर्थः षड् विधार्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १
येन विज्ञातमात्रेण महाज्ञानी भवेन्नरः ॥१२
अद्याः स्वरः पंचमश्च पञ्चमान्तस्ततः परः ।
विन्दुनादौ पंचार्णाः प्रोक्ता च वेदैर्न चान्यथा ॥१३

एतत्समाष्टिरूपो हि वेदादिः समुदाहृतः ।
नादः सर्वसमष्टिः स्याद्बिन्द्वाड्यं यच्चतुष्टयम् ।१४।

स्कन्दजी ने कहा-हे मुने !तुमने जो प्रश्न किया है वह आदर सहित समष्टि व्यष्टि भाव से शिवजी का ॥८॥ प्रणवार्थ का ज्ञान विस्तार सहित तुम्हारे प्रति कहता हूँ। उस एक के ही परिज्ञानमे छःप्रकार का अर्थ है ॥९॥ प्रथम मन्त्र रूप, द्वितीय यन्त्ररूप, तृतीय देवार्थ और चतुर्थ प्रपंचार्थ है ॥१०॥ पंचम अर्थ दिखाया गया तथा छटवाँ शिष्यके आत्मानुरूप, इस प्रकार छः अर्थ कहे हैं ॥११॥ हे मुनिवर ! जिस यन्त्र के विज्ञानमात्र से पुरुष ज्ञानी होजाता है उस मन्त्रका श्रवण कीजिए ॥१२॥ प्रथम स्वर अकार, पंचम उकार तथा पवर्गके अन्तका मकार बिन्दु और नाद इन पाँच वर्णों को वेद में ओंकार माना गया है ॥१३॥ वेद में यह समष्टि रूप ही ओंकार कहा है, नाद सबकी समष्टि है, उकार और मकार बिन्दु के आदि है ॥१४॥

व्याष्टिरूपेण संसिद्धं प्रणवे शिववाचके ।
यन्त्ररूपं शृणु प्राज्ञ शिवलिंगं तदेव हि ।१५।
सर्वाधस्तात्लिखेत्पीठं तदूर्ध्वं प्रथम स्वरम् ।
उवर्णं च तदूर्ध्वस्थं पवर्गान्त तदूर्वगम ।१६।
तन्मस्तकस्थ बिंदुं च तदूर्ध्वं वादमालिखेत् ।
यंत्रे सम्पूर्णतां याते सर्वकामः प्रसिद्धयति ।१७।
एवं यन्त्रं समालिख्य प्रणवेनैव वेष्टयेत ।
तदुत्थेनैव नादेन विद्यान्नादावसानकम् ।१८।
देननार्थं प्रवेक्ष्यामि गूढं सर्वत्र यन्मुने ।
तव स्नेहाद्वामदेव यथा शङ्करभाषितम् ।१९।
सद्योजातंप्र पद्यामीत्यपक्रम्य सदाशिवम् ।
इति प्राह श्रुतिस्तारं ब्रह्मपञ्चकवाच कम् ।२०।
विज्ञेया ब्रह्मरूपिण्यः सूक्ष्माः पंचैव देवताः ।
एता एव शिवस्यापि मूर्त्तित्वेनोपबृंहिताः ।२१।

व्यष्टि रूप से सिद्ध ओंकार शिव की वचाकता में सिद्ध है, अब यन्त्र स्वरूप सुनो, वह लिंगस्वरूप है ॥५॥ सबसे नीचे पीठ बनावे, उसके ऊपर अकार फिर उकार फिर मकार बनावे ॥१६॥ उसके मस्तक पर बिन्दु और अर्द्ध चन्द्राकार नाद बनावे, यन्त्र में पूर्ण सभी कार्यों की सिद्धि होती है।१७ इस प्रकार यन्त्र खींचकर ओंकार से वेष्टित कर, उससे उठे हुये नाद से, नाद की समाप्ति तक भेद करे ॥१८॥ हे वामदेव ! अब शिवजी द्वारा कहा हुआ अत्यन्त गूढ़ देवार्थ तुम्हारे स्नेह के कारण तुमसे कहता हूँ ॥१९॥ साक्षात् श्रुति ने ही ब्रह्म पञ्चक ओंकार बताया है ॥२०॥ प्रणव ब्रह्म रूप वाले पाँच देवता भी शिवजी की मूर्त्ति समझो, उन्हें शिवजी से पृथक् मत जानो ॥२१॥

शिवस्य वाचको मन्त्रः शिवमूर्त्तेश्च वाचकः ।
मूर्त्तिमूर्त्तिमतोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ।२२।
ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदिताः ।
शिवस्य विग्रहः पंचवक्त्राणि शृणु सांप्रतम् ।२३।
पंचमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात् ।
उर्ध्वांतमीशानांतं च मुखपञ्चकमीरितम् ।२४।
ईशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थितम् ।
पुरुषाद्यं च सद्यांतं ब्रह्मरूपं चतुष्टयम् ।२५।
पंचब्रह्मसमष्टिः स्यादीशानं ब्रह्मविश्रुतम् ।
पुरुषाद्यं तु तद्व्यष्टिः सद्योजातान्तिकं मुने ।२६।
अनुग्रहमयं चक्रमिदं पंचार्थकारणम् ।
परब्रह्मात्मकसूक्ष्मं निर्विकारमनाभयम् ।२७।
अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरीभावादिगोचरः ।
प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावरविमुक्तिदः ।२८।

शिवजी का पंचक मन्त्र शिव स्वरूप का भी वाचक है, मूर्त्ति और मूर्त्तिमान् में विशेष भेद नहीं होता।२२। ईशानो मुकुटोपेतः से आरम्भ कर पाँच ही शिवजी के देह बताये हैं अब पाँचों मुखों का वर्णन सुनो ॥२३॥ शिवजी के

पाँच मुख पञ्चमादिसे आरम्भकर सद्योजातिके अनुक्रमसे ऊर्ध्व और ईशान तक बताये हैं ।।२४।। यही ईशान उनके चतुर्व्यूह पद में स्थितहैं, पुरुष सो सद्योजात तक चतुष्टय ब्रह्मस्वरूप हैं ।।२५।। तथाईशाननामक ब्रह्मकीसंगति से पञ्चब्रह्मसमष्टि कही जातीहै,पुरुष के आदिकीव्यष्टि सद्योजात के अन्त तक ।२६। अनुग्रहमय चक्र कहा गया है, पञ्चार्थका कारण यही है तथा परब्रह्मात्मक,सूक्ष्म एवं निर्विकारभी इसीको समझो ।।२७।। तिरोभावऔर प्रकट भावके भेदसे अनुग्रहकेभी दो प्रकारकहे हैं, यह प्राणियोंको पर और अपर मुक्ति का दायक है ।।२८।।

एतत्सदा शिवस्यैव कृत्यद्वयमुदाहृतम् ।
अनुग्रहऽप सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचकं विभोः ।२९।
मुने तत्रापि साद्याद्या देवताः परिकीर्त्तिताः ।
परब्रह्मस्वरूपास्ताः पंचकल्याणदाः सदा ।३०।
अमुग्रहमय चक्रं शांत्यतीतकलामयम् ।
सदाशिवाधिष्ठितं च परम पदमुच्यते ।३१।
एतदेवं पदं प्राप्यं यतीनां भावितात्मनाम् ।
सदाशिववोपासकानां प्रणवासक्तचेतमस् ।३२।
एतदेव पदं प्राप्य तेन साकं मुनीश्वराः ।
भुक्त्वा सुविपुलान्भोगेन्देवेन ब्रह्मरूपिणा ।३३।
महाप्रलयसभूतौ शिवसाम्यं भजति हि ।
न पतति पुनः क्वायिः संसाराब्धौ जनाश्रते ।३४।
वे ब्रह्मलोश इति च श्रुतिराह सनातनी ।
तेश्वर्य्यं तु शिवस्यापि समष्टिरिदमेव हि ।३५।

शिवजी के दो कृत्यहैं,अनुग्रह सृष्टि आदि कृत्योंका पंचक कहा गया है ।।२९।। वह सृष्टि आदि कृत पंचककेसद्यादिदेवता कहे हैं, पाँचों परब्रह्म स्वरूप हैं तथाकल्याणकेदाताहैं ।।३०।।अनुग्रहमय चक्र शान्ति से परे एव कलामय है,सदाशिवमें उसका अधिष्ठान होने से वह परमपदकहा जाता है ।।३१।। जोशिवजीके उपासकहैं और जिनका चित्त ओंकारमें रमा हुआहै,

उन भावितात्मा यतियों को इस पदकी प्राप्ति होतीहै। ३२।।हे मुनि-वर ! भगवान्‌शिवकी कृपासे वे इस पदको प्राप्तहोकर ब्रह्मस्वरूप परमात्माके साथ अनेकप्रकारके भोगोंका उपभोगकरके ।३३। महाप्रलयमें शंकर को साम्यताको प्राप्त होते और पुनः संसाररूपी समुद्रमेंनहींगिरते हैं ।३४। ते ब्रह्मलोकेषु० इत्यादि श्रुति इसी अर्थ का प्रतिपादन करती है, भगवान् शिवका ऐश्वर्य समष्टि रूप यही है ।।३५।।

सर्वैश्वर्येण सम्पन्न इत्याहाथर्वणी शिखा ।
सर्वैश्वर्यप्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि ।३६।
चमकस्य पदान्नान्यदधिकं विद्यते पदम् ।
ब्रह्मपंचकविस्तार प्रपञ्च खलु दृश्यते ।३७।
ब्रह्मभ्य एवं संजाताःनिवृत्याद्याः कला मताः ।
सूक्ष्मभूतस्वरूपपिण्यः कारणत्वेन बिश्रुता ।३८।
स्थूलरूपस्वरूपस्य प्रपञ्चस्यास्य सुव्रत् ।
पञ्चधाऽवस्थितं यत्तद् ब्रह्मपञ्चकमिष्यते ।३९।
पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ।
व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम् ।४०।
पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ।
व्याप्तं पुरुषरूपेण ब्रहतणैव मुनीश्वर ।४१।
अहंकारस्तथा चक्षुः पादो रूपं च पावकः ।
अघोरब्रह्मणा व्याप्तमेतत्पंचकमंचितम् ।४२।

अथर्वशीर्षा की श्रुतिका भी का यही कहना है किवही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों सें सम्पन्न है तथा वही सम्पूर्ण एश्वर्योंकोप्रदानकरता है ।।३६।। चमकाध्याय में उसकेस्थानसे श्रेष्ठ अन्यकोई नहीं बताया, ब्रह्म पंचकके विस्तारकानाम ही प्रपंच कहा गया है ।।३७।। निवृत्ति आदि कलाये ब्रह्मसेही हुई हैं, यही सूक्ष्मभूत स्वरूपहोकर कारण में स्थित रहती हैं।।३८।। इसस्थूल शरीरवाले प्रपच के पांच प्रकार से स्थित होनेके कारणहीइसेब्रह्मपंचककहा है ।।३९।। पुरुष,श्रोत्र,वाणी,शब्द और आकाश ईशानरूप ब्रह्म सेही व्याप्त हैं ।।४०।।

प्रकृति, त्वक्, हाथ स्पर्श और वायु यह पाँचों पुरुषरूपब्रह्मसेव्याप्तहैं ।४१।
अहंकार, चक्षु, चरण, रूप तथा पावक अघोर ब्रह्म से व्याप्त हैं ।।४२।।

बुद्धिश्च रसना पायू रस आपश्च पंचकम् ।
ब्रह्मणा यामदेवेन व्याप्त भवति नित्यशः ।४३।
मनो नासा तथोपस्थो गन्धो भूमिश्च पंचकम् ।
सद्येन ब्राह्मण व्याप्तं पञ्चब्रह्ममयं जगत् ।४४।
यन्त्ररूपेणोपदिष्टः प्रणवः शिववाचकः ।
समष्टिः पञ्चवर्णानां विंद्वाधं यच्चतुष्टयम् ।४५।
शिवोपदिष्टमार्गेण यन्त्ररूपं विभावयेत् ।
प्रणावं परम मन्त्राधिराज शिवरूपिणम् ।४६।

बुद्धि, रसना, पायु, रस, जल यह पाँचों ब्रह्म वामदेव से व्याप्त हैं ।।४३।। मन, नासिका, उपस्थ, गध और भूमिसद्य ब्रह्मसे व्याप्त हैं, इस प्रकार पंचब्रह्मात्मक जगत् कहा है ।।४४।। जो शिववाचक प्रणव यन्त्र रूपसे कहा गया है, वह पाँचों वर्णों की समष्टि तथा बिन्दु आदि समष्टि एवं कला प्रणव शिव वाचकहै ।।४५।। शिवजी द्वारा उपदिष्ट मार्ग से उसकाधिचार करना चाहिए यही प्रणव मन्त्रराज तथा साक्षात् शिव स्वरूप है ।।४६।।

।। ओंकार को समस्त सृष्टि का कारण कथन ।।

प्रतिलोमाष्मकं हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम् ।
तव स्नेहाद्वामदेव सावधानतया शृणु ।१।
व्यंजनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनात् ।
आमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः ।३।
महामन्त्रः स विज्ञयो मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
तत्र सूक्ष्मो महामन्त्रस्तदुद्धारं वदामि ते ।३।
आधे त्रिपञ्चरूपे च स्वरे षोडशके त्रिषु ।
महामन्त्रो भवेदादौ ससकारो भवेधदा ।४।
हंसस्य प्रतिलोमः स्यात्सकारार्थः शिवः स्मृतः ।
शक्त्यात्मको महामन्त्रवाच्यः स्यादिति निर्णयः ।५।

गुरुपदेशकाले तु सोहं शक्त्यात्मकः शिवः ।
इति जीवपरो भूयान्महामन्त्रस्तदा पशुः ।६।
शक्त्यात्मकः शिवांशश्च शिवैक्याच्छिवसाम्यभाक् ।
प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्ये तु प्रज्ञानार्थः प्रदृश्यते ।७।

हे वामदेव ! अब मैं प्रतिलोम अर्थात् सोहं प्रकार के एकार वाले हंस में प्रणवकी प्राप्ति कहता हूँ तुम सावधानी से सुनो ॥१॥ व्यंजन सकार का हकारके वर्जनसे ॐरूपस्थूल परमात्मवाचक सूक्ष्म ॥२॥ महामन्त्र होता है, तत्वदर्शी मुनियोंका ऐसा कथन है, मैं उसका उद्धार करता हूँ अ अं अः इन तीनोंके आदिस्वर अकारके पन्द्रहवें स्वरूपको प्राप्त होनेपर आदि हकार व्यंजनमें हंकी स्थिति होनेपर तथा सोलहवेंअ रूपका आदिसकार होने पर वह हंस होताहैं । इसका उल्टा अर्थात् आदिमें सकार होनेपर सोहं रूप महामन्त्र ही है, यह उद्धार सूक्ष्महोनेके कारणमहा सूक्ष्महै ॥४॥ इसका उल्टा हंस ही होता है तथा संकार अर्थ शिवही है क्योंकि वह सर्वनाम विशुद्ध स्वभाव शिव के ही बुद्धि का विषय है. इस शक्त्यात्मक महामन्त्रको शिव का वाचक समझो ।५। गुरु के उपदेशकाल में शक्त्यात्मक शिवसोहं ही है, शिवोहसस्मीति इस महामन्त्र के होने पर ॥६॥ शक्त्यात्मक तथा शिवांश पशु शिवके एकीकार से साम्यभाग होता है, शक्त्यात्मक और शिवांश होने के कारण शिव की समानता का भागी होता है यह वाक्य प्रज्ञान का अर्थ दर्शाता है ॥७॥

प्रज्ञानशब्दश्चैतन्यपर्यायः स्यान्न संशय ।
चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवर्त्तितम् ।८।
चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानक्रियात्मकम् ।
स्वातन्त्र्य तत्सव भावो यः स आत्मा परिकीर्तित ।९।
इत्यादिशिवसूत्राणां वार्त्तिकं कथितं मया ।
ज्ञानं बंध इतीदं तु द्वितीय सूत्रमीशितुः ।१०।
ज्ञानमित्यात्मनस्तस्य किंचिज्ज्ञानक्रियात्मकम् ।
इत्याहायपदेनेशः पशुवर्गस्य लक्षणम् ।११।

एतद्द्वयं पराशक्तेः प्रथमं स्पन्दता गतम् ।
एतामेव परां शक्ति श्वेताश्वतरशाखिनः ।१२
स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया चेत्यस्नुवन्मदा ।
ज्ञानक्रियेच्चारूप हि शंभोर्ट ष्टित्रय विदुः ।१३
एतन्मनोमध्यगं सदिप्रियज्ञानगोचरम ।
अनुप्रविश्य जानाति करोति च पशुः सदा ।१४

निः स्सन्देह प्रज्ञान शब्द चेतना का पर्यायहीहै । आत्मा चेतनहै, शिव सूत्रों में ऐसा कहा है ।८। जो चेतन है तथा जिसमेंविश्व का सम्पूर्णज्ञान और क्रिया भरी पड़ी है, ऐसे स्वतन्त्र स्वभाववाला वह परमात्माहीबताया है ९। शिवसूत्र और वार्तिकोंके अनुसारजीव-स्वरूपमें दो लक्षणज्ञान और बन्ध रहतेहैं ।१०। उस विश्व प्रपच में आत्माको ज्ञान क्रियात्मक स्व—तन्त्रताहै, आदि भेदसे जीवका लक्षण वही है ।११। यही चैतन्य ज्ञान वाली स्वतन्त्र माया·शक्ति प्रथम सृष्टि प्रयोजन तथा चेतना स्वरूप को प्राप्त हुई है, इसी को पराशक्ति कहा है जानता हूँ, करताहूँ आदि व्यवहार शरीर तथा इन्द्रियादि का है या आत्माका ! इसका समाधान करते हैं कि शिवजीकी दृष्टिके तीन भेद हैं, ज्ञान क्रिया और इच्छा ।१३। शिव की यह तीन प्रकार की दृष्टि ही कर्त्ता के मन में इन्द्रिय के द्वारा दृश्यमान देह में प्रविष्ट स्वरूप बनकर, जानने, करने वाली होती हैं ।१४।

तस्मादात्मन रूएवेद रूपमित्येव निश्चितम् ।
प्रपञ्चार्थ प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्यप्रदर्शनम् ।१५
तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्यं वक्ष्यामि श्रुयतामिदम् ।
तव स्नेहाद्वामदेव विवेकार्थं बिजृम्भितम् ।१६
शिवशक्तिसमायोगः पपमात्मेति निश्चितम् ।
पराशक्तेस्तु संजाता चिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा ।१७
आनन्दशक्तिस्तज्जा स्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा ।
ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पंचमी ।
एताभ्य एवं संजाता विवृत्याद्याः कला मुने ।।१८

चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दु प्रकीर्तितौ ।
इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानाशक्तेस्तु पंचमम् ।१९।
स्वरः क्रियाशक्तिजातो ह्यकारस्तु मुनीश्वर ।
इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः पञ्चब्रह्मोद्भवं शृणु ।२०।
शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तत्पुरुषोद्भवः ।
ततोऽघोरस्ततो वामः सद्योमाताद् भवस्ततः ।२१।

इसलिए अवश्य ही यह आत्मा का रूप है, अब प्रपच के साथ प्रणव की एकता का वर्णन करता हूँ ॥१५॥ हे बामदेव! तुम्हारे स्नेहसे मैं उसका तात्पर्य कहता हूँ जिससे तुम्हें ज्ञानकी प्राप्ति हो ॥१६॥ शिव और शक्ति के योग को ही परमात्मा कहा है, वह परमात्माही आकाशआदिरूपमें होताहै, जैसे उपादान कारण मिट्टी अपने से अभिन्न घड़ेका रूप रखती है, दूधरूप उत्पादन दही रूप होजाताहै, रस्सी अज्ञान से सर्प रूप होजाती है, परा शक्तिसे चित् शक्ति॥१७॥ और उससे आनन्दशक्ति तथा उससेइच्छा शक्ति की उत्पत्ति हुई है उससे ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से क्रिया शक्ति हुई। इन्हीं शक्तियों से निवृत्ति आदि कलायें उत्पन्न हुईं॥१८॥ चिदानन्द शक्तियों से नाद और बिन्दुकी उत्पत्ति हुई, इच्छाशक्तिसे मकार तथा ज्ञान शक्ति से पंचम स्वर उकार हुआ ।१९। क्रिया शक्तिसे अकार हुआ । इस प्रकार प्रणवकी उत्पत्ति हुई, अब पंच ब्रह्मकी उत्पत्ति सुनो ।२०। शिव से ईशान हुई, ईशानसे पुरुष, पुरुष से अघोरसे वाम सद्योजात की उत्पत्ति हुई ॥२१॥

एतस्मान्मातृकादष्टत्रिंशन्मातृसमुद्भवः ।
ईशानाच्छान्त्यतीताख्या कला जाताऽथ पूरुषात् ।
उत्पद्यते शान्तिकला विद्याऽघोरसमुद्भवा ।२२।
प्रतिष्टा च निवृत्तिश्च वामसद्योद्भवे मते ।
ईशाच्चिच्छक्तिमुखतो विभोर्मिथुनपंचकम् ।२३।
अनुग्रहादिकृत्यानांहेतुः पञ्चकमिष्यते ।
तद्विद्भिर्मुनिभिः प्रज्ञैर्वरतत्वप्रदर्शिभिः ।२४।
वांच्यवाचकसम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयुषि ।

कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन्पञ्चके भूतपञ्चकम् ।२५।
वियदादिक्रमादासीदुत्पन्नं मुनिपुङ्गव ।
आद्यं मिथुनमारभ्य पंचमं यन्मयं विदुः ।२६।
शब्दैकगुण आकाशः शब्दस्पर्शगुणो मरुत् ।
शब्दस्पर्शरूपगुणप्रधानो वह्निरुच्यते ।२७।
शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिलं स्मृतम् ।
शब्दस्पर्शरूपसरसगन्धाढ्या पृथिवी स्मृता ।२८।

इन्हीं अकारादि की मात्रासे अड़तीस कला हुईं, ईशानसे शान्त्यतीत कला, पुरुषसे शान्तिकला और अघोरसे विद्याकी उत्पत्तिहुई।।२२।।प्रतिष्ठा और निवृत्ति की उत्पत्ति वामदेव और सद्योजातसे हुई,ईशऔर चित्शक्ति मुखसे शिवके मिथुनपंचक हुए ।।२३।। अनुग्रह, तिरोभाव, सँहार स्थिति, सृष्टि आदि रूपोंका कारण हेतु पंचकहै,यह उसके ज्ञाता ज्ञानी मुनियों का कहना है ।।२४।। वाच्य-वाचक सम्बन्धसेमिथुनतत्वको पाने वाले कला, वर्ण स्वरूप वाले इस पञ्चक में भूतपञ्चक।।२५।।आकाशादि के क्रम से उत्पन्न हुआ । आद्यामैथुन ईशचित् शक्त्यात्मकसे आरम्भकर भूतपञ्चकको चित् शक्त्यात्मक ही कहा है ।।२६।।आकाश में शब्द, गुण और वायु का शब्द स्पर्श गुण है तथा शब्द स्पर्श रूपगुण वाला अग्नि है ।।२७।। शब्द,स्पर्शरूप रस गुणयुक्त जल कहा गया है तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध वाली पृथिवी कही गयी है ।।२८।।

व्यापकत्वञ्च भूतानामिदमेव प्रकीर्तितम् ।
व्याप्यत्व वैपरीत्येन गन्ध दिकमतो भवेत् ।।२९
भूतपंचकरूपोऽयं प्रपञ्च परिकीर्त्यते ।
विराट सर्वसमष्ट् यात्मा व्रह्माण्डमिति च स्फुटम् ।३०।
पृथिवीतत्त् वमारभ्य शिवतत्त्वावधि क्रमाता ।
निलीय तत्वसं दोहे जीव एव विलीयते ।३१।
संशक्तिकः पुनः सृष्टौ शक्तिद्वारा विनिर्गतः ।
स्थूलप्रपंचरूपेण तिष्ठत्याप्रलयं सुखम् ।३२।

निजेच्छया जगत्सृष्टमुद्युक्तस्य महेशितुः ।
प्रथमो यः परिस्पन्दः शिव तत्वं तदुच्यते ।३३।
एषैवेच्छाशक्तितत्वं सर्वकृत्यानुवर्तनात् ।
ज्ञानक्रियाशक्तियुग्मे ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः ।३४।
महेश्वर क्रियोद्रेके तत्वं विद्धि मुनिश्वर ।
ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्यं शुद्धविद्यात्मक मतम् ।३५।

यह सभी गुण क्रम-क्रमसे अपने-अपने भूतोंमें व्याप्त हैं और गंधादि क्रमसे विपरीततासे व्याप्तहो रहेहैं ।२९।। भूत पंचक यही रूप प्रपचकहा गयाहै तथायही प्रपंचसम्पूर्ण समष्टिआत्मा विराट्में ब्रह्माण्ड कहा गया है ।।३०।। पृथिवी तत्वसे शिव तक तत्व समुदाय शक्ति सहित परश्मेवर में लीन होकर, जीवरूप विराट्में लय होता है ।।३१।। तथा सृष्टि कालमें पुनः शक्तिसे निर्गत होकर स्थूल प्रपचके रूपमें प्रलय होने तक स्थित रहता है ।।३२।। स्वेच्छापूर्वक विश्वरचनामें शिवका उद्यतहोना तथा उनके पूर्वकार्य कोही,जो क्रियात्मकहोनाहै शिव तत्व कहा गया है ।।३३।।सम्पूर्ण कृत्यके अनुवर्तनसे इसीको इच्छा शक्ति तत्व कहा गया है। ज्ञान और क्रिया शक्ति मेंज्ञानका आधिक्य होनेसे शिवत्व है तथा ज्ञान की अपेक्षा क्रियाकीअधिकता होनेपर ।।३४।। महेश्वरतत्वकी अधिकता समझो । ज्ञान तथा क्रियाशक्ति की समानता होने पर विशुद्ध ज्ञानरूप शिव तत्व समझना चाहिए ।।३५।।

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्वविभेदधीः ।
शिवो यदा निज रूप परमैश्वर्य पूर्वकम् ।३६।
निगृह्य मायया़ऽशेषपदार्थग्राहको भवेत् ।
तदा पुरुष इत्याख्या तत्सृष्ट्वेत्यभवच्छ्रुतिः ।३७।
अयमेव हि संसारी मायया मोहितः पशः ।
शिवज्ञानविहीनो हि नानाकर्मविमूढधीः ।३८।
शिवादभिन्नं न जगदात्मानं भिन्नमित्यपि ।
जानतोऽस्य पशोरेव मोहो भवति न प्रभोः ।३९।
यथैन्द्रजालिकस्यापि योगिनो न भवेद्भ्रमः ।

गुरुणा ज्ञापितैश्वर्यः शिवो भवति चिद्धनः ।४०।
सर्वकर्तृ त्वरूपा च सर्वजत्वस्वरूपिणी ।
पूर्णत्वरूपा नित्यत्वध्यापकत्वस्वरूपिणी ।४१।
शिवस्य शक्तयः पञ्च संकुचन्द्र प्रभास्वराः ।
अपि संकोचरूपेण विभांत्य इति नित्यशः ।४२।

अपने अङ्ग रूप अवयवों में भेद रूप बुद्धि होने पर मायातत्व कहा जाता है, जब शिव अपनी माया से अपने परमैश्वर्य स्वरूपको ।।३६।।छिपा कर सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण कर लेतेहैं, तबउसे पुरुष नामसृष्टि कहते हैं ।।३७।। यह शिव माया से मोहित होकर जीवरूप होकर अज्ञानवश अपनेको अनेक कर्मकर्त्ता तथा सबसे भिन्न समझता है।।३८।।तथा विश्वको शिवसे अभिन्न नहीं समझता, इस प्रकार मोहित हो जाता है।।३९।।जैसे इन्द्रजालके ज्ञाता को भ्रम नहीं होता, वैसेही गुरु के ज्ञानरूप ऐश्वर्य से सम्पन्न शिष्य शिव रूप को प्राप्त होताहै।।४०।।सम्पूर्ण कर्त्त यस्वरूपा, सर्वज्ञा, पूर्णत्ववालीहोने से नित्यत्व और व्यापकत्व स्वरूप वाली ।।४१।। शिवजी की संकोच युक्त, सूर्य रूपिणी तथा नित्य प्रकाश करने वाली पाँच शक्तियाँ हैं ।।४२।।

पशोः कलाख्यविद्येति रागकालौ नियत्यपि ।
तत्वपन्चकरूपेण भवत्यत्र कलेति सा ।४३।
सा विद्या तु भवेद्रागो विषयेष्वनुरञ्जकः ।४४।
कालो हि भावभावानां भासानां भासनात्मकः ।
कमावच्छेदको भूत्वा भूतादिरिति कथ्यते ।४५।
इदं तु मम कर्तव्यमिदं नेति नियामिका ।
नियतिः स्याद्विभोः शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत्पशुः ।४६।
एतत्पचकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः ।
पञ्चकंचुकमाख्यातमन्तरंगं च साधनम् ।४७।

जीव की कला नाम वाली विद्या राग, कालनियति पंच तत्व रूप से कला में होती है।।४३।।जिसमें कर्त्तापन का कुछ कारण तत्व का साधन

हो वह विद्या और विषयोंमें प्रीति उत्पन्न कराने वालारागकहा गया है। ।४४। भाव तथा अभावोंके क्रमसे परिच्छेदक होकर वहभूतों का आदि होता है ।४५। यह मुझे करने योग्य नहीं, उसी को नियामक कहा है, विभुकी शक्ति को नियति कहते हैं, उसके त्यागसे यह प्राणी पतित हो जाता है ।४६। इस जीव स्वरूप के यह पांच आवरण माने गये हैं यह अन्तरङ्ग साधन वाले तथा पांच कंचुक कहे जाते हैं ।४७।

।। शिव के अद्वैत ज्ञान के निमित्त सृष्टि तत्व कथन ।।

नियत्यधस्तात्प्रकृतेरुपरिस्थः पुमानिति ।
पूर्वत्र भवता प्रोक्तमिदानीं कथमन्यथा ।१
मायया संकुचद्रूपस्तदाधस्तादिति प्रभो ।
इति मे संशयं नाथ छेत्तुमर्हसि तत्वतः ।२
अद्वैतशैववादोऽयं द्वैतं न सहते क्वचित् ।
द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतं परमनश्वरम् ।३
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च शिवः सर्वेश्वरोऽगुणः ।
त्रिदेवजनको ब्रह्मा सच्चिदानन्दविग्रहः ।४
स एव शङ्करो देव स्वेच्छया च स्वमायया ।
संकुचद्रूप इव सत्पुरुषः सत्रभूव ह ।५
कलादिपिञ्चकेनैव भोक्तृत्वेन प्रकल्पितः ।
प्रकृतिस्थः पुमानेषभुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।६
इति स्थानद्वयांतःस्थः पुरुषो न विरोधकः ।
सङ्कुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीमां समष्टिमान् ।७

वामदेव ने कहा-हे प्रभो ! आपने प्रकृति के नीचे नियतितथा ऊपर पुरुष कहा था, अव उसके विपरीत कैसे कहते हो?।१। तथा आपने माया से सकुचित रूप को उससे नीचे कहा है, आप मेरे इस सन्देहको मिटानेकी कृपा करें ।२। स्कन्दजीनेकहा-यह अद्वैत शैववाद द्वैतको कभी सहन नहीं करता,क्योंकि द्वैत नाशवान्और अद्वैत अविनाशी हैं ।३। सवकेकर्तातीनों देवोंको उत्पन्न करनेवाले सर्वज्ञ एक शिव ही सच्चिदानन्द स्वरूपब्रह्म हैं

।४। वही शिव अपनी माया एवं स्वेच्छासे संकुचित रूपके समान पुरुष बनगये हैं।५। पाँचकला आदि होनेकेकारण भोक्ताभी यहीहै, क्योंकि यही पुरुष प्रकृतिमें प्रकृति जन्म गुणोंका भोगने वाला है।६। इस प्रकार दोनों स्थानोंमें स्थित होने वाला पुरुष किसी प्रकार विरोधी नहीं होता तथा अपने रूप, ज्ञान आदि का संकोच करता हुआ समष्टियुक्तहोता है।७।

सत्वादिगुणसाध्यै च बुध्यादित्रियात्मकम् ।
चितम्प्रकृतित्व उदासीत्सत्वादिकारणात् ।८
सात्विकादिविभेदेन· गुणाः प्रकृतिसम्भाः ।
गुणेभ्यो बुद्धिरुत्पन्ना वस्तुनिश्चयकारिणी ।९
ततो महानङ्कारस्ततो बुद्धीन्द्रियाणि च ।
जातानि मनसारूपं स्यात्सङ्कल्पविकल्पकम् ।१०
बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वा च नासिका ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च गोचरः ।११
बुद्धीन्द्रियाणां कथितः श्रोत्रादिक्रमतस्ततः ।
वैकारिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात् ।१२
तानि प्रोक्तानिसूक्ष्माणि मुनिभिस्तत्वदर्शिभि ।
कर्मेन्द्रियाणि ज्ञेयानि स्वकार्यसहितानि च ।१३
विप्रर्षे वाक्करौ पादौ पायूपस्थौ च तत्क्रिया ।
वचना दानगमनविसर्गानन्दसंज्ञिताः ।१४

सत्वादि गुणसेमाध्य बुद्धि आदि त्रयात्मकचित्तही उनगुणों के कारण प्रकृति तत्व है।८। सात्विक आदि के भेदने प्रकृतिकेगुणों कीउत्पत्ति होती है तथा गुणोंसे ही वस्तुके निरूपणकरने वाली बुद्धि की उत्पत्ति है।९। तीन प्रकारके अहङ्कारकी उत्पत्ति बुद्धिसे हुई, उसकाजीवन साधनात्मकअभिमान हैं यह तीनप्रकारके देहवाला हैं, सत्वादि तथा तैजसादिके भेदसे भी उसके तीन प्रकारहैं, अहङ्कार और तेजसे मन, बुद्धि, इन्द्रियकी उत्पत्ति हुई तथा मनका स्वरूप सङ्कल्प विकल्प वाला हैं।१०। बुद्धि, इन्द्रियाँ श्रोत्र त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, स्पर्श, रसतथागन्धावृत्ति और बुद्धि इन्द्रियोंमेंश्रोत्रकेक्रम

से कही गयी है, अहङ्कार से कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई है ।११।१२। तत्वदर्शियों ने उन्हें सूक्ष्म कहा है तथा कर्मेन्द्रिय अपने कार्य के सहित हैं।१३। वाक्, पाणि, पाद, वायु उपस्थ तथा उनकी सम्पूर्ण क्रियायें हैं ।।१४।।

भूतादिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन् क्रमात् ।
तानि सूक्ष्माणि रूपाणि शब्दादीनामिति स्थितिः ।१५।
तेभ्यश्चाकाशवाय्यग्निजलभूमिजनिः क्रमात् ।
विज्ञेयामुनिशार्दूल पंचभूतमितीष्यते ।१६।
अवकाशप्रदानं च वाहकत्वं च पावनम् ।
सरम्भो धारणं तेषां व्यापाराः परिकीर्तिताः ।१७।
भतसृष्टिः पुरा प्रोक्ता कलादिभ्यः कथं पुनः ।
अन्यथा प्रोच्यते स्कन्द संदेहोऽत्र महान्मम ।१८।
आत्मतत्वमकारः स्याद्विद्या स्यादुस्ततः परम् ।
शिवतत्वं मकारः स्याद्वामदेवेति चिन्त्यताम् ।१९।
बिंदुनादी तु विज्ञेयो सर्वतत्वार्थकावुभो ।
तत्रत्या देवत्ता याश्च ता मुने शृणु सांप्रतम् ।२०।

भूतादिकों से तथा अहङ्कार के क्रम से तन्मात्रायें हुई, उन्हीं से शब्दादि रूप प्रकट हुए ।।१५।। हे मुने ! उन्हीं से आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, इन्हीं को पंचभूत कहते हैं ।१६। उनके व्यापार अवकाश देना, वहन करना, पचाना वेग तथा धारण क्रम पूर्वक हैं ।।१७।। वामदेव ने कहा आपने प्रथम भूत-सृष्टि का वर्णन किया है, फिर कला आदि किस प्रकार कहते हैं ? ।१८। आत्म तत्व अकार और विद्यातत्व उकार यह अत्यन्त सन्देह जनक है, शिवतत्व मकार है यह समझो ।।१९।। बिन्दु और नाद तत्व के ही अर्थ है, अब इनके देवताओं को सुनो ।।२०।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ ।
ते हि साक्षाच्छिवस्यैव मूर्तयःश्रुतिविश्रुता ।२१।
इत्युक्तं भवता पूर्वमिदानीमुच्यतेऽन्यथा ।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति सन्देहोऽत्र महान्मम ।२२।

कृत्वा तत्करुणां स्कन्द संशयं छेत्तुमर्हसि ।
इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्य कुमारः प्रत्यभाषतः ।२३
तस्माद्वति समारभ्य भूतसृष्टिक्रमे मुने ।
ताञ्छृणुष्व महाप्राज्ञ सावधानतयाऽदरात् ।२४
जातानि पंचभूतानि कलाभ्य इति निश्चितम् ।
स्थूलप्रपंचरूपाणि तानि भूतपतेर्वपुः ।२५
शिवतत्वादिपृथव्यन्तं तत्वानामुदयक्रमे ।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति वक्तव्यानि क्रमान्मुने ।२६
तन्मात्राणां कलानामप्यैक्य स्यादभूतकारणम् ।
अविरुद्धत्वमेवात्र विद्धि ब्रह्मविदां वर ।२७

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, सदाशिव यह सभी श्रुतियों द्वारा प्रसिद्ध भगवान् शकरकेही स्वरूप हैं ।२१। आपने पहिले ऐसा कहाथा, अब कहते हैं कि यह तन्मात्रा से उत्पन्न होता है, मुझे इसमें अत्यन्त सन्देह है।२२। हे स्कन्दजी ! आप कृपया मेरे इस सन्देह को मिटाइये, यहसुनकरस्कन्दजी कहने लगे ।२३। स्कन्दजी ने कहा-हे मुने ! तस्माद्वासे आरम्भ कर भूत सृष्टि के क्रमसे मैं सब कहता हूँ, तुम उसे सावधान होकर सुनो ।२४। कलाओं से पंचभूतों की उत्पत्ति हुई, इसमें सन्देह नहीं है, स्थूल प्रपंच रूप पञ्चभूत भगवान् शिवके शरीर ही हैं ।२५। शिव तत्व से पृथ्वी तत्व तक, तत्वों के क्रमसे तन्मात्राओं से उत्पत्ति है, उस क्रम को कहताहूँ ।२६। भूतोत्पत्ति वाले धर्म से तन्मात्रा और कला उन्हीं भूतो का कारण है, इसमें कुछ विरोध न समझें ।२७।

स्थूलसूक्ष्मात्मके विश्वे चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
सनक्षत्राश्च सजातास्तथान्ये ज्योतिषाँ गणाः ।२८
ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवता भूतजातयः ।
इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला देयाश्च पितरोऽसुराः ।२९
राक्षसा मनुषाश्चान्ये जंगमत्वविभागिनः ।
पशवः पीक्षणः कीटा पन्नागादिः प्रभेदिनः ।३०

तरुगुल्मलतौषध्यः पर्वताश्चाष्ट विश्रुताः ।
गंगाद्याः सरितः सप्त सागराश्च महर्द्धयः ।३१
यत्किंचिद्वस्तु जातं तत्सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ।
विचारणीय सद्बुध्या न बहिर्मुनिनिसत्तमः ।३२
स्त्रीपुरूपमिदं विश्वं विवशथक्त्यत्मक बुधैः ।
भवादृशैरुपास्य स्याच्छिवज्ञानविशादै ।३३
सर्वं ब्रह्मोत्युपासीत सर्वं वै रुद्र इत्यपिः ।
श्रुतिराह मुने तस्मात्प्रपंचात्मा सदाशिवः ।३४
अष्टत्रिंशत्कलान्याससामर्थ्याद् द्वैतभावना ।
सदाशिवोऽहमेवेति भवितात्मा गुरुः शिवः ।३५

चन्द्र, सूर्य आदिकी ग्रह-नक्षत्रों सहित उत्पति इस स्थूल-सूक्ष्मात्मक विश्व में जैसे हुई है, वैसे हो ।२८। ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवता, भूत, जाति, इन्द्रादि दिक्पाल, देवता, पितर दैत्य ।२९। राक्षस, मनुष्य तथा विभिन्न प्रकार के जंगत जीव, पशु, पक्षी, कीट तथा पतगरूपी ।३०। वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, पर्वत नदी, सागर, महर्षिगण ।३१। जो कुछ भी है, सो सब इसीमें स्थित है, इसे बुद्धि से समझना चाहिए ।३२। यह स्त्री-पुरुष रूप जगत् शिव शक्ति से युक्त है, शिव ज्ञान के त्राता पण्डितों के लिए उपासनीय है ।३३। यह जो कुछ है, वह सभी शिव है ऐसा जानकर उपासना करे शिव ही प्रपञ्चात्मा है ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं ।३४। अड़तीस कलाओ का त्याग करने में शिवजी की अद्वैत भावना करने वाला गुरु शिव ही समझो ।३५।

एवंविचारी सच्छिष्यो गुरुः स्यात्सशिवःस्वयम्।
प्रपंचदेवताथंत्रमंत्रात्मा न हि संशयः ।३६
आचार्यरूपया विप्रः संच्छिन्नाखिलबन्धनः ।
शिशुः शिवपादसक्तो गुर्वात्मा भवति ध्रुवम् ।३७
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणाप्राधान्ययोगतः ।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ।३८

रागादिदोषरहितं वेदसारः शिवो दिशः ।
तुभ्य मे कथितं प्रीत्याद्वैतज्ञानं शिवप्रियम् ।३९
यो ह्यन्यथैतन्मनुते मद्वचो मदगर्वितः ।
देवो या मानवः सिद्धो गन्धर्वो मनुजोऽपिवा।४०
दुरात्मनस्तस्य शिरः छिद्यां समतया ध्रुवम्।
सच्छक्त्या रिपुकालाग्निकल्पया न हि संशयः ।४१
भवानेव मुने साक्षाच्छिवाद्वैतविदां वरः ।
शिवज्ञानोपदेशे हि शिवाचारप्रदर्शकः ।४२

इस प्रकार विचार करने वाले श्रेष्ठ शिष्य से युक्त गुरु शिवही है तथा प्रपंच देवता यन्त्र मन्त्रात्मा गुरुभी शंकर ही है, इसमें संशय नहीं है ।३६। इस प्रकार गुरु की कृपासे सभी बन्धनों से मुक्त होकर शिवपद में आसक्ति वाला शिष्य अवश्य ही पूज्यात्मा बनजाता है।३७। सम्पूर्ण वस्तुगुण प्रधान योगकेकारण समस्त एव पृथक् प्रणवकेअर्थको ही प्रकाशित करती हैं।३८। रागादि दोषों से रहित तथा वेदों का साररूप यही शिवजी का उपदेश है, जो अद्वैत ज्ञान शिवजी का प्रिय है, वह मैंने तुम्हारे प्रतिकहाहै ।३९। जो इससे विपरीत करे अथवा अहङ्कारसे मेरे इस उपदेश को मिथ्यामाने, वह देवता, मनुष्य, सिद्ध अथवा गन्धर्व, कोई भी क्योंन हो ।४०। उस दुरात्मा शत्रु का शिर मैं अपनी कालाग्नि के समान शक्ति से काट डालूँगा, इसमें शंका नहीं है ।४१। हे मुने ! तुम शिवजीके अद्वैत ज्ञानकेज्ञाता तथा शिव ज्ञान के उपदेशक और शिवाचार के प्रदर्शित करने वाले हो ।४२।

यद्देहभस्मसम्पर्कात्संच्छिन्नाघव्रजोऽशुचिः ।
महापिशाचः सम्प्राप त्वत्कृपातः सतां गतिम् ।४३
शिवयोगीतिसंख्यातस्त्रिलोकविभवोभवान् ।
भवत्कटाक्षसम्पर्कात्पशुः पशुपतिर्भवेत् ।४४
तव तस्य मयि प्रेक्षा लोकशिक्षार्थमादरात् ।
लोकोपकारकरण विचरन्तीह साधवः ।४५
इदं रहस्यं परमं प्रतिष्ठितमतस्त्वयि ।

त्वमपि श्रद्धया प्रथवत्वष्वेव सादरम् ।४६
उपविश्य च तान्सर्वान्संयोज्य परमेश्वरे ।
शिवाचारं ग्राहयस्व भूतिरुद्राक्षमिश्रितम्।४७
त्वं शिवो हि शिवाचारी सम्प्राप्ताद्वैतभावतः ।
विचरंल्लोकरक्षायै सुखमक्षयमाप्नुहि ।४८
श्रुत्वेदमद्भुतमतं हि षडाननोक्तंवेदान्तनिष्ठितम् पिस्तु विनभ्रमूर्तिः।
भूत्वा प्रणम्यबहुशो भुविदण्डवत्तत्पादारविंदविरन्मधुपत्वमाप।४९

जिसके शरीर की भस्मके स्पर्श से ही पिशाचत्व को प्राप्त हुए महा-पापी भी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और आपकी कृपासे उन्हे सद्गति प्राप्त होती है ।४३। आप त्रैलोक्यमें महान् ऐश्वर्यशाली शिवयोगी कहे जाते हैं, आपके कटाक्षमात्र से प्राणी शिव स्वरूप होजाता है ।४४। आपलोकोपकार के लिये ही विचरण करते हैं और आपने जो प्रश्न किया,वह सबभी लोक शिक्षार्थ ही है ।४५। यह परम रहस्य आपमें सदाही प्रतिष्ठित रहताहैआप श्रद्धा और भक्ति सहित सदाप्रणव में आदरसे ।४६। अपने मन को शिव में लगाकर विभूति और रुद्राक्ष युक्त शिवाचार को ग्रहणकराओ ।४७। तथा आप शिव के आचार को ग्रहण करते हुए अद्वैत भावमेंरहकरलोक रक्षार्थ विचरण करते हुए अक्षय सुखकोप्राप्त होओ।४८। सूतजी ने कहा-स्कन्दजी के इन वेदांत वचनों को सुनकर वामदेव विनम्र भाग से बारम्वार पृथ्वी में प्रणाम कर उनके चरण कमलों में विहार करते हुए मकरन्दरूपी रस को प्राप्त हो गये ।४९।

।। यतियों का गुरुत्व और शिष्यकरण विधि ।।

श्रुत्वा वेदान्तसारं तद्रहस्य परमाद्भुतम् ।
किं पृष्टवान्वामदेवो महेश्वरसुतं तदा ।१
धन्योगी वामदेवः शिवज्ञावरतः सदा ।
यत्सम्बन्धात्कथोत्पन्ना दिव्या परमपावनी ।२
इति श्रुत्वा मुनीनां तद्वचन प्रेमगर्भितम् ।
सूतः प्राह प्रसन्नस्ताञ्छिवासक्तमना बुधः ।३

धन्या यूयं महादेवभक्ता लोकोपकारकाः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे संवाद च तयोः पुनः ।४।
श्रुत्वा महेशतनयवचनं द्वैतनाशकम् ।
अद्वैतज्ञानजनकं सन्तुष्टोऽभून्माहमुनिः ।५
नत्वा स्तुत्वा च विविध कार्तिकेयं शिवात्मजम् ।
पुनः प्रपच्छ तत्वं हि विनयेन महामुनिः ।६
भगवन्सर्वतत्वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे ।
गुरुत्वं कथमेतेषां यातिना भावितात्मनाम् ।७

शौनकजी ने कहा-वेदान्त के सार और परम रहस्य को इस प्रकार सुनकर वामदेवने स्कन्दजीसे कहा ।१। सदा शिव ज्ञान में रत योगी वामदेव अत्यन्त धन्य है, जिनके कारण यह दिव्य ज्ञानदायिनी परम पवित्र कथा प्रकट हुई ।२। उन मुनियों के इस प्रकार प्रेम गर्भितवचनों से प्रसन्न हो महाज्ञानी सूतजी उनसे कहने लगे ।३। सूतजीने कहा-आप शिव भक्त. धन्यहैं, आपलोकोपकार हैं हे मुनियों ! उन दोनों का संवाद पुनः श्रवण करो ।४। स्कन्दजी के इस प्रकार द्वैतनाशक वचन श्रवण कर महा मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए ।५। शिवजी के पुत्र कार्तिकेयजीको बारम्बार प्रणाम एवं स्तुति करके वामदेवने विनयपूर्वक प्रश्न किया ।६। वामदेवने कहा — हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता हैं । हे षडानन ! इन पूर्वकथित आत्मज्ञानियों का गुरुत्व ।७।

जीवानां भोगमोक्षादिसिद्धि सिध्यति यद्वशात ।
पारम्पर्य्यं विनानैषाम् उपदेशाधिकारिता ।८
एवं च क्षौरकर्मागं स्नानञ्च कथमीदृशम् ।
इति विज्ञापयस्वामिन्संशयं छेत्तुमर्हसि ।९
इति श्रुत्वा कार्तिकेयो वामदेववचः स्मरन् ।
शिवं शिवां च मनसा व्याचष्टुमुपचक्रमे ।१०
योगपट्टं प्रवक्ष्यामि गुरुत्वं येन जायते ।
तव स्नेहाद्वामदेव महद्गोप्यं विमुक्तिदम् ।११

वैशाखे श्रावणे मासी तथाश्वयुजि कार्तिके ।
मार्गशीर्षे च माघे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ।१२
पञ्चम्यां पौर्णमास्यां वा कृतप्राभातिकक्रियः ।
लब्भानुज्ञसुतु गुरुणास्नात्वा नियतमानसः ।१३
पर्यंकशौचं कृत्वा तद्वाससांगं प्रमृज्य च ।
द्विगुणं दोरमाबध्य वाससी परिधाय च ।१४

और प्राणियों की भोग, मोक्ष आदि की सिद्धि जिसके द्वारा होती है उनके उपदेश का अधिकार सम्प्रदान के ज्ञान बिना नहीं होती ।८। इनके क्षौरकर्म और स्नानादिका यह प्रकार किस कारण है, यह समाधान करके मेरे सन्देह मिटाइये ।९। वामदेव जी का प्रश्नसुनकरस्कन्दजीने शिवाशिव को प्रणाम किया और कहना आरम्भ किया ।१०। स्कन्दजीने कहा—अब मैं योग-पद को कहता हूँ, उससे गुरुत्व प्राप्त होता है। यह अत्यन्त गुप्त वार्ता है, तुम्हारी प्रीतिके कारण ही कहताहूँ ।११।वैशाख,श्रावण,आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा माघके शुक्लपक्ष एवं शुभ दिवस में ।१२। पंचमी अथवा पूर्णमासीको प्रातःकालीन कर्म से निवृत्त होकर गुरु आज्ञा प्राप्त कर नियम पूर्वक स्नानकरे ।१३। पर्यंक शौचकर वस्त्रों से शरीर को पोंछकर दुगुने धागे बाँध कपड़े पहिने ।१४।

क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य भस्म सद्यादिमन्त्रतः ।
धारयेद्धि समादाय समुद्धुलनमार्गतः ।१५
गृहीतहस्तो गुरुणा सानुकूलेन वै मुने ।
साशिष्यः सांजलिः स्वाभ्यां हस्याभ्यां प्राङ्मुखोयथा ।१६
तथोपवेष्टितस्तिष्ठेन्मण्डले समलंकृते ।
गुर्वासदवरे शुद्धे चैलाजिनकुशोत्तरे ।१७
अथ देशिक आदाय शंखं साधारमस्त्रतः ।
विशोध्यतस्य पुरतः स्थापयेष्सानुकूलतः ।१८
साधारं शंखमपि च सम्ज्य कुसुमोदिभिः ।
निःक्षिपेदस्त्रवर्मभ्यां शोधितं तत्र सज्जलम् ।१९

आपूर्य पूर्ववत्पूज्ये षडंगोक्तक्रमेण च।
प्रणवेन पुनस्तद्वै सप्तधै वाभिमन्त्रयेत् ।२०।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपौ प्रदर्श्य च।
संरक्षास्त्रेण तं शंखं वर्मणाऽप्यावगुण्ठयेत् ।२१।

फिर चरण धोकर दो बार आचमन करे और सद्योजातादि मन्त्रोंसे मस्तक में भस्म लगाकर, फिर पूरे देह में लगावे ।१५। हे मुने! पूर्वाभिमुख होकर योग्य गुरु के हाथमें हाथ देकर फिर हाथ जोड़कर ।१६। सुन्दर अलंकारयुक्त मन्दिरमे गुरुप्रदत्तमृगचर्मके आसनपर बैठ ।१७। फिर आचार्य आधारसहित शंखको अस्त्र मन्त्रसे लावे और उसे शुद्धकर आगे स्थापित करे।१८। और पुष्पों द्वारा पूजन करे तथा कवच मन्त्रों से शुद्ध जल से आधारसहित शंख को।१९। भरकर षडङ्ग विधि से उसका पूजन करे और प्रणवसे उसे सात बार अभिमन्त्रित करे ।२०। फिर गन्धपुष्पादि से पूजन कर धूप-दीप दिखावे और मुद्रा रक्षा कर कवच मन्त्रसे ढके ॥२१।

धेनुशंखाख्यमुद्रे च दर्शयेदथ देशिकः।
पुनः स्वपुरतः शंखदक्षिणे देश उत्तमे ।२२।
पूजाध्र्योक्तविधानेन सुन्दरं मण्डलं शुभम्।
कुर्यात्सम्पूजयेत्तं च सुगन्धकुमादिभिः ।२३।
साधारं शोधित शुद्धं घट तन्तुपरिष्कृतम्।
धूपित स्थापित शुद्धवासितोदप्रपूरितम् ।२४।
पञ्चत्वक्पञ्चपत्रैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चमिः।
मिलित च सुगन्धेन लेपयत्तं मुनीश्वर ।२५।
वस्त्राम्रदलदूर्वाग्रनारिकेलसुमैस्ततः ।
त धट वस्तुभिश्चान्यैः संस्कृतिममलंकृतम् ।२६।
नृम्लस्कमिति सम्प्रोच्य ग्लूमित्यन्तेऽथ देशिकः।
सम्यग्विधानतः प्रीत्या सानुकूलः समर्चयेत् ।२७।
आधारशक्तिमारभ्य यजनोक्तविधानतः।
पञ्चावरणमार्गेण देवमावाह्य पूजयेत् ।२८।

आचार्य धेनु और शंखमुद्रादिखाकर अपने अग्रक्ष शंख के दक्षिण और पूजनऔरअर्घ्यक विधानसे अष्टमडल करके, उसका सुगन्धित पुष्पोंसेपूजन करे ।२२।२३। आधार को शुद्ध कर उसपर शुद्ध घटरखकर सूत्रलपेटे तथा धूप देकर शुद्ध सुगन्धितजलसे परिपूर्ण करे । २४। पीपल, पिलखन, आम जामुन और बड़ ये पंचछाल तथा पंचपल्लव,हाथी, घोड़े रथ, बाँबी तथा नदीके सङ्गमकी मिट्टी इनमें सुगन्धित द्रव्य मिलाकर कलशपरलेपे।।२५।। वस्त्र, आम्रपत्र, कुशाग्र, नारियल और पुष्पादि से उसे अलंकृत करे।२६। नृमलस्क उच्चारण कर अन्त में ग्लूम कहे और विधिवत् पूजनकरे ।।२७।। आधार शक्तिसे आरम्भ करके यज्ञविधि से देवाह्वानकर पंचावरण विधि से पूजन करे ।।२८।।

निवेद्य पायसान्नज तांबूलादि यथा पुरा ।
नामाष्टकार्चनान्त च कृत्वा तमभिमन्त्रयेद् ।।२९
प्रणवाष्ठोत्तरशतं ब्रह्माभिः पंचभिः क्रमात् ।
सद्यदीशान्तमप्यस्त्रं रक्षितं वर्मणा पुनः ।।३०
अवगुण्ठय प्रदर्श्याथ धूपदीपौ च भक्तितः ।
धेनुयोन्याख्यमुद्रे च सम्यक्तत्र प्रदर्शयेत् ।।३१
ततश्च देशिकस्तस्य दर्भैराच्छाद्य मस्तके ।
मण्डलस्थेशदिग्भागे चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत् ।।३२
तदुपर्य्यासनं रम्यं कल्पयित्वा विधानतः ।
तत्र संस्थापयेच्छिष्यं त शिशुं सानुकूलतः ।।३३
ततः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
शभिषिंचेद् गुरुः शिष्य प्रादक्षिण्येन मस्तके । ३४
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य सप्तधा ब्रह्मभिस्ततः ।
पंचभिश्चाभिषेकांते शंखोदेनाभिवेष्टयेत् ।।३५

पूर्वोक्त प्रकार से खीर,ताम्बूलआदि भेट कर आठ नामों सेपूजनकरने तक उसको अभिमंत्रितकरे । २९। एक सौआठ ओंकार औरईशानादि पंच-

ब्रह्मसद्योजातादि से ईशानतक मन्त्रोंसे कलशका पूजनकरे ।३०।अस्त्रऔर कवचके मन्त्रोंसे ढककर वस्त्र और धूप दीप दिखावे तथा धेनुऔर योनि मुद्रादिखावे ।३१। मस्तकको कुशोंसे ढककर उसके शिरोभाग ईशान की ओर चौकोण मण्डल बनावे ।३२।उसपर मनोहर आसन बिछा कर उसपर योग्य शिष्य को बटावे ।३३। स्वस्तिवाचन कर कुम्भ को उठा कर दक्षिण हाथ से शिष्य के मस्तक पर अभिषेक करे ।३४। प्रथम प्रणव का उच्चारणकर शखके जलसे पंचब्रह्म और सप्तब्रह्मसे सम्पन्नकरे ।३५।

चारुदीप प्रदर्श्याथ वापसां परिभृज्य च ।
नूतनं दोरकौपीनं वाससी परिधापयेत् ॥३६
क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य धृतभस्मगुरुः शिशुम् ।
सस्ताभ्यामवलब्याथ हस्तौ मंडपमध्यतः ॥३७
तदंगेषु समालिप्य तद्भस्म विधिना गुरुः ।
आसने सप्रवेश्याथ कल्पिते स्थापयेत्सुखम् ।३८।
पूर्वाभिमुखमात्मीयतत्वज्ञानाभिलाषिणम् ।
स्वासनस्थो गुरुर्ब्रूयादमलात्मा भवेति तम् ॥३९
गुरुश्च परिपूर्णोऽस्मि शिव इत्यचलस्थितिः ।
समाधिमाचरेत्सम्यङ्मूहर्तं गूढमानसः ॥४०
पश्चादुन्मील्य नयने सानुकलेन चेतसा ।
सांजलिं सस्थितं शुद्धं पश्येच्छिष्यमनाकुलः ॥४१
स्वहस्तं भासितालिप्तं विन्यस्यशिशमस्तके ।
दक्षश्रुतावपदिशेद्धंसः सोऽहमिति स्फुटम् ।४२
तत्राद्याहंपदस्यार्थः शक्त्यात्मा स शिवः स्वयम् ।
स एवाहं शिवोस्मीति स्वात्मानं सम्विभावय ॥४३
य इत्यणोरर्थं तत्वमुपदिश्य ततोदेत् ।
अवांतरगणां वाक्यानामर्थतात्पर्यमादरात् ॥४४
वाक्यानि वच्मि ते ब्रह्मन्सावधानमतिः शृणु ।
तानि धारय चित्ते हि स ब्रूयादिति संस्फुटम् ॥४५

दीपक दिखाकर नवीन डोरे वस्त्र और कोपीनधारणकरावे ॥३६

चरण धोकर दोबार आचमन करे और भस्म लगाकर गुरु अपने हाथ से शिष्य का हाथ पकड़कर मण्डप के बीच में ।।३७।। आसन पर बैठावे वह आसन शिष्य के लिए ही बनाया जाता है, उस पर सुख पूर्वक उसे बैठाना चाहिए, फिर उसके शरीर में भस्म लगाकर।३८। पूर्वाभिमुख किये तत्व ज्ञान के आकाँक्षी अपने वत्स के समान शिष्यसे, अपने आसन पर स्थित हुआ गुरु कहे कि तू निर्मल आत्मा हो ।३९।फिर मैं परिपूर्णशिवहूँ इस भाव से गुरु दो घड़ी पर्यन्त अचल भाव से समाधिस्थ हो ।४०। फिर नेत्र खोल कर सावधान चित्त से हाथ जोड़कर बैठे हुए शिष्यकी ओर प्रेमपूर्वक देखे ।४१।और शिष्य के मस्तक पर अपने भस्म लगे हुए हाथ को रखकर उसके दक्षिण श्रोत्रमें हंस:सोहं मन्त्रका उपदेश करे ।४२।उसमें आदि हंसके अर्थ शक्ति आत्मा स्वयं शिवही है, मैं वही शिव हूँ अपने को ऐसा माने ।४३। तत्वका उपदेश करे, ब्रह्मके परोक्षज्ञान के प्रदर्शक महावाक्यों के तात्पर्य को आदर सहित बतावे ।४४।हे ब्रह्मन् ! अब उन महावाक्यों को कहता हूँ, ऐसा कहे कि तू चित्त में धारण कर ।४५।

।। महावाक्यों का अर्थ और योगपद वर्णन ।।

अथ महावाक्यानि (१) प्रज्ञानं ब्रह्म (२) अहं ब्रह्मास्मि (३) तत्वमसि (४) अयमात्मा ब्रह्म (५) ईशावास्यमिदं सर्वम् (६) प्राणोऽस्मि (७) प्रज्ञानात्मा (८) यदेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह (९) अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि (१०) एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः (११) स यश्चायं पुरुषो यश्चासावादित्ये स एकः (१२) अहमस्मि परं ब्रह्म परंपरपरात्परम् १३ वेदशास्त्रगुरुत्वात्तु स्वपमानन्दलक्षणम् (१४) सर्वभूतस्थितं ब्रह्मतदेवाहं न संशय। (१५) तत्वस्य प्राणोऽहमस्मि (१६) अपां च प्राणोऽहमस्मि (१७) वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि (१८) त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि (१९) सर्वोऽहं सर्वात्मकोऽहं संसारो यद्भूतं यच्च भव्यँ यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वदद्वितीयोऽहम् (२०) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (२१) सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम् (२२) योऽसौ सोऽहँ हन्सः सोऽहमस्मि। इत्येवं सर्वत्र सदा ध्यायेदिति।।

स्कन्धजी ने कहा— अब महावाक्य कहता हूँ- (प्रज्ञान ही ब्रह्म है, (२) में ब्रह्म हूँ, वह तू है, (यह आत्मा ब्रह्म है, (५) यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से अधिष्ठित है, (६) मैंही प्राणहूं (७) आत्मा ज्ञान है,(८) जो वहाँ है सो यहाँ है, जो यहाँ है सो वहाँ है, (९) वह विदित अविदित से परे हैं, (१०) वह तुम्हारा आत्मा ही अन्तर्यामी एवं अमृत है, (११)इस पुरुष में और आदित्यमेंजोहै, यह एक है, (१२) मैंहीपरब्रह्महूँ, (१३ वेदशास्त्र का ज्ञाता गुरु,परेसे परे एवं आनन्दस्वरूपमैं ही हूँ (१४) सर्वभूतोमें स्थित ब्रह्ममैंहीहूँ,इसमें शक नहीं है।(१५)मैंहीतत्वका प्राण तथा पृथ्वी का प्राण हूँ (१६ मैंहीजलोंका प्राणहूँऔरमैंहीतेज काप्राणहूँ,(१७)मैंही वायु का प्राण तथा आकाश का प्राण हूं, (१८) तीनों गुणों का प्राण मैं ही हूं, (१९) मैंहीसर्वात्मक हूं, भूत, भविष्यत्, वर्तमान सर्वात्मक होने से मैं एक अद्वितीय हूँ, (२०) यह सभी ब्रह्म रूप है, (२१) मैं सर्व रूप एवं मुक्त स्वरूप हूँ, (२२) जो यह है सो मैं हूँ, मैं हंस हूँ।

प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्यार्थः पूर्वमेव प्रवोधितः।
अहंपदस्यार्थभूतः शक्तयात्मा परमेश्वरः ॥१
अकारः सर्ववर्णाग्रयः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारो व्योमरूपः स्याच्छक्तयात्मा संप्रकीर्त्तितः ॥२
शिवशक्तयोस्तु संयोगादानन्दः सततोदितः।
ब्रह्मेति शिवशक्तियोस्तु सर्वात्मत्वमिति स्फुटम् ।३
पूर्वमेवोपदिष्टं तत्सोऽदमस्मीत भावयेत्।
तत्वमित्यत्र तदिति तच्छब्दार्थः प्रवोधितः ॥४
अन्यथा सो हमित्यत्र विपरीतार्थभावना।
अहंशब्दस्तु पुरुषस्तदिति स्यान्नपुंसकम्।
एवमन्योन्यवैरुध्यादन्वयो न भवेत्तयोः ॥५
स्त्री पुरूपस्य जगतः कारणं चान्यथा भवेत्।

स तत्वमसि इत्येवमुपदेशार्थभावना ॥६
अयमात्मेति वाक्ये च पुरूपं पदयुग्मकम् ।
ईशेन रक्षणीयत्वादीशावास्यामिद जगत् ॥७

इस प्रकार सर्वत्र सदैव ध्यान करना चाहिए । इसका अर्थप्रज्ञान ब्रह्म है। ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार प्रज्ञान शब्द चैतन्यकावाची है।यह प्रज्ञानरूपआत्मा ब्रह्मही, यही इन्द्रहै, प्रज्ञानरूप ब्रह्ममेंसृष्टि, स्थितिऔरलय भी स्थितहै, प्रज्ञारूप नेत्रवाला लोकहोने से प्रज्ञा (ब्रह्म) सम्पूर्ण विश्व का आश्रयहै । अब अहंब्रह्मास्मिका अर्थ कहताहूँ—अहं पदकाअर्थहैशक्त्यात्मा ईश्वर ।१। अकारसब वर्णोंमैंअग्र प्रकाशित परम शिव स्वरूप है, हकार व्योमरूप शक्त्यात्मक कहाहै ।२। शिवशक्ति के संयोग से आनन्द स्थित रहताहै, ब्रह्मेतिसे शिव और शक्ति की सर्वात्मकता स्पष्ट होती है । ३ । फिर पूर्व उपदिष्ट 'सोहमस्मि' अर्थात् वहमैंहूँकी भावना करे, 'तत्वमसि' में तत्पद का अर्थ शक्त्यात्मक समझो इसी प्रकार ब्रह्मास्मिकाअर्थ भीब्रह्म शब्दसे ग्रहणकरे ।४। अन्यथा अहं ब्रह्मास्मितिमें शुद्धब्रह्मका अभेद प्रतीत होता है उसके विवरण वाक्यमें शक्त्यात्मक अभेदकी भावनाका उपदेश है । यदि कहेंकि शुद्धब्रह्मकी अभेदभावनाके निमित्त अहमस्मिका तात्पर्य हो परन्तुशक्त्यात्मक अभेदनहींहै, उसका समाधानहैंकि अहंपदका अर्थ-भूत शक्त्यात्मक ईश्वरहै, ऐसा पहले कहा होनेसे अलिंग भेदके विरोधीमत होनेसे अहं पदार्थका अभेदान्वयनहींहो सकता: क्योंकि 'अहं' पुल्लिगऔर 'तत्'नपुन्सकहै इसप्रकारपरस्पर विरोधी होनेसे दोनोंका अन्वय नहीं हो सकता ।५। नहीं तो स्त्री पुरुषरूप विश्वका कारण भी अन्यथा होजायगा। इसलिए यहां तत्पद से शक्त्यात्मक का ही ग्रहण होगा । 'तत्वमसि' से और स आत्मा' से 'स' की अनुवृत्तिकर सशक्त्यात्मा यह ब्रह्मही है, इस प्रकार 'त ब्रह्मरूप त्वमसि श्वेतकेतो' श्रुतिका अर्थ है। उद्दालकऋषि ने छन्दोग्यके छठे अध्यायमैं श्वेतकेतुके प्रति यह कहा है।६। 'अयमात्मा ब्रह्म' में दोनों पद पुल्लिग हैं । आत्मा ओंकारही है, शिवजीसे रक्षित होने के कारण सम्पूर्ण विश्व 'ईशावास्यम्' कहा गया है ।७।

प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रेति चिन्तयेत् ।
यः स एवेति विद्वद्भिः सिद्धान्तिभिरिहोच्यते ॥८
उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः ।
इति पूर्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः ॥९
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि ।
अस्मिन्वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना ॥१०
यथा स्यात्तद्वदेवात्र वक्ष्यामि श्रूयतां मुने ।
अयथाविदिताच्छब्दो पूर्वगद्विदितादिति ॥११
प्रवृत्तः स्यात्तद्विदितात्तथैवाविदितात्परम् ।
अन्यदेव हि ससिद्धयै न भवेदिति निश्चितम् ॥१२
एष त आत्मांतर्यामी योऽमृतश्च शिवः स्वयम् ।
यश्चायं पुरुषे शभुर्यश्चादित्ये व्यवस्थितः ॥१३
स चासो सेति पार्थक्यं नैकं सर्व स ईरितः ।
सोपाधिद्वयमस्यार्थं उसचारात्तथोच्यते ॥१४

'प्राणोस्मि प्रज्ञानात्मा'का तात्पर्यप्रज्ञानात्मकस्वरूपऔर प्राणपदार्थ हैंहोहूं। कौषीतकी ब्राह्मणके उपनिषदका वाक्यहैजो प्रतर्दननेदिवोदास के पुत्र से कहाथा। यहाँ 'प्राण' शब्दपरब्रह्मका वाचकही है, कार्य कारण उपाधिसे मुक्त चैतन्य जगत्धर्मकेसमान भासमान है, अज्ञानियों को वही अपने आत्मा में स्थित तथा अन्यलोकमें जगत् के कारणतत्वमात्र से प्राप्त है।८। कारणोपाधि ईश्वर है वही कार्योपाधि जीवहै सिद्धान्तवेत्ताओं का यही मतहै। 'यदमुत्र तदन्विह' में कारणोपाधि युक्तहै वही कार्योपाधि में जीवरूप से स्थितहै, विद्वानों का यहीमतहै।जोकार्यकारणरूप उपाधिसेयुक्त ससारधर्म के समान दिखाईदेता है, ज्ञानीजनोंको अपनीआत्मा में वही इष्ट है तथा जो परलोक में है वह नित्य, विज्ञानघनस्वभाव तथा विश्व.धर्म से रहित ब्रह्महै। जोवहाँ इसआत्मामेंहै, वहीनामरूप, कार्य कारणयुक्तसमझो।९। 'अन्यदेवेति' इस वाक्य में मोक्षफलकी जैसे विपरीत भावना होती है, उसे कहताहूं सुनो।१०। ,अन्यदेवेति इसवाक्य इतिशब्दअर्थ में अयथा-

र्थता से कारण ।११। ज्ञातादित' अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार वाक्यान्तर में अविदितादिति शब्दःअपूर्व विदितादिति अर्थमें पूर्वमविज्ञातादिति अर्थ में प्रवृत्त होती है। इसी प्रकार भेद बुद्धिकी निवृत्ति से विपरीत फलकी भावना हो सकती है तथा जो विदित और अविदित से परे कोई अन्य सिद्धि हो तो उसकी सिद्धि में सम्यक् फलकी प्राप्ति सम्भव नही हैं। इस कारण वस्तु में कार्य-कारणात्मक ब्रह्म ही है। उपाधिसे भेद व्यवहृत होता है परन्तु बुद्धि के न होने से फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।१२। एष ते आत्मेति' यह बृहदारण्यक का वाक्य है इसका अर्थहै—यह तेरा अन्तर्यामी आत्मा नित्य एवंस्वयं शिवस्वरूप है, जो पृथिवी में स्थित एवं पृथिवी के अन्तर में हैं,परन्तु पृथिवी उसे नही जानती, वही तेरा अन्तरात्मा अमृत रूप है अमृत और अन्तर्यामीसे परमात्मा ही है। तैतरीय ब्रह्म वल्ली के अनुसार जो आनन्दमय शिवअदित्य के देह में स्थित हैं।१३। जो प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष है वह एक ही है, उसमें अनेकत्व या पृथक्तव नही। यदि कहें कि सबके अधिष्ठान शिव पुरुषादिका अधिष्ठान नहीं हो सकती तो पुरुष से अधिष्ठित और आदित्त से अधिष्ठितरूप दो उपाधि वाला होने से इस वाक्य का अर्थ आरोप से कहा है ।।१४।।

त शम्भुनाथ श्रुतयो वदन्ति हि हिरण्ययम् ।
हिरण्यबाहव इति सर्वाङ्गस्योपलक्षणम् ।१५।
अन्यथा तत्पतित्वं तु न भवेदिति यत्नतः ।
य एषोन्तरिति शंभुश्छन्दोग्ये श्रूयते शिवः ।१६।
हिरण्यश्मश्रु वांस्तद्वद्धिरण्यमयकेशवान् ।
नखमारभ्य केशान्तं सर्वत्रापि हिरण्मयः ।१७।
अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम् ।
इति वाक्यस्य तात्पर्यं वदामि श्रूयतामिदम् ।१८।
अहपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा शिव ईरितः ।
स एवास्मीति वाक्यार्थयोजना भवतिध्रुवम् ।१९।
सर्वोत्कृष्टश्च सर्वात्मा परब्रह्म स ईरितः ।
यरश्चाथापरश्चेति परात्परमिति त्रिधा ।२०।

रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रोक्ताः श्रुत्यैव नान्यथा ।
तेभ्यश्च परमो देवः परशब्देन बोधितः ।२१।

श्रुति उन शिवको हिरण्यमय कहती हैं,यथार्थ में निर्गुण शिव हिर-ण्यमय नहीं हो सकता । यदि कहें कि 'हिरण्यबाहवे' से बाहमात्र के लिए हिरण्य कहा है यह सर्वाङ्ग का उपलक्षण है ।१५। फिर हिरण्यपति किस प्रकार होगया ?तो सुनो,यदि सर्वागका लक्षण न होता तो पतित्व उपचा-रादि से भी न गनता,इससे हिरण्यवर्णय ही ठीक है, छान्दोग्य सम्मत यही है ।१६।ईश्वर में सुवर्णरूप विकार नहीं हो सकता, सुवर्ण प्रचेतन है,अचेतन पाप रहित होता है,फिर निषेध कैसा ? चक्षु के ग्रहणन होने से उसका अर्थ ज्तोतिर्मय हो सकताहै । सबके देह में शयन करने अथवा अरन से सम्पूर्ण विश्वको परिपूर्ण करनेसे उसे सावधान चित्त वालों को ही दिखाई पड़ने वाला समझे ।१७। नखसे केशके अग्र भाग तक ज्योति स्वरूप, तुरीय ब्रह्म एवं परात्पर मैं हूं । इसका तात्पर्य कहता हूँ।१८। अहं पदका अर्थ शक्ति सम्पन्न शिव है,वही मैं हूँ,इससे वाक्यार्थ होगया ।१९।पर ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ तथा सबकी आत्मा होने से कहा है,वह पर, अपर और परात्पर इन तीन भेदों वाला है ।२०। श्रुति ने उन्हीं को रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु कहा है, इन रुद्रादि तुरीय पर शब्द के द्वारा पर ब्रह्म जाना है ।।२१।।

वेदशास्त्रगुरूणं च वाक्याभ्यासवशाच्छिरोः ।
पूर्णानन्दमयः शंभुः प्रादुर्भूतो भवेद्धृदि ।२२।
सर्वभूतस्थितः शंभुः स एवाहं न संशयः ।
तत्वजातस्य सर्वस्य प्राणोऽस्म्यह महं शिवः ।२३।
इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्वत्रयस्य च ।
प्राणोऽस्मीत्यत्र पृथ्व्यादिगुणान्तग्रहणान्मुने ।२४।
आत्मतत्वानि सर्वाणिग्रहीतानीति भावय ।
पुनश्च सर्वग्रहणं विद्यातत्वे शिवात्मनोः ।२५।
तत्वयोश्चास्म्यह प्राणः सर्वः सर्वात्मको ह्यहम् ।
जीवस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽह तस्य सर्वदा ।२६।

यद्भूतं यच्च भाव्यं यद् भविष्यत्सर्वमेव च।
मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि ।२७
श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमखोद्गता।
सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ।२८

वेद, शास्त्र तथा गुरुवाणी के, अभ्यासंसे शिष्य के हृदय में पूर्णानन्द वाले शिवजी प्रादुर्भूत होते हैं।२२। वह सब प्राणियोंमें स्थित शिवमैंही हूं, सम्पूर्ण तत्वोंका प्राण एक मैं ही शिव हूं।२३। इसप्रकारकहकर आत्मविद शिवाख्य तीनतत्वोंका वर्णनकरे। 'प्राणोऽस्मि' इस अर्थ के प्रतिपादन करने वाले वाक्यमें।२४। पृथिवी आदि गुणों के अन्तर्ग्रहणसे पृथिवीका प्राण मैं हूँसे आरम्भकर त्रिगुणका प्राण मैंहूँ, कहने से सभी आत्मतत्त्वों का ग्रहण हो जाता है,ऐसी भावनाकरेफिरआत्मविद्या और शिवतत्वका भली प्रकार ग्रहण करके।२५। भावना करे कि सब तत्त्वोंका प्राण मैं ही हूँ, सर्वात्मक होने से मैं ही सबहूँ,अथ ससारीका अर्थ कहतेहैं-जीवरूप से अन्तर में घुसा हुआ होने से मैं जीव तथा संरक्षणशीलहूँ ।२६। 'यद्भूत' उस जीव का भूत, वर्तमान, भविष्य मैं हीहूँ ।२७। स्वयंशिवके मुखसे उद्भूत श्रुतिकहती है कि यह सम्पूर्ण जगत् आदिरुद्रही है, इस प्रकारमन्मय होनेके कारण सब कुछ मेराही स्वरूप है। सर्वात्म होने के कारण मैं अद्वितीय हूँ।२८।

स्वस्मात्परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेव हि।
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः।२९
पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोहमेव हि।
पशवोमत्प्रसादेन मुक्ताः मदभावमाश्रिताः ।३०
योऽसौ सर्वात्मकः शम्भुःसोऽह सन्स शिवोऽस्म्यहम्।
इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ।३१
इतीशश्रुतिवाक्यामुपदिष्टार्थमादरात् ।
साक्षाच्छिवैक्यदं पुन्सां शिशोर्गुरुपादिशेत्।३२
आदाय शख साधारमस्त्रमन्त्रेण भस्मना।
शोध्य तत्पुरतः स्थाप्य चतुरस्त्रे समर्चिते ।३३

ओमित्यभ्यर्च्य गन्धाद्यै रस्त्रं वस्त्रोपशोभितम् ।
वासितं जलमापुर्य सम्पूज्योमिति मंत्रतः ।३४
सप्तधवाभिमन्त्र्यार्थं प्रणवेन पुनश्च तम् ।
यस्त्वन्तरं किंचिदपि कुरुते सोऽतिभीतिभाक् ।३५

सर्वोत्कृष्ट तथा अन्तर्यामी आदि गुणों वाला होने से मैं अद्वितीय हूं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का अर्थ पहिलेही कहाजाचुका है । उसब्रह्मसेतेज, जल आदिकी उत्पत्ति हुईहै, इसीलिये यहतज्जकहे गयेहैं तथा प्रतिलोम से लीन होजाते हैं ।२९। इस प्रकार इस विश्वका ब्रह्मरूप प्रतिपादन किया है तथा सब पदार्थरूप होने से पूर्ण हैं, मेरी कृपा से पशु भी मोक्ष को प्राप्त होकर मेरे पदको पागये ।३०। यह जो कुछ है, सो मैं हूँ, इसका अर्थ सुनो । जो शक्त्यात्मा शिवहैं वहमैं हूँ, हंस शिव मैं हूँ, यह ईशावास्यकीश्रुतिहै ।३१। इसप्रकारआदर पूर्वकगुरु श्रुतिकेअर्थोंका शिवपरत्वउपदेश अपने शिष्य के प्रतिकरे ।३२। तथा आधार सहित शंखको ग्रहण कर अस्त्रमंत्रात्मक भस्म से शोधकर उसके समक्ष चौकोर मण्डल में स्थापित करे ।३३। प्रणव के उच्चारणपूर्वक गन्धादिसे पूजनकरे तथा अस्त्रमंत्र और वस्त्रसे मार्जन कर सुगन्धितजल भरकर ॐका उच्चारण करे ।३४। फिर प्रणव से ही सात बारअभिमन्त्रितकरे,इसमें अन्तरकरने वाले कोभय उपस्थित होता है ।३५।

इत्याह श्रुतिसत्तत्वं दृढ़ात्मा गतभीर्भव ।
इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवं ध्यायन्समर्चयेत् ।३६
शिष्यासनं सम्पूज्य षडुत्थापनमार्गतः ।
शिवासने च संकल्प्य शिवमूर्ति प्रकल्पयेत् ।३७
पञ्च ब्रह्माणि विन्यस्य शिरःपादावसानकम् ।
मुण्डवक्त्रकलाभेदैः प्रणवस्य कला अपि ।३८
शष्टत्रिंशन्मंत्ररूपाः शिष्यदेहेऽथ मस्तके ।
समावाह्य शिवं मुद्राः स्थापनीयाः प्रदर्शयेत् ।३९
ततश्चाङ्गनि विन्यस्य सर्वज्ञानीत्यनुक्रमात् ।
कल्पयेदुपचारांश्च षोडशासनपूर्वकान् ।४०

पायसान्नञ्च नैवेद्यं समर्प्योमग्निजायया ।
गंडूषाचमनार्घ्यादि धूपदीपादिक क्रमात् ।४१
नाभाष्टकेन सम्पूज्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
जपेद्ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वै वारुणिस्ततः ।४२

श्रुति के इस आशय के विपरीत न करे, हे शिष्य ! इसलिए तू दृढ़ात्मा और भयविहीन हो इस प्रकार शिष्यसे कहकर शिवजी का ध्यान करता हुआ शिष्यका देवरूप से पूजन करे ।३६। षडध्व विधिसे शिष्य के आसन को पूजकर शिवके आसन और स्वरूपकी कल्पनाकरो ।३७। शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद पर्यन्त पञ्चब्रह्म को स्थिति करे और मूड तथा मुख विषयक प्रणव की ।३८। अड़तालीस ब्रहम रूप कला शिष्य के शरीर में स्थितकरे, उसकेमस्तकमेंशिवजीकाआहवानकर उनकलाओंकोस्थापितकरे औरमुद्रादिखाकर ।३९। षडङ्गन्यास पूर्वकषोडशउपचारको कल्पना करे । ।। ४० ।। खीर अर्पण कर, कुल्ला, आचमन, धूप, दीप आदि क्रम पूर्वक दे ।। ४१ ।। आठ नामों से पूजन करे, वेदपाठी ब्राह्मणों के सहित जप करे ।४२।

यो देवानामुपक्रभ्य यः परः स महेश्वरः ।
इत्येतै तस्य पुरतः कह्लारादिविनिर्मितान् ।४३
आदाय मालामुत्थाय श्रीविरूपाक्ष निर्मिते ।
शास्त्रे पञ्चाशिकेरूपेसिद्धिस्कन्धं जपेच्छनैः ।४४
ख्यातिः पूर्णोऽहमित्येत सानुकूलेन चेतसा ।
देशिकस्तस्य शिष्यस्य कंठदेशे समर्पयेत् ।४५
तिलक चन्दनेनाथ सर्वाङ्गालेपनं पुनः ।
स्वसम्प्रदायानुगुण कारयेच्च यथाविधि ।४६
ततश्च देशिकः प्रीत्या नामश्रीपादसंज्ञितम् ।
छत्रञ्च पादुकां दद्याद् दूर्वाकल्पविकल्पनम् ।
व्याख्यातृत्वञ्च कर्मादि गुर्वासनपरिग्रहम ।
अनुगृह्य गुरुस्तस्यै शिष्याय शिवरूपिणे ।४८
शिवोऽहमस्मीति सदासमाधिस्थो भवेति तम्।
संप्रोचथ स्वयं तस्मै नमस्कार समाचरेत् ।४९

'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्' से आरम्भ कर 'प्रकृतिलीनो य: पर: स महेश्वर:' तकजपे और श्वेत कमल आदि से निर्मित ।४३। माला लेकर शिवोक्त पंचमुख स्वरूप प्रतिपादक शास्त्र से स्थित सिद्धाख्य स्कन्ध ।४४। ख्याति पूर्णाहुतिके अन्ततक धीरे-धीरे जपे और मनोहर गंधादि से सम्पन्न जाँघ तक लम्बी उस मालाको कण्ठ में धारण करावे ।४५। शिष्य तिलक और सर्वांग में चन्दन लगावे, सम्प्रदाय की विधि के अनुसार ।४६। गुरु श्रीपादादि नाम करण शिष्य का करे छत्र और पादुका देकर तूर्वाचन का प्रकार ।४७। अर्थात् उसका विशेष व्यवस्थापन कर्मारम्भ में गुरु आसन का परिग्रह है, गुरु उसांशवरूपशिष्य से अनुग्रह पूर्वक कहे ४८। मैं सदा शिव हूँ, इस प्रकार कहकर स्वयं उसे नमस्कार करे ।४९।

शिष्यस्तदा समुत्थाय नमस्कुर्याद् गुरुं तथा ।
गुरोरपि गुरुं तस्य शिष्यांश्च स्वगुरोरपि ।५०
एवं कृतनमस्कारं शिष्यं दद्याद् गुरुः स्वयम् ।
सुशीलं यतवाचं त विनयावनतं स्थितम् ।५१
अद्‌यप्रभृति लोकानामनुग्रहपरो भव ।
परीक्ष्यवत्सरं शिष्यमंगीकुरु विधानतः ।५२
रागादिदोषान्सन्त्यज्य शिवघ्यानपरो भव ।
सत्सम्प्रदायससिद्धैः संगं कुरु न चेतरैः ।५३

नमस्कार अपने सम्प्रदाय के अनुरूपकरे और शिष्यभी उठकर गुरु को नमस्कार करे ।५०। इस प्रकार नमस्कार करने पर, वाणी को रोक कर विनम्र हुए सुशील शिष्यको ।५१। गुरु स्वयं जप करावे और कहे कि तुम आजसे प्राणियों पर अनुग्रह करते रहना, इस प्रकार उसकी एक वर्ष तक परीक्षा करे, फिर कहे कि मेरे वाक्योंको स्वीकर करते रहना ।।५२।। रागादि दोषों का त्याग कर शिव के ध्यानमें तत्पर रहना तथा सत्सम्प्रदाय के मनुष्यों की सङ्गति करना ही सर्वोत्तम है ।५३।

—◊—

६

वायवीय-संहिता (पूर्वखण्ड)

।। षट्कुल वाले मुनियों का 'पर-तत्व' सम्बन्धी प्रश्न ।।

पुरो कालेन महता कल्पेऽतीते पुनः पुनः ।
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि ।१
प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्धासु प्रजासु च ।
मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम् ।२
इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत ।
परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः ।३
तेऽभि जग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम् ।
यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूयमानः सुरासुरैः ।४
मेरुशृंगे शुभे रम्ये देवदानवसंकुले ।
सिद्धचारणसंबाधे यक्षगन्धर्वसेविते ।५
विहङ्गसंघसंघुष्टे मणिविद्रुमभूषिते ।
निकुंजकन्दरदरीगहानिर्झरशोभिते ।६
तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।७

सूतजी ने कहा-बहुत समय और अनेक कल्पों के व्यतीत होने पर श्वेत-वाराह-कल्प उपस्थित, हुआ सब सृष्टि निर्माण-कार्य में ।१। यह विश्व-निर्माण की वार्ता तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए षटकुलोत्पन्नवेसबमुनिपरस्पर कहने लगे ।२। यह परब्रह्महै,यह नहोंहै, इस प्रकार अत्यन्त विवाद होने

लगा परन्तु ब्रह्म निरूपण जैसे कठिनविषय में कोई निश्चयपर नहीं पहुंचे ।३। तबवे सभी अविनाशी ब्रह्माजी के दर्शनार्थ गए वहां सुरासुर से स्तुति-प्राप्त ब्रह्माजी विराज रहेथे ।४। मनोहर सुमेरु पर्वत की चोटी पर जहाँ अनेक देव दानवरहते हैं, सिद्ध चारणोंसे सम्पन्न यक्ष गन्धर्वोंसे सेवायमान ।५। अनेक पक्षियों से युक्त, मणिमूंगों से परिपूर्ण, कन्दराओं गुफाओं ओर झरनों से सुशोभित ।६। अनेक मृगों से परिपूर्ण, दशयोजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा ब्रह्मवन है ।७।

सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम् ।
मतभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपन् ।८
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सर्गस्थित्यंतहेतवे ।
पुरुषाय पुरुणाय ब्रह्मणे परमात्मने ।९
नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे ।
त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारणे ।१०
नमो ब्रह्माण्डदेहाय ब्रह्माण्डोदरवर्तिने ।
तत्र संसिद्धकार्याय ससिद्धकरणाय च ।११
नमोऽस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने ।
सर्वात्मदेहसंयोगवियोगविधिहेतवे ।१२
त्वयैव निखिल सृष्टं सहृत पालितजगत् ।
तथापि मायय नाथ नविद्मस्त्वांपितामह ।१३
एवं ब्रह्मा महाभागैर्महर्षिभिर भिष्टुतः ।
प्राह गंभीरया वाचामुनीन्प्रह्लादयन्निव १४

उसमें श्रेष्ठ रसयुक्त जलों से भरे हुए सरोवर हैं तथा प्रफुल्लित वृक्षों पर मदमत्त भँवर गुंजार कर रहे हैं ।८। वहाँ पहुँचकर ऋषियों ने कहाँ हे सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता त्रिमूर्ति स्वरूप आपको नमस्कार है ।९। प्रकृतिको विषम अवस्था के कर्त्ता तथा महदादि विकारोंके कर्ता होकरभी विकारहीन ।१०। ब्रह्मांड के प्रवर्तक होकर भी ब्रह्मांड के मध्य स्थित आपको नमस्कारहै,ब्रह्मांडमें धूतात्मक सृष्टिआदिकेकर्त्ता आपको नमस्कार

है ।११। सर्वलोक स्वरूप तथा सर्वद्रष्टा आपको नमस्कारहै. सम्पूर्ण आत्मा देहके सयोगवि धके कारण ।१२। आपने ही यह सम्पूण विश्व प्रगट करके, पालन और लय कियाहै, उन आप पितामहको हम मायाके वशीभूतहोकर नहीं जानते ।१३। सूतजी बोले कि इस प्रकार ऋषियों द्वारा ब्रह्माजो की प्रार्थना करने पर ब्रह्मा जी गम्भीर वाणी से कहने लगे ।१४।

ऋषियो हे महाभागा महासत्वा महौजसः ।
किमर्थी सहिताः सर्वे यूयमत्र समागता ।१५
तमेववादिन देवं ब्रह्माणं ब्रह्मवित्तमाः ।
वाग्भिर्विनयगर्भाभिः सर्वे प्रांजलयोऽब्रुवन् ।१६
भगवन्नंधकारेण महता वयमावृताः ।
खिन्नाविवदमानाश्च न पश्यामोऽत्र यत्परम् ।१७
त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम् ।
त्वया ह्यविवितं नाथ नेह किंचन विद्यते ।१८
कः पुमान् सर्वसत्वेभ्यः पुराणः पुरुषः परः ।
विशुद्धः परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः ।१९
केनैव चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ।
तत्व वद महाप्राज्ञ स्वसदेहापनुत्तये ।२०

ब्रह्माजी ने कहा-हे अत्यन्त तेजस्वी ऋषियो ! तुमसबएकत्र होकर किस कारण यहाँ आएहो ? ।१५। ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर उन ऋषियों ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उनसे कहा ।१६। मुनियोंने कहा हे प्रभो ! हम घोरअन्धकारमें पड़ेहैं और पारस्परिकविवाद से खिन्नहैं, परन्तु परमतत्व को अभीतक नहीं जान सके ।१७। आपही सम्पूर्ण विश्व के कर्ता तथा सबके कारण के कारणहैं,आपको संसार में अविदित कुछभी नहीं है सब जीवोंसे पुरातन आपके सिवा अन्यकौन है ? विशुद्ध, परिपूर्ण, शाश्वत नित्य परमेश्वर ।१९। जगत्को किस अदभुत कर्मसे निर्माणकरता है, उसे आप तत्वपूर्वक कहें तथा वह अन्त में कहाँ लीन होजाता है ? यह प्राणी किसके वश में है ? इन सबका नियोजक कौन है ! उसे हम किस प्रकार देख सकते है ? ।२०।

।। शिव हीं 'परतत्व' है ।।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आन्नदं यस्य वै विद्वान्न विभेति कुतश्चन ।१
यस्मात्सर्वमिद ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सप्रसूयते ।२
कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ।
न संप्रसयतेऽन्यस्मात्कुतश्चन कदाचनः ।३
सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ।
सर्वैर्मुमुक्षभिर्ध्येयः शंभुराकाशमध्यगः ।४
योऽग्रे मां विदधे पुत्रं ज्ञानं च प्रहिणोति मे ।
तत्प्रसादान्मया लब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ।५
ईशो वृक्ष इव स्तब्धो य एको दिवि तिष्ठति ।
येनेदमखिलं पूर्णं पुरुषेण महात्मान ।६
एको बहूनां जंतूनां निष्क्रियणां च सक्रियः ।
य एको बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः ।७

ब्रह्माजीने कहा-मन के सहित वाणी उसे प्राप्त न करके लौट आती और जिसके आनन्द को पाकर विद्वान् किसी प्रकार भी नहीं डरता ।१। जिसकेद्वारा ब्रह्मा, विष्ण, रुद्र इन्द्र आदि भूतेन्द्रियके सहित प्रथम उत्पन्न होते हैं ।२। जो सृष्टि आदिकारणोंका ध्याता नारायण है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तुकिसी ने भी उत्पन्न नहीं की ।३। वह सभी ऐश्वर्यों से युक्त सर्वेश्वर है सभीके द्वारा ध्यान करने योग्य तथा हृदयाकाशकेबीचमें स्थित है ।४। जो सबसे पहले मुझपुत्र को उत्पन्न कर ज्ञान प्रदान करता हैं, यह प्रजापतिका पदमुझे उन्हीं कीं कृपासे मिला है ।५। वह एक ही ईश्वर आकाशमें वृक्षके समान निश्चलरूपसे स्थित है उसी महान पुरुष से यह ब्रह्माण्ड परिपूर्ण है ।६। जो स्वयं क्रिया हीन रहकर अनेकजीवोंसेसत्क्रिया कराता है, एक ही अनेक बीज रूपोंको कर्म कराता है, वह महेश्वर है ।७।

जीवैरेभिरिमांल्लोकान्सर्वानीशो य ईशते ।
य एको भगवान्रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।८।
सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः ।
अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ।९।
यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणान्यखिलान्यपि ।
अनन्तशक्तिरेवैको भगवानधितिष्ठति ।१०।
न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः ।
स्वाभाविकी परा शक्तिर्नित्यज्ञानक्रिये अपि ।११।
यदिदं क्षरमव्यक्तय दप्यमृतमक्षरम् ।
तावुभावक्षरात्मानावेको देवः स्वयं हरः ।१२।
ईशते तदभिध्यानाद्योजनः सत्वभावन ।
भूयो ह्यस्यपशोरन्ते विश्वमाया निवर्त्तते ।१३।
यस्मिन्नभापते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः ।
यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुति ।१४।

जो सब लोकों को जीवों से परिपूर्णकर स्वयं उसका शासक है, वही भगवान् रुद्र हैं, अन्य कोई नहीं है ।८। जो भक्तों के हृदय में सदैव स्थित होकर भी किसी को दिखाई नहीं देता ।९। आत्मा और बुद्धि से युक्त अनेक कारणों में एक ही अनन्त शक्ति वाले वे प्रभुस्थित है ।१०। सृष्टि से पूर्व यह विश्व अन्धकारमय था उस समय दिन, रात, सत् असत् कुछ भी नहीं था, केवल शिव ही थे । उनके समान अथवा अधिक अन्य कोई नही है, उनकी पराशक्तिमें नित्य ज्ञान और क्रियास्थित है ।११। यह सम्पूर्ण भूत अक्षर कूटस्थ ब्रह्म है, वह अव्यक्त है, अक्षर और आत्मा यह दोनों एक ही महेश्वर देव है ।१२। जो मनुष्य सद्भावपूर्वक शिवका ध्यान करेगा, उसकी अन्त समय माया निवृत होगी और उसे मोक्ष मिलेगी ।१३। जिसमें विद्युत सूर्य, चन्द्र कोई भी प्रकाश नहीं करते, उसकी कान्ति से ही यह संपूर्ण विश्व प्रकाशित है, यह सनातन श्रुति है ।१४।

एको देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्य परमं किंचित्पद समधिगम्यते ।१५।

अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः ।
स्वतन्त्रः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ।१६।
अप्राकृतवपुः श्रीमाल्लक्ष्यलक्षणवर्जितः ।
अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः ।१७।
सर्वोपरिकृतावासः सर्वावासश्च सर्ववित् ।
षड्विधाध्वमयस्यास्य सर्वस्य जगतः पतिः ।१८।

एक ही महेश्वर देव जानने के योग्य है, उसका परमतत्व किसी के भी जानने में नहीं आपाता ।१५। इनका आदि-अन्त नहीं है, निर्मलस्वभाव स्वतन्त्र तथा परिपूर्ण हैं तथा चराचर जगतको अपनी इच्छाके वशीभूतरखे हुए हैं ।१६। इनका शरीर प्रकृतिजन्य नहीं है, यह लक्ष लक्षण से परे हैं, स्वयं माया से सम्बद्ध होकरभी भक्तों को मोक्ष देने वाले हैं, काल स्वरूप न होकर भी कालको प्रेरणा करते है ।१७। उसका स्थान सर्वोपरि है, वे सभी में अधिष्ठित हैं, सबमें निवास करके भी सबके ज्ञाता हैं, छःमार्ग और विश्व के ईश्वर हैं ॥१८॥

उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ।
अनन्तानन्दसन्दोहमकरंदमधुव्रत ।१९।
अखडजगदंडानां पिंडीकरणपण्डितः ।
औदार्यवीर्यगांभीर्यमाधुर्य मकरालयः ।२०।
नैवास्य सदृश वस्तु नाधिकं चापि किंचन ।
अतुलः सर्वभूतानां राजराजश्च तिष्टति ।२१।
अनेन चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ।
अन्तकाले पुनश्चेद तस्मिन्प्रलयमेष्यति ।२।
अस्य भूतानि वश्यानि अयं सर्व नियोजक ।
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित् ।२३।
व्रतानि सर्व दानानि तपांसि नियसास्तथा ।
कथितानि पुरा सद्भिर्भावार्थं नात्र संशयः ।२४।
हरिश्चाहं च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः ।
तपोभिरुग्रैरद्यापि तस्य दर्शनकांक्षिणः ।२५।

अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ।
भक्तैरन्तर्वहिश्चापि पूज्यः संभाष्य एव च ।२६।
तदिदं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम् ।
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभि ।२७।
ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दभव्ययम् ।
तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यं तत्व्रतताश्रितैः ।२८।

प्राणियों में भी वही सर्वोत्कृष्ट हैं, उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, वह अनंत महिमा सम्पन्न और अपरिच्छिन्नऐश्वर्य से युक्त है शब्दादिविषयोंमें अमोघ और भक्तोंका हित करने वाले हैं,ज्ञानसे सबमें व्याप्त,आत्मशक्तिके आनंदामृत,प्रमोदके रसिक तथा सदैव तरुणावस्था से सम्पन्न, अनन्तानन्दके पात्र तथा मकरन्दपानमें मधुवत हैं ।१९। विश्व के दंड देने में सर्व समर्थ उदारता,वीरता,गम्भीरता और मधुरता के सिन्धु हैं ।२०। न कोई इनके समान है,न इनसे कोई अधिक है,इनकी तुलना किसी से भी नहीं करी जा सकती यह राजाधिराज होकर प्रतिष्ठत हैं ।२१। चित्रकृत्य के समान यह विश्व पहले इन्हीं के द्वारा बनाया जाता है तथा अन्त में इन्हीं में लीन हो जाता है ।२२।सब इनके ही वश में है यही सबको नियोजित करते हैं परम भक्ति के द्वारा ही इनके दर्शन सम्भव हैं,अन्य प्रकार से नहीं ।२३।व्रत,दान तप,नियम यहसब प्राचीन ऋषियोंने रुद्ररूप ईश्वर के ध्यानके लिए बताये हैं ।२४। सुर. असुर अत्यन्त घोर तप करके उनके दर्शन की अब तक इच्छा करते हैं ।२५। पतितमूढ, कुत्सित तथा दुर्जनों को उनके दर्शन कभी नहीं होते, भक्तजन उनको बाह्याभ्यंतर में पूजकर उनसे वार्ता करते हैं ।२६। वे स्थूल,सूक्ष्मतथा सूक्ष्म से भी परेहैं, हम और देवता आदि केवलस्थूल को देख सकते हैं,परन्तु योगियों को उनके सूक्ष्मरूप के दर्शन होते हैं ।२७ जो नित्य ज्ञान आनन्द और अविनाशी रूप वाला है, उसके प्रति निष्ठा वाले, उसी के व्रत वाले तथा उसी में तत्पर भक्त उसे प्राप्त करते हैं ।२८।

वहुनाऽत्र किमुक्तेन गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
शिवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते ।२९।

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथा चांकुरतो बीज बीजतो वा यथांकुरः ॥३०
प्रसादपू वका एव पशोः सर्वत्र सिद्धयः ।
स एव साधनैरन्ते सर्वरपि च साध्यते ॥३१
प्रसादसाधन धर्मः सच वेदेन दर्शितः ।
तदभ्यासवशात्साम्यं पूर्वयाः पुण्यपापयो ।॥३२
साम्यत्प्रसादसंपर्को धर्मस्यातिशयस्ततः ।
धर्मातिशयमासाद्य पशोः पापपरिक्षयः ॥६३
एवं प्रक्षीणपापस्य बहुभिर्जन्मभिः क्रमात् ।
सांबे सर्वेश्वरे भक्तिर्ज्ञानपूर्वा प्रजायते ॥३४
भावानुणमीशस्य प्रसादो व्यतिरिच्यते ।
प्रसादात्कर्म संत्यागः फलतो न स्वरूपतः ॥३५

गुप्त से भी गुप्त रहस्यशिव के प्रति भक्ति ही है । इसमेंसंशयनहींकि भक्ति द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होतीहै ॥२९॥ प्रभु-प्रतापसे हीभक्तिकाउदय होत है तथाभक्ति से ही शिव की प्रसन्नता प्राप्त होती है जिसप्रकारअंकुर से बीज तथा बीज से अंकुरकी उत्पत्ति होतीहै ।३।०॥ वैसे ही जीवों को ईश्वर की भक्ति प्राप्त होतीहै । सर्वसाधनोंके द्वाराशिव को साधा जाता है यह निश्चय है ॥२१॥ उनकेप्रसन्न करने केसाधन वेदने प्रदर्शित किये हैं इस वेदाभ्याससे पूर्वजन्म के पाप-पुण्य समान होने पर ॥३२॥ प्रसाद की प्राप्ति और धर्म की वृद्धि होती है, धर्माधिक्यसे ही प्राणीके पापों का क्षय होना है ॥३३॥इस प्रकार क्रमपूर्वक अनेक जन्मों के पापों कानाश होनेपर सर्वेश्वर शिव में ज्ञानपूर्वक भक्तिका उदयहोता है॥३४॥ उनके गुणों के विचार से उनमें प्रसाद की प्राप्ति और प्रसादसे कर्म काक्षयहोता है. कर्म क्षय का आशय उसके फल से है, स्वरूप से नहीं है ॥३५॥

॥ पशुपति शब्द पर ऋषियों का विवाद ॥

तत्रपूर्व महाभागा नैमिषारण्य वासिनः ।
प्राणिपत्य तथा न्यायंपप्रच्छुपवनं भुम् ॥१

भवान् कथमनुप्राप्तो ज्ञानमीश्वरगोचरम् ।
कथं च शिवभावस्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥२
पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा ।
तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना ॥३
अज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्त्तते ।
ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो वस्तु च द्विविधं स्मृतम् ॥४
अजडं च जडं चैव नियंतृ च तयोरपि ।
पशुः पाशः पतिश्चेति कथ्यते तत्त्रयं क्रम त् ॥५
अक्षर चे क्षरं चैव क्षराक्षरपरं तथा ।
तदेतत्त्रितयं भूम्ना कथ्यते तत्ववेदिभिः ॥६
अक्षर पशुरित्युक्तः क्षरं पाश उदाहृतः ।
क्षराक्षरपरं यत्तत्पतिरित्यभिधीयते ॥७

सूतजी ने कहा—वे अत्यन्त भाग्यवान नैमिषारण्य निवासी मुनिजन प्रणाम करके वायुदेव से प्रश्न करने लगे ।१। उन मुनियों ने कहा- आपने ईश्वरगोचर ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार की ? आपअव्वक्त अजन्मा भगवान शिव के शिष्यकिस प्रकारहुए? ।२।वायु ने कहा-मैंने पूर्वकालसेहीकुछ शिवविषयक ज्ञानकी प्राप्ति कीथी । सुखकी कामना वाले पुरुषको उसमें परमप्रीति करनी चाहिए।३। अज्ञान से उत्पन्न दुख ज्ञान के द्वारानष्ट हो जाता है,ज्ञानवस्तु परिच्छेदयुक्त तथा तीन प्रकार की है ॥४। अजड़,जीव तथा जड़ प्रकृति का नियन्ता वही है। उसके क्रमशः तीन नाम पशु, पाश और पति हैं ॥५॥ क्षर, अक्षर तथा क्षराक्षर से परे, इन तीन को तत्वज्ञाता बतलाते हैं ।६।अक्षर का नाम पशु है, वही जीव है तथा ब्रह्म ज्ञान से पाश प्रकृति का क्षरण होने से इसे क्षर कहा है, जो क्षरक्षर से परे है, वही पति कहा जाता है ।७।

किं तच्च क्षरमित्यूक्तं किं चाक्षरमुदाहृतम् ।
तयोश्च परमं किं वा तदेतद् ब्रूहि मारुत ॥८
प्रकृति क्षरमित्यूक्त पुरुषोऽक्षर उच्यते ।

ताविमौ प्रेरयत्यन्यः स परः परमेश्वरः ।६।
कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषो मतः ।
अनयोः केन सम्बन्धः कोऽयं प्रेरक ईश्वरः ।१०।
मायाप्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययाऽऽवृतः ।
सम्बन्धा मूलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः ।११।
केयं माला समाख्याता किंरूपो मायया वृतः ।
मूलं कीदृक् कुतो वास्य किं शिवत्वं कुतः शिवः ।१२।
माया माहेश्वरी शक्तिश्चिद्रूपो मायया वृतः ।
मलश्चिच्छादको नैजो विशुद्धिः शिवत्रा स्वतः ।१३।
आवृणोति कथं माया व्यापिन केन हेतुना ।
किमर्थं चावृतिः पुंसः केन वा विनिवर्तते ।१४।

मुनियों ने पूछा-क्षर किसे कहते हैं ? अक्षर किसे कहते हैं ? क्षर अक्षर से परे क्या है । इसे आप कहने की कृपा करें ।८। वायु ने कहा-प्रकृति 'क्षर' है,पुरुष 'अक्षर'है तथा उन दोनों को प्रेरणा करनेवाला और उन दोनों से ही परे परमेश्वर शिव हैं ।९। मुनियों ने पूछ-प्रकृति क्या है । पुरुष कौन है । इन दोनोंका क्या सम्बन्ध है। तथा इन दोनोंके प्रेरणकरने वाला कौन है ।१०।वायु ने कहा माया का नाम प्रकृतिहै, उसी माया से पुरुष आवृत है, मल और कर्म के सम्बन्ध से परे शिव ही सबके प्रेरक तथा ईश्वर है ।।११।।मुनियोंने पूछा-माया क्या वस्तु है । माया से आवृत्त होकर क्या स्वरूप बनता है । मल कैसा तथाकहाँसे प्राप्तहुआ । शिव तत्व, क्या है । तथा शिव कौन है ! ।०२। वायु ने कहा माया शिव की शक्ति है, माया से ढकाहुआ शिव स्वरूपहै, मल चित्स्वरूपको आवृत करने वाला है, वह तम स्वकल्पित है और शिवस्वरूपविशुद्धतम-रहित है ।१३। मुनियों ने पूछा-व्यापी को यह माया किस लिए आवृतकर लेती है? पुरुषको आवरण किस प्रकार होता है । तथा उसकी निवृति किस प्रकार होती है ! ।१४।

आवृतिर्व्यापिनोऽपि स्याद्व्यापि यस्मात्कलाद्यपि ।
हेतुः कर्मैव भोगार्थनिवर्तेत मलक्षयात् ।१५।

कलादि कथ्यते किं तत्कर्म वा किमुदाहृतम् ।
तत्किमादि किमन्तं वा किं फलं वा किमाश्रयम् ।१६।
कस्य भोगेन किं भोग्यं किं वा तद्भोगसाधनम् ।
मलक्षयस्य को हेतुः कीदृक् क्षीणमलः पुमान् ।१७।
कला विद्या च रागश्च कालो नियतिरेव च ।
कलादयः समाख्याता यद्भोक्ता पुरुषो भवेत् ।१८।
पुण्यपापात्मकं कर्म सुखं दुःखफलं तु यत् ।
अनादिमल भोगान्तमज्ञानात्मसमाश्रयम् ।१९।
भोगः कर्मविनाशमाय भोगमव्यक्तमुच्यते ।
वाह्यांत करणद्वारं शरीरं भोगसाधनम् ।२०।
भावातिशयलब्धेन प्रसादेन मलक्षयः ।
क्षीणे चात्ममले तस्मिन् पुमांशिवसमो भवेत् ।२१।

वायु ने कहा-व्यापी को कलादि में होनेसे आवृत्ति होती है इसका कारण कर्म है, जो भोगकराता है तथा मल के क्षीण होने से इसकी निवृत्ति होती है ।१५।मुनियोंने पूछा-कलादि क्या है । कर्मक्याहै । आदि अन्त क्या है । उसका फल आश्रय क्या है ! ।।१६।।भोग किसके लिए है ? भोग क्या है। भोग का साधन क्या है मलके क्षीण होने का कारण क्याहै ? क्षीण-मल वाले पुरुष का स्वरूप क्या है ? ।१७। वायु ने कहा-रजोगुण से उत्पन्न होने वाले विषयों की अभिलाषा और विद्याकोराग कहतेहैं,काल देव-शक्ति है तथा भोक्ता पुरुष को कलादि कहते हैं ।१८। कर्म पुण्य और पाप से युक्त होता है,उसका फल दुख सुख हैं,अविद्याजनितअनादिवलसेभोग के अन्ततक अज्ञानवशही अपनी आत्मामें समझ जाता है ।१९। कर्म का नाश करने केलिए भोग तथा भोग्य वस्तु प्रकृति है नेत्रादि इन्द्रिय, वाह्य अन्तःकरण,मन,इन्द्रियोंके द्वार और देह यह सब भोग के साधन हैं ।।२०।। अत्यन्त प्रीति से से प्राप्त शिव प्रसादके कारण तमोगुण क्षीण होता है तथा मल के क्षीण होजाने पर पुरुष शिव के तुल्य होजाता है ।२१।

कलादिपञ्चतत्वानां किं कर्म पृथमुच्यते ।

भोक्तेति पुरुषश्चेति येनात्मा व्यपदिश्यते ।२२।
किमात्मक तदव्यक्तं केनाकारेण भुज्यते ।
किं तस्य शरणं भुक्तौ शरीरं च किं मुच्यते ।२३।
दिक्क्रियाव्यंजका विद्या कालो रागः प्रवर्तक ।
कालोऽवच्छेदकस्तत्र नियतिस्तु नियामिका ।२४।
अव्यक्त कारणं यत्तत्त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्वचिंतकाः ।२५।
कलातस्तदभिव्यक्तमनभिव्यक्तलक्षणम् ।
सुखदुःखविमोहात्मा भुज्यते गुणवांस्त्रिधा ।२६।
सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण तिले तैलमिव स्थिताः ।२७।
सुखं च सुखहेतुश्च समासात्सात्विकं स्मृतम् ।
राजसं तद्विपय सत्स्तंभमोहो तु तामसौ ।२८।

मुनियों ने कहा—कलादि पंचतत्वों का पृथक् कर्म क्या है? क्याआत्मा को भोक्ता कहते हैं ? क्या पृथक् पुरुष आत्मा है ? ।२। क्या वह अव्यक्त आत्मा है ? वह भोक्ता किस प्रकार है ? मुक्ति में उसकी शरण क्या है तथा देह क्या है ? ।२३।वायु ने कहा–पुरुष का ज्ञान उत्पन्न करने की शक्ति विद्या है क्रिया की व्यंजक कला है, काल उसका अवच्छेदक तथा देवशक्ति उसकी नियन्ता है ।२४। सत्व, रज, तम इन तीन रूपों से अव्यक्तका कारण प्रकट होता है,तत्त्वज्ञानी इसीको प्रधानतथा प्रकृतिकहते हैं।२५। कला ही क्रियात्मक प्रभु शक्ति को प्रकट करने वाली है, सृष्टि के पहिले वह अव्यक्त रूप भी सृष्टिकाल में व्यक्त होता है । विमोहित आत्मा पुरुष तीन गुणों को तीन प्रकार से भोगता है,वे तीनों गुणसूक्ष्मरूप से उसी प्रकार प्रकृति में स्थित है,जैसे तिलों में तैल स्थित रहता है।२६-२८।सुख और सुख के हेतु को सात्विक तथा दुःख और दुःख के हेतु को राजस कहा है तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति की शून्यता का तामस कहा गया है ।२८।

सात्विकाऽयूर्ध्वगतिः प्रोक्ता तामसी स्यादधोगति ।

मध्यमा तु गतिर्या सा राजसी परिपठ्यते।२९
तन्मात्रापञ्चकं चैव भूतपञ्चकमेव च ।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ।३०
प्रधानबुद्ध्यहङ्कारमनांसि च चतुष्टयम् ।
समासादेवमव्यक्तं सविकारमुदाहृतम् ।३१
तत्कारण दशापन्नमव्यक्तमिति कथ्यते ।
व्यक्तं कार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत् ।३२
यथा घटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते ।
शरीरादि तथा व्यक्तिमव्यक्तान्नानातिभिद्यते ।३३
तस्मादव्यक्तमेवैक्यकारण करणानि च ।
शरीरं च तदाधारं तद्भोग्य चापि नेतरत् ।३४
बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेकस्यकस्यचित् ।
आत्शब्दाभिधेयस्य कस्तुतोपिक्कतः स्थिति ।३५

रजोगुणही अधोगतिहै तथा मध्यमा गतिको राजसी कहा है ।२९। तन्मात्रा,शब्द, स्पर्शादि पाँच तथा पंचभूत, ज्ञानेन्द्रिय और पचकर्मेन्द्रिय ।३०। प्रधानबुद्धि अहङ्कार और मनयह चारों समाससे अव्यक्त औरविकारी कहे जाते हैं।३१। उसके कारण दशामें प्राप्त होने पर अव्यक्त और कार्य दशामे प्राप्तहोनेपर व्यक्तहोताहै, यह देह घटआदिके समान प्रत्यक्ष होया है।३२। जैसे घटादि कार्यका मृत्तिका से भिन्नतत्व नहीं वैसेही इस देहादि काभी अव्यक्तसे भिन्नत्वनहींहै ।३३। इसलिए अव्यक्तही कार्यों का कारण है,देह उसका आधार तथा भोग्य है, इसमें सन्देह नहीं है ।३४ ऋषियों ने कहा-बुद्धि इन्द्रिय शरीरसे व्यतिरेक दिखाईदेकर यथार्थमें आत्मा शब्द का व्यवहार करते हैं, उसकी स्थिति कहाँ है ? ।३५।

बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यौ व्यतिरेकोविभोध्रुवम्।
अस्त्यत्येव कश्चिदात्मेति हेतुस्तत्र दुर्गदुमः ।३६
बुद्धीन्द्रियशरीराणां वात्मतासद्भिरिष्यते।
स्मृतेरवितयज्ञानादयावददेहवेदनात् ।३७

अतः स्मर्तानुभूतानामषज्ञेयगोचरः ।
अन्तर्यामीति वेदेषु वेदांते च गीयते ।३८
सर्वं तत्र स सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वत।
तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेषनदृश्यते।३९
नैवाय चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि ।
मनसैव प्रदीप्तेन महात्माऽवसीयते ।४०
न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः ।
नैवोर्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन ।४१
अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम् ।
सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात् ।४२

वायुने कहा बुद्धि इन्द्रिय और देह से वह अचल, सर्वव्यापक तथा अलग हैं, वहीआत्मा कहा जाता है, उसका हेतु-ज्ञान अत्यन्त कठिनहै, वह अनेक जन्म की परम्परा से जानने योग्यहै ।३६। बुद्धि, इन्द्रिय और देहमें सत्पुरुष आत्मानहीं मानते, स्मृतिके विचरणसे बुद्धि में स्मरणत्वका आश्रय संभवनहींहै, क्योंकि स्मृतिहीबुद्धिका परिणाम है तथा आश्रय-आश्रयीभाव मेंभेदहै । इन्द्रियकी भिन्नता में अज्ञान नरहनाही कारणहै, जैसे नेत्ररूपको देखताहै, स्पर्शका अनुभव नहीं करता परन्तु आत्मा प्रत्यक्ष योग सभी को ग्रहण करता है अथवा इन्द्रियके द्वारा ग्रहण करताहै,स्वयं गहण नहीं करता जबतक देहहै,तभीतक ज्ञानहै, देहके नष्ट होनेपर आत्मा अन्य देह में चला जाताहै,ऐसानहो तो कर्म का भोग किस प्रकार भोगे ? इस कारण आत्मा देहसे भिन्नहीहै ।३७। इस प्रकार बुद्धि आदि से भिन्न कर्म-फल का भोगने वालाकोई आत्माहै,जोसर्वज्ञाता तथा वेद:वेदान्तमें अन्तर्यामी कहा जाता है ।३८। वह सब में है, तथा सबको व्याप्त करके स्थितहै, कोईभी उसे प्रत्यक्ष देखनेमें समर्थ नहीं है ।३९। उसे नेत्रादि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जासकता महात्माजन मनको शुद्धकरके केवलयोगाभ्याससे ही जान सकते हैं ।४०। यह न स्त्री है न पुरुष, नपुंसक भी नहीं है, नऊपरहै,न नीचे न तिरछे है ।४१।देह में रहकर भी देहरहित, चलवस्तु में रह कर भी अचल

और अविनाशी है, इसे रपुरुष श्रवणादि अभ्याससे देख सकते हैं ।४२।

किमत्र वहुनोक्तेन पुरुषो देहतः पृथक् ।
अपृथग्ये तु पश्यति ह्यसम्यक् तेषु दर्शनम् ।४३
यच्छरीरमिद प्रोक्तपुरुषस्य ततः परम् ।
अशूद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते ।४४
विपदां बीजभूतेन पुरुपतेन संयुतः ।
सुखी दुःखी च मूढ़श्च भवति स्वेन कर्मणा ।४५
अद्भिराप्लावितं क्षेत्रं जनयत्यंकुरं तथा ।
अज्ञानातलावितं कर्म देहं जनयते तथा ।४६
अत्यंतमसुखावासाः स्मृताश्चैं कांतमृत्यवः ।
अनागता अतीताश्च तनवोऽस्य सहस्रशः ।४७
आगत्यागत्य शीर्णेन शरीरेषु शरीरिणः ।
अत्यन्तवसतिः क्वाऽपि केनापि च लभ्यते ।४८
छादितश्च वियुक्तश्च शरीरैरेषु लक्ष्यते ।
चन्द्रबिबवदाकाशे तरलरभ्रसचयः ।४९

वह पुरुष इस शरीर से भिन्न है, तथाजो उसे देहसे संयुक्त मानते हैं, उन्हें वास्तविक ज्ञान नहीं है ।४३। जिसे देह कहतेहैं, वह पुरुषसे भिन्न है, वह देह अशुद्ध, दुख स्वरूप तथा चल है, यदि पुरुष से संयुक्त होता तो इसमें यह दोष नहीं होते।४४। विपित्तिके बीज स्वरूप इस देहसे पुरुष का संयोग होनेके कारणहीयहकर्मानुसार सुखी-दुखीतथाअज्ञानी माना जाता है ।४५। जैसे पानी देने से खेत में अंकुर निकलताहैवैसे ही अज्ञानीरूपी जल से भीगनेसे अंकुर के समान ही देह से कर्म उत्पन्न होते हैं ।४६। यह देह अत्यन्तदुःख रूप,रोगी और मृत्यु मुखमें गिरनेवाला है, इसके हजारों शरीर हो चुके और होंगे ।४७। एक देह के जीर्ण होने पर यह पुरुष दूसरे देहमें जाता है, एक शरीर में कोई भी निरन्तर नहीं रहता ।४। इसका शरीरके साथ संयोग होता है. आकाश में मेघसे ढके हुए चन्द्रमडल के समान कभी प्रकट और कभी अप्रकट होता है ।४९।

अनेकदेहवेदेन भिन्ना वृत्तिर्हिरात्मनः ।
अष्टापदपरिक्षेपे ह्यक्षमुद्रे व लक्ष्यते ।५०
नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित् ।
पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बन्धुभिः ।
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
सीत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ।५२
स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति ।
तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ त न पश्यतः ।५३
ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च पशवः परिकीर्तित ।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तामेतन्निदशनम् ।५४
स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशु ।
लीलासाधन भूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ।५५
अज्ञोजतुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।५६
इयाकर्ण्यानिलवच मुनयः प्रीतमानसाः ।
प्रोचुः प्रणम्य तं वायु शैवागमविचक्षणम् ।५७

अनेक देहोंके भेदसे आत्माकी वृत्तिभी भिन्न-भिन्न प्रकार की दिखाई देतीहै, वह शारिफलके समान एकआकार होकर भी अनेक प्रकारका प्रतीत होताहै ।५०। उस पुरुषका न कभी कोईहुआ, न भविष्यमें होगा स्त्री और बन्धु-बान्धवों का संयोग यात्री के समान है ।५१। जैसे बहते हुए दो काष्ठ लहरोंसे मिलजाते और मिलकर पृथक होजातेहैं, वैसेही प्राणियोंका समागम है ।५२। वह जीवदेहको देखताहै, परन्तु देह जीनको नहीं देख सकता इस जीव और देह दोनोंको कोईअन्य देखता है, परन्तु यह उसे नहीं देख सकने ।५३। ब्रह्मा से स्थावर तक सबकी संज्ञा पशु है और यह दृष्टांत पशुओं के लिये ही कहाहै ।५४। यह पाशोंसे बँधता और सुख:दुख भोगता है, इसीलिए पशु कहा गयाहै विद्वानोंका कहनाहैकि यह ईश्वरके विलास का साधनहै ।५५। यह जीव अज्ञानी, अनीश और सुख-दु:खकी भूमिहैतथा

प्रभु प्रेरणासे इसे स्वर्ग-नरककी प्राप्तिहोतीहैं ।५६। सूतजी ने कहा-वायु के वचन सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और शिव-शात्र में प्रवीणवायु को प्रणाम कर कहने लगे ।५७।

शिव तत्व वर्णन

योऽयं पशुरीति प्रोक्तो यश्च पाक्ष उदाहृतः ।
आभ्यां विलक्षणः कीश्चत्कोऽमस्ति तयोःपतिः ।१
अति कश्चिदपर्यंतरमणीयगुणाश्रयः ।
पतिर्विश्वस्य निर्माता पशपाशविमोचनः ।२
अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत् ।
अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपादयोः ।३
प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिचेतनम् ।
तत्कर्तृकंस्वयं दृष्टिं बुद्धिमत्कारणं विना ।४
जगच्च कर्तृ सापेक्ष कार्यं सावयव यतः ।
तस्मात्कार्यस्य कर्तृत्वं पत्युर्न पशुपाशयोः ।५
पशोरपि च कर्तृत्वं पत्युः प्रेरणापूर्वकम् ।
अयथाकरणज्ञानमंधस्य गमनं यथा ।६
आत्मानं च पृथङ् मत्वाप्रेरितारं ततः पृथक ।
असौ जुष्टस्ततस्तेन ह्यमृत्वया कल्पते ।७

मुनियोंने कहा-आपने जो पशु तथा पाश कहा है, इनसे विलक्षण इनका स्वामी कौन है ! ।१। वायु ने कहा-एक अनन्त रमणीय गुणों का आश्रय, जगदीश्वर तथा पशुकी पास जुड़ाने वालाही स्वामी है।०। उसके विना यह सृष्टि कैसे होसकती है, पशु और पाशके अचेतनतथा ज्ञान रहित होनेसे ।३। प्रधान परमाणु आदि जो अचेतनहैं, उसका स्वयं कर्तृत्व चेतन सम्बन्धरूप बीज के विना किसीनेभी देहीं देखा ।४। यह विश्य कर्मसापेक्ष है, कर्ताकेबिना नहीं होता, कार्यअवयव रूपहै तथा अवयव युक्तकार्यत्व के कारण घटके समानहै,इसलिएकार्यका कर्तृपन ईश्वरमें है, पशु पाश जीव तथा कर्मसेंनहीहै ।५। ईश्वरकी प्रेरणा से जीवमें भी कर्तापन प्रतीत होता

है,परन्तु वह कर्तृत्व यथार्थ नहीं होता । जैसे अंधा स्वयं नहीं चलसकता दूसरे के सहारेचलता है वैसे ही जीव का कर्तृत्व समझो ।६ अपने आत्मा और प्रेरकको पृथक् मानकर आत्माउपासना के द्वाराईश्वर की कृपापाकर अमृत हो जाता है ।७।

पशोःपाशस्य पत्युश्च तत्त्वतोऽस्ति पदं परम् ।
ब्रह्मवित्तद्विदित्वैव योनिमुक्तो भविष्यति ।८
सयुक्तमेतद्द्वितय क्षरनमक्षरमेव च ।
व्यक्ताव्यक्तं बिभर्तीशो विश्वं विश्वमोचकः ।९
भोक्ता भोग्यं प्रेरियता मंतव्यं त्रिविध स्मृतम् ।
नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्यं हि किञ्चन ।१०
तिलेषु वा यथा तैल दध्नि वा सर्पिरर्पितम् ।
यतापः स्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः ।११
एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मलिक्षणम् ।
सत्येन तपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति ।१२
य एको जालवानीश ईशानीभिः स्वशक्तिभिः ।
सर्वाल्लोकानिमान् कृत्वा एक एव स ईशते ।१३
एक एव सदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः ।१४

पशु, पाश और पतिका जो तत्त्वपूर्वक अन्तर है उसे जान कर ब्रह्मज्ञानी पुरुष योनिमुक्तहोता है ।८। क्षर, अक्षर दोनों मिलकर व्यक्त अव्यक्त को धारण करते हैं और ईश्वर संसार के बंधन से मुक्त कराने वाले है ।९। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक यहतीनहैं, जानने वालोंको इनसे परे किसी अन्य के जानने की आवश्यकता नहींहै ।१०। जैसे तिलो मेंतैल,दही में घी,स्त्रोत मे जल,अरणिकी स्थिति है ।११। वैसेही अपने आत्मा में आत्मा विलक्षण रूप से स्थित है और वह सत्य तथा तपनिष्ठ होने से दिखाई देता है ।१२। इन्द्रजालके सजान मायासेयुक्त ईश्वरशीभूत करनेवाली अपनी शक्तियों से इन सबको वश करकेएक ही स्थित है ।१३। वह रुद्र एक ही है,दूसराकोई नहीं, वही सृष्टि की रचना करके रक्षा और संहार करते हैं ।१४।

विश्वतश्चक्षु रेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वयः पादसयुतः ।१५
द्यावभूमि च जनयन् देव एको महेश्वरः ।
स एव सर्व देवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ।१६
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम् ।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः।१७
वेदाहमेतं पुरुषं महांनममृतं ध्रुवम् ।
आदित्यवर्णं तमाः परस्तात्सतस्थितं प्रभुम् ।१८
अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः ।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत् ।१९
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगहाशयः ।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ।२०
सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्व तिष्ठति ।२१

सब जगत्इसके नेत्र तथा मुखहैं जगत् के भुजाऔरचरणही, विराट् पुरुष के भुजा और चरण हैं ।१५। वह एकही देवता स्वर्ग और पृथ्वीका उत्पन्न करनेवालाहै,सब देवताओंको वहीउत्पन्नकरतातथा पालनभीकरता है ।१६। जो प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न करता है, वही जगदोत्पादक रुद्र है, श्रुतियाँ यही कहती हैं ।१७। जिसका आदित्यके समान तेजोमय वर्णहै,को अन्धकारसे परे हैं, उस अमृत स्वरूपअचल पुरुषको मैं जानताहूँ ।१८।इस परमेश्वर से परे अन्य कुछनहीं है,इससे सूक्ष्म अथवा स्थूल भी कोई नहीं इसने सम्पूर्ण विश्व को परिपूर्ण किया हुआहै ।१९। वहएक वृक्ष के समान अचल हुआस्वर्ग में स्थितहै,उसकेसंकल्पसेही यह चराचर विश्वप्रकट होता है, सबके मुख,शिर,कंठ आदि उसीके अङ्ग हैं,वह सब प्राणियों के हृदय में स्थित,सर्वव्यापी होनेसे सर्वगत एवं शिव कहा जाता है ।२०। इन्हींके हाथ चरण,नेत्र,शिर,मुख सब ओर हैं इन्हीं के श्रोतृ सब ओर हैं,यह सबकोढक कर स्थित हैं ।२१।

सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्दियविवर्जितः ।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरण सुहृत् ।२२
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।
सर्व वेत्ति न वेत्ताऽस्य तमाहुः पुरुष परम् ।२३
अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः ।
गुहायां निहितश्चापिजंतोरस्य महेश्वरः ।२४
तमक्रतुं क्रतुपाय महिमातिशयान्वितम् ।
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति ।२५
वेदाहमेनमजरं पुराण सर्वगं विभुम् ।
निरोधं जन्मनो यस्यवदति ब्रह्मवादिनः ।२६
एकोऽपि त्रानिमांल्लोकान् बहुधाशक्तियोगत।
विदधाति विचेत्यंते विश्वमादौ चित्राकृतिः परा ।
विश्वधात्रीत्यजाख्या च शैवी चित्राकृतिः परा ।
मामजां लोहितां शुक्लां कृष्णमेकां त्वजः प्रजाम् ।२८

सम्पूर्ण इन्द्रिय और गुणों के अभ्यासरूप इन्द्रियों से रहित सर्वेश्वर तथा सभीके शरणदाता और मित्रहैं ।२२। बिना नेत्र ही जो देखते, बिना कान सुनते जो सबको जाननेवाले परन्तु उन्हें जाननेवाला कोई नहीं वही शिव पुराण-पुरुषकहे जातेहैं।२३। वह सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म और महान् से भी महान् हैं,यही अविनाशी,महेश्वर इस जीवके हृदयाकाश में स्थित हैं।१४। उस क्रतुहीन,यज्ञ स्वरूप,महान्महिमा सम्पन्नईशान देवको, उसीपरमात्मा की प्रसन्नता से शोकरहित देखते हैं ।२५। इस सर्वव्यापी परमेश्वर कोवेद जराहीन, पुराणपुरुष तथा सर्वगामी कहते हैं ब्रह्मवादियों के अनुसारइसी परमेश्वर शिव के ध्यानसे जन्म-मरण रुक जाता है।२६।वह एकहीईश्वर अपनी शक्तिसे तीनों लोकों की रचना करके अन्त में उसकासंहारकरदेता है ।२७। विश्व को उत्पन करने वाली प्रकृति अजा है, वही शैवी है, वह रजोगुण वालीहोनेसे लालवर्णकी,सत्वगुण वालीहोनेसे श्वेतवर्ण की तथा तमोगुण वाली होने से काले वर्ण की है ।२८

जनित्रीमनुशेतेऽन्यो-जुषमाणः स्वरूपिणीम् ।
तामेवाजामजोऽन्यस्तुभुक्तभोगां जहाति च ।२९
द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ ।
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ।३०
वृक्षे ऽस्मिन् पुरुषो मग्नो मुह्यमानश्च शोचति ।
दुष्टमन्यं यदा पश्येदीश परमकारणम् ।३१
तदाऽस्या महिमानं च वीतशोकः सुखी भवेत् ।
छदांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भुतं भव्यमेव व ।३२
मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः ।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।३३
तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः ।३४
स्त्रष्टारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च तस्य तु ।
शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शांतिमत्यंतमृच्छति ।३५

यह अनेक प्रकार की प्रजा की उत्पत्ति करने वाली है, जीव इसको भोगता हुआ सोता है तथा वह अज इसे भोगकर त्याग देता है ।२९। दो सुपर्ण समानअवस्था के सखा हैं, देहरूपी वृक्षपर समान रूपसे स्थितहैं,उनमें से एक जीवहै जो वृक्ष के फलखाता अर्थात् कर्म-फल भोगता है और दूसरा परमात्मा है जो देखताहै ।३०। इस संसार रूपी वृक्ष पर यह पुरुषभोगोंको भोगता हुआ मोहवश शोच करताहै, परन्तुजबशुद्ध होकर ध्यानकरताहैतब परमकारण परमेश्वर के ज्ञान से ।३१। अपनी परमेश्वर रूपिणी मायाको देखकर शोक मुक्त हो जाताहै तब आनन्द प्राप्तहोता है, छन्द,यज्ञ, कर्मभूत, भविष्यत, वर्तमान जो हैं ।३२। इस माया को प्राप्त होकर वह माया का निर्माण करता है, क्योंकि मायाप्रकृति स और मायापति परमेश्वरहै ।३३। इन्हीं के अवयवों से सम्पूर्ण विश्वव्याप्त हैं, सूक्ष्मातिसूक्ष्म ईशान देव को, गर्भ के मध्य में ।३४। सम्पूर्णविश्व का निर्माता और सचेष्ट करने वाला शिव ही है,ऐसा जानकर मनुष्य शान्ति को पाता है ।३५।

स एवं कालो गोप्ता च विश्वस्याधिपतिः प्रभुः ।
तं विश्वाधिपतिं ज्ञात्वा मृत्युपाशात्प्रमुच्यते ।३६
घृतात्परं मंडिमिव सूक्ष्मं ज्ञात्वा स्थितं प्रभुम् ।
सर्वभूतेषु गूढं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।३७
एष ववं परो देवो विश्वकर्मा महेश्वरः ।
हृदये संनिविष्टं तं ज्ञात्वैवामृतमश्नुते ।३८
यदा समस्तं न दिवा न रात्रिर्न सदप्यसत् ।
केवलः शिव एवैको यतः प्रज्ञा पुरातनी ।३९
नैनमूर्ध्वं न तिर्यक्व न मध्यं पर्यजिग्रहत् ।
न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम महद्यशः ।४०
अजातमिममेवेके बुद्ध्वा जन्मनि भीरवः ।
रुद्रस्यास्य प्रपद्यन्ते रक्षार्थं दक्षिणं मुखम् ४१
द्वे यक्षरे ब्रह्मपरे त्वनते सभुदाहृते ।
विद्याविद्ये समाख्य ते निहिते यत्र गूढवत् ।४२

वही कायरूप है, उसी परमेश्वर को ससार का रक्षक तथास्वामी जानकर मनुष्यकाल के पाश से मुक्त होताहै ।३६। घृत के परमाणु केतुल्य शिव को सूक्ष्म जानकर तथा उसेसबप्राणियों के अन्तर में विद्यमान समझ कर मनुष्य सबपापों से मुक्तहोजाताहै ।३७। यह परदेव विश्वकर्मा शिवहैं, इनको हृदय में विद्यमान जानकरयह जीव अमृतत्व को प्राप्त होताहै ।३८। जब दिन. रात्रि, सत्, असत् कुछ भी नहीं था, तब एक मात्र शिव ही थे, जिनसे सनातनी प्रज्ञा प्रकट होती है ।३९। इनको ऊँचे, नीचे, तिरछे कोई भी नहीं पा सकता, उनके समान कोई नहीं है, जिनके नामका अत्यन्तयशहै ।४०। अनेकजन्मोंसे भयभीत मनुष्यइस परमेश्वर को एक अजन्माजानकर रक्षा के हेतु रुद्रोंको प्राप्त होते हैं ।४१। रक्षा का उपाय कहा है कि ब्रह्मामें दो अक्षर ही है, जो अनन्त हैं, वे विद्या और अविद्या में स्थितरह कर गूढ़हो गये हैं ।४२।

क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते ।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः ।४३

एकैकं बहुधा जालं विकुर्वन्नेकवच्च यः ।
सर्वाधिपत्यं कुरुते सृष्ट्वा सर्वानन् प्रतापवाम् ।४४
दिश ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्भासयन् भ्राजते स्वयं ।
यो निः स्वभावादप्येको वरेण्यस्त्वधितिष्ठति।४५
स्वभाववाचकान्सर्वान्वाच्यांश्चपरिणामयन् ।
गुणांश्च भोग्यभोक्तृत्वे तद्विश्वमधितिष्टति ।४६
ते वै गुह्योपनिषदि गूढं ब्रह्म परात्परम् ।
ब्रह्मयोनिं जगत्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः ।४७
भावग्राह्यमनीहाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ।४८
स्वभावमेके मन्यते कालमेके विमोहिताः ।
देवस्य महिमा ह्येष येनेदं भ्राम्यते जगत् ।४९

अविद्या से संसार चक्र में पड़ता तथा विद्या से अमृतत्व को प्राप्त होता है, विद्या-अविद्या दोनों का अधीश्वर महेश्वर ।४३। एक ही परमात्मा है जो अनेक प्रपंचों की रचना करता तथा सबको उत्पन्न कर उनपर शासन करता है। ४४। ऊपर, नीचे और सम्पूर्ण दिशाओं में सब पर आधिपत्य करके वही विराजमान है. विश्व का कारण होने से वह एक ही सर्वश्रेष्ठ है ।।४५। स्वभाव रूप शब्द और अर्थों का परिणाम न करके गुणों के भोग्यत्व और भोक्तृत्व में वह अधिष्ठित हैं ।४६। उस उपनिषद में गूढ़ परात्पर ब्रह्म तथा संसार का उत्पन्न करनेवाला वह प्रथमदेव ऋषियों ने जाना था ।४७। संसार का आश्रय तथा सृष्टि और संहार की कलावाला वह परमेश्वर प्रीति से जाना जाता है, उसे जो कोई मान लेता है, वह कि शरीर रूपी बन्धन को प्राप्त नहीं होता ।४८। उसे कोई स्वभाव कहते हैं, कोई काल कहते हैं, परन्तु जानता कोई नहीं, सभी मोहित हैं, उस जगतदेव की महिमा ने इस संसार को भ्रमा रखा है ।४९।

येनेदमावृतं नित्यं कालकालात्मना यतः ।
तेनेरितमिदं कर्म भूतैः सह विवर्तते ।५०

तत्कर्म भूयशः कृत्वा विनिवृत्य च भूयशः ।
तत्वस्य सह तत्वेन योगं चापि समेत्य वै ।५१
अष्टाभिश्च त्रिभिश्चैव द्वाभ्यां चैकेन वां पुन ।
कालेनात्मगुणैश्चापि कृत्स्नमेवजगत् स्वयम् ।५२
गुणैरारम्य कर्माणि स्वभावादीनि योजयेत् ।
तेषामभावे नाश स्यात्कृयस्यापि च कर्मणः ।५३
कर्मक्षये पुनश्चान्यत्तयो याति स तत्वतः ।
स एवादिः स्वयं योगनीमित्तं भौक्तृभोगयौ ।५४
परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः ।
सविर्वत् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात्परात्परः ।५५
तं विश्वरूपमभवं भावनीयं प्रजापतिम् ।
देवदेवं जगत्पज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे ।५६

काल के भी काल, जिस परमेश्वर ने नित्य जगत् को आवृत्त किया हुआ है, उनके द्वारा प्रेरितकर्म भूतों के साथ प्रकाशित होते हैं ।५०। वह विभिन्नकर्मोंको करके फिरकलादि तत्वऔर सत्वगुण के आश्रितहोकरयोग को प्राप्त होकर ।५१। आकाशादि आठ मूर्ति, सत्यावादि तीन गुण, विद्या, अविद्या अथवा एककालया अपनेगुणों से इस सम्पूर्ण विश्वको ।५२। गुणानुसार कर्मोंका आरम्भ कर, स्वभाव प्राणियोंको प्रेरितकर कार्य करताहै, उन कर्मोंके अभावमें किये हुए कर्मभी नष्ट हो जाते हैं ।५३। कर्मोंके क्षीण होने से फिर जन्मनहीं होता, भोक्ता और भोगका यह आदि योग तुम्हारे प्रति कहाहै ।५४।यह परमेश्वर निर्गुण एवं सबका ज्ञाता है,तीनों गुणोंका स्वामी, परेसे भी परे साक्षात् ब्रह्म है ।५५। जो उस विश्व रूप, विश्कर्ता, प्रजापतियों के देव,जगत्पूज्य शिवकी स्वस्थ चित्तसे उपासना करतेहैं ।५६।

कालादिभिः परो यस्मात्प्रपंचः परिवर्तते ।
धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च ।५६
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ।५८

न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते ।
न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते।५९
परास्य विविधा शक्ति श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता ।
ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ।६०
न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिंगं न चेशिता ।
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः ।६१
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन ।
न जन्म हेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः ।६२
स एकः सर्व भूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः ।
सर्वभूतांतरात्मा च धर्माध्यक्ष कथ्यते ।६३

कालादिसे भी परे जिस परमेश्वरसे यह प्रपंच प्रारम्भ होता है उस धर्मकर्मा,पापहारी ऐश्वर्यों के ईश्वर तथा संसार में व्यापक ।५७। ईश्वरी केभी ईश्वर देवाधिदेव, स्वामियोंके स्वामी भुवनेश्वर महेश्वर देवका भजन करते हैं ।५८। उनसे अधिक अथवा इनके समान कोई नहीं हैं, उन्हें किसी कार्यऔरसाधनकी अवश्यकता नहीं है ।५९। उनकी पराशक्ति अनेक प्रकार कीसुनी गयीहै, उसमें ज्ञान, बल और क्रिया निहितहै, उसी से यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट हुआ है, ।६०। उसका कोई स्वामीनहीं, कोईउसके साक्षात्रूप कोभी नहीं कह सकता कार्य और कारणोंका स्वामी वही है ।६१। उसका कोई उत्पन्नकर्त्तानिहीं, उसकाकभी जन्म नहीं हुआ और न उसके जन्म लेने का कोई कारण हीहै ।६२। वह एक ही सब प्राणियोंमें व्याप्त है, वह सब जीवों का अन्तरात्मा है तथा वही धर्माध्यक्ष कह जाता है ।६३।

सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः ।
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम् ।६४
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनांता च चेतन ।
एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति ।६५
सांख्ययोगाधिगम्यं यत्कारणं जगत,पतिम् ।
ज्ञात्वा देवं पशु पाशैः सर्वेरेव विमुच्यते ।६६

विश्वकृद्विश्ववित्स्वात्मयोनिज्ञः कालकृन्गुणी ।
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ।६७
ब्रह्माण विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत्स्वम् ।
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादत ।६८
मुमुक्षुरस्मात्संसारात्प्रपद्ये शरणं शिवम् ।
निष्कल निष्क्रिय शांतं निरवद्यं निरंजनम् ।६९
अमृतस्य परं सेतुं दुग्धेधनमिधानिलम् ।
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ।७०

वही सब प्राणियों में निवास करने वाला, वही सबका साक्षी वही चेतना तथा निर्गुण है, वह अनेकाही असंख्य योगियों का वशी करने में समर्थ है ।६४। अथवा विश्वात्मा निष्क्रिय पुरुषों को वश में करने वालाहै, देह-धारियों में समयानुसार प्रजोत्पत्ति के हेतु बीज उत्पन्न करनेवालाहै, उसेजा मुमुक्षुजन आत्मा में देखते हैं, उनको ही सदा सुख की प्राप्ति होती है, यह नित्यों का नित्य चेतनो का चेतन कर्त्ता स्वयकामना रहित रह कर दूसरों की काम्य फलदेता है ।६५। सांख्य योग के द्वारा जानने योग्य कारण रूप, विश्व के ईश्वर शिव को इस प्रकार जान लेनेपरप्राणी सभी कर्म-बन्धनोंसे मुक्त होता है ।६६। विश्व के कर्त्ता, विश्व के ज्ञाता, प्राणियों के कर्मबीज के ज्ञाता, कालकेकर्त्ता, गुणी-प्रधान तथा प्राणियों के स्वामी गुणेश, कर्मबन्धन से मुक्त कराने वाले ।६७। उन शिव ने पहिले ब्रह्मा को बनाया और उस वेदों का उपदेशकिया, उसदेवता को अपनी आत्म-बुद्धि और उसके प्रसादसे जानकर ।६८। मैं मोक्ष की कामना वाला इस जगत् से मुक्त होने के लिए शिवजी की शरण को प्राप्त होता हूँ । वह शिवजीकला तथाक्रियासेरहित शान्त तथा अनिद्य हैं ।६९। जो दुःख रूपी ईंधन को अग्नि है, उसके बिना दुःख निवृत्ति का कोई उपाय नहीं । जब मनुष्य अपने देह में चर्मके समान आकाश की लपेट लेंगे ।७०।

तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ।७१
तपः प्रभावाद्देवस्य प्रसादाच्च महषयः ।

आत्माश्रमोचितज्ञानं पवित्रं पापनाशनम् ।७२
वेदांते परमं गुह्यं पुरा कल्पप्रचोदितम् ।
ब्रह्मणो वदनाल्लब्धं मयेदं भाग्यगौरवात् ।७३

तब शिवके जाने बिना भले ही दुःख का अन्त संभव होता ।७१। तपके प्रभावसे तथा देव के प्रसादसे ऋषिगण संन्यासाश्रमके पवित्र और पाप नष्ट करने वाले ज्ञानको ७२। जो वेदान्तमें परमगुह्य और पूर्व कल्पमें कहे हुए हैं, यह मैंने अपने सौभाग्यके कारण ब्रह्माके मुखसे ही सुना है ।७३।

।। शिव से काल-स्वरूप शक्ति कथन ।।

कालदुत्पद्यते सर्वं कालादेव विपद्यते ।
न कालनिरपेक्षं हि क्वचित्किंचिद्धि विद्यते ।१
यदास्यांयर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम् ।
सर्गसंहृतिमुद्राभ्यां चक्रकृत्परिवर्तो ।२
ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च तथाऽन्ये च सुरासुराः ।
यत्कृतां नियतिं प्राप्य प्रभवो नातिवर्तितुम् ।३
भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन् प्रजाः ।
अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयङ्करः ।४
क एष भगवान् कालः कस्य वा वशवर्त्ययम् ।
कं एवास्य वशे न स्यात्कथयैतद्विचक्षण ।५
कालाकाष्टानिमेषादिकलाकलित विग्रहम् ।
कालत्मेति समाख्यातां तेजो माहेश्वरं परम् ।६
यदलंघ्यमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
नियोगरूपमीशस्य बलं विश्वनियामकम ।७

मुनियों ने कहा—काल से ही वस्तु की उत्पत्ति और लय है, क्योंकि काम कभी निरक्षेप नहींरहता ।१। जब यह सम्पूर्ण जगत् लीन होजाताहै, तब पुनः उत्पन्न होता है, यह उत्पत्ति और प्रलय चक्र के समान चलती ही रहतीहै ।२। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र तथा अन्य देवता, जिसके नियमका उल्लंघन करने में समर्थ नही हैं ।३।जो भूत, भविष्य, वर्तमान रूपमें कालका विभाग

करके प्रजाको जराग्रस्त करके यहकालस्वच्छ और भंयकर रूपसे वर्तमान रहता है ।४। वह काल क्याहै ? किसके वशमें रहता है? इसके वशमें कौन नहीं हो सकता ? यह सब हमारे प्रति कहिये ।५। वायु ने कहा-कला, काष्टा, निमेश और कलाओं की वृद्धियहकालकादेहहै, यहीकयात्मामहेश्वर का तेज कहागयाहै ।६। जिसे कोईभी स्थावर जगमप्राणी उल्लंघननहीं करसकता, वह ईश्वर का नियोगरूप जगत की रक्षा करने वाला है ।७।

पस्यांशांशमयी शक्तिः कालात्मनि महात्मनि ।
ततो निष्क्रम्य सकांता विसृष्टाग्नेरिवायसी ।८
तस्मात्कालवशे विश्वं न स विश्वशे स्थितः ।
शिवस्य त वशे कालो न कालस्य वशे शिवः ९
यतोऽपतिहितं शार्वं तेज काले प्रतिष्ठितम् ।
महती तेन कालस्य मर्यादा हि दुरत्यया ।१०
कालं प्रज्ञाविशेषेण कोऽशूिवर्तितमर्हति ।
कालेन तु कृतँ कर्म न कश्चिदतिवर्तते ।११
एकच्छत्रां महीं कृत्स्नां ये पराक्रम्य शासति ।
तेऽपि नैवातिधर्तन्ते कालबेलामिवब्धयः ।१२
ये निगृह्येंद्रियग्रामं जयति सकद्धं जगत् ।
न जयंत्यपि ते कालो जयति तानपि ।१३
आयुर्वेदविदो वेद्यास्त्वनुष्ठितरसायनाः ।
न मृष्युमति वर्तन्ये कालो हि दुरतिकम! ।१४

उसकी अंशमयी शक्ति कालात्मारूप से प्रविष्ट होगई, जैसे लोहे में अग्नि प्रवेश करती है ।८। इसलिये कालके वश में विश्वहै, परन्तु काल के वश में नहीं, केवल शिवजी के वश में वहकालहै, परन्तु शिवजी काल के वश में नहीं है ।९। जिस कारण शिव का तेज काल में निहित है, उस कारण महत् से परे काल की मर्यादा को कोई मिटा नहीं सकता ।१०। अत्यन्त बुद्धिमानी करके भी कोई काल को अन्यथाकरनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि कालके कर्म को कभी अन्यथानहीं कियाजासकता है ।११। जोअपने

पराक्रम से इस पृथिवी को वश में करके एक छत्र शासन करता है, वह भी काल की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता ।१२। जो इन्द्रियों को वश में करके सम्पूर्ण जगत को जीत लेते हैं, वे भी काल पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते, किन्तु काल उन पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥१३॥ आयुर्वेद और रसायन के ज्ञाता वैद्य भी काल को मिटाने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि काल दुरितक्रम है ।१४।

श्रिया रूपेण शीलेव बलेन च कुलेन च
अन्यच्चिचतयते जंतुः कालोऽन्यत्कुरुते बलात्।१५
अप्रियैश्च प्रियैश्चैव ह्याचिंतितसमागमैः ।
संयोजयति भूतानि वियोजयति चेश्वरः ।१६
यदैव दुखितः कश्चित्तदैव सुखितः परः ।
दुर्विज्ञेयस्वभावस्य कालस्याहो विचित्रता ।१७
यो युवा स भवेद्वृद्धो यो बलोयान्स दुर्बलः ।
यः श्रीमान्सोऽपि निःश्रीकः कालश्चित्रगतिर्द्विजाः ।१८
नाभिजात्यं न वै शील न च नैपुणम् ।
भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्च ह्यनिरोधकः ।१९
ये सनाथाश्च दातारो गीतवाद्यैरुपस्थितः ।
ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रिय।२०
फलत्पकाले न रसायनानि सम्मक्तान्यपि चौषधानि ।
तान्येव कालेन समाहृतानि सिद्धिप्रयांत्याशु सुखंदिशंति।२१

लक्ष्मी, रूप, शील आदि से जीव कुछ और ही सोचता है, परन्तु काल का बल कुछ और ही करता है ।१५। अप्रिय, प्रिय तथा अचिंतित वस्तुओं को प्राप्ति या अभाव तथा प्राणियों का संयोग या वियोग काल के ही कर्म हैं ।१६। जैसे कोई एक दुःखी होता है, वैसे ही कोई अन्य सुखी होता है, इस प्रकार काल का स्वभाव और गति जानने में कठिन है ।१७। युवा वृद्ध हो जाता है बली निर्बल होता है, लक्ष्मीपति कंगाल हो जाता है इस प्रकार काल की गति विचित्र ही है ।१८। जाति, शील, बल, चतुराई

यह कार्य के लिए पूर्ण नहीं होती, इसका प्रतिरोधक काल ही है।१९अत्यन्त मनोहर गायन-वादन के शब्दों में स्थित धनिक तथा पराया अन्न खाकर जीने वाले अनाथ इनमें काल का व्यवहार समान ही है।२०। श्रेष्ठ औषधि या रसायन भी अकाल में फल-प्रद नहीं होती, परन्तु श्रेष्ठ काल में दी हुई साधारण औषधि भी शीघ्र ही सुख देने वाली हो जाती है ।२१।

नाकालतोऽयं म्रियते जायते वा नाकालतः पुष्टिमय्यामुपैति ।
नाकलतः सुखितं दुःखितं वा नाकालिक वस्तु समस्ति किंचित्।२२
कालेन शीत प्रतिवाति वातः कालेन वृष्टिर्जलदानुपैति ।
कालेन चोष्भा प्रशमं प्रयाति कालेन सर्वं सफलत्वमेति ।२३
कालश्च सर्वस्या भवस्य हेतु कालेन सस्याति भवंति नित्यम् ।
कालेन सस्यानि लय प्रयांति कालेन संजीवति जीवलोकः ।२४
इत्थ कालात्मनस्ततत्वं यो विजानाति तत्वतः ।
कालात्मानमतिक्रम्य कालातीतं स पश्यति ।२५
न यस्य कालो न च बंधमुक्ति न य पुमान्न प्रकृतिनविश्वम् ।
विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै नमः परस्मै परमेश्वराय ।२६

काल के विना प्राणी का मरण, जन्म ग्रहण, पुष्टि आदि संभव नहीं है । काल के बिना सुख-दुःख की प्राप्ति भी नहीं होती अकाल की कोई वस्तु समान नहीं होती।२२।काल से ही शीतल समीर बहती है,काल से ही मेघ वर्षा करते हैं, काल से ही उष्णता शांत होती है तथा काल से ही सब कार्य सफल होते हैं।२३। काल से ही सबकी उत्पत्ति का कारणहै, काल से खेती होती और काल से ही नष्ट हो जाती है, काल से ही सब लोक जीवित हैं ।।२६।। इस प्रकार जो कालात्मक परमेश्वर के तत्व को जानता है, वह कलात्मक का अतिक्रम करता हुआ निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है ।।२५।। जिसे न काल का बन्धन है, न मुक्ति है, जो पुरुष प्रकृति और विश्वरूप तथा विचित्र रूप है, उस परमात्मा पुरुष शिव के लिये नमस्कार है ।।२६।।

।। शिव द्वारा क्रीड़ा के रूप में जगत का निर्माण ।।

केन मानेन कालेस्मिन्नायुः संख्या प्रकल्प्यते ।
सख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमोऽवधि ।१
आयुषोऽत्र नमेषाख्यमाद्यमानं प्रचक्षते ।
संख्यारूपस्य कालस्य शांत्यतीतकलावधिः ।२
अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः ।
तादृशानां निमेषाणां काष्ठा दश पंच च ।३
काष्ठास्त्रिंशत्कला नाम कलास्त्रिंशन्मुहूर्तकः ।
मुहुर्त्तानामपि त्रिंशदहोरात्रं प्रचक्षते ।
त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रैर्मासः पक्षद्वयात्मकः ।५
ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्र मासः कृष्णसितात्मकः ।६
मासैस्तैरयनं षड्भिर्वर्ष द्वे चायने मतम् ।
लौकिकेनैव मानेन शब्दो यो मानुषः स्मृतः ।७

ऋषियों ने कहा—इस काल में आयु की संख्या की कल्पना किस प्रमाण से की जाती है ? संख्या-रूप काल की परम अवधि क्या है ? ।१। वायु ने कहा-आयु का प्रथम मान निमेष है संख्यात्मक काल की सीमा शान्ति से परे है ।२। जितने काल में पलक झपकता है, उसे निमेष कहतेहैं, पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा मानी गयी है ।३। तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात्रि होता है ।४। तीस दिन रात्रि अथवा दो पक्ष का एक मास होता है।५। एक मास की पितरों की एक दिन-रात्रि अर्थात् कृष्णपक्ष रात्रि और शुक्लपक्ष दिन होता है ।६। छः मास का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष, लौकिक मान के अनुसार मनुष्यों का वर्ष यही है ।।७।।

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
दक्षिण चायने रात्रिस्तथोदगयन दिनम् ।८
मासस्त्रिंशदहोरात्रैर्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः ।
संवत्सरोऽपि देवानां मासैर्द्वादशभिस्तथा ।९
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षयुतान्यपि ।
दिव्यः संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकीर्तितः । १०

दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्तते ।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदु ।११
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्यैतानि कृतत्स्नशः ।१२
चत्वारि तु सहस्त्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्चतथाविध।१३
इतरेषु ससध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकोपायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ।१४

मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन-राति, इसमें दक्षिणायन रात्रि और उत्तरायण दिवस है, यही शास्त्र का निर्णय है ।८। मानवी तीस वर्षों का एक सुर-मास, ऐसे बारह महीनों का देवताओं का एक वर्ष होता है।९।इस प्रकार मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है ।१०। उसी देव-वर्ष से युग-संख्या होती है, विज्ञजनों ने चार युग कहे हैं ।११। सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ।१२। इनमें चार हजार दिव्य वर्षों का सत्युग होता है, इसमें चार सौ वर्ष की सन्ध्या और इतने ही वर्षों की संध्यांश होती है,युग के पहिले संध्या और पश्चात् संध्यांश मानी जाती है।१३।अन्य युगों में वर्ष और संध्या केक्रम में एक-एक पाद कम होता है, जैसे त्रेता तीन हजार वर्ष का, संध्या और संध्यांश तीन-तीन सौ वर्ष, द्वापर दो हजार वर्ष, संध्या और संध्याँश दो-दो सौ वर्ष ।१४।

एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकं च चतुर्युगम् ।
चतुर्युगसहस्रं यत्संकल्प इति कथ्यते ।१५
चतुर्युगैकसप्तत्या मनोरंतरमुच्यते ।
कल्पे चतुर्दशैकस्मिन्ननूनां परिवृत्तयः ।१६
एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वंतराणि च ।
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रः ।१७
अज्ञेयत्वाच्च सर्वेषाभसंख्येयतया पुनः ।
शक्यो नैवानुपूर्व्याद्वै तेषां वक्तुं सुविस्तरः ।१८

कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तज्जन्मनः ।
कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्षमिहोच्यते ।१९
बर्षाणामष्टसाहस्रं यच्च तद्ब्रह्मणो युगम् ।
सवन युगसाहस्रं ब्राह्म पद्मजन्मनः ।२०

इस प्रकार संध्या और संध्यांश के सहित बारह हजार वर्ष की एक चतुर्युगी होती है तथा एक हजार चतुर्युगियों का एक कल्प होता है ।१५।इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है तथा एक कल्प में चौदह मनु होते हैं।१६।इस योग से सहस्रों कल्प और मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं।१७।उन्हें न कोई जान सकता है, न उनकी संख्या गिन सकता है तथा न कोई क्रम-पूर्वक विस्तार ही कर सकता है।१८।अव्यक्त से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी का एक दिन उसी एक कल्प का होता है तथा एक हजार कल्प का एक ब्रह्म वर्ष होता है ।१९। इस प्रकार के आठ हजार वर्षों का एक ब्रह्म-युग होता है, ब्रह्मा के एक हजार युग का एन सवन होता है ।२०।

सवनानां सहस्रं च त्रिगुणं त्रिवतं तथा ।
कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।२१
तस्य वै दिवसे यांति चतुर्दश पुरंदराः ।
शतानि मासे चत्वारि विंशत्या सहितानिच।२२
शब्दे पंच सहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि पंच लक्षाणि चायुषि ।२३
ब्रह्मा विष्णोर्दिनै चैको विष्णु रुद्रदिने तथा ।
ईश्वरस्य दिने रुद्रः सदाख्यस्य तथेश्वरः ।२४
साक्षाच्छिवस्य तत्सख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः ।
चात्वारिंशत्सहस्राणि पचलक्षाणि चायुषि ।२५
तस्मिन्साक्षाच्छिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते ।
यत्तत्सृष्टेः सयाख्यात कालान्तरमिह द्विजाः।२६
एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै परमेश्वरम् ।
रात्रिश्च तावती ज्ञेया पारमेशस्य कृस्तनश ।२७

अहस्तस्य तु या सृष्टि रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः ।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् ।२८

एक हजार सवन को तिगुने करने पर परमेष्ठी ब्रह्मा की आयु पूर्ण होती है, ब्रह्मा के एक दिवस में चौदह अथवा एक महीने में चासी बीस इन्द्र हो जाते हैं ।२१-२२। एक वर्ष में पाँच हजार चालीस इन्द्र होते हैं, ब्रह्मा की पूरी आयु में पाँच लाख चालीस हजार इन्द्र हो जाते हैं ।२३। ब्रह्मा विष्णु के एक दिन पर्यन्त रहते हैं तथा विष्णु की स्थिति रुद्र के एक दिन पर्यन्त है, ईश्वर के एक दिन तक रुद्र स्थित रहता है, उसी को सत् कहते हैं ।२४। शिवजी कृत काल की संख्या यही है, सत् नाम वाले शिव वही हैं, इनकी अवस्था में पाँच लाख चालीस हजार रुद्रादि होते हैं ।२५। परन्तु साक्षात् शिव में काल की प्रवृत्ति नहीं होती । सृष्टि का जो यह कालान्तर कहा है, इतना काल उस ईश्वर का एक दिवस है, तथा इतनी ही उसकी रात्रि समझनी चाहिए ।२६। दिन में सृष्टि तथा रात्रि में प्रलय होती है, परन्तु परमेश्वर के लिए दिन रात कुछ भी नहीं है ।२७-२८।

एषोऽपचारः क्रियते लोकानां हितकाम्यया ।
प्रजाः प्रजानां पतयो मूर्त्तयश्च सुरासुराः ।२९
इन्द्रियाणान्द्रियार्थश्च महाभूतानि पच च ।
तन्मात्राण्यथ भूतादिर्बुद्धिश्च सह दैवतैः ।३०
अहस्तिष्ठंति सर्वाणि परमेशस्य धीमतः ।
अहरंते प्रलीयन्तो रात्र्यन्तो विश्वसंभवः ।

लोक हित की दृष्टि से यह व्यवहार किया जाता है, प्रजा प्रजापति मूर्ति, सुर, असुर । इन्द्रिय इन्द्रियों के विषय, पचमहाभूत, तन्मात्रा, बुद्धि आदि इन्द्रिय तथा उनके देवता । यह सभी उस परमेश्वर के दिन में स्थित होते और दिन की समाप्ति पर लीन हो जाते हैं ।२९। काल, कर्म स्वभाव से उस विश्वात्मा की शक्ति का उल्लघन कभी कोई नहीं कर सकता, जिसकी आज्ञा के वश में यह सम्पूर्ण विश्व रहता है, उस महादेव शिव को नमस्कार है ।३१।

।। शिव-क्रीड़ा द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति विषयक प्रश्न ।।

कथं जगदिदं कृत्स्नं विधाय च निधाय च ।
आज्ञया परमां क्रीडां करोति परमेश्वरः ।१
किं तत्प्रथमसभूतं केनेदमखिलं ततम् ।
केन वा पुनरेवेदं ग्रस्यते पृथुकुक्षिणा ।२
शक्तिः प्रथमसम्भूता शांत्यतीतपदोत्तरा ।
ततो माया ततोऽव्यक्त शिवाच्छक्तिमत प्रभो ।३
शान्त्यतीतपद शक्तेस्ततः शान्त्यतीपदं क्रमात् ।
ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापदसम्भवः ।४
निवृत्तिपदमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदतः क्रमात् ।
एवमुक्ता समासेन सृष्टिरीश्वरचोदिता ।५
आनुलोम्यात्तथैतेषां प्रतिलोम्येन संहृतिः ।
अस्मात्पञ्चपदोद्दिष्टात्परः स्रष्टा समिष्यते ।६
कलाभिः पंचभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदंजगत्।
अव्यक्तं कारणं यत्तदात्मना समनष्ठितम् ।७
महदादिविशेषातं सृजतीत्यपि संमतम् ।
किंतु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्त न चात्मन।८

ऋषियों ने कहा-इस विश्व को भगवान् शिव किस प्रकार निर्माण तथा स्थित करके अपनी शक्ति के सहित किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं ? ।१। यह विश्व प्रथम किस प्रकार उत्पन्न हुआ, किससे विस्तार को प्राप्त हुआ तथा अन्त में यह किसकी महाकोख में प्रविष्ट हो जाता है ? ।२। वायु ने कहा-पहिले शान्त्यतीत शक्ति प्रकट हुई, फिर भगवान् शिव की माया के द्वारा अव्यक्त प्रकृति की उत्पत्ति हुई ।३। प्रथम उत्पन्न शक्ति से शान्त्यतीत पद है, फिर शान्तिपद फिर विद्यापद तथा प्रतिष्ठापद हुआ ।४। प्रतिष्ठापद के पश्चात् निवृत्ति पद है, ईश्वर की प्रेरणा से हुई सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन है ।५। जिस क्रम से इनकी उत्पत्ति होती है,

उसके प्रतिलोम से ही संहार होता है, इन पाँच पदों का उपदेश सृष्टि के अन्तर की अपेक्षा नहीं करता ।६। यह विश्व जिस कारण से पाँच कलाओं से व्याप्त है, इसमें जो अव्यक्त कारण है, वह आत्मा में अधिष्ठित है, महत् से विशेष पर्यन्त उत्पत्ति होती है, परन्तु उसमें अव्यक्त और प्राणी का कर्त्तव्य नहीं है ।७-८।

अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च ।
प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ।८
तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना।
जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः ।१०
तस्माच्छक्तःस्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्ववित् ।
अनादिनिधनश्चार्यं महदैश्वर्यसंयुतः ।११
स एव जगतः कर्त्ता महादेवो महेश्वरः ।
पाता हर्त्ता च सर्वस्य ततः पृथगनन्वयः ।१९
परिणामः प्रधानस्य प्रवृत्तिः पुरुषस्य च ।
सर्वं सत्यव्रतस्यैव शासनेन प्रवर्तते ।१३
इतीयं शाश्वती निष्ठा सतां मनसि वर्तते ।
न चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तते स्वल्पचेतनः ।१४

प्रकृति के जड़ होने और जीव के अज्ञानी होने से प्रधान परमाणु आदि जो कुछ भी अचैतन्य है।९। उसका कर्त्तापन विद्वानों ने बिना कारण के ही स्वयं देखा है, यह संसार कर्तृसापेक्ष है, क्योंकि कार्य सावयव है ।१०। इस कारण जो सर्व स्वतन्त्र, समर्थ, सशक्त और सब का ज्ञाता है, वह अनादि अनन्त तथा सदैव ऐश्वर्यशणाली है।११।वही संसार का कर्त्ता महादेव महेश्वर है, वही सबका पालन-कर्त्ता, सहार-कर्त्ता तथा पृथक् है ।१२। वही महदादि का परिणाम कर्त्ता है तथा सर्ववृत्त के शासन से इस सब की प्रवृत्ति है।१३। सत्पुरुषों का हार्दिक निश्चय यही है,अल्पबुद्धि वाला उस पक्ष को ग्रहक करने में कभी समर्थ नहीं होता ।१४।

यावदादिसमारंभो यावद्यः प्रलयो महान् ।
तावदप्यति सकलं ब्रह्मणः शरदां शतम् ।१५

परमित्यायुषो नाम ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते ।१६।
परार्द्धद्वयकालांते ब्रलये समुपस्थिते ।
अव्यक्तमात्मनः कार्यमादायात्मनि तिष्ठति ।१७।
आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ।
साधर्म्येणधितिष्ठेते प्रधानपुरुषावभौ ।१८।
तमःसत्वगुणाचेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अनुद्रिक्तावनन्तौ तावोतप्रोतौ परस्मरम् ।१९।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोदये ।
शांतवातैकमीरे च न प्राज्ञायत किञ्चन ।२०।

जब तक कार्यारम्भ हो और जब तक प्रलयकाल उपस्थित हो, तब तक ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं।१५।अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की आयु का यही क्रम है । उसकी आयु के प्रथम अर्ध भाग को परार्द्ध कहते हैं।१६।जब दो परार्द्ध व्यतीत हो जाते हैं, तब ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है,तब अव्यक्तात्मा को लेकर आत्मा मे स्थित हो जाता है.१७। यह संपूर्ण विश्व आत्मा मे स्थित होकर विकारयुक्त संहृत होता है, उस समय यह प्रधान और पुरुष साधर्म से युक्त होते हैं।१७।तमोगुण और सत्वगुण समान रूप से स्थित होते हैं, सब ओर से परस्पर पिरोये हुए के समान रहते हैं।१९।गुणों की समानता से तमोमय होने के कारण इनका विभाग समव नहीं । उस समय यह वायु के द्वारा शान्त होकर निश्चल जल के समान जानने में नहीं आते ।२०।

अप्रज्ञाते जगत्यस्मिन् लक एव महेश्वरः ।
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं ततः ।२१।
प्रभातायां तु शर्वर्या प्रधानपुरुषावुभौ ।
प्रविश्य क्षोभयामास मायायोगान्महेश्वरः ।२२।
ततः पुनरशेषाणां भूतानां प्रभवाप्ययात् ।
अव्यक्तादभवत्सृष्टिराज्ञया परमेष्ठिनः ।२३।

विश्वात्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य यस्यैकशक्तिकतले सकलः समाप्तः ।
आत्मानमध्वपतिमध्वविदोवदंतितस्मैनमः सकललोकविलक्षणाय।२४।

उस विश्व की अज्ञात दशा में उस माहेश्वरी रात्रि में वह एक ही महेश्वर स्थित रहते हैं।२१।रात्रि के बीतने पर प्रधान और पुरुष दोनों के भीतर वह परमेश्वर योग बल से प्रविष्ट होकर उन्हें सुशोभित करते है।२२।फिर सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि के निमित्त परमेष्ठी की आज्ञा से उस अव्यक्त के द्वारा सृष्टि होती है ।२३। जिस परमेश्वर की माया के एक खण्ड से ही उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सृष्टि अद्भुत मनोरथों सहित समाप्त होत है, उस परमेश्वर को अध्वपति कहा जाता है, सब प्राणियों से विलक्षण उन परमेश्वर को नमस्कार है ।२४।

।। समस्त ब्रह्माण्ड का स्वरूप वर्णन ।।

पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्ताद्वीश्वराज्ञया ।
बुद्धयाययो विशेषांता विकारश्चाभवन् क्रमात् ।१।
ततस्तेभ्योविकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
कारणात्वेन सर्वेषां त्रयो देवाः प्रजज्ञिरे ।२।
सर्वतौभुवनव्याप्ति शक्तितव्याहतां क्वचित् ।
ज्ञानमप्रतिमं शश्वदैश्वर्यं चाणिमादिकम् ।३।
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मष त्रिषु हेतुताम् ।
प्रभुत्वेन सहेतेषां प्रसादति महेश्वरः ।४।
कल्पान्तरे पुनस्तेषामस्पार्द्धाबुद्धिमोहिनाम् ।
सर्गरक्षालायाचारं प्रत्येकं प्रददौ च सः ।५।
एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमव्रताः ।६।
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते ।
नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ।७।

वायु ने कहा—ईश्वराज्ञा से पुरुष से अधिष्ठित अव्यक्त बुद्धि को लेकर विशेष तक क्रमपूर्वक पहिले विकारों की उत्पत्ति हुई।१।उन विकारों

से रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा यह तीन जगत् के कारण रूप देवता उत्पन्न हुए।२। उनकी कहीं भी अवरुद्ध न होने वाली शक्ति हुई उनका अप्रतिहत ज्ञान अणमादि सिद्धियों के सहित हुआ।३। इन तीनों के कर्म, उत्पत्ति, पालन और संहार हुए। इन रुद्रादि के प्रभुत्व से भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं।४। परमेश्वर ने कल्पान्तरों में बुद्धि और मोह की अस्पर्धा को उत्पत्ति, रक्षा और सहार के हेतु प्रदान किया ५। यह परस्पर उत्पन्न होकर परस्पर ही सशक्त होते हैं तथा परस्पर ही स्थित होते हुए अपनी अपनी शक्ति की परस्पर वृद्धि करते हैं।६। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा होती है कहीं विष्णु की और कहीं रुद्र की, इससे उनके ऐश्वर्य में कहीं आधिक्य अथवा न्यूनता नहीं आती।७।

मूर्खा निन्दन्ति तान्वाग्भि: संरंभाभिनिवेशिन:।
यातुधाना भवंत्येव पिशाचाश्च न सशय:।८।
देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वर:।
सकल: सकलाधा: रशक्तेरुत्पत्तिकारणम्।९।
सोऽयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृते: पुरुषस्य च।
लीलाकृत जगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थित:।१०।
य: सर्वस्तात्परो नित्यो निष्कल: परमेश्वर:।
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठित:।११।
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृति: पुरुषस्था।
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्माणा सर्व शिवात्मकम्।१२।
प्रधानात्प्रथमं जज्ञे बुद्धि ख्यातिर्मतिर्महान्।
महत्तत्वस्य सक्षाभादहकारस्त्रिधाऽभवत्।१३।
अहंकारश्च भूतानि तन्मात्राणींद्रियाणि च।
वैकारिकादहंकारात्सत्वोद्रिक्तात्त सात्विक:।१४।

तथा जो अल्प-ज्ञानी 'यह पर है, यह न्यून है अथवा यह श्रेष्ठ है'-ऐसा कहते हैं, वे अवश्य ही राक्षस या पिशाच बनते हैं।८।वह ब्रह्म, काल, विष्णु, पुरुष आदि रूप वाले महेश्वर चतुर्व्यूह रूप त्रिगुणातीत हैं तथा वह सब के आधार रूप शक्ति के उत्पन्न-कर्त्ता हैं।९। इस प्रकार

इन ब्रह्मादि त्रिदेवों का तथा प्रकृति का आत्मा वही है तथा संसार की रचना करके अपने ही ऐश्वर्य में स्थित हो रहा है ।१०। जो परमेश्वर सब से परे, कला-रहित है, वही सर्वाधार, सर्वात्मा तथा सब में अधिष्ठित है ।११। इस कारण महेश्वर प्रकृति पुरुष, शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी शिवात्मा हैं ।१२। प्रधान से पूर्व बुद्धि, ख्याति और मति की उत्पत्ति हुई तथा महत्तत्व के क्षोभ से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ।१३।अहंकार से पंचभूत और तन्मात्रा हुईं, तथा उस अहंकार के विकारी होने के कारण सत्व-गुण से सत्व हुआ ।१४।

वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते ।
बुद्धीन्द्रियाणि पंचैव पंचकर्मेन्द्रियाणि च ।१५।
एकादश मनस्तत्र स्वगुरोनोभयात्मकम् ।
तमयुक्तादहंकाराद्भूततन्मात्रय भवः ।१६।
भूतानामादिभूतत्वाद्भूतादिः कथ्यते तु सः ।
भूतादेः शब्दमात्रं स्यात्तत्र चाकाशसंभवः ।१७।
आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुसमुद्भवः ।
वायो रूप ततस्तेजस्तेजसो रसंसभवः ।१८।
रसादापः समुत्पन्नास्ताभ्यो गन्धसमुद्भवः ।
गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योऽन्यच्चराचरम् ।१९।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ।२०।
तत्र कार्यं च करण संसिद्धं ब्रह्मणो यदा ।
तदंडे सुप्रवृद्धोऽभूत क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ।२१।

वह वैकारिक सर्ग समान ही प्रवृत्त होता है बुद्धि आदि पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा पंच कर्मेन्द्रिय।१५।और ग्यारहवाँ मन, सत्व-रज युक्त होने से उभयात्मक हुआ । तमोयुक्त अहङ्कार से भूतादि तन्मात्रा उत्पन्न हुई ।१६।आदिभूत होने से उसे भूतों की आदि कहते हैं, भूतादि अहङ्कार से शब्दमात्रा होती है तथा उससे आकाश की उत्पत्ति कही है।१७।आकाश से स्पर्श, स्पर्श से वायु, वायु से रूप रूप से तेज तथा तेज से रस हुआ ।१८।

रस से जल की उत्पत्ति हुई, जल से गंध और गंध से पृथिवी हुई तथा इन्हीं पंच-महाभूतों से यह सम्पूर्ण चराचर सृष्टि हुई।१९।पुरुष के अधिष्ठान तथा अव्यक्त के अनुग्रह से, महत् से विशेष तक यह सब अण्ड को उत्पन्न करते हैं।२०। जब ब्रह्म के कार्य कारण की सिद्धि हुई, तब इस काण्ड में ब्रह्मा संज्ञा वाले क्षेत्र की वृद्धि हुई।२१।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥२२॥
तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा।
धर्मैश्वर्यकरी बुद्धिर्ब्राह्मी यज्ञेऽभिमानिनः।२३।
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदीप्सितम्।
वशीकृतत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः।२४।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम्।२५।
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चांतकः स्मृतः।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयंभुवः।२६।
सत्वं रजश्च ब्रह्माच कालत्वे च तमोरजः।
विष्णुत्वे केवलं सत्व गुणवद्धिस्त्रिधा विभौ।२७।
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षिपत्यपि।
पुरुषत्वेऽप्युदासीनः कर्म च त्रिविध विभोः।२८।

यही प्रथम शरीरी उत्पत्ति हुई, उसी को पुरुष कहते हैं यही सर्वप्रथम उत्पन्न प्राणियों के आदिकर्त्ता ब्रह्मा हैं।२२। उस सृष्टिकर्त्ता के अभिमान से ब्रह्मा की उपमा रहित, ज्ञान-वैराग्य संयुक्त ब्रह्म सम्बन्धी धर्म और ऐश्वर्य के करने वाली बुद्धि उत्पन्न हुई।२३। इसके मन की सम्पूर्ण इच्छा अव्यक्त से उत्पन्न होती है वह तीनों गुणों को अपने वश में किये हुए हैं। वे गुण उसकी अपेक्षा करते हैं,क्योंकि यह स्वभाव से ही सापेक्ष है।२४।वह अपने आत्मा का तीन प्रकार विभाजन करके तीनों लोकों में प्रवृत्त होता है तथा उन्हीं तीन गुणों के द्वारा, उत्पत्ति, पालन और विनाश

करता है ।२५। सृष्टि-कर्म में चतुर्मुख ब्रह्मा संहार में रुद्र तथा पालन में उसे पुरुष (विष्णु) कहते हैं, इस प्रकार वह तीनों अवस्थाओं में स्वयम्भू है ।२६। ब्रह्मत्व में सत्वगुण और रजोगुण, कालत्व में तमोगुण और रजोगुण तथा विष्णुत्व में कवल सत्वगुण रहता है इन प्रकार से तीनभेद वाली गुण-वृद्धि कही गयी है।२७।ब्रह्मतत्व में लोकों की सृष्टि और कालत्व में संहार होता है, पुरुषत्व में देखने से ही पालन कार्य की सिद्धि हो जाती है ।२८।

एवं त्रिधा विभिन्नत्वाद्ब्रह्मा त्रिगुण उच्यते ।
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ।२९।
आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः प्रजापतिरिति स्मृतः ।३०।
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तयोल्वं सुमहात्मनः ।
गर्भोदक समुद्राश्च जरायुश्चापि पर्वताः ।३१।
तस्मिन्नंडे त्विमे लौका अतर्न्विश्वमिदं जगत् ।
चद्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ।३२।
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु शह्यतोऽड समावृतम् ।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बहिरावृताः ।३३।
तेजो दशणेनैव वायुना बहिरावृता ।
आकाशेनावृतो वायुः खं च भूतादिपाऽऽवृतम् ।३४।
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ।
एतै रावरणै रण्ड सप्तभिर्बहिरावृतम् ।३५।

इस प्रकार तीन रूपों के विभक्त होने के कारण वह ब्रह्म त्रिगुणात्मक कहा गया है तथा चार प्रकार से विभक्त होने पर उसे चतुर्व्यूह कहते हैं ।२९। आदि होने के कारण उसे आदिदेव कहा है, अजन्मा होने से सजन हुआ तथा प्रजा की रक्षा करने वाला होने से प्रजापति कहा गया था ।३०। उसका गर्भाशय सुवर्णमय सुमेरु है, गर्भ का जल समुद्र है और जरायु पर्वत है ।१। यह सब लोक इस अण्ड में निवास करते हैं, विश्व इसके अन्तर में विद्यमान है तथा चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह

और वायु भी इसी में स्थित हैं। ३२। यह बाहर दश गुणा जल से व्याप्त है तथा जल से दस गुणा तेज से व्याप्त है। ३३। आकाश से वायु तथा आकाश से ही पंचभूत वेष्ठित हैं। ३४। भूतादि महान् से व्याप्त हैं, महान् प्रकृति से व्याप्त है, इस प्रकार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति के सप्तावरणों से व्याप्त हो रहा है। ३५।

एतदावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थितः।
सृष्टिपालनविध्वसकसंकर्त्र्यो द्विजोत्तमाः। ३६
एवं परस्परोत्पन्ना धारयंति परस्परम्।
आधाराधेयभावेन विकारास्तु विकारिषु। ३७
कूर्मोऽङ्गानि यथा पूर्वं प्रसार्य विनियच्छति।
विकारांश्च तथाव्यक्तं सृष्ट्वा भूयो नियच्छति। ३८
अव्यक्तप्रभवं सर्वमानुलोम्येन जायते।
प्राप्ते प्रलयकाले तु प्रातिलोम्येऽनुलीयते। ३९
गुणाः कालवशादेव भवंति विषमाः।
गणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते। ४०
तदिदं ब्रह्माणो योनिरेतदड घनं महत्।
ब्रह्मणः क्षत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते। ४१
इतीदृशानामण्डानां कोटचोज्ञेयाः सहस्रशः।
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्यगूर्ध्वमधः स्थिताः। ४२

यह आठों प्रकृति परस्पर सापेक्ष हैं, इन्हीं के द्वारा सृष्टि, स्थित और संहार होता है। ३५। यह परस्पर उत्पन्न होकर विश्व को परस्पर धारण करती हैं, आधार और आधेय के भाव से विकारियों में विकार। ३५। कछुए के देह समान फैलाते और संकुचित करते हैं, यही व्यक्त सब विकारों को प्रकट करता और यही नष्ट कर देता है। ३८। यह सम्पूर्ण विश्व पूर्वोक्त क्रमसे उत्पन्न होता हुआ अव्यक्त से प्रकट होता है तथा प्रलय उपस्थित होने पर प्रतिलोम रूप से लीन हो जात है। ३९। काल के वश से ही विषम और गुणों की उत्पत्ति होती है, गुणों की विषमता में सृष्टि रचना तथा साम्य में लय होता है। ४१। पितामह

ब्रह्मा का कारण यही अण्ड है, ब्रह्म का क्षेत्र होने से ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहा गया है ।४१। इस प्रकार के अण्ड करोड़ों सहस्र हैं, सर्वगत होने से यह ऊपर, नीचे तथा तिरछे स्थित है ।४२

तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्राह्मणो हरयो भवाः ।
सृष्टा प्रधानेन तथा लब्ध्वा शभोस्तु सन्निधिवम् ।४३
महेश्वरः परो व्वक्तादंडमव्यक्तसंभम् ।
अण्डाज्जज्ञे विभुर्ब्रह्मा लोकस्तेन कृतास्त्विमे ।४४।
अबुद्धिपूर्वा कथितो मयैषः प्रधानसर्गः प्रथमः प्रवृत्तः ।
आत्यतिकश्च प्रलयोऽन्तकाले लीलाकृतः केवलमीश्वरस्य। ।४५
यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्मा प्रधानं प्रकृतेः प्रसूतिः ।
अनादिमध्यान्तमन्तवीर्यं शुक्लं सुरक्तं पुरुषेण युक्तम् ।४६
उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेकाल्लोकस्य सतानविवृद्धिहेतून् ।
अष्टौ विकारानपि चादिकाले सष्टासमश्नाति तथांतकाले ४७
प्रकृत्यवस्थापितकानणानां या च स्थितिर्या च पुन प्रवृत्तिः ।
तत्सर्वप्रम कृतवैभवस्य सकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ।

ब्रह्मा, विष्णु महादेव भी उन्हीं स्थानों में स्थित हैं, प्रधान द्वारा प्रकट होकर शिव-सन्निधि को प्राप्त हुए विश्व की रचना करते हैं ।४३। परमेश्वर व्यक्त से परे हैं, उसी व्यक्त से अव्यक्त संज्ञा वाला अण्ड हुआ, अण्ड से ब्रह्मा हुए, जिन्होंने इन सब लोगों का निर्माण किया ।४४। जीवों के आवरण विक्षेप पूर्वक मैंने प्रथम सर्ग कहा, अन्त काल में आत्यन्तिक प्रलय होती है यह सब परमेश्वर की लीला ही समझो ।४५। अप्रमेय कारण भूत ब्रह्म, प्रधान प्रकृति से प्रादुर्भूत हुआ है, वह आदिहीन, मध्यहीन और अन्तहीन, वीर्यवान, लालश्वेत वर्ण वाले पुरुष से युक्त है ।४६। रज की वृद्धि सन्तति की वृद्धि के हेतु है। वे सृष्टि के आदि में आठ विकारों को उत्पन्न करते और अन्त में उनका ग्रास कर लेते हैं ।४७। प्रकृति जन्य कारणों की स्थिति और प्रवृत्ति जहाँ तक हैं, वह अप्राकृत शिव के ऐश्वर्य-ज्ञान से है। महेश्वर के सङ्कल्प मात्र से यह उत्पन्न होता है ।४८।

।। मोक्ष-साधन में शिव-ज्ञान की प्रधानता ।।

किं तच्छ्रेष्ठयनुष्ठानं मोक्षो येनापरोक्षितः ।
तत्तस्य साधन चाद्य वक्तुमर्हसि मारुत ।१।
शैवो हि परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ।
यत्रापरोक्षो लक्ष्येत साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः ।२।
स तु पचविधो ज्ञेपः पञ्चभिः पर्वभिः क्रमात् ।
क्रिय तपोजपध्यानज्ञानात्मभिरनुत्तरैः ।३।
तैरेव सोत्तरैः सिद्धो धर्मस्त परमो तमः ।
परोक्षमपरोक्ष च ज्ञान यत्र च मोक्षदम् ।४।
परमोऽपरमद्चोमौ धर्मौ हि श्रुतिचोदितौ ।
धर्मशब्दाभिधेयेऽर्थे प्रमाण श्रुतिरेव नः ।५।
परमो योगपर्यन्तो धर्म श्रुतिशिरोगतः ।
धर्मस्त्वपरमस्तद्वदधः श्रुतिमुखोत्थितः ।५।
अपश्वात्माधिकारत्वाद्यो धर्मः परमो मतः ।
साधारणस्ततोऽन्यस्तु सर्वेषामधिकारतः ।७।

ऋषियों ने कहा—हे वायो ! जिस अनुष्ठान से अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त होकर मोक्ष मिले, वह कौन-सा है, आप हमारे प्रति उसके साधन कहें ।१।वायु ने कहा-श्रेष्ठ अनुष्ठान शिव की उपासना ही है,वही परमधर्म है, उसी से मोक्षदायक शिव अपरोक्ष होते हैं।२।यह पाँच खण्ड वाला होने से पाँच प्रकार का है, क्रिया, जप, ध्यान और ज्ञानमय आत्मा से विचार करना।३।उन श्रेष्ठ धर्मान्तरों सहित सिद्ध हुआ धर्म अपरम कहा गया है, उसी से परोक्ष और अपरोक्ष मुक्ति को देने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है।४।वेद में परम और अपरम दोनों ही धर्म कहे यए हैं और वेद ही धर्म के विषय में परम प्रमाण है।५। पाशुपत योग तक परम धर्म उपनिषद भाग में और योगादि अपरम धर्म श्रुति के मुख में स्थित है।६।परम धर्म में माया-पाश से मुक्त आत्माओं का अधिकार है तथा यागादि साधारण धर्म में सभी का अधिकार है ।७।

स चायं परमो धर्मः परधर्मस्य साधनम् ।
धर्मशास्त्रादिभि सम्यक् सांग एवोबृंहितः ।८
शंवौ यः परमो धर्म श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ।
इतिहासपुराणत्स्यां कथंचिदुपदृंहितः ।९
शैवागमैस्तु सम्पन्नः सहांणोपांग वस्तरः ।
तत्संस्काराधिकारैश्च सम्यगेवोपबृंहितः ।१०
शैवागमो हि द्विविधः श्रौतोऽश्रोतश्च संस्कृतः ।
श्रुतिसारमयः श्रौतः स्वतन्त्र इतरो मतः ।११
स्वतन्त्रो दशधा पूर्वं तथाऽष्टादशधा पुनः ।
का मकादिसमाख्याभिः सिद्धसिद्धान्तसंज्ञित।११
श्रुतिसारमयो यस्तु शतकोटिप्रविस्तरः ।
पर पाशुपतं यत्र व्रतं ज्ञानं च कथ्यते ।१३
वुगावर्तेषु शिष्येत योगाचार्यस्वरूपिणा ।
तत्रतत्रावतीणेन शिवेनैव प्रयर्त्यते ।१४

अपर धर्म ही परम धर्म का साधन है धर्म-शास्त्रों में यह अङ्गों सहित पुष्ट हुआ है।८। उसमें शिवधर्म आद्य है,उसी को श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है, उसका इतिहासों और पुराणों में भी वर्णन मिलता है ।९। शैव-शास्त्रों के इसका साँगोपांग वर्णन है, शिव दीक्षा के सभी संस्कार उनमें कहे गये हैं।१०।शैव शास्त्र श्रुति और स्मृति भेद से दो प्रकार का है । वेद शास्त्र वाला श्रोत तथा दूसरा स्वतन्त्र कहा गया है ।११। स्वतन्त्र पहिले दस प्रकार का था फिर अठारह प्रकार का हुआ, कामिकादि नाम से लेकर सिद्धान्त सक्षक है ।१२ वेदसार युक्त का सौ करोड़ का विस्तार है, उसमें पाशुपत व्रत परम ज्ञात कहते हैं ।१३। भगवान् शिव युग-युग में योगाचार्य का अवतार लेकर शिष्यों को जो उपदेश देते हैं ।१४।

सक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः ।
रुद्रर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः ।१५
ते च पाशुपता ज्ञेयाः संहितानां प्रवर्तका, ।

तत्संततीया गुरगः शतशोऽथ सहस्रश ।१६
तत्रोक्तः परमो धर्माश्चर्याद्या मा चतुर्विध ।
तेष पाशुपतो योगः शिव प्रत्यक्षयेद्दृढम् ।१७
तस्माच्छ्रेष्ठमनुष्ठान योगः पशुपतो मतः ।
तत्राप्युपायको युक्तो ब्राह्मणा स तु कथ्यते ।१८
नामाष्टकमयो योगः शिवेन परिकल्पितः ।
तेन योगेन सहसा शैवी प्रज्ञा प्रजायते ।१९
प्रज्ञया परमं ज्ञानमचिराल्लभते स्थिरम् ।
प्रसीदति शिवस्तस्य यस्य ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ।२०
प्रसादात्परमो योगो यः शिवं चापरोक्षयेत् ।
शिवापरोक्षात्संसारकारणेन वियुज्यते ।२१
ततः स्यान्मुक्तसंसारो मुक्तः शिवसमो भवेत्।

उसी को संक्षिप्त रूप से रुद्र, दधीचि, अगस्त्य तथा उपमन्यु ने कहा है।१५। संहिताओं के प्रवृत्त करने वाले वह पशुपति व्रतधारी हैं, उनकी सन्तति रूप में सहस्रों गुरुजन हुए।१६। उन्होंने चार प्रकार का परमधर्म कहा है उनमें पाशुपत योग भगवान् शिव के साक्षात् करने में श्रेष्ठहै।१७। इस प्रकार पाशुपत योग ही उत्कृष्ट अनुष्ठानहै,ब्रह्माजीने जो उसकाविधान कहा है, वह कहता हूँ।१८।यह अष्टांग योग शिव के द्वारा ही कल्पित है, उस योग से शैवी-बुद्धि शीघ्र उत्पन्न होती है।१९।उस बुद्धि के प्राप्त होने पर परम ज्ञान की शीघ्र प्राप्ति होती हैं, जिसे यह ज्ञान हो जाता है उस पर शिवजी शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं।२०। उन्हीं के प्रसाद से परम योग प्राप्त होता है जो कि शिवजी को प्रकट कर देता है, शिव के प्रकट होने से संसार में उत्पत्ति का कारण नष्ट हो जाता है।२१।

ब्रह्मप्रोक्त इत्युपायः स एव पृथगुच्यते ।२२
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।२३
नामाष्टकमिदं मुख्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ।

आद्यं तु पञ्चकं ज्ञेयं शान्त्यतीताद्यनुक्रमात् ।२४।
संज्ञाः स दाशिवादीनां पंचोपाधिपरिग्रहात् ।
उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते ।२५।
पदमेव हि तं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ।
पदानां प्रतिकृत्तौ तु मुच्यन्ते पदिनो यतः ।२६
परिवृत्त्तरे भूयस्तत्पदप्राप्तिरुच्यते ।
आत्मान्तराभिधान स्याद्यदाद्य नामपञ्चकम् ।२७
अन्यत्तु त्रितय नाम्नामुपादादियोगतः ।
त्रिविधोपाधिवचनाच्छिव एवानुवर्तते ।२८

तब वह संसार से मुक्त होकर शिवजी के समान हो जाता है, ब्रह्मा द्वारा कहा गया उपाय अलग-अलग कहा गया है ।२२। उनके नाम शिव महेश्वर, रुद्र, ब्रह्मा, पितामह सर्वज्ञ, संसारभिषक् तथा परमात्मा है ।२३। यह आठों नाम शिवजी के नित्य प्रतिपादक हैं—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा यह पाँच तथा शान्त्यतीतपदे शैवाः से लेकर तीन ।२४। वे पाँच उपाधि ग्रहण करने से शिवादि संज्ञक होते हैं, तथा उपाधि दूर होने से भेद भी नहीं रहता ।२५। वह पद नित्य है, तथा पद वाले अनित्य हैं, पदों की परिवृत्ति में पद वाले मोक्ष को प्राप्त होते हैं ।२६। परिवृत्ति के अन्तर में उपाधि से पुनः पद-प्राप्ति होती है आदि के पाँच नाम आत्मान्तर वाले हैं ।२७। संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा यह तीन नाम माया के अवलम्ब के कारण होते हैं, तीन प्रकार की उपाधि से शिव का ही ग्रहण होता है ।२८।

अनादिमलसंश्लेषः प्रागभावात्स्वभावयः ।
अन्यन्त परिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ।२९
अथवाऽशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः ।
शिव इत्युच्यत्तो सद्भिः शिवतत्वार्थवादिभिः ।३०
त्रयोविंशतितत्वेभ्यः प्रकृतिर्हि परा मता ।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ।३१

यं वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ।
वेदैकवेद्ययःथात्स्याद्वेदान्ते च प्रितिष्ठितः ।३२
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ।
तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च ।३३
अथवा त्रिगुण तत्वमुपेयमिदमव्ययम् ।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।३४
मायाविक्षोभकोऽनंतो महेश्वरसमन्वयात् ।
कालात्मा परमात्मादिः स्थूलः सूक्ष्मःप्र कीतितः ।३५

अनादि गुण से प्रागभाव और स्वभाव से सम्बन्ध वाले परम परिशुद्धात्मा शिव ही कहे गये हैं।२९।अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुण के घन ईश्वर को ही शिव तत्व-वेत्ताओं ने शिव कहा है।३०।प्रकृति तेईस तत्वों से परे है तथा प्रकृति से भी परे वह पच्चीसवाँ पुरुष कहा गया है ।३१।जिसे वाच्य-वाचक भाव से वेदारम्भ में प्रणव कहा है जो वेदों और उपनिषदों मे अधिष्ठित है, वही प्रकृति में लीन होकर भोगार्थ प्रतिष्ठित हुआ है।३२।प्रकृति में लीन हुए से परे महेश्वर है.प्रवृत्ति इसी के आधीन है तथा प्रकृति पुरुष का वश होना भी उसी के आधीन है।३३।अथवा त्रिगुणतत्व उस अविनाशीकी माया है,माया ही प्रकृति है तथा मायात्मक महेश्वर हैं।३४।नारायण पुरुष माया को विक्षुब्ध करने वाले हैं, वे महेश्वर से सम्बन्धित हैं तथा वह कालात्मा परमा स्थूल और सूक्ष्म कहे जाते हैं ।३५।

रुद्दुःख दुःखहेतुर्वा तद्रावयति नः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ।३६
तत्वादिभूतपर्यन्य शरीरादिष्वयन्द्रितः ।
व्याप्यातिष्टति शिवस्ततो रुद्र इतस्ततः ।३७
जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि ।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ।३८
निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारतः ।३९
संसारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः ।

संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्वार्थवेदिभिः ।४०
दशार्थज्ञानसिद्धयर्थमिन्द्रियेश्वेषु सत्स्वपि ।
त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ।४१
अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः ।
असत्स्वपि च सर्वेषु सर्वार्थज्ञानहेतुषु ।४२

रुद् दुःख अथवा दुःख के कारण को नष्ट करने वाले होने से वे रुद्र कहे जाते हैं, सत्पुरुषों का कहना है कि परम कारण शिव वही हैं ।३६। शिव-तत्व से भूमि पर्यन्त देहादि और घटादि को व्याप्त करके अधिष्ठित होने के कारण शिव को रुद्र कहा गया है।३७।मूर्त्यात्मक, शिव के पितृभूत शिव सबके पितृभाव में होने के कारण पितामह कहे गये हैं ।३८। जैसे निदान का ज्ञाता वैद्य रोग को दूर करने वाला है और अनेक औषधयुक्त उपाय करता है, उसी प्रकार प्रकृति के कर्मज्ञान रूप उपायों से मुमुक्षुओं और कामुको को क्रमपूर्वक लय, मोक्ष या भोग के अधिकार के अनुसार उन्हें प्रवत्त करता है ।३९। इस प्रकार संसार के मूल को मिटाने वाला ईश्वर है तथा जगत्पति होने से भी सभी तत्वज्ञाता उसे संसार-वैद्य कहते हैं।४०।शब्दादि विषयों के ज्ञान की सिद्धि के लिए ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय से तीनों काल में होने वाले स्थूल ओर सूक्ष्म भावों को ।४१। जीव तत्व के मल के कारण को प्राणी नहीं जानते और सभी विषयों का ज्ञान न होने के कारण भी ।४२।

यद्ययावस्थित वस्तु तत्तथैव सदाशिव ।
अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ।४३
सर्वात्मा परनैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ।४४
नामाष्टकमिदं चैव लब्ध्वाऽऽचार्यप्रसादतः ।
निवृत्यादिकलाग्रन्थि शिवाद्यैः पंचनामभिः ।४५
यथास्वं क्रमशश्छित्वा शोधयित्वा यथागुणम् ।
गुणितैरेव सोद्घातैरनिरुद्धैरथापि वा ।४६
उत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमन्विताम् ।

छित्वा पुर्यष्टकाकारं स्वात्मानं च सुषुम्णया ।४७
द्वादशांतः स्थितस्येन्दोर्नीत्वोपरि शिवौजसि।
संहृत्य वदनं पश्चाद्यथा संस्करण लयात् ।४८
शाक्तेनामृतवर्षेण संसिक्तायां तनौ पुनः ।
अवतार्य स्वमात्मानममृतात्माकृतिं हृदि ।४९
द्वादशांतः स्थितस्येन्दोः परस्ताच्छ्वेतपङ्कजे ।
समासीनं महादेवं शङ्करं भक्तवत्सलम् ।५०।

जो वस्तु जिस प्रकार है, उसे बिना यत्न के शिव उसी प्रकार जानते हैं, इसीलिए उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं।४३।इन परम गुणों से वह सर्वात्मा सदा सम्पन्न रहता है । अपने से परे आत्माओं के विरह से वह परम-आत्मा है ।४४। आचार्य गुरु की कृपा से इन आठ नामों को अर्थ सहित पाकर, पाँच नामों से कल्प ग्रन्थियों को ।४५। यथाक्रम छेदन करे और अपने अधिष्ठान क्रम से करके नामों का आवर्तन करे, उद्घात् कर्म करे ।४६। इससे हृदय, कण्ठ तालु,भ्रू के मध्य ब्रह्मरन्ध्र से युक्त कला ग्रन्थि रूप भेतेन्द्रिय मनो-बुद्धि, वासना,कर्मवायु और अविद्या के आठों आकारों का भेदन कर मध्य नाड़ी सुषुम्ना से ।४७। द्वादश दल वाले हृदय कमल में स्थित चन्द्रमा के ऊपर शिव-प्रभाव में अपने आत्मा को ले जाय तथा अपने कारण में यथा योग्य लय होने से ।४८। शक्ति की अमृत-धारा से सींचे तथा अपने देह में स्थित आत्मा को हृदय में उतारे ।४९। और द्वादश दल हृदय कमल में चन्द्र से ऊपर भक्तवत्सल भगवान् शंकर के दर्शन करे ।५०।

।। पाशुपत व्रत और भस्म महिमा कथन ।।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो व्रतं पाशुपतं परम्
ब्रह्मादयोऽपि यत्कृत्दा सर्वे पाशुपता स्मृताः ।१
रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिकृन्तनम्
व्रत पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम् ।२।
कालश्चत्री पौर्णमासी शिवपरिग्रहः ।

क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः ।३
तत्र पूर्व त्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ।
अनुज्ञाप्य स्वामाचार्यं सपूज्य प्रणिपत्य च ।४
पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ।
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ।५
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्.मुखो वाप्युदङ्.मुखः ।६
व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्प्य दीक्षितः ।
याच्छरीरपात वा द्वादाशब्दमथापि वा ।७।

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो ! हमें पाशुपत व्रत के श्रवण की इच्छा है, जिसे करके ब्रह्मादिक भी पाशुपत हो गये ।१।वायु ने कहा-मैं तुमसे सभी पापों को नष्ट करने वाले रहस्य को कहता हूँ, यह पाशुपत व्रत अथर्वशिरस् उपनिषद् में है।२। इसका समय चैत्र की पूर्णमासी स्थान श्रेष्ठ लक्षण युक्त उद्यान कहा है।३।त्रयोदशी के दिन प्रथम स्नानादि से निवृत्त होकर अग्नि में हवन के पश्चात् अपने गुरुका पूजन कर प्रणामपूर्वक उनसे आज्ञा प्राप्त करे।४।पूजन कर स्वत श्वेत वस्त्र धारण करे श्वेत जनेऊ,श्वेत माला श्वेत चन्दन लगावे.५।कुशा के आसन पर स्थित होकर मुट्ठी में कुश ग्रहण करे और उत्तर या पूर्वाभिमुख से तीन प्राणायाम करके देवी-देव को उनके विज्ञापित मार्ग से ध्यान करे।६। और संकल्प करे कि मैं दीक्षित होकर यह व्रत करता हूँ, बारह वर्ष तक तथा मृत्यु पर्यन्त ।७।

तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा
तददर्धं वा तदर्धं मासमेकमथापि वा ।८।
दिनद्वादकं वाऽथ दिनषट्कमथापि वा ।
तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ।९।
अग्निाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात्
सुत्वाज्येन समिद्भिश्चचरूणा चयणाक्रमन् ।१०।

पूर्णमापूर्य तां भपस्तत्वानां शुद्धिमुद्दिशन् ।
जुहुयान्मूयमंत्रेण तै रेव समिदादिभिः ।११
तत्वान्येतानि मद्देहे शुद्धयं यामित्यनुस्मरन् ।
पचभूतानि तन्मात्राः पचकर्मेन्द्रियाणि च ।१२
ज्ञानकर्म विभेदेन पंचकर्म विभाग्टशः ।
त्वगादिधातवः सप्त पंच प्राणादिवायवः १३
मनोबुद्धिरहंख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपुरुषौ ।
रागा विद्यकले चैव नियतिः काल एवं च ।१४
माया च शुद्ध विद्या च महेश्वरसदाशिवौ ।
शक्तिश्च शिवतत्व च तत्वानि क्रमशो विदुः ।१५

या छः वर्ष, तीन वर्ष, एक वर्ष छः महीने, तीन या एक ही महीने । अथवा बारह दिन, छः दिन, तीन दिन या एक ही दिन के व्रत का संकल्प ले ।९।विरजाग्नि को विधिवत् ग्रहण कर घृत, समिधा और चरु से यथा विधि हवन करे ।१०। पूर्णाहुति के उपरान्त तत्व शुद्ध्यर्थं उन समिधा आदि का पंचाक्षर मन्त्र से हवन करे ।११। और ऐसा ध्यान करता जाय कि 'यह तत्व मेरे देह के निमित्त शुद्ध हों' पंचभूत, तन्मात्रा और पाँच कर्मेन्द्रिय ।१२। ज्ञान तथा कर्म के भेद से पाँच-पाँच प्रकार हैं, त्वचा आदि सात धातु तथा प्राण आदि वायु ।१३। मन, बुद्धि, अहंकार, गुण, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियत और काल ।१४। माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, शिव, शक्ति और शिव-तत्व यह क्रम पूर्वक कहे हैं ।१।

मन्त्रै स्तु विरजैर्हुत्वा होताऽसौ विरजो भवेत् ।
शिवानुग्रहमासाद्य ज्ञानवान्स हि जायते ।१६
अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमन्त्य च ।
विन्यस्याग्नौ च सम्प्रोक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् ।१७
प्रभाते तु चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ।
दिने यस्मिन्निराहारः कालं शेषं समापयेत् ।१८

प्राप्त: पर्वाणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानात: ।
उपसंहृत्य रुद्राग्नि गृहणी याद्भस्म यत्नत: ।१९
प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुम् ।
संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजामलसंभवम् ।२०
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रै: षड्भिराथर्वणै: क्रमात् ।
विमृज्यांगानि मूर्द्धादिचरणांतानि तै: स्पृशेत् ।२१

इन विरज मंत्रों से हवन करने वाला पापों से छूट जाता है तथा शिव का अनुग्रह प्राप्त कर ज्ञानी होता है ।१६। फिर गोबर लाकर उसका पिंड बनावे और मंत्र पढ़कर उसे सूँघे और अग्नि में रखदे, उस दिन हविष्यान्न का भोजन करे ।७। फिर चतुर्दशी के दिन प्रात:काल नित्य कर्म से निवृत्त होकर निराहार रहता हुआ शेष समय व्यतीत करे ।१८। फिर पर्व के दिन सब कृत्यों को कर हवन के उपरान्त रुद्राग्नि को शान्त करे और यत्नपूर्वक भस्म ग्रहण करे ।१९। फिर चरण धोकर दो बार आचमन करे और अपने देह पर उस हवन को भस्म को मले ।२०। 'अग्निरिति भस्म' यह अथर्ववेद के छ: मन्त्र हैं इनसे शिर से चरण पर्यन्त करे ।२१।

ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धृत्य च भस्मना ।
सर्वांगोद्धुलनं कुर्यात्प्रणबेन पिवेन वा ।२२
तयस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ।
शिवभावं समागम्य शिवयोगमथाचरेत् ।२३
कुर्यात्त्रिसन्ध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्पशुत्वं बिनिवतयेत् ।२४
तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ।
पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्ति: सनातन: ।२५
बिल्वपत्रैश्च पद्मैश्च रक्तै: श्वेतैस्तथोत्पलै: ।
नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तै: सुगंधिभि: ।२६
पुण्यै: प्रशस्तै: पत्रैर्दूर्वाक्षतादिभि: ।
समभ्यर्च्य यथालाभं महापूजाविधानत: ।२७

धूपं दीपं तथा चापि नैवेद्यं च समादिशेत् ।
निवेदयित्वा विभवे कल्याणं च समाचरेत् ।२८

इसी क्रम से भस्म को सम्पूर्ण शरीर में लगावे तथा प्रणव सहित शिव का उच्चारण करे।२२। फिर 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' मंत्र से त्रिपुण्ड्र धारण कर शिवभाव को प्राप्त हो और शिव-योग का आचरण करे ।२३। तीनों संध्याओं में इस मुक्ति, भुक्तिदायक और पशुत्व को नष्ट करने वाले पाशुपत व्रत को करे ।२४। इस पाशुपत व्रत से पशुत्व से मुक्त होकर लिंगमूर्ति भगवान् शंकर का पूजन करे ।२५। बिल्व पत्र, श्वेत कमल, लाल कमल, नील कमल तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों ।२६। और श्रेष्ठ बिल्व पत्रों से तथा चित्रदूर्वा और अक्षत आदि से पूजन-विधि से पूजा करे ।२७।तथा धूप,दीप नैवेद्य, अर्घ्य आदि शिव को समर्पित कर कल्याण में प्रवृत्त हो ।२८।

पयोव्रतो वा भिक्षाशी भवेदेकाशनस्तथा :
नक्त युक्ताशनो नित्यं भूशय्यानिरतः शुचिः २९
भस्मशायीतृणेशायी चीराजिनधृतोऽथवा ।
ब्रह्मचर्यव्रतो नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ।३०
अर्कवारे तथार्द्रायां पंचदश्यां च पक्षयोः ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शक्तस्तुपवसेदपि ।३१
पाखण्डिपतितोदक्याः सूतकान्त्यजपूर्वकान् ।
वर्जयेत्सर्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ।३२
क्षमादानदयासत्वाहिंसाशीलः सदा भवेत् ।
संतुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा ३३
कुर्यात्त्रिषवणस्नान भस्मस्नानमथापि वा ।
पूजां वैशेषिकीं चैव मनसा वचसा गिरा ।३४
बहुनाऽत्र किमुक्तेन नाचरेदशिवं व्रती ।
प्रमादात्तु तथाचारे निरूप्य गुरुलाघवे ।३५

दूध पान करे या भिक्षान्न सेवन करे, केवल एकबार भोजन, रात्रि के समय नियत रूप से करे और पवित्र होकर पृथिवी पर सोवे।२९।भस्म या

तिनकों पर अथवा चीर, अजिन या मृग चर्म पर शयन करे, इस व्रत की समाप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक रहेरहें।३०। आर्द्रानक्षत्र, रविवार, अमावस्या, पूर्णमासी, अष्टमी या चतुर्दशी कोसामर्थ्य हो तो उपवास करे।३१।पाखण्डी, पतित, उदक्या (रजस्वला, सूतिका आदि का मन से या वाणी से भी ध्यान न करे।३२।क्षमा, दया, दान, सत्य, अहिंसा, शील से सदा रहे तथा सदैव शान्त, सन्तुष्ट और तप-ध्यान में रत रहे।३३।तीनों समय स्नान करे, असमर्थ हो तो भस्म-स्नान करे, मन, वचन से विशेष पूजन करता रहे ।३४। किसी अमगल कृत्य को न करे, यदि प्रमाद उत्पन्न हो जाय तो आचार में उसकी लधुता या गुरुता के विचार से ।३५।

उचितां निष्कृतिं कुर्यात्पूजाहोमजपादिभिः ।
आसमाप्तेर्व्रतस्यैवमाचरेन्न प्रमादतः ।३६
देशिकेनाप्यनुज्ञातः प्राङ्. मुखो वाप्युदङ.मुखः ।
दर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च ।३
जपित्वा शक्तितो मूल ध्यात्वा साम्बं त्रियंवकम् ।
अ ज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।३८
समुत्सृजामि भगवन्व्रतमेतत्वदाज्ञया ।
इत्युक्त्वा लियमूलस्थान्दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ।३९
ततो दण्डजटाचीर मेखला अपि चोत्सृजेसे ।
पुनराचम्य विधिवत्पञ्चाक्षरमुदीरयेत् ।४०
यः कृत्वात्यंतिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः ।
व्रतमेतत्प्रकुर्वीत स तु वैष्टिकः स्मृतः ।४१
सोऽत्याश्रमी च विज्ञयो महापाशुपतस्तथा ।
स एवं तपतां श्रेष्टः स एव च महाव्रती ।४२

पूजन, हवन, यज्ञ आदि कर्मों द्वारा उसका समुचित प्रायश्चित करे व्रत की समाप्ति पर्यन्त किंचित् भी प्रमाद न करे।३६।आचार्य की आज्ञा लेकर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके कुशा के आसन पर बैठे और कुशा हाथ में लेवर प्राणापान को रोक कर।३७।शक्ति के अनुसार मूल मंत्र का

जप करे तथा शिवा सहित त्र्यंबक देव का ध्यान कर आज्ञा लेकर हाथ जोड़कर निवेदन करे।३८।हे भगवान् ! अब आपकी आज्ञा से इस व्रत को छोड़ता हूं यह कर लिंगमूल के कुशों का विसर्जन उत्तर भाग से करे।३९।फिर दण्ड, जटा, चीर और मेखला को भी छोड़ दे और विधिपूर्वक आचमन कहकर पंचाक्षर मंत्र का जप करे।४०।जो इस दीक्षा को मरण-पर्यन्त सावधानी पूर्वक करता हुआ व्रत करता है उसे नैष्ठिक व्रती कहते हैं।४१। वह सब आश्रमों में उत्कृष्ट महा पाशुपत व्रती होता है वही महाव्रती तपस्वियों में श्रेष्ठ है।४२।

न तेन सदृशः कस्चित्कृतकृत्यो मुमुक्षुषु।
यो यतिर्नैष्ठिको जातस्तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमम्।४३।
योऽन्वहं द्वादशाहं वा व्रतमेतत्समाचरेत्।
सोऽपि नैष्टिकतुल्यः स्यत्तीव्रव्रतसमन्वयात्।४४।
घृताक्तो यश्चरेदेतद्व्रतं व्रतपरायणः।
द्वित्र्यैकदिवसं वापि स च कश्चन नैष्ठिकः।४५।
कत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद्व्रतमुत्तमम्।
शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित्।४६।
भस्मच्छन्नो द्विजो विन्द्वामहापातकसंभवैः।
पापैः सुदारुणैः सद्यो मुच्यते नात्र संशयः।४७।
भस्मनिष्ठस्य नश्यंति दोषा भस्माग्निसङ्गमात्।
भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः।४८।
भस्मना दिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्तस्त्रिपुंड्रकाः।
भस्मस्नायो च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः।४९।

मुमुक्षुओं में उसके समान कृतकृत्य अन्य नहीं है, जो यती नैष्ठिक हो वह श्रेष्ठ नैष्ठिक है।४३। जो इस व्रत को बारह दिन उपवासपूर्वक करे, वह भी तीव्र व्रत के कारण नैष्ठिक के समान ही हो जाता है।४४। जो अपने देह में घृत लगाकर व्रत को करे, वह दो-तीन दिन भी करे तो नैष्ठिक ही है।४५। कामना-रहित होकर इस व्रत को करने वाले

जो व्रती शिवजी को अपनी आत्मा अर्पण किये हुए हैं, उनके समान अन्य कोई नहीं है ।४६। विद्वान् ब्राह्मण अपने देह में भस्म मलकर महापापों से उत्पन्न कष्टों से शीघ्र मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ।४७। भस्मनिष्ठ पुरुषों के सभी दोष अग्नि के संसर्ग के कारण नष्ट हो जाते हैं भस्म स्नान करने वाले पुरुष को भस्मनिष्ठ कहते हैं ।४८। जिसके देह में भस्म रमा है, जिसका त्रिपुण्ड्र भस्म से दीप्तियुक्त है, वह पुरुष भस्म स्नान के कारण भस्मनिष्ठ होता है ।४९।

भूतप्रेतपिशाचाश्च रोगाश्चातीव दुःसहा ।
भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ।५०।
भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ।
भूतिर्भूतिकरी चैव रक्षा रक्षाकरी परा ।५१।
किमन्य दिहवक्तव्यं भस्ममाहाम्यकारणम् ।
व्रती च भस्मना स्नातः स्वयं देवो महेश्वरः ।५२।
परमांस्त्र च शैवानां भस्मैतत्पारमेश्वरम् ।
धौम्याग्रजस्य तपसि व्यापदो यन्निवारिताः ।५३।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा पाशुपतव्रतम् ।
धनवद्भस्म संगृह्य भस्मस्नानरनो भवेत् ।५४।

उस भस्मनिष्ठ के समीप्य से बड़े भयङ्कर रोग, भूत, प्रेत, पिशाच भी दूर भागते हैं, इसमें संशय नही है ।५०। पाप दूर करने वाला होने से तथा भास्मान होने से इसे भस्म कहा गया है, वह विभूति ऐश्वर्य दायिनी तथा परम मोक्ष करने वाली है।५१। व्रती भस्म स्नान करके स्वयं महेश्वर रूप होता है ।५२। यह परमेश्वरी भस्म शैव्यों का परमास्त्र है, इसने उपमन्यु की आपत्ति निवारण की है ।५३। इसलिए सब यत्न करके भी पाशुपत व्रत करे और धन के समान भस्म को एकत्र करे। इस प्रकार भस्म-स्नान में सदा प्रीतिवान् रहे ।५४।

——

॥ वायुसंहिता (उत्तरभागः) ॥

॥ पाशुपत ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता ॥

किं तत्पाशुपतं ज्ञानं कथं पशुपतिः शिवः ।
कथं धौम्याग्रजः पृष्टः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।१।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व वायो शंकरविग्रह ।
त्वत्समो न हि वक्तास्ति त्रैलोक्येष्वपरः प्रभुः ।२।
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां महर्षीणां प्रभंजनः ।
संस्मृत्य शिवमीशानं प्रवक्तुमुपचक्रमे ।३।
पुरा साक्षान्महेशेन श्रीकंठाख्येन मन्दरे ।
देव्यै देवेन कथितं ज्ञानं पाशुपतं परम् ।४।
तदेव पृष्टं कृष्णेन विष्णुना विश्वयोनिना ।
पशुत्वं च सुरादीनां पतित्वं च शिवस्य च ।५।
यथोपदिष्टं कृष्णाय मुनिना ह्युपमन्युना ।
तथा समासतो वक्ष्ये तच्छृणुध्वमतन्द्रिताः ।६।
पुरोपमन्युमासीनं विष्णुः कृष्णवपुर्धरः ।
प्रणिपत्य यथान्यायामिदं वचनमब्रवीत् ।७।

ऋषियों ने कहा—पाशुपत ज्ञान क्या है ? शिव पशुपति क्यों कहे जाते है ? श्रीकृष्ण ने उपमन्यु से किस प्रकार का प्रश्न किया था ? ।१। हे वायो! आप शङ्कर के देह हैं,हमारे प्रति यह सब कहने की कृपा करिये इस समय त्रैलोक्य में आपके समान कोई वक्ता नहीं है ।२। सूतजी ने कहा—उन ऋषियों के इस प्रकार वचन सुनकर ईशान शिव का स्मरण कर पवन देवता कहने लगे ।३। पवन ने कहा—सर्वप्रथम महेश्वरदेव ने मन्दराचल में देवी को पाशुपत ज्ञान का वर्णन किया था ।४। वही वृत्तान्त विश्वयोनि श्रीकृष्ण ने पूछा था कि देवता आदि को पशुत्व की

प्राप्ति किस प्रकार हुई और शिवजी को उनका पतित्व किस प्रकार से प्राप्त हुआ ? ।५। जैसे उपमन्यु ने श्रीकृष्ण को उपदेश दिया था, वह मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, तुम ध्यान से श्रवण करो ।६। एक समय की बात है—बैठे हुए उपमन्यु मुनि के पास कृष्ण रूपी भगवान् विष्णु ने प्रणाम कर इस प्रकार कहा ।७।

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि दैव्यं देवेन भाषितम् ।
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं विभूतिं वास्य कृत्स्नश ।८।
कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः ।
के पाशैस्ते निवध्यंते विमुच्यते च ते कथम् ।९।
इति सचोदिता श्रीमानुपमन्युमहात्मना ।
प्रणम्य देव देवीं च प्राह पृष्टो यथा तथा ।१०।
ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देवदेवस्य शालिनः ।
पशवः परिकीर्त्यं ते संसारवशर्तिनः ।११।
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ।
मलमायादिभिः पाशैः स वध्नांति पशून्पतिः ।१२।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ।
चतुर्विंशतितत्वानि मायाकर्मगुणा अमी ।१३।
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून्बद्ध्वा महेश्वरः ।१४।

श्रीकृष्ण बोले—हे भगवान्! भगवान् शङ्कर ने पार्वतीजी को जो दिव्य पाशुपत ज्ञान और उसकी सब विभूतियाँ बतायीं थीं मैं उसे सुनना चाहता हूं।८। वह पाशुपति देव किस प्रकार से हैं ! पशु कौन है ? किन पाशों में उनका बन्धन होता है ? तथा वे किस प्रकार बन्धन से छूटते हैं ?। ९। जब उपमन्यु ने यह वचन सुने तब वह शिव-शिवा को प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे ।१०। उपमन्यु ने कहा—ब्रह्म से लेकर संसारवर्ती सभी जीव देवदेव शूली के पशु कहे जाते हैं ।११। उन पशुओं के स्वामी होने से वे देवदेव पशुपति कहे जातेहैं.उन प्राणियों को वही पशुपति मल और माया आदि के पाशों से उनका बन्धन करता है ।१२। उपासना किये

जाने पर वही भक्तों के पापों को नष्ट करता है, वह माया के गुण और कर्म चौबीस तत्व के हैं ।१३। यही विषय कहे गये हैं, इन्हीं से जीव बँधा हुआ है ब्रह्म से स्तम्ब तक पशुओं के बन्धनकार शिवजी ही हैं ।१४।

पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्य कारयति स्वकम् ।
अतस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम् ।१५
बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहंकारमहक्कृतिः ।
इन्द्रियाणि दशैक च तन्मात्रापंचकं तथा ।१६
शासनाद्देवदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः ।
तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा ।१७
महाभूतान्यशेषाणि भावयंत्यनुपूर्वशः ।
ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसंगतिम् ।१८
महाभूतान्यशेषाणि जनयंति शिवाज्ञया ।
अध्यवस्यति वै बुद्धिरहंकारोऽभिमन्यते ।१९
चित्तं चेतयते चापि मनः सङ्कल्पयत्यपि ।
श्रोत्रादीनि च गृहणन्ति शब्दादान्विषयान् पृथक ।२०
स्वानेव न न्यान्देवस्य दिव्येनाज्ञाबलेन वै ।
वागादीन्यपि यान्यासस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च ।२१

इन पाशों से बाँध कर संसार का कार्य कराते हैं शिवाज्ञा से वह प्रकृति उचित ।१५। बुद्धि को उत्पन्न करती है, उसी से अहंकार, दशों इन्द्रिय, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पंच तन्मात्रऐं उत्पन्न होती हैं ।१६। कल्याणदाता शिवजी की आज्ञा से तन्मात्रा भी उसी के द्वारा होती हैं ।१७। तथा महाभूतों की उत्पत्ति यथाक्रम होती है, ब्रह्मा से तिनका तक सभी देहधारी हैं ।१८। शिवाज्ञा मे यह महाभूत सभी को उत्पन्न करते हैं, इसीलिए निश्चयात्मिका बुद्धि को अहंकार कहा गया है ।१९। वह चित्त को चैतन्य करके मन को सङ्कल्पवान करती हुई श्रोता और शब्दादि को पृथक् ग्रहण करती है ।२०। शिवाज्ञा से, अपने ही बल से सभी वाणी आदि इन्द्रिय कर्मेन्द्रिय होती हैं ।२१।

यथास्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत्किंचिच्छिवाज्ञया ।
शब्दादयोऽपि गृह्यन्ते क्रियन्ते वचनादयः ।२२
अविलध्या हि सर्वेषामाज्ञा शंभोर्गरीयसी ।
अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छसि ।२३
आकाशः परमेशत्य शासनादेव सर्वगः ।
प्राणाद्य श्च तथा नामभेदैरंतबहिर्गगत् ।२४
बिभर्ति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभंजनः ।
हव्य वहित देवानां कव्यं कव्याशिनामपि २५
पाकाद्य च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनान् ।
स जीवनाद्य सर्वस्य कुर्वंत्यापस्तदातज्ञया ।२६
विश्वम्भरा जगन्नित्य धत्ते विश्वेश्वराज्ञया ।
देवान्पात्यसुरान् हन्ति त्रिलोकमभिरक्षति ।२७
आज्ञया तस्य देवेन्द्र। सवै दे्वैरलंध्यया ।
आधिपत्यमपां नित्य कुरुते वरुणः सदा ।२८

शिवाज्ञा से ही सब अपने-अपने कर्म को ग्रहण करते हैं ।२२। उन शिव की आज्ञा का उल्लंघन करने में कोई भी समर्थ नहीं है, वे सबसे अधिक बलवान् तथा सब प्राणियों को अवकाश देने वाले हैं ।२३। उन्हीं की आज्ञा से आकाश सर्वगामी है, प्राणादि से तथा नाम भेद से बाह्याभ्यन्तर विश्व को ।२४। शिवाज्ञा से वायु धारण करता है तथा देवताओं के हव्य और पितरों के कव्य का वहन करने वाला ।२५। और पाकादि का कर्त्ता अग्नि भी उन्हीं की आज्ञा से बर्तता है तथा जल भी उन्हीं की आज्ञा से सम्पूर्ण विश्व को जीवन देता है ।२६ पृथ्वी भी उन्हीं की आज्ञा से नित्य प्राणियों को धारण करती है तथा देवताओं की रक्षा, असुरों का संहार और त्रैलोक का पालन होता है ।२७। उन्हीं की उल्लंघन न होने वाली आज्ञा से इन्द्र देवताओं का तथा वरुण जलों का स्वामित्व प्राप्त करते हैं ।२८।

पाशैर्बध्नाति च यथा दंड्यांस्यस्यैव शासनात् ।
ददाति नित्यं यक्षेन्द्रो द्रविणं द्रविणेश्वरः ।२९

पुण्यानुरूपं भूतेभ्य पुरुषस्यानुशासनात् ।
करोति सपदः शश्वज्ज्ञानं चापि सुमेधसाम् ।३०
निग्रह चाप्यसाधूनामीशानः शिवशासनात् ।
धत्ते तु धरणीं मूर्ध्ना शेषः शिवनियोगतः ।३१
यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमंतकरीं हरेः ।
सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्तुचदाननः ।३२
अन्याभित ूर्तिभि स्वाभिः पाति चांते मिहन्ति च ।
विष्णुः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात् ।३३
सृजते त्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्त्रिभि ।
हरत्यते जगत्सर्व हरस्तस्यैव शासनात् ।३४
सृजत्यपि चविश्वात्मा त्रिधाभिन्नस्तुरक्षति ।
कालः करोति सकलं कालः संहरति प्रजाः ३५

शिवाज्ञा से ही धमराज प्राणियों का, उत्पीडक मृतकों को यातनाऐं तथा धर्म त्यागने वालों को अनेक प्रकार के कष्ट देते है तथा विधिहीन कर्मों को निर्कृतहर लेते और निशाचरों का अधिपत्य करते हैं, बन्धन योग्य प्राणियों को बाँध कर दण्ड देते हैं तथा उन्हीं की आज्ञा से कुबेर सबको धन प्रदान करते हैं ॥२९॥ जिसका जैसा पुण्य है वैसा ही द्रव्य देते हैं, बुद्धिमानों को ऐश्वर्य तथा ज्ञान भी देते हैं ॥३०॥ शिवाज्ञा से ईशान देव असाधुओं का निग्रह करते हैं और शेषजी पृथिवी को धारण करते हैं ॥३१॥ जिस शिवमूर्ति को अन्तकरी तामसी मूर्ति कहते है, उसीके शासन में ब्रह्मा सम्पूर्ण विश्व की रचना करते हैं ।३१। इस प्रकार अपनी तीन मूर्तियों से रक्षा, सृष्टि और विनाश करते हैं तथा अपने देह से प्रकट करके ग्रस लेते हैं और उन्हीं के शासन में अन्त में विश्व का हरण कर लेते हैं ।३३। वह विश्वात्मा सृष्टि करके तीन रूप में विश्व की रक्षा करते, यह सब काल करता और काल ही सहार करता है ।३५।

काल;पालयते विश्वं कालकालस्यशासनात् ।
त्रिभिरशैर्जगद्विभ्रत्तेजोभिर्वृष्टिमादिशन् ।३६

दिवि वर्षत्यसौ भाद्रदैवदेस्य शासनात् ।
पुष्णात्योषधिजायानि भूतान्याह्लादयष्यपि।३७
देवैश्च पीयते चन्द्रश्चन्द्रभूषणशासनात् ।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनो मरुतस्तथा ।३८
खेचरा ऋषयः सिद्धा भोगिनी मनुजा मृगाः ।
पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च।३९
नद्यः समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च ।
वेदाः सांगाश्च शास्त्राणि मंत्रस्तोममखादयः।४०
कालाग्न्यादिशिवांतानि भुवनानि सहाधिपैः।
ब्रह्माण्डान्यप्यसख्यानि तेषामावरणानि च ।४१
वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नश ।
दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः ।४२

काल के शासन से काल ही विश्व का पालन करता, काल ही ग्रहण करता तथा तीन अंशों से विश्व को धारण कर तेज से वर्षा करता है ।।६।। सूर्य रूप होकर शिवाज्ञा मानता और सब औषधियों को पुष्ट कर प्राणियों को प्रसन्न करता है ।३७। शिवाज्ञा से यह चन्द्रमा देवताओं द्वारा पान किया जाता तथा आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुद्गण ।३८। खेचर, ऋषि, सिद्ध नाग, मनुष्य, पशु,पक्षी, कीट आदि स्थावर जीव ।।३९।। नदी, समुद्र, वन, पर्वत, सरोवर, अङ्गों सहित वेद-शास्त्र, मन्त्र और स्तोम यज्ञ ।।४०।। तथा कालाग्नि से शिव पर्यन्त अधिपतियों सहित भुवन, असंख्य ब्रह्माण्ड तथा उनके आवरण ।।४१।। भूत, भविष्यत, वर्तमान, दिशा, विदिशा तथा काल के भेद और कला आदि ।४२।

यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
तत्सर्वं शङ्करस्याज्ञा वलेन समधिष्ठितम् ।४३
आज्ञावला त्तयधरा स्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्रा ।
ज्योतिर्गणा शक्रमुखाश्च देवाः स्थिरं ।
चिरं वा चिदचिद्यदस्ति ।४४
अत्याश्चर्यमिदं कृष्ण शंभोरमितकर्मणः ।

आज्ञाकृत शृणुष्वैतच्छ्रुतं श्रुतिमुखे मया ।४५
पुरा किल सुराः सेंद्रा विवदंतः परस्परम् ।
असुरान्समरे जित्वा जेताऽहमहमित्युत ।४६
तदा महेश्वरस्तेषां मध्यतो वरवेषधृक् ।
स्वलक्षणैर्विहीनांग स्वयं क्षय इवाभवत् ।४७
स तानाह सुरानेकं तृणमादाय भूतले ।
य एतद्विकृतं कर्तुं क्षमते स तु दैत्यजित् ।४८
यक्षस्य वचनं श्रुत्वा वज्रपाणिः शचीपतिः ।
किंचित्क्रुद्धो विहस्यैनं तृणमादातुमुद्यतः ।४९

इस विश्व में जो कुछ भी देखा-सुना जाता है, वह सब शिवाज्ञाके प्रभाव से ही स्थित है ।।४२।। यह पृथिवी भी उन्हीं की आज्ञावश स्थित है, पर्वत,मेघ, समुद्र ज्योतिर्गण, इन्द्रादि देवता तथा चराचर जगत् उन्हीं की आज्ञा के वशवर्ती हैं ।।४४।। उपमन्यु ने कहा भगवान् शिव के चरित्र अत्यन्त आश्चर्यप्रद हैं । उनके भिन अमित कार्यों को वेदादि के द्वारा मैंने सुना, वह तुम श्रवण करो ।४५। इन्द्र के सहित देवगण ने दैत्यों को जीत कर परस्पर विवाद किया कि हमने जीता ।।४।। तब उनके मध्य अति उत्तम यक्षराज के वेश को धारण किये महेश्वर बोले ।।७।। उन्होंने पृथिवी में एक तिनका रखकर कहा—जो इस तिनके को चलायमान करदे उसी ने दैत्यों को जीता ।४८। उनकी बात सुनकर वज्री इन्द्र कुछ हँसे और उस तिनके को उठाने की चेष्टा करने लगे ।४९।

न तत्तृणमुपादातुं मनसाऽपि च शक्यते ।
यथातथापि तच्छेत्तुं वज्रं वज्रधरोऽसृजत् ।५०
तद्वज्रं निजवज्रेण ससृष्टिमिवं सर्वतः ।
तृणेनाभिहतं तेन तिर्यगग्रं पपात ह ।५१
ततश्चान्ये सुसंरब्धा लोकपाला महाबलः ।
सभृजुस्तृणमुद्दिश्य स्वायुधानि सहस्रशः ।५२
प्रजज्वाल महावह्निः प्रचण्डः पवनो ववौ ।

प्रबृद्धोऽपांपतिर्यद्वत्प्रलये समुपस्थिते ।५३
एवं देवै समारब्ध तृणमुद्दिश्य यत्नतः ।
व्यर्थमासीदहो कृष्ण यक्षस्यात्मबलेन वै ।४५
तदाह यक्ष देवेन्द्र को भवानित्यमर्षित ।
ततः स पश्यतामेव तेषामंतरधादथ ।५५
तदंतरे हैमवती देवी दिव्यविभूषणा ।
आविरासीन्नभोरंगे शोभमना शुचिस्मिता।५६

परन्तु वे मन से भी उसे उठाने में समर्थ न हुए तो उसे काटनेके लिए इन्द्र ने बज्र मारा ।५०। परन्तु बह, तिन के रूप वज्र से तिरस्कृत होगया और उसके तेज को सहन न कर पृथिवी पर जा गिरा ।५१।उसी प्रकार अन्य महावली लोकपालों ने भी अपने-अपने हजारों आयुध उस तिनके पर चलाये ।५२। उस समय भीषण अग्नि जल उठी, भयकर पवन चलने लगा और प्रलयकाल उपस्थित होने के समान समुद्र उमड़ पड़ा । ।५३। इस प्रकार उस तिनके के लिये किया गया देवताओं का सबपराक्रम रिरर्थक होगया ५४। तब इन्द्र ने सहनशीलता त्यागकर यक्षराज से पूछा कि तुम कौन हो ? उसी समय यक्षराण अतर्धान होगये ५५। तभी दिव्या-भूषण धारण किये अत्यन्त शोभा धारण किये अत्यन्त शोभा वाली एक स्वर्णमयी देवी मन्द-मन्द मुसकाती हुई आकाश में प्रकट हुई ।५६।

तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा देवा शक्रपुरोगमा ।
प्रणम्य यक्ष प्रपच्छ कोऽसौ यक्षौ विलक्षण ।५७
साऽब्रवीत्सस्मितं देवी स युष्माकमगोचर ।
येनेदं भ्रम्यते चक्रं संसाराख्यं चराचरम् ।५८
तेनादौ क्रियते विश्वं तेन सह्रियते पुनः ।
न तन्नियन्ता कश्चित्स्यातैन सर्वं नियम्यते ।५९
इत्युक्त्वा महादेवी तत्रैवांतरधत्त वै
देवाश्च विस्मिता सर्वे तां प्रणम्य दिवं ययु ।६६

उसे देखकर इन्द्रादि देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उस देवी को प्रणाम कर पूँछने लगे कि वह यक्ष कौन था? ।५७। तब देवी ने हँसकर उत्तर दिया कि वह तुम्हारी इन्द्रियों को दिखाई नहीं दे सकता. यह जो संसाररूपी चक्र चराचर से सम्पन्न होकर घूमता है ।५८। इसकी रचना तथा अंत मे संहार वही करता है, उसके लिए कोई नियम नहीं है, परन्तु वह सभी का नियामक हैं ।५९। इतना कहकर वह शिवा वहीं अंतर्धान हो गई और सब देवगण उसे प्रणाम कर स्वर्गलोक को गये ।६०।

।। समस्त जगत् शिवमय है ।।

शृणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ।
मूर्त्यात्मभिस्ततं कृत्स्न जगदेतच्चराचरम् ।१
स शिवः सर्म मेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः ।
अधितिष्ठत्यमेयात्या ह्येतत्सर्वमनुस्मृतम् ।२
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशान सदाशिवः ।
मूर्त्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्विश्वमिदं ततम् ।३
अथाऽन्याश्चापि तयव पञ्च ब्रह्मसमाह्वया ।
तनूभिस्ताभिरव्याप्तमि किचिन्न विद्यते ।४
ईशान. पुरुषोऽघोरो वामः सद्यस्तथैव च ।
ईशानाख्या तु या तस्य मूतिराद्या गरीयसी ।
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति ।६
स्थाणोस्त पुरुषाख्या या मूतिमूतिमतः प्रभोः ।
गुणाश्रयात्मच भोग्यतव्यक्ममधितिष्ठति ।७

महात्मा उपमन्यु ने कहा—हे कृष्ण ! उन परमेश्वर शिव की मूर्ति यह चराचर विश्व जिस प्रकार व्याप्त हो रहा है, वह सुनो ।१। यह शिव ही अपनी मूर्तियों से अधिष्ठित होकर जो कुछ भी है, उसका जानने वाला है ।२। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान, शिव यह सब उसी की मूर्ति हैं, उन्हीं से सम्पूर्ण विश्व विस्तार को प्राप्त है ।३। शिवजी की पञ्च ब्रह्ममूर्ति से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है ।४। ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव

और सद्याजात यह उनकी पञ्चमूर्ति विश्व-विख्यात है ।५। उनकी ईशान नानक मूर्ति प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्र में स्थित है ।६। सत्पुरुष नामक स्थाणु की मूर्ति गुणाश्रय होकर भोगती है, वह अव्यक्त में स्थित है ।७।

धर्माद्यष्टाङ्गसंयुक्तं बुद्धितत्वं पिना कनः ।
अधितिष्टत्यघोराख्या मूर्त्तिरत्यंपूजिता ।८
वामदेवाह्वयां मूर्त्ति महादेव वेधसः ।
अहंकृते धिष्ठात्रीमाहुरागमवेदिनः ।९
सद्योजाताह्वयां मूर्ति शम्भोरमितवर्चसः ।
मनसः समधिष्ठात्रीं मनिमंतः प्रचक्षते ।१०
श्रोत्रस्य वाच शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च ।
ईश्वरीमीश्वरस्येमामीशाख्यां हि विदुर्बुधाः ।११
त्वक्पाणिस्पर्शवायनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम् ।
पुरुषांख्यं विदुः सर्वे पुराणार्थविशारदाः ।१२
चाक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च ।
अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहूर्मनीषिणः ।१३
रसनायाश्च पयोश्च रसस्यापां तथैव च ।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्ति तन्निरतां विदुः ।१४

अघोर मूर्ति शिव के बुद्धित्व में पूजित है तथा धर्मादि अष्टाङ्ग से युक्त होकर स्थित है।८। विधाता या वामदेव नामक शिव-मूर्ति को शास्त्रज्ञ जन अहंकार में स्थित रहने वाली कहते है ।९। शिव की सद्योजात मूर्ति ज्ञानीजन मनमें स्थित होने वाली बताते हैं ।१०। श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की विभु तथा सबकी ईश्वर मूर्ति को ज्ञानियों ने 'ईशान' कहा है ।११। त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु की अधीश्वरी मूर्ति को पुराणवेत्ता-जन 'पुरुष' कहते हैं ।१। चक्षु, चरण और अग्नि की अधीश्वरी मूर्ति को विद्वानों ने अघोर कहा है ।१३। रसना, वायु, रस और जल की अधीश्वरी मूर्ति को उसके ज्ञाताओं ने 'वामदेव' कहा है ।१४।

घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गन्धस्य च भुवस्तथा ।
सद्योजाताह्वया मूर्तिमीश्वरीं संप्रचक्षते ।१५

मूर्तयः पंच देवस्य वन्दनीयाः प्रयत्नतः ।
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ।१६।
तस्य देवाधिदेवास्य मूर्त्यष्ठकमय जगत् ।
तस्मिंस्व्याप्य स्थित विश्वसूत्रे मणिगणा इव ।१७।
शर्वो भवस्तथा रुद्रा उग्रो भीमः पशोः पतिः ।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ।१८।
भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिता महेशस्य सर्वाद्यैरष्टमूर्त्तिभिः ।१९।
चराचरात्मक विश्वं धत्ते विश्वंभरात्मिका ।
शार्वी शर्वाह्वया मूर्तिरिति शास्त्रस्य निश्चयः ।२०
संजीवनं समस्मस्य जगतः सलिलात्मिका ।
भावीति गीयते मूर्तिर्भवस्य परमात्मनः ।२१।

घ्राण, उपस्थ गन्ध और पृथिवी की अधीश्वरी मूर्ति 'सद्योजात' नाम वाली कही गई है ।५। देवदेव की यह पाँचों मूर्ति यत्नपूर्वक कथन करे, मङ्गल की कामना करने वाले पुरुषों को यह सदा मङ्गल प्रदान करने वाली हैं ।१६। उन देवाधिदेव शिव की यह अष्ट मूर्तिमय है, जैसे धागे में मणि पिरोई हुई रहती है, वैसे ही यह विश्व उनमें संयुक्त है ।१७। उनकी आठ मूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव हैं ।१८। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, व्योम क्षेत्रज्ञ, अर्क और चन्द्रमा—शिवजी की यह आठों मूर्ति कल्पित हैं ।१९। चराचरात्मक विश्व को यह पृथिवी धारण करती है शास्त्र का निर्णय है कि यह शिवात्मक मूर्ति हैं ।२०। इस सम्पूर्ण विश्व का जीवन जलात्मक है, परमेश्वर शिव की मूर्ति भावी कही जाती है ।२१।

वहिरंतर्गताद्विश्वं व्याप्य तेजोमयी शुभा ।
रौद्रीरुद्रस्य या मूर्तिरास्थिता घोररूपिणी २२।
स्पदयत्यनिलात्मेद बिभर्ति स्पदते स्वयम् ।
औग्रीति कथ्यते सद्भिर्मूर्तिरुपस्य वेधसः ।२३

सर्वावकाशदा सर्वव्यापिका गगनात्मिक ।
मूर्तिर्भीमस्य भीमाख्या भूतवन्दस्य भेदिका ।२४
सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी ।
मूर्तिः पशुपतेर्ज्ञेया पाशपाशनिकृन्तनी ।२५
दीपयन्ती जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वया ।
ईशानाख्या महेशस्त मूर्तिर्दिवि विसर्पति ।२६
आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ।
महादेवस्य सा मूर्तिर्महादेवसमाह्वया ।२७
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ।२८

बाह्याभ्यन्तर विश्व को व्याप्त कर उसकी तेजोमयी शुभ मूर्ति तथा घोर रूप रौद्र मूर्ति है ।२२। सम्पूर्ण विश्व का स्पन्दन करने वाला वायु इसका भरण-पोषण करता है और उसकी उग्र मूर्ति 'उग्र' कहलाती है ।२२। उनकी आकाशात्मक मूर्ति सबको अवकाश देने वाली है तथा सब प्राणियों को भयदायक भीम मूर्ति है ।२४। जो सब क्षेत्रवासियों के अन्तःकरण में सर्वात्म रूप से स्थित है, वह पशुपति मूर्ति सब जीवों के पास को काटने वाली है ।२५। सूर्य रूप से वे सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ईशान नामक शिव मूर्ति स्वर्ग में चलने वाली है ।२६। विश्व को अपनी चाँदनी से तृप्त करने वाली उनकी चन्द्र मूर्ति है, वह महादेव संज्ञा वाली है ।२७। शिव की व्यापक मूर्ति इनमें आठवी है,यह इतर मूर्तियों से अधिक व्यापक होने के कारण शिवात्मक है ।२८।

वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा ।
शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत् ।२९
सर्वाभयप्रदानं च सर्वाग्रहण तथा ।
सर्वोपकारकणं शिवस्याराधनं विदुः ।३०
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ।
तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः ।३१

देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः ।
अनिष्टमष्टमूर्तेस्तत्कृतमेव न संशयः ।३१
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्टाय स्थितशिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ।३३

वृक्ष की जड को सींचने से जैसे शाखाएं फूलती-फलती हैं, वैसे ही शिव का पूजन एवं अभिषेक करने से देहमय विश्व की पुष्टि होती है ।२९। सबको अभयदान तथा सबके लिए अनुग्रह का विधान करने वाला,सम्पूर्ण उपकारों का कारण भगवान् शिव का अराधन ही है ।३०। जैसे पुत्र – पौत्रादि के सुख से पिता प्रसन्न होता है, वैसे ही सबकी प्रीति से शिव प्रसन्न होते है ।३१। किसी भी देहधारी का निग्रह करना, शिव की अष्ट-मूर्ति का ही निग्रह करना है ।३२। इस प्रकार अष्टमूर्ति से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हुए परम कारण रूप भगवान् शिव का सर्व-भाव से भजन करना ही श्रेयस्कर है ।३३।

।। जीव पशु है और शिव जगतपति ।।

विग्रह देवदेवस्य विश्वमेतच्चराचरन् ।
तदेवं न विजानति पशवः पाशगौरवात् ।१
तमेकमेव बहुधा वदन्ति यदुनन्दन ।
अजानन्तः परं भावमविकल्प महर्षयः ।२
अपरं ब्रह्मरूपं च परं ब्रह्मात्मक तथा ।
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं परम् ।३
भूतेन्द्रियांतः करणप्रधानविषयात्मकम् ।
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं पर ब्रह्मचिदात्मकम् ।४
ब्रहत्वाद्‌बृंहणत्वाद्वा ब्रह्म चेत्तभिधीयते ।
उभये ब्रह्मणो रूपे ब्रह्मणोऽधिपतेः प्रभो ।
विद्याविद्यास्वरूपीति कैश्चिदीशो निगद्यते ।५
विद्या तु चेतनां प्राहुस्तथाविद्यामचेतनाम् ।
विद्याविद्यात्मकं चैव विश्वगुरोर्विभोः ।६

रूपमेव न सन्देहो विश्वं तस्य वशे यतः ।
भ्रांतिर्विद्या पसा चेति शार्व रूपं परविदुः ।७।

उपमन्यु ने कहा—यह चराचर जगत् उन्हीं देवदेव शिव का निग्रह है, पाश में बँधे हुए जीव उन्हें नहीं जानते ।१। हे कृष्ण ! उस एक का ही अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है ।२। अपर ब्रह्म स्वरूप ही परब्रह्म है उसी को महादेव, अनादि, निधन कहा जाता है ।३। भूतेन्द्रिय अतःकरण प्रधान विषयात्मक अपर ब्रह्म ही परब्रह्मात्मक एवं विदात्मक है ।४। नहीं बृहत् और बृहण होने के कारण परम संज्ञक है, वे दोनों ब्रह्म के ही रूप हैं, उन्हें कोई विद्या-अविद्या रूप ईश्वर कहते हैं ।५। विद्या चेतना और अविद्या अचेतना है, विश्व गुरु का यह विद्या, अविद्या तथा अविद्यात्मक स्वरूप है ।६। यह उसी का स्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं है, उसी के वश में संसार स्थित है तथा यह सभी शिव का रूप है ।७।

अयथाबुद्धिरर्थेषु बहुधा भ्रांतिरुच्यते ।
यथार्थाकारसंवित्तिर्विद्याति परिकीर्तये ।८।
विकल्परहितं तत्वं परमित्यभिधीयते ।
वैपरीत्यादचच्छब्दः कथ्यते वेदवादिभिः ।९।
तयो पतित्वात्त् शिवः सदसस्पतिरुच्यते ।
चराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं परे ।१०।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।
उभे तेपरमेशस्य रूपे तस्य वशे पतः ।११।
तयोः परः शिवः शान्तःक्षाराक्षरपरः स्मृतः ।
समष्टिव्यष्टिरूप च समष्टिव्यष्टिकारणम् ।१२।
वन्दति मुनयः केचिच्छिव परमकारणम् ।
समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टि व्यक्त तथैव च ।१३।
ते रूपे परमेशस्य तदिच्छाया प्रवर्तनात् ।
तयोः कारणभावेन शिवं परमकारणम् ।१४।

अर्थों में अयथार्थ बुद्धि होने को ही भ्रान्ति कहा है, अर्थाकार संवित्ति

को विद्या कहा गया है ।८। तत्वपद विकल्प रहित है तथा इसके विपरीत तत्व को वेदवादियों ने असत् कहा है ।९। सत्पुरुष सत्य और साधु में सत् शब्द प्रयुक्त करते हैं, इससे विपरीत असत् है तथा सत्-असत् वाला यह विश्व उस परमेष्ठी का देह है और सत्-असत् के पति होने से शिवको सत्-असत् के पति और क्षर-अक्षरात्मक कहते हैं, परन्तु वह क्षर अक्षर से भी है ।१०। सभी प्राणी क्षर (नाशवान्) हैं, कूटस्थ को अक्षर कहा है, यह दोनों ही उस परमेश्वर के आधीन हैं।११। उससे परे शान्त शिव को क्षराक्षर से परे कहा है तथा समष्टि-व्यष्टि रूप समष्टि का कारण है ।१२। कोई शिव क परम कारण कहते हैं तथा समष्टि को अव्यक्त और व्यष्टि को व्यक्त बताते हैं ।१३। ईश्वरेच्छा से यह दोनों स्वरूप उसी के हैं, उनका कारण न होने से शिव ही परम कारण है ।१४।

कारणार्थविदः प्राहुः समष्टिव्यष्टिकारणम् ।
जातिव्यक्तिस्वरूपीति कथ्यते कैश्चिदीश्वरः ।१५
या पिण्डेऽप्यनुवर्तेत सा जातिरिति कथ्यते ।
व्यक्तिर्व्यावृत्तिरूप तं पिंडजात समाश्रयम् ।१६
जातयो व्यक्तयश्चैव तदाज्ञापरिपालिताः ।
यतस्ततो महादेवो जातिव्यक्तिवपुः स्मृतः ।१७
प्रधानपुरुषव्यक्तकालात्मा कथ्यते शिवः ।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुः क्षेत्रज्ञं पुरुषं तथा ।१८
त्रयोविंशतितत्वानि व्यक्तमाहुर्मनीषिणः ।
कालः कार्यप्रपचस्य परिणामैककारणम् ।१९
एषामीशोऽधिपो प्राता प्रवर्तकनिवर्तकः ।
आविर्भावतिरोभावहेतुरेकः स्वराजडजः ।२०
तस्मात्प्रधानदपुषव्यक्तकालस्वरूपवान् ।
हेतुर्नेताऽधिपस्तेषां धाता चोक्तो महेश्वरः ।२१

कारण के जानने वालों ने समष्टि-व्यष्टि को करण कहा है । कोई ईश्वर, जाति और व्यक्ति स्वरूपी बताते हैं।१५।पिण्डों में वर्तने वाली को

जाति कहा है वह व्यक्ति आवृत्ति रूप सभी पिन्ड जाति में स्थित है।१६। जाति और व्यक्ति उसी की आज्ञा के वश हैं,इसलिए शिव को जाति और व्यक्ति का स्वरूप वाले कहा गया है।१७।प्रधान पुरुष व्यक्त और कलात्मा शिव है, प्रधान प्रकृति है तथा पुरुष क्षेत्रज्ञ है।१८। तेईस तत्वों का नाम व्यक्त बताया है, कार्यकाल के प्रपंच के परिणाम का एक ही कारण है।१९। वही ईश्वर प्रवर्तन और निवर्तन करता है तथा वही आविर्भाव और तिरोभाव का एक कारण है।२०। इसलिए प्रधान, पुरुष काल-स्वरूपात्मक है, उनका कारण तथा अधिपति एक शिव ही है।२१।

विराड् हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते।
हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्विश्वात्मको विराट्।२२
अन्तर्यामी परश्चेतिकथ्यते कविभिः शिवः।
प्राज्ञस्तैजसविश्वात्मेत्यपरे सम्प्रचक्षते।२३
तुरीयमपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः।
माता मान च मेयं चर्ति चाहुरथापरे।२४
कर्ता क्रिया च कार्य्यं च कारणं परे।
जाग्रत्स्पप्ननुसुषुप्त्यामेत्यपरे सम्प्रचक्षते।२५
तुरीयमपरे प्राहुस्तुर्यातीतमितीपरे।
तमाहुर्विगुणं केचिद्गुणवतं परे विदुः।२६
केचित्संसारिणं प्राहुस्तमः ससारिणं परे।
स्वतन्त्रमपरे प्राहुरस्वतन्त्रं परे विदुः।२७
घोरमित्यपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः।
रागवन्तं परे प्राहुर्वीतरागं तथापरे।२८

कोई कहते हैं कि विराट हिरण्यगर्भात्मा ईश्वर है, क्योंकि ब्रह्मलोक का विश्वात्मा विराट् ही है।२२। कवियों ने अन्तर्यामी और पर को शिव कहा है, कोई प्राज्ञ तेज से विश्वात्मा बतलाते हैं।२३। कोई तुरीय और कोई सौम्य कहते हैं, किसी ने उसे माता, मान, मेय तथा मति कहा है।२४। कोई कर्ता, क्रिया, कारण, करण तथा कोई जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

वाला कहते हैं।२५। किसी ने तुरीय, किसी ने तुर्यातीत कहा है, कोई निर्गुण तथा कोई सगुण कहते हैं।२६। कोई ससारी, असंसारी, स्वतन्त्र तथा कोई अस्वतन्त्र कहते हैं।२७। किसी ने घोर सौम्य तथा किसी ने रागी और किसी ने विरागी कहा है।२८।

निष्क्रिय च परे प्राहुः सक्रिय चेतरे जनाः।
निरिंद्रिय परे प्राहुः सेंद्रियं च तथापरे।२९
ध्रुवमित्यपरे प्राहुस्तमध्रुवमितीरे।
अरूप कुचिदाहुर्वे रूपवन्त परे विदुः।३०
अदृश्यमपरे प्राहुर्दृश्यमित्यपरे विदुः।
वाच्यमित्यपरे प्राहुरवाच्यमिति चापरे।
शब्दात्मकं परे प्राहुः शब्दायीतमथाहरे।३१
केचिच्चिन्तामयं प्राहुश्चिन्तया रहित परे।
ज्ञानात्मक परे प्राहुर्विज्ञानामिति चापरे।३२
केचिज्ज्ञेयमिति प्राहुरज्ञेयमिति केचन।
परमेके तमेवाहुरपरं च तथापरे।३३
एवं विकल्प्यमानं तु याथात्म्यं परमेष्ठिनः।
नाध्यवस्यति मुनयो नाना प्रष्ययकारणात्।३४
यैः पुनः सर्वभावेनः प्रपन्नाः परमेश्वरम्।
ते हि जानंत्ययत्नेन शिव परमकारणम्।३५
यावपशर्नेव पश्यत्यनीशं कवि पुराण भुवनस्येशितारम्।
तायद्दुके वर्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिश्चक्रनेमिमैण।३६
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीश पुरुषं ब्रह्मयोनिम्
तदा विद्वान्पुण्नपापे विधूय निरंजनः परममुपैति साम्मम्।३७

कोई क्रिया-रूप कोई निष्क्रिय, कोई इन्द्रिययुक्त और कोई इन्द्रिय-रहित कहते हैं।२९। कोई चल, कोई अचल, रूप-रहित और कोई रूपवान् कहते हैं।३०। किसी ने उन्हें दृश्य कहा है, कोई अदृश्य बताते हैं, कोई वाच्य, अवाच्य शब्दात्मक तथा कोई शब्द से परे कहते हैं।३१।

किसी ने चिन्तायुक्त और किसी ने अचिन्तायुक्त कहा है, कोई ज्ञान रूप और कोई विज्ञान रूप कहते हैं ।३२। कोई ज्ञेय, कोई अज्ञेय कोई एक और कोई अनेक बताते हैं ।३३। इस प्रकार उस परमेष्ठी की अनेक प्रकार से कल्पना की गई है और अनेक प्रकार के विश्वास के कारण मुनिजन भी यथार्थ निर्णय करने में समर्थ नहीं हैं ।३४। परन्तु जो सर्वभाव से उन परमेश्वर शिव की शरण को प्राप्त हो चुके हैं, वे बिना किसी यत्न के ही उन परम कारण को जान लेते हैं।३५। जब तक यह प्राणी संसार को वश करने वाले पुराण-पुरुष परमेश्वर के दर्शन नहीं करता, तब तक पाश में बँधा रहकर चक्रनेमि के समान घूमता रहता है।३६। और जब वह विश्व-कर्त्ता हिरण्यगर्भ ईश्वर के ब्रह्म रूप के दर्शन करता है, तब पुण्य-पाप को दूर करके शिवजी के तादात्म्य को पाता है ।३७।

।। युगों में शिव के योगावतार ।।

पुगावर्तेषु सर्वेषु योगार्यच्छलेन तु ।
अवतारान्हि शर्वस्य शिष्यांश्च भगवन्वद ।१
श्वेतः सुतारो मदनः सुहोत्र कक एव च ।
लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च ।२
दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च ।
सुपालको गोतमश्च तथा वेदशिरा मुनिः ।३
गोकर्णश्च गुहावासी शिखंडी चापरः स्मृत ।
जटामासी चाटहासो दारुको लांगली तथा ।४
महाकालश्च शूली च दंडी मुण्डीश एव च ।
सविष्णुः सोमशर्मा च लकुटीश्वर एव च ।५
एते वाराहकल्पेऽस्मिन्सप्तमस्यांतरे मनो ।
अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्या युगक्रमात्।६
शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारः शांतचेतसः ।
श्वेतादयश्च रुष्यान्तास्तान्प्रवीमियथाक्रमम् ।७

श्रीकृष्ण ने कहा-सब युगों के प्रारम्भ में योगाचार्य के छल वाले

शिवजी के अवतर और उनके शिष्यों का वृतान्त सुनाइये ।१। उपमन्यु ने कहा—श्वेत, सुतार, सुहोत्र, मदन, कङ्क, लौगाक्षि, महामाय, जैगीषव्य ।२। दधिवाह, ऋषभ, मुनि, उग्र, अत्रि, सुबालक, गौतम, वेदशिरा ।३। गोकर्ण, गुहावासी, जटामाली, शिखण्डी, अट्टहास, लांगली व दारुक ।४। महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डी, सहिष्णु, नकुलीश्वर और सोम शर्मा ।५। यह सब वैवस्वतमनु के वाराहकल में हुए । युगों के क्रम से यह योगाचार्य अट्ठाईस हुए हैं ।६। एक-एक के चार-चार शिष्य हुए, शान्त से रुष्य पर्यन्त सभी शिष्यों को कहता हूं ।७।

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ।८
विकोशश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः ।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्गमो दुरतिक्रमः ।९
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः ।
सुधामा विरजाश्चैव शंखश्चांडज एव च ।१०
सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहः सुवाहकः ।
कपिलाश्चासुरिः पञ्चशिखो बाष्कल एव च।११
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चांगिरास्तथा ।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुश्रृंगस्तपोधन ।१२
लंबोदरश्च लंबश्च लम्बात्मा लबकेशकः ।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यीसद्धिस्तथैव च ।१३
सुधामा कश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा ।
अत्रिरुग्रो गुरुश्रेष्ठः श्रवणोऽथ श्रविष्ठक ।१४

श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, शतरूपा, ऋचीक, दुन्दुभि केतुमान ।८। विकोश, विकेश, विपाक, पाशनाशन दुर्मुख, सुमुख, दुर्दम, दुरतिक्रक ।९। सनक, सनन्दन, सनत कुमार, सनातन सुधामा, शंखपाद, विरज, वैरज ।१०। सारस्वत, मेघ, मेघवाह, कापिल आसुरी पंचशिखा, बाष्कल ।११। पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतु,

श्रृंग, तपोधन ।२। लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यबुद्धि ।१३। सुधामा कश्यप, वसिष्ठ, विरज, अत्रि, उग्र, गुरु, श्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक ।४।

कुणिश्च कुणिवाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ।
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनश्च बृहस्पति ।१५
अतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महाऽनिलः ।
वाचःश्रवाः सुवीरश्च श्यावश्च यतीश्वरः ।१६
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा ।
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुशकन्धरः ।१७
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान्गौतमस्तथा ।
भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ।१८
उशिजो बृहदवश्च देवलः कविरेव च ।
शालिहोत्रः सर्वेषश्च युवनाश्चः शरद्वसुः ।१९
अक्षपादः कणादश्व उलूकी वत्स एव च ।
कुलिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुष्य एव च ।२०
एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः ।
संख्या च शतमेतषां सह द्वादशसंख्यया ।२१

कुणी, कुणवाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति ।१५।उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानील, वाचश्रवा, सुधीर, श्यामाश्व, यतीश्वर ।१६। हिरण्यनाम, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमनी, कबंध, कुश, कन्धर ।१७। प्लक्ष, दार्भातणि, केतुमान, गौतम, वल्लभी, मधुपिंग, श्वेतकेतु ।१८। उशिज, वृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेश, शम्बूक, आश्वलायन, शरद्वसु, छलगकुण्ड, कर्णकुम्ब, प्रबाहुक, उलूक विद्युत ।१९। अक्षपाद, कणाद, उलूकवत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और रुष्य ।२०। यह सभी योगाचार्य महेश्वर के शिष्य हैं, यह सब एक सौ बारह है ।२१।

सर्वे पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूमितविग्रहाः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञा वेदवेदांगपारगाः ।२२

शिवाश्रमरताः सर्वे शिवज्ञानपरायणाः ।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्ताः शिवैकासक्तचेतसः ।२३
सर्वद्वन्द्वसहा धीराः सर्वभूतहिते रताः ।
ऋजवो मृदवः स्वस्था जितक्रोधा जितेन्द्रियः ।२४
रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुंड्रांकितमस्तकाः ।
शिखाजटाः सर्वजटा अजटा मुंडशीर्षकाः ।२५
फलमलाशनप्राशाः प्राणायामपरायणाः ।
शिवाभिमानसपन्नाः शिवध्यानैकतत्पराः ।२६
समुन्मथितससारविषवृक्षाकुरोद्गमाः ।
प्रयातुमेव सन्नद्धा परं शिवपुरं प्रति ।७
सदेशिकानिमान्मत्वानित्य यः शिवमर्चयेत् ।
स याति शिवसायुज्य नात्र कार्याविचारणा।२८

यह पाशुपतव्रत से युक्त भस्म को अंग में लगाने वाले सर्व शास्त्रार्थ के तत्वज्ञाता यथा वेदवेदांग के पारगामी ।२२। शिवाश्रय में प्रीति वाले, शिवज्ञान में लगे रहने वाले, संग-हीन, तथा शिव में ही मन को संयुक्त रखने वाले।२३।शीतोष्णादि को सहन करने वाले,सभी भूतों का हितकरने वाले, क्रोध को जीतने वाले ।२४ रुद्राक्ष की माला के आभरण, त्रिपुंड्र और शिखामात्र जटा धारण करने वाले तथा जटा रहित और शिरमुंडाये हुये ।२५। फल, मूल का भोजन करने वाले प्राणायाम करने वाले, शैव, मार्ग में तथा शिव ध्यान में तत्पर ।२६। विश्व रूपी विष वृक्ष के अंकुरों को उखाड़ने वाले तथा शिवपुर में जाने को कटिबद्ध ।२७। ऐसे श्वेतादि को अपना आचार्य मानकर जो शिवजी का पूजन करता है, वह निःसंदेह शिवधाम को प्राप्त होता है ।२८।

।। ब्राह्मणादि वर्णों का अधिकार कथन ।।

अथ वक्ष्यामि देवेश भक्तानामधिकारिणाम् ।
विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्म समासतः ।१

वि: स्नानं चाग्निकार्यं च लिंगार्चनमनुक्रमम् ।
दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा ।२
सत्य सन्तोषमास्तिक्यमहिंसा सर्वजंतुषु ।
ह्रीश्रद्धाध्ययनं योग: सदाध्यापनमेव च ।३
व्याख्यानं ब्रह्मचर्यं च श्रवण च तप: क्षमा ।
शौचं शिखोपवीत च उष्णीष चौत्तरीयकम्।४
निषिद्धासेवनं चैव भस्तरुद्राक्षधारणम् ।
पर्वण्यभ्यर्चन देवि चतुर्दश्यां विशेषत ।५
पानं च प्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि।
अभ्यर्चनं विशेषेण तेनैव स्नाप्य मां प्रिये ।६
सर्वक्रियान्नसन्त्याग: श्राद्धान्नस्य च बर्जनम्।
तथा पर्यु षितान्नस्य यावकस्य विशेषत: ।७

शिवजी ने कहा–हे देवि ! श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा अधिकरी भक्तों के वर्ण धर्म को मैं समास से वर्णन करता हूँ ।१। त्रिकाल स्नान करे, अग्नि कार्य लिंग पूजन दान, शिवभावयुक्त होकर सर्वत्र दया करे ।२। सत्य, सन्तोष, आस्तिकता अहिंसा, लज्जा, श्रद्धा, वेदपाठ और योग।३।व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, तप क्षमा, शौच, शिखा, यज्ञोपवीत, पाग, दुपट्टा को धारण करे ।४। किसी निषिद्ध वस्तु का सेवन न करे, भस्म-रुद्राक्ष धारण करे, पर्व मे विशेषकर चतुर्दशी में पूजा करे ।५। ब्रह्मकूर्च विधि से गव्य-पान प्रत्येक मास विधिपूर्वक करे, उसी से मुझे स्नान करावे और विशेष अर्चन करे ।६। अन्न का त्याग, श्रद्धान्न का तथा विशेषकर यावक का त्याग करे ।७।

मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम् ।
सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषत: ।८
क्षमा चाविश्च सन्तोष: सत्यमस्तेयमेव च ।
ब्रह्मचर्यं मम ज्ञान वैराग्यं भस्मसेपनम् ।९
सर्वसगनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषत: ।
लिंगानि योगिनां भूयो दिवा भिक्षाशतंतथा।१०

वानप्रस्थाश्रमस्थानां समानमिदमिष्यते ।
रात्रौ न भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम्।११
अध्यापनं याजनं च क्षत्रियस्याप्रतिग्रहः ।
वैश्यस्य च विशेषेण मया नात्र विधीयते ।१२
रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा ।
दुष्टपक्षिगाणां च दुष्टानां शातनं नृणाम् ।१३
अविश्वासश्च सर्वत्र श्विवासो मम योगिषु ।
स्त्रीसंसर्गश्च कालेषु चमूरक्षणमेव च ।१४

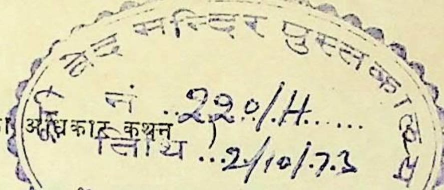
मद्य, मद्य की गंध और मेरे अर्पण किया हुआ नैवेद्य इनका सभी वर्णों में त्याग और विशेष कर ब्राह्मणों का तो धर्म ही है ।८। क्षमा, शान्ति, संतोष, अचौर्य, ब्रह्मचर्य वैराग्य, मेरा ज्ञान और भस्म का सेवन करे ।९। सब के सङ्ग का त्याग करे, यह दश कार्य करे, योगियों के लक्षण हैं दिन में भिक्षा मांगे ।१०। वानप्रस्थ आश्रमों का धर्म भी समान है, योगी और यह एक ही धर्म वाले हैं, ब्रह्मचारी रात्रि में भोजन न करे ।११।अध्यापन,यज्ञ कराना, दान लेना क्षत्रिय और वैश्यों को नहीं करना चाहिए । राजा सब वर्णों की रक्षा करे, युद्ध में शत्रुओं का संहार करे तथा दुष्ट पक्षियों मृगों और मनुष्यों का निग्रह करे ।१२-१३। सब के प्रति अविश्वास और मेरे प्रति विश्वास करे, ऋतु समय नारी सेवन तथा सेना का रक्षण करे ।१४।

सदा संचारितैश्चारैर्लोकवृत्तांतवेदनम् ।
सदास्त्रधारणं चैव भस्मकचकधारणम् ।१५
राज्ञां समाश्रमस्थानामेष धर्मस्य संग्रहः ।
गोरक्षण च वाणिज्य कृषिर्वैश्यस्य कथ्यते ।१६
शुश्रूषेतरवर्णानां धर्मः शूद्रस्य कथ्यते ।
उद्यानकरणं चैव मम क्षेत्रसमाश्रयः ।१७
धर्मपत्न्यास्तु गमनं गृहस्थस्य विधीयते ।
ब्रह्मचर्यं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।१८
स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्यः सनातन।
समार्चनं च कल्याणि नियोगो भर्तुरस्ति चेत् ।१९

या नारी भर्तृश्रूषां विहाय व्रततत्परा ।
स नारी नरकं याति नात्र कार्या विचारणा।२०

सदा अपने दूत भेजकर वृत्तान्त जाने, अस्त्र, वस्त्र, कंचुक और भस्म धारण करे।१५।जो राजा मेरे आश्रम में स्थित हैं,उनका यह धर्म है। वैश्यों का धर्म गौरक्षा कृषि और वाणिज्य है।१६।तीनों वर्णों की सेवा शूद्र का कर्म है, बगीचा लगाना, क्षेत्र का आश्रय।१७। तथा अपनी धर्मपत्नी में गमन ही गृहस्थ का धर्म है। ब्रह्मचारियों को और वन में रहने वाले यतियों को ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।१८।स्त्रियों के लिए पतिसेवा के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं, स्वामी की आज्ञा लेकर ही स्त्री को मेरा पूजन करना चाहिए।१९। जो स्त्रीं अपने स्वामी की सेवा छोड़कर व्रत करती है, वह नरकगामिनी होती है, इसमें संशय नहीं है।२०।

अथा भर्तृविहीमाया वक्ष्ये धर्मं सनातनम् ।
व्रतं दानं तपः शौचं भूशय्या नक्तभोजनम् ।२१
ब्रह्मचर्यं सदा स्नानं भस्मना सलिलेन वा ।
शांतिर्मौन क्षमा नित्यं सविभागो यथाविधि २२
अष्टम्यां च चतुदश्यां पौर्णमास्या विशेषत ।
एकादश्यां च विधिवदुपवासो ममार्चनम् ।२३
इति संक्षेपतः प्रोक्तो मयाश्रमनिषेविणाम् ।
ब्रह्मक्षत्रविशा देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।२४
तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुंदरि ।
शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः ।२५
ध्येयस्त्वयाऽह देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः ।
वेदोक्तमखिल धर्मामिति धर्मार्थसग्रहः ।२६
अथ ये मानवा लोके स्वच्छया धृतविग्रहाः ।
भावातिशयसंपन्याः पूर्वसंस्कारसयुताः ।२७
विरक्ता वानुक्ता वा स्त्र्यदीनां विषयेष्वपि।
पापैर्न ते विलिपंते पद्मपत्रमिवांभसा ।२८



स्वामी से हीन नारियों का धर्म कहता हू व्रत, दान, तपस्या, शौच, रात्रि भोजन और पृथिवी में शयन।२१। ब्रह्मचर्य पालन, भस्म व जल-स्नान शान्ति, मौन, क्षमा, संविभाग, दुष्टों से दूर रहना तथा विधिवत् ।२२। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी तथा विशेषकर एकादशी में मेरा पूजन करे ।२३। यह विधि अपने आश्रम में स्थित होने की संक्षेप में कही है ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्व, यती, ब्रह्मचारी।२४।वानप्रस्थ,गृहस्थ और स्त्रियों का सनातन धर्म यही है ।२५। हे देवि ! तुम्हें सदा मेरा ध्यान और षडक्षर कर जप करना चाहिए, वेदों में वर्णित धर्म का सार यही है।२६।जो मनुष्य अपनी इच्छा से व्रत करते, अत्यन्त भान और पूर्ण संस्कार वाले हैं ।२७। तथा स्त्रियादि विषयों में अनासक्त हैं, वे कमलपत्र के जल से लिप्त न होने के समान पापों से लिप्त नहीं होते ।२८।

तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम्।
मत्प्रसादाद्विशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणात् ।२९
नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम् ।
न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा ।३०
तथेह परिपूर्णस्य साध्यं मम न विद्यते ।
तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः ।३१
मद्भक्तानां हितार्थाय मानुष भावमाश्रिता ।
रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः।३२
ममानुशासनं यद्वद्ब्रह्मादीनां प्रवतकम् ।
तथा नाराणामन्येषां तन्नियोगः प्रवर्तकः ।३३
ममाज्ञाधारभावेन सद्भावातिशयेन च ।
तदालोकनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।३४
प्रत्ययाश्च प्रवर्तंते प्रशस्तफलसूचकाः ।
मयि भाववतां पुंसा प्रागदृष्टार्थगोचराः ।३५

मेरे प्रसाद से उन विवेकी पुरुषों को आत्म-विज्ञान की प्राप्ति होती है, क्योंकि आश्रम धर्म की रक्षा करना कठिन है ।२९। उनके लिए कर्म,अकर्म

समाधि-परायण या विधि निषेध कुछ भी नहीं है।३०।जैसे मुझ परिपूर्ण के लिए कुछ साधन योग्य नहीं, वैसे ही जो कृतकृत्य हो चुके. उनके लिए कोई कार्य शेष नहीं रहता।३१।मेरे भक्तों के हितार्थ मनुष्त भाव में आश्रित रुद्र लोक से आगत मनुष्य रुद्र स्वरूप ही हैं।३२।मेरी आज्ञा जैसे ब्रह्मादि को प्रवृत्त करती है, वैसे ही अन्यों को करनी है।३३।मेरी आज्ञा का धारण और मुझ में अत्यन्त भाव लगाने वालों के दर्शन से ही सब पाप क्षीण हो जाते हैं।३४। उन्हें श्रेष्ठ फलदायक विश्वासों की प्राप्ति होती है, जो मुझसे प्रेम करते हैं, उन्हें अर्थ का ज्ञान पहिले ही हो जाता है।३५।

कपस्वेदोऽश्रुपातश्च कंठे च स्वरविक्रिया ।
आनदाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः ।३६
सतैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा लिंगैरव्यभिचारिभिः ।
मंदमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः ।३७
यथायोऽग्निसमावेशान्नायौ भवति केवलम् ।
तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः ।३८
हस्तपादादिसाधर्म्याद्रुद्रान्मर्त्यवपुर्धरान् ।
प्राकृतानिव मन्वानो नावजानीत पंडितः ।३९
अवज्ञानं कृतं तेषु नरैर्व्यामूढचेतनैः ।
आयुः श्रियं कुलं शील हित्वा निरयभावहेम्।४०
ब्रह्म विष्णुसरेशानामपि तूलायते पदम् ।
मत्तोऽन्यदनपेक्षाणामुद्धृतानां महात्मनाम् ।४१
अशुद्धं बौद्धमैश्वर्यं प्राकृतं पौरुषं तथा ।
गुणेशानामतस्त्याज्यं गुणातीतपदैषिणाम् ।४२

उन्हें कम्प, स्वेद, अश्रुपात, कण्ठ-स्वर गद्गद् तथा आनन्द की उपलब्धि वारम्बार अकस्मात् होती है।३६। उन सब अव्यभिचारी लक्षणों के युक्त मनुष्यों को श्रेष्ठ समझे।३७। जैसे अग्नि से संयुक्त होने पर लोहा केवल लोहा ही नहीं रहता, वैसे ही वे मेरी समीपता से मनुष्य नहीं, वरन् मेरे ही रूप वाले हो जाते हैं।३८। हाथ, पाँव आदि सहित रुद्र रूप धारण

करने वालों को साधारण समझकर कभी निन्दा न करे।३९।जो मूर्ख उनका अपमान करते हैं उनकी आयु, शील, कुल तो नष्ट होते ही हैं, साथ ही उन्हें नरक में जाना पड़ता है।४०।ब्रह्मा, विष्णु महेश का भी पद तोला जाय तो उनसे छोटा ही रहता है।४१।गुणातीत पद की कामना वालों को अशुद्ध बुद्धि का परित्याग करना चाहिए ।।४।।

अथ किं बहुनोक्तेन श्रेयः प्राप्त्यैकसाधनम् ।
मयि चित्तसमासगो येन केनापि हेतुना ।४३।
इत्थं श्रीकंठनाथेन शिवेन परमात्मन ।
हिताय जगतामुक्तो ज्ञानसारार्थसंग्रहः ।४४।
विज्ञानसंग्रहस्यास्य वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः ।
सेतिहासपुराणनि विद्या व्याख्यानविस्तरः ।४५।
ज्ञान ज्ञेयमनुष्ठेयमधिकारोऽथ साधनम् ।
साध्यं चेति षडर्थानां संग्रहस्त्वेष सग्रहः ।४६।
गुरोरधिकृतं ज्ञानं ज्ञेयं पाशः पशुः पतिः ।
लिंगार्चनाद्यनुष्ठेयं भक्तस्त्वधिकृतोऽपि यः ।७४।
साधन शिवमत्राद्यं साध्यं शिवसमानता ।
षडर्थसंग्रहस्यास्य ज्ञानात्सर्वज्ञतोच्यते ।४८।
प्रथमं कर्मयज्ञादेर्भक्त्या वित्तानुसारतः ।
ब्राह्मेऽभ्यर्च्य शिवं पश्चादंतर्यागिरतो भवेत् ।४९।

मङ्गल की प्राप्ति का एक ही साधन मुझ में चित्त का लगाना है ।४३।उपमन्यु ने कहा—इस प्रकार नीलकण्ठ भगवान् शिव ने ज्ञान-सार संग्रह का वर्णन किया।४४।विज्ञान संग्रह में इतिहास, पुराण आदि विद्याओं का वर्णन किया है ।४५।ज्ञान, ज्ञेय तथा अनुष्ठान योग्य साधन साध्यषडर्थों का यह संग्रह कहा गया है।४६।गुरु से प्राप्त शिवज्ञान को जानना चाहिए तथा भक्तों को लिंगार्चन आदि अनुष्ठान करना चाहिए ।४७। शिव मन्त्र आदि का साधन तथा षडंग सग्रह के ज्ञान से जीव सर्वज्ञ हो जाता है।४८। प्रथम यज्ञादि कर्म अपने सामर्थ्यानुसार करे और बाह्यान्तर में शिवजी का पूजन करे ।४९।

रतिरभ्यंतरे यस्य न बाह्ये पुण्यगौरवात्।
न कर्म करणीय हि वहिस्तस्य महात्मना ।५०।
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य भक्त्या शैवशिवात्मनः।
नांतर्न च बहिः कृष्ण कृत्यमस्ति कदाचन ।५१।
तस्मात्क्रमेण संत्यज्य बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्याज्ञानं चापि परित्यजेत् ।५२।
नैकाग्रं चेच्छिवे चित्त किं कृतेनापि कर्मणा।
एकाग्रमेव चच्चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा ।५३।
तस्मात्कर्माण्यकृत्वा वा कृत्वा वांतर्बहिःक्रमात्।
येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत् ।५४।
शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठियधिया सताम्।
परत्रेह च सर्वत्र निर्वतिः परमा भवेत् ।५५।
इहोन्नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन सिद्धयः।
स तस्मादधिगतव्यः परावरविभूतये ।५६।

जो बाह्यकर्म के प्रति नहीं, अपितु अन्तर पूजक में प्रीति रखता है उस महात्मा को बाह्यकर्म करना अनिवार्य नहीं है।५०।हे कृष्ण ! जोशिव भक्त ज्ञानामृत से तृप्त हैं उनके लिए बाह्याभ्यन्तर कोई भी कर्म शेष नहीं रहता।५१। इसलिए क्रम से बाह्याभ्यंतर का त्याग कर ज्ञान से ज्ञेय पदार्थ को जानकर ज्ञान को भी त्याग दे।५२।शिव में यदि चित्त की एकाग्रता नहीं है तो कर्म से भी क्या है, यदि चित्त एकाग्र है तो कर्म न करने से भी कोई हानि नहीं।५३।इसलिए कर्म करके अथवा न करके जैसे भी हो शिवजी में चित्त लगावे।५४।जो बुद्धिमान शिवजी में चित्त लगाते है उन्हें सर्वत्र अत्यन्त निवृत्ति होती है ।५५। 'ॐनमः शिवाय' मन्त्र में सर्वसिद्धि है, इसलिए परापर की विभूति के निमित्त उस मन्त्र का जाप करे ।५६।

।। पंचाक्षर मन्त्र जप विधान ।।

समुद्रतीरे नद्यां च गणेटे देवालनेऽपि वा।
शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ ।१।

नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते ।
अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि ।२।
स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकांतेऽतिप्रसन्नधीः ।
उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मन्त्रमुत्तमम् ।३।
शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति ।
एवं दद्याद्गुरुर्मंत्रमाज्ञां चैव ततः परम् ।४।
एवं लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रमाज्ञां चैव समाहितः ।
संकल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम् ।५।
यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम् ।६।
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात ।
नक्ताशी संयमी यः स पौरश्चरणिकः स्मृतः ।७।

शिव ने कहा—समुद्र तट, नदी- गोष्ठ, देवालय, पवित्र देश या घर में पवित्र तिथि में।१। शुभ नक्षत्र में सब दोष शान्त करके विधिपूर्वक मेरा ज्ञान दे।२।अत्यन्त प्रसन्न मन से एकान्त में हमारे मंत्र का बारम्बार उच्चारण करे।३।शिव हो, मंगल हो, शुभ हो, इस प्रकार कहकर गुरु आज्ञा दे।४।इस प्रकार सावधान होकर गुरु से मंत्र ग्रहण कर पुरश्चरण पूर्वक संकल्प देकर जप करे।५।एक हजार एक सौ आठ मन्त्रों को जीवन पर्यन्त नित्य जपे और अनन्य मन से कार्य करे तो परमगति का अधिकारी होता है।६। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने ही लाख जप करे, रात्रि में भोजन करे और संयम से रहे तो वह पुरुश्चरणी होता है ।७।

यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः ।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत् ।८।
स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम् ।
त्वया मां हृदि संचिंत्य स्वचिंत्य स्वगुरुं ततः ।९।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ।
विशोध्य पंचःतत्वानि दहनप्लावनादिभिः ।१०।

मंत्रन्यासादिकं कृत्वा सफलीकृतविग्रहः ।
आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च ।११।
विद्यात्स्थानं स्वकं रूपमृषिं छन्दोऽधिदैवतम् ।
बीजं शक्ति तथा वाक्यं स्मृत्वा पंचाक्षरीञ्जपेत् ।१२।
उत्तम मानस जाप्यमुपांशुश्चैव मध्यमम् ।
अधमं वाचिक प्राहुरागमार्थविशारदाः ।१३।
उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम् ।
अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः ।१४।

पुरश्चरण करके नित्य जप करने वाले के समान लोक में कोई भी नहीं है, वह सिद्धि का दाता होता है।८।पवित्र तीर्थ में स्नान कर श्रेष्ठ आसन लगाकर अपने हृदय में तुमको, मुझे और गुरु को स्मरण कर, उत्तर अथवा पूर्वाभिमुख मौन धारणपूर्व एकाग्र मन से दहन प्यावनादि द्वारा पंच तत्वों को शुद्ध करे।९-१०मन्त्र न्यास आदि से शरीर को कला-युक्त कर मेरा तुम्हारा ध्यान कर प्राणापान को रोके ।११।विद्या स्थान, स्वरूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, वाचक का स्मरण कर पंचाक्षरी विद्या को जपे।१२।मन में ही जप करना श्रेष्ठ है, जिसमें होठ हिलें वह मध्यम तथा जिसमें शब्द निकलें वह अधम है ।१३। रुद्र देवता के उत्तम, विष्णु के मध्यम और ब्रह्मा के मंत्र अधम कहे गए हैं ।१४।

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टास्पष्ठपदाक्षरैः ।
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ।१५।
जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा ।
अपरैरश्रुतः किंचिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते ।१६।
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्ण पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिंतन भूयः कथ्यते मानसो जपः ।१७।
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशः शतमुच्यते ।
साहस्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः ।१८।

प्राणायामसमायुक्तः सगर्भो जप उच्यते ।
आद्यतयोरगर्भेऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ।१९।
चत्वाशित्समावृत्तीः प्राणानायम्य सस्मरेत् ।
मंत्रं मन्त्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितोः जपेत् ।२०।
पंचकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत् ।
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते ।२१।

ऊँचे-नीचे स्वर से, स्पष्टता से, शीघ्रता से मन्त्र को उच्चारण करने वाले वाचक होते हैं।१५।जिस जप में जिह्वा हिले, परन्तु उच्चारण न हो तथा दूसरों को स्पष्ट सुनाई न पड़े वह उपांशु है ।१६। बुद्धि में ही अक्षर और पद का ध्यान तथा अर्थ का चिन्तन किया जाय वह मानसी जप है।१७।वाचिक से एक, उपांशु से सौ, मन से हजार तथा आदि अन्त में प्राणायाम सहित जप करने से उससे भी सौ गुणे फल की प्राप्ति होती है।१८।आदि अन्त में प्राणायाम पूर्वक जप करने को सगर्भ जप कहते हैं, अगर्भ जप के आदि अन्त मे भी प्राणायाम करना कहा है ।१९। चालीस आवृत कर प्राणायाम करे, इस प्रकार मन्त्र तथा मन्त्रार्थ का ज्ञाता शक्ति के अनुसार जप करे ।२०। पांच या तीन प्राणायाम करे, अथवा एक ही करे, अगर्भ और सगर्भ मन्त्र में सगर्भ ही श्रेष्ठ है ।२१।

सगर्भादपि साहस्रं संध्यानो जप उच्यते ।
एषु पचविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः ।२२।
अंगुल्या जपसख्यानमेकमेवमुदाहृतम् ।
रेखयाऽष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ।२३।
शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।२४।
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनतगुणितं भवेत ।२५।
त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि ।
सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ।२३।

पचविंशतिसंख्यातैः कृताः मुक्ति प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचारफलप्रदा ।२७।
अंगुष्ठ मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम् ।
मध्यमां धनदां शांति करोत्येषा ह्यनामिका ।२८।

सगर्भ से भी हजार गुणा ध्यान-जप कहा है, इन पाँच विधियों में से शक्ति के अनुसार कोई भी विधि करे।२१ उँगली से जप करे तो एक गुणा, रेखा से आठ गुणा तथा जियापोते से दस गुणा।२३।शंखमणि से सौ गुणा, मूँगों से सहस्रगुणा, स्फटिक से दस सहस्र गुणा तथा मुक्ताओं से लक्ष गुणा।२४।कमल गट्टों से दस लक्ष गुणा, सुवर्ण से करोड़ों गुणा तथा कुश ग्रन्थि अथवा रुद्राक्ष से अनन्त फल की प्राप्ति होतीहै।२५। तीस दाने वाली माला का जप धर्मप्रदायक है, सत्ताईस दानों की माला पुष्टि देती है ।२६। पच्चीस दाने वाली माला मोक्ष और पन्द्रह दाने की माला अभिचार कर्म को सिद्ध करती है।२७।अंगूठे से जप करे तो मोक्ष, तर्जनी से शत्रु-नाश, मध्यमा से धन प्राप्ति और अनामिका से शान्ति मिलती है ।२८।

अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यावृत्तमोत्तमा ।
शतसख्योत्तमा माला पंचाशद्भिस्तु मध्यमा ।२९।
चतुःपंचाशदक्षैस्तु हृच्छ्रेष्टा हि प्रकीर्तिता ।
इत्येव मालया कुर्याज्जप कस्मैं न दर्शयेत् ।२०।
कनिष्ठा क्षरणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना ।
अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिः सह ।३१।
अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः ।
गृहे जपं समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं विदुः ।३२।
पुण्यारण्ये तथाऽऽरामे सहस्रगुणमुच्यते ।
अयुत पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ।३३।
कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ ।
सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिंदोर्दीपस्य च जलस्य च ।३४।
विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः ।
तत्पर्वाभिमुख वश्यं दक्षिण चाभिचारिकम् ।३५।

इसमें एक सौ आठ दानों की माला सर्वश्रेष्ठ, सौ की श्रेष्ठ तथा पचास दानों की मध्यम होती है।२९। चौअन रुद्राक्षों की माला हृदय के लिए हितकारी है। माला से जप करके किसी को दिखाना नहीं चाहिए।३०।कनिष्ठिका जप करने में उत्तम तथा दुःख का नाश करने वाली है, अँगूठे के साथ अँगूलियों सहित जप करे।३१।अँगूठे के बिना किया गया जप निष्फल है, घर में जप का समान तथा गोष्ठ में सौ गुणा फल होता है।३२। पुण्यवन में अथवा बाग में जप करे तो हजार गुणा फल मिलता है।३३।देवालय में कोटि गुणा और मेरे निकट करे तो अनन्त फल हो,सूर्य,अग्नि, रुद्र,चन्द्रमा, दीपक, जल।३४।ब्राह्मण और गौओं के समीप जप करना उत्तम है, पूर्वाभिमुख होकर वशीकरण तथा दक्षिणाभिमुख से अभिचार।३५।

पश्चिमं धनदं विद्यादौत्तरं शांतिदं भवेत् ।
सूर्याग्निविप्रदेवानां गुरूणामपि सन्दिधौ।३६।
अन्येषां च प्रसक्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत् ।
उष्णीषी कचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावतः।३७।
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत्क्वचित् ।
क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे।३८।
दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि ।
आचामेत्सभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह।३९।
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिरान्तरे ।
प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासत एव वा।४०।
यानशय्याधिरूढो वा चिंताव्याकुलितोऽथवा ।
शक्तश्चेत्सवमेवैतशक्तः शक्तितो जपेत्।४१।
किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु ।
सदाचारो जपञ्शुद्ध ध्यायन्भद्रं समश्नुते।४२।

पश्चिम की ओर धन देने वाला तथा उत्तर की ओर शान्तिदायक है और सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरुजनों के समीप।३६। अथवा अन्य प्रशस्तजनों के पास विमुख होकर जप न करे, पाग, कुरता, नंगा, खुले

केश या कठ लपेटे हुए।३७।अपवित्र हाथ से, रुदन करता हुआ, क्रोध,मद, छींक, जंभाई लेते या थूकते हुए।३८।अथवा श्वान या नीच व्यक्तियों को जप करते समय में न देखे, यदि देखले तो आचमन करे या मेरा तुम्हारा स्मरण करे।३९।गली, अपवित्र स्थान तथा अन्धकार में या पांव फैलाकर अथवा कुक्कुठासन से जप न करे ।४०। खाट पर बैठकर या चिन्ता से व्याकुल हो तो जप न करे अथवा अशक्त हो तो शक्ति के अनुसार जपे ।४१। सदाचारी रहे, शुद्धतापूर्वक जपे और ध्यान करे तो मगल को प्राप्त होता है ।४२।

आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम् ।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः ।३।
यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः ।
तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः ।४४।
आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यैं सदाचाराद् विच्युतः ।
न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादिस्तिकतां व्रजेत् ।४५।
यथेहास्ति सुखं दुःख सुकृतैदुष्कृतैरपि ।
तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते ।४६।
रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये ।
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथवा पशोः ।४७।
सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च ।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राण कलौ युगे ।४८।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽय न च निष्फलः ।४९।

आचार परमगति परमविद्या, परम धन तथा परम धर्म है ।४३। वेदशास्त्र में जिसके लिए जो कर्म विधान दिया हुआ है, उसे वही कर्म करना श्रेयस्कर है ।४४। आस्तिक होकर प्रमादादि के कारण सदाचार से गिर जाय तो भी दूषित नहीं होता, इसलिए आस्तिकता अवश्य होनी चाहिये ।४५ सुकृत, दुष्कृत से जो सुख-दुःख यहाँ है, वही परलोक मे प्राप्त होगा, इस बुद्धि को आस्तिकता कहते है ।४६। हे देवि ! अब और

भी गुप्त रहस्य कहता हूँ, नास्तिक जीवों के प्रति इसे न कहे ।४७। सदाचारहीन, पतित और अन्त्यज से रक्षा करने के लिए कलियुग में पंचाक्षर से उत्तम अन्य कोई मन्त्र नहीं ।४८। चलने में, खड़े होने में या स्वेच्छापूर्वक करने में अथवा पवित्रता-अपवित्रता में भी यह मन्त्र फलहीन नहीं होता ।४९।

अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम् ।
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ।५०
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम् ।
सिद्ध्यत्येव न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित् ।५१
न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये ।
अस्यात्यंतमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्त सदोदितः ।५२
न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः ।
सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति ।५३
सिद्धेन गुरुणाऽऽदिष्टः सुसिद्ध इति कथ्यते ।
असिद्धेनापि वा दत्तैः सिद्धिसाध्यस्तु केवलः ५४
असाधितः साधितो वा सिद्धयत्येव न संशयः ।
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मन्त्रे तथा गुरौ ।५५
तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः ।
आश्रयेत्परमां विद्यां साक्षात्पंचाक्षरीं बुधः ।५६
मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मन्त्र एष न सद्ध्यति ।
सिद्धे ऽस्मिन्महामन्त्रे ते च सिद्धा भवत्युत ।५७

आचाररहित, अविशुद्धषडध्वज वालोंको अथवा गुरु ने उपदेश न दिया हो तो भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ।५०। चाहे जिस अवस्था में मेरी परम भक्ति करने वाला सिद्ध हो जायगा, अन्य किसी को सिद्धि नहीं प्राप्त होती, इसमें संशय नहीं है ।५१। हे देवि ! लग्न, नक्षत्र, तिथि, वार, योग आदि अथवा सोते, जागते किसी समय भी मन्त्र जपने का मेरे भक्त को निषेध नहीं ।५२। मेरे भक्त का कोई शत्रु नहीं होता । उसके लिये सुसिद्ध सिद्धि अथवा असाध्य दुर्लभ कुछ नहीं रहता ।५३। सिद्ध गुरु

के आदेशसे सुसिद्ध कहा जाता है, आसद्धि द्वारा प्राप्त और स्वयं पठित साध्य से सिद्ध होता है ।५४। असाधित या साधित भी सिद्ध हो जाता है और मुझ में मन्त्र और गुरु में श्रद्धा से स्थित रहता है ।५५। इसलिये मन्त्राक्षरों को छोड़ कर हृदय में पंचाक्षरी विद्या का आश्रय करना चाहिये ।५६ मन्त्राक्षरों से सिद्ध होने के कारण यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता, इसके सिद्ध होते ही अन्य सब मन्त्र स्वयं सिद्ध हो जाते हैं ।५७।

शिव दीक्षा विधान और गुरु माहत्म्य

भगवन्मन्त्रमाहात्म्यं भवता कथित प्रभो ।
तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा ।१
इदानीं श्रोतमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम् ।
मन्त्रसंग्रहणे किंचित्सूचितं न तु विस्तृतम् ।२
हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम् ।
संस्कारं परमं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।३
सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिष नरो यतः ।
संस्कारः कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम् ।४
दीयते येन विज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम् ।
तस्मात्संस्कार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते ।५
शाम्भवी चैव शाक्ती च मान्त्री चैव शिवागमे ।
दीक्षोपदिश्यते त्रधा शिवेन परमात्मना ।६
गुरोरालोकमन्त्रेण स्वर्शात्संभाषणादपि ।
सद्यः संज्ञाः भवेज्जन्तोः पाशोपक्षयकारिणी ।७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे प्रभो ! आपने मन्त्र का महात्म्य कथन किया तथा उसके प्रयोग का श्रुति सम्मत विधान भी कहा।१।इस समय मंत्र के ग्रहण में शिव सस्कार श्रवण की इच्छा है, जो आपने सूक्ष्म रूप से कहा उसे विस्तार से कहें।२।उपमन्यु ने कहा—सभी कर्मोंको दूर करने की विधि बताता हूँ, उस पवित्र संस्कार को शिव ने स्वयं ही वर्णन किया है३।पूजन में सर्व प्रकार संस्कार करना चाहिये, षड्मार्ग का शोधन-संस्कार कहा

गया है।४।जिस संस्कार से विज्ञान होता है और पाशका बन्धन कटता है, इसीलिये उसे दीक्षा कहा है।५।शिव शास्त्र में शाँभवी, शाक्ती और मांत्री इन तीन प्रकारों की दीक्षा स्वय शिव ने कही है ।६। गुरु के दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण से पशु की पाश-क्षय करने वाली संज्ञा तुरन्त होंती है।७।

सादीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा ।
तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशोपक्षयभेदतः ।८
यया स्यान्निर्वृतिः सद्यः सैव तीव्रतरा मता ।
तीव्रा तु जीवतोऽयतं पुंसः पापविशोधिका ।९
शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु ।
गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ।१०
मांत्री क्रियावती दीक्षा कुण्डमण्डलपूर्विका ।
मन्दमन्दतरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः ।११
शक्तिपातनुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।
शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समागतः ।१२
यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते ।
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः ।१३
तत्मालिंगानि सवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः ।
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुः शिष्यं विशोधयेत् ।१४

उसीको शाम्भवी दीक्षा कहते है, उसके दो प्रकार हैं, जो पापक्षय के भेद से तीव्रा और तीव्रतरा कही गयी हैं।८। शीघ्र निवृत्ति करने वाली तीव्रतरा और पाप का शोधन करने वाली तीव्रा कही जाती है ।९। जो दीक्षा ज्ञान-चक्षु से प्राप्त होती और योग मार्ग द्वारा गुरु से शिष्य के शरीर में प्रविष्ट होती है वह शाक्ती तथा ज्ञानात्मक है।१०। क्रिया वाली मांत्री दीक्षा कुण्ड मंडल से पूर्व मन्द और मन्दतर के भेद से गुरु बहिर्भाव में करे ।११। शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार ही शिष्य अनुग्रह योग्य है, क्योंकि शैव धर्म के अनुसार वह उसका मूल है ।१२। जहाँ शक्ति पतित नहीं होती वहां शक्ति नहीं होती और न विद्या, शिवाचार,

मुक्ति अथवा सिद्धि ही होती है ।१३। इसलिये शक्तिपात के लक्षणों को देख कर ज्ञान और क्रिया के द्वारा शिष्य को शुद्ध करना चाहिये ।१४।

योऽन्यथा कुरुते मोहात्स विनश्यति दुर्मति ।
तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्य परीक्षयेत ।१५
लक्षण शक्तिपातस्य प्रबोधानन्दसम्भवः
सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रबोधनन्दरूपिणो ।१६
आनन्दबोधयोर्लिङ्गमतःकरणविक्रयाः ।
यथा स्यात्कंपरोमांचस्वनेत्रांगविक्रियाः ।१७
शिष्योऽपि लक्षणैरेभिः कुर्याद्गुरुपरीक्षणम् ।
तत्सम्पर्के शिवार्चादौ सङ्गतेवाथ तद्गतैः ।१८
शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोरौरवकारणात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोगौरवामाचरेत् ।१९
यो गुरुः स शिवः प्रोक्यो यः शिव स गुरुः स्मृतः ।
गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः ।२०
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरु ।
शिवप्रविद्यागुरूणां च पूजया सदृशं सलम् ।२१

उसका मोह नष्ट होता है या नहीं, इस प्रकार गुरु शिष्य की परीक्षा करे ।१५ अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति शक्ति के पतित होने का चिन्ह है। क्योंकि वह पराशक्ति प्रबोधानन्द स्वरूप है १६। अन्तःकरण की विक्रिया आनन्द बोध का लक्षण है, उससे कम्प-रोमांच-स्वर एवं नेत्रादि के विकार प्रतीत होते हैं ।३७। शिष्यों की लक्षणों से परीक्षा करे, सम्पर्क में शिव की पूजा में, अपनी अथवा उसकी गति से परीक्षा करनी चाहिये।१८ शिक्षण के योग्य होनेसे शिष्य और गौरवयुक्त होने से गुरु की संज्ञा होती है, इसलिये हर प्रकार से गुरु का गौरव रखे ।१९। गुरु ही शिव है, शिव ही गुरु है तथा गुरु और शिव दोनों विद्या हैं तथा विद्या ही गुरु हैं, इसलिये शिव, गुरु और विद्या के पूजन के समान फल होता है ।२१-२२।

सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमन्त्रमयो गुरुः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत् ।२२
श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत् ।
गुर्वाज्ञिपालको तस्माज्ज्ञानसम्पत्तिमश्नुते ।२३
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्नान्यत्कर्म समाचरेत् ।
समक्षं यदि कुर्वीत सर्मं चानुज्ञया गुरोः ।२४
गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत् ।
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम् ।२५
पापिनां च यथा संगात्तत्पापात्पतितो भवेत् ।
यथेह विह्लसंपर्कान्मिलं त्यजति काञ्चनम् ।
तथैव गुरुसम्पर्का त्यजति मानवः ।
यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयचे ।२७
तथा पापं विलीयतै ह्याचार्यस्य समीपतः ।
यथा प्रज्वलितो वह्निः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ।

गुरु सम्पूर्ण देवात्मक तथा मन्त्रमय है, इसलिये गुरु की आज्ञा को प्रयत्नपूर्वक शिर पर धारण करे ।२२। कल्याणकामी शिष्य गुरु आज्ञा को मन से भी नहीं लाँघता क्योंकि गुरु आज्ञा के पालन करने वाले को ज्ञान और सम्पत्ति दोनों ही प्राप्त होते हैं ।२३। चलते, खड़े होते, सोते, खाते तथा अन्य कार्यों को करने के लिये गुरु की आज्ञा प्राप्त करे ।२४। गुरु के घर में या उनके सामने श्रेष्ठ आसन पर न बैठे क्योंकि उसका घर देव-मन्दिर और वह साक्षात् देवता है।२५। जैसे पापियों की संगति से पतित हो जाता है, वैसे ही गुरु की संगति से सब पाप नष्ट होकर धर्म फल मिलता है जैसे अग्नि के सम्पर्क से सुवर्ण स्वच्छ हो जाता है ।२६। गुरु के सम्पर्क से उसी प्रकार शिष्य शुद्ध हो जाता है जैसे अग्निके सम्पर्क से घी का कलश लीन हो जाता है ।२७। वैसे ही गुरु के सम्पर्क से पाप लीन हो जाते हैं, जैसे जलती हुई अग्नि सूखे काष्ठ को भस्म करती है ।२८।

तथाऽयमपि सन्तुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत् ।
मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत् ।२९
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते ह्यायुःश्रीज्ञानसत्क्रियाः ।
तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ।३०
यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा ।
गुरोर्विरुद्ध यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः ।३१
वदेद्यदि महामोहाद्रौरव नरक व्रजेत् ।
मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः ।३२
श्रेयोऽर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचारमाचरेत् ।
गुरोहितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा ।३३
असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत् ।
इत्थमाचारवान्भक्तो नित्यमुद्युक्तमानसा ।३४
गुरुप्रियकरः शिष्य शवधर्मोस्ततोऽर्हति ।
गुरुश्चैद्गुणवान्प्राज्ञः परमानन्दभासकः ।३५

वैसे ही सन्तुष्ट हुए गुरु क्षणभर में पापों को भस्म कर डालते हैं, इसलिए मन, वाणी और कर्म से गुरु को क्रोधित नहीं करना चाहिये।२९ क्योंकि गुरुके क्रोधित होने से आयु, श्री, ज्ञान और सत्क्रिया नष्ट हो जाती हैं जो शिष्य गुरुको क्रोधित करते हैं,उनके यज्ञ फलहीन होते हैं।३०।उनके यम-नियम निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं, इसलिये कभीभी गुरुके विरुद्ध कोई बात न कहे।३१।यदि मोहवश कहता है तो नरकगामी होता है। बुद्धिमान को मन,वाणी और कर्म से गुरु-सेवा करनी चाहिये।३२।जो शिष्य कल्याण की कामना करे, उसे मिथ्याचार से बचना चाहिए, गुरु का एक दुर्गुण कहने से सौ दुर्गुण होते हैं और गुरुके गुण कहने से सभी पुण्यों का फल मिलता है, गुरु कहें चाहे न कहे सदा गुरु का प्रिय और हित ही करना चाहिये।३३। उनके सामने-पीछे भी उनके हित का कार्य करे, इस प्रकार आचारवान शिष्य श्रेष्ठ मनपूर्वक नित्यप्रति गुरु का प्रिय कार्य करता हुआ शिव धर्म में रत रहे जो गुरु आनन्ददायक एवं विज्ञ हो ।३५।

तत्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः ।
संवित्संजननं तत्वं परमानन्दसंभवम् ।३६।
तत्तत्व विदितं येन स एवानंददर्शकः ।
न पुनर्नाममात्रेण संविदा रहितस्तु यः ।३७।
अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम् ।
एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ।३८।
यैः पुनर्विदितं तत्वं ते मुक्ता मोचयत्यपि ।
तत्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ।३९।
परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते ।
पशुभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते ।४०।
तस्मात्तत्वविदेवेह मुक्तो मोचक इष्यते ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम् ।४१।
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्वहीनस्तु निष्फलः ।
यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्वे प्रवर्तते ।४२।

तथा जो तत्वज्ञानी शिवभक्त है, वही मोक्ष देने में समर्थ है । ब्रह्मज्ञान को प्रकट करने वाला तत्व परमानन्द से ही उपलब्ध होता है ।३६। वह परमानन्द दर्शक तत्व से ही जाना है । जो गुरु ज्ञानहीन है वह मोक्ष देने में समर्थ नहीं है।३७।ज्ञानी गुरु शिष्य परस्पर तारने में समर्थ होते हैं। मूर्ख गुरु शिष्य को कभी भी पार नहीं कर सकता।३८।तत्वज्ञानी तो स्वयं ही मुक्त है, अन्यों की भी मुक्त करने में समर्थ है, तत्व के विना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना आत्मज्ञान नहीं।३९।आत्मज्ञान के बिना ही इसकी पशु संज्ञा है, पशुओं से प्रेरित होने पर पशुत्व को निवृत्ति संभव नहीं।४०। इस प्रकार तत्वज्ञानी ही संसार से पार कर सकता है, सर्व लक्षणयुक्त। सर्व शास्त्रों का ज्ञाता ।४१। भी यदि तत्वज्ञान से रहित हो तो व्यर्थ है। जिस गुरु की अनुभवी बुद्धि प्रवृत्त होती है ।४२।

तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते ।
तस्माद्यस्यैव पर्कात्प्रबोधानन्दसंभवःसम्भवः ।४३।

गुरु तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ।
स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः ।४४।
यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः ।
ज्ञाते तस्मिन् स्थिरा भक्तिर्यावत्तत्वं समाश्रयेत् ।४५।
न तु तत्वं त्यजेज्जातु नोपेक्षेत कथंचन ।
यत्रानंदः प्रबोधो वा नाल्पमण्युपलभ्यते ।४६।
वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत् ।
गुरुमन्य प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम् ।
गुरोर्भ्रातृंस्तथा पुत्रान्बोधकान्प्रेरकानपि ।४७।
तत्रादावुपसंगम्य ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
गुरुमाराधयेत् प्राज्ञं सुभगं प्रियदर्शनम् ।४८।
सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रांतमानसम् ।
तोषयेत्तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ४९।

उसके दर्शन से परानन्द होता है, इससे जिसकी संगति में प्रबोधानन्द प्राप्त हो ।४३। उसी को गुरु करना चाहिए,अच्छा शिष्य विनयाचारपूर्वक गुरु की भले प्रकार।४४।ज्ञान की प्राप्ति पर्यन्त सेवा करे और स्थिर भक्ति का आश्रय करे ।४५। उस गुरु की कभी उपेक्षा न करे, कभी उसका त्याग न करे, यदि किंचित् भी आनन्द और प्रबोध न हो ।४६। तो एक वर्ष पश्चात् अन्य गुरु बनावे, परन्तु गुरु का भी तिरस्कार न करे,गुरु के भाई पुत्र, बोधक और प्रेरक हों ।४७। उनके पास जाकर पण्डित गुरु की आराधना करे जो प्रियदर्शन हों ।४८। ऐसे सब प्रकार अभयदायक गुरु को करुणायुक्त मन, वाणी और कर्म से प्रसन्न करे ।४९।

तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ भवेद्यथा ।
तस्मिन् प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत् ।५०।
स एव जनको माता भर्ता बधुर्धनं सुखम् ।
सखा मित्रं च यत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयत् ।५१।
यदा शिवाय स्वास्त्मानं दत्तवान् देशिकात्मने ।

तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽति पुनर्भवः ।५२
गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यं वर्षनेक परोक्षयेत् ।
ब्राह्मणाँ क्षत्रिय वैश्यं च विवर्षकम् ।५३
बाणद्रव्यप्रदानाद्यै रादेशैश्च समासमैः ।
उत्तमांश्चाधमे कृत्वा नीचानुत्तमकर्मणि ।५४
आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यांत्यपि ।
ते योग्याः सयताः शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि ।५५
अहिंसका दयावंतो नित्यमुद्युक्तचेतसः ।
अमानिनो बुद्धिमतस्त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदा ।५६
ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताःस्थिरचेतस ।
शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः ।५७
एवं वृत्तसमोपेता वाङ्मनः कायकर्मभिः ।
शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्मेषु निश्चयः ।५८

उनकी प्रसन्नता प्राप्ति पर्यन्त सेवा करे, गुरु के प्रसन्न होते ही शिष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।५०। गुरु ही माता, भ्राता, बन्धु, सखा, धन तथा सुख है, इसलिये सब कुछ उनको अर्पण करदे ।५१। उस शिवरूप गुरु को अपनी आत्मा का दान कर देने पर ही यह देहधारी शिवरूप होता है, फिर उसका जन्म नहीं होता ।५२। आचार्य स्वरूप को प्राप्त होकर यह पशु अपने पापों का क्षतच करके परमपद पाता है। गुरु अपने शिष्य की एक वर्ष तक परीक्षा करे तथा क्षत्रिय, वैश्य की क्रम से दो तीन वर्ष तक की परीक्षा करने का विधान है ।५३। प्राणद्रव्य के प्रदान से समास में आदेश से उत्तम को नीच और नीच को अच्छे कर्म में लगावे ।५४। जो ताडन करने से विषाद को प्राप्त नहीं होते वे शिव संस्कार के कर्म में योग्य, संयत और शुद्ध माने जाते हैं ।५५। जो अहिंसा प्रिय वचन बोलने वाले दयायुक्त, मानरहित, बुद्धिसम्पन्न स्थिर बुद्धि, ।५६। सरल' मृदु, स्वच्छ, विनीत, स्थिरचित्त, शौचाचार से सम्पन्न शिव-भक्त ब्राह्मण हैं ।५७। इस प्रकार मन, वचन, कर्म से शुद्ध बोधयुक्त शिष्य हों, उसका संस्कार करे, यही शास्त्र का निर्णय है ।५८।

।। शिव-दीक्षा में शिष्य-संस्कार वर्णन ।।

पुण्येऽहनि शुचौ देशे बहुदोषविवर्जिते ।
देशिकः प्रथम कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् ।१
परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ।
शिविशास्त्रोक्तमार्गेण मंडपं तत्र कल्पयेत् ।२
कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुण्डानि पारकल्पयेत् ।
अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तवैंशात्यां पुनः क्रमात् ।३
प्रधानकुंड कुर्वीत यदा पश्चिमभागतः ।
प्रधानमेकमेवाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ।४
वितानध्वजमालाभिर्विविधाभिरनेकशः ।
वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडलं शुभलक्षणम् ।५
रक्त मादिभिश्चूर्णैरीश्वरावाहनो चित्तम् ।
सिंदूरशालिनीवारचूर्णैरेवाथ निर्द्धनः ।६
एकहस्तं द्विहस्तं वः सितं वा रक्तमेव वा ।
एकहस्तस्य पद्मस्य कर्णिकाऽष्ठांगुला मता ।७

उपमन्यु ने कहा—पुण्य दिवस में पवित्र स्थान में जो साधक समयाह्वय संस्कार करे।१।वह गंध, वर्ण, रसादि से प्रथम पृथिवी की परीक्षा कर शिव-शास्त्रोक्त विधान से मण्डप बनावे ।२। वेदी बनाकर उसमें कुण्ड बनावे तथा आठों दिशाओं में ईशाओं में ईशान दिशा के क्रम से।३।प्रधान कुण्ड का निर्माण करे अथवा पश्चिमक्रम से बनावे और उसमें एकप्रधान करके सुशोभित करे।४।आच्छादन,ध्वजा,माला आदि सजाकर वेदी केऔर में एक सुन्दर मण्डप बनावे।५।रक्त हेमादि के चूणसे ईश्वराह्न करे और दरिद्र हो तो सिंदूर, शालि तथा नीवार के चूर्ण से ही आह्वान करे ।६। एक हाथ अथवा दो हाथ का चौड़ा श्वेत या रक्त कमल बनाकर उसमें आठ दल रखे ।७।

केसराणि तदर्द्धानि शेषं चाष्टदलादिकम् ।
द्विहस्तस्य पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम् ।८
कृत्वा शोभोपशोभाढ्यामैशान्यां तस्य कल्पयेत् ।
एकहस्तं तदर्द्ध वा पुनर्वाद्यां तु मंडलम् ।९

व्रीहितंदुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तरे ।
तत्र लक्षणसंयुक्तं शिवकुम्भं प्रसाधयेत् ।१०
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा ।
गंधपुष्पाक्षताकीर्णं कुशादूर्वाङ्कुरार्चितम् ।११
सितसूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम् ।
शुद्धाम्बुपूर्णमुत्कूर्चं सद्रव्यं सापिधानकम् ।१२
भृंगारं वर्धनीं चापि शंखं च चक्रमेव वा ।
विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापिवा ।१३
तस्यासनारविंदस्य कल्पयेदुत्तरे दले ।
अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्द्धिनीम् ।१४

उसके आधे में केशर और आधे में दल बनावे ।८। ईशान की ओर अनेक प्रकार से सुशोभित करे, वेदी में एक हाथ अथवा अर्ध हाथ का मंडप रचे।९।बीहि, अक्षत सरसों, तिल, पुष्प और कुश बिछाकर सर्व लक्षण युक्त शिवघट स्थापित करे।१०।वह घट सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मृत्तिका का हो, गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुश, तथा दूर्वा के अँकुरों से उसका पूजन करे।११ सफेद सूत्र कण्ठ में बाँधे और दो नवीन वस्त्रों से उसे ढक दे, शुद्ध जल से युक्त कूर्च, पिधान-द्रव्य।१२।झारी, बेला, शंख चक्र और सूत्र के बिना सभी वस्तु कमल के ।१३। उत्तर दल में कल्पना करे तथा शिवशास्त्र में वर्णित विधि से चन्दन के जल से अग्रभाग की ओर आचमन करे ।१४।

मंडलस्य ततः प्राच्यां मन्त्रकुम्भे च पूर्ववत् ।
कृत्वा विधियदीशस्य महापूजां समाचरेत् ।१५
अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्ठेऽपि वा गिरौ ।
देवागारे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे ।१६
कृत्वा पूर्वोदितं सर्वं बिना वा मंडपादिकम्।
मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थंडिलं च विभावसोः ।१७
प्रविश्य पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः ।
सर्वमंगलसंयुक्तः समाचरितनैत्यकः ।१८

महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः ।
शिवकुम्भे तथा भूयः शिवमावाह्यपूजतेयेत् ।१९
पश्चिमाभिमुख ध्यात्वा यज्ञरक्षंकमीश्वरम् ।
अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे ।२०
मन्त्रकुम्भे च विन्यस्य मन्त्रं मंत्रविशारदाः।
कृत्वा मुद्रादिकं सर्वं मंत्रयोगं समाचरेत् ।२१

उस मण्डल के पूर्ववत् मत्र से कुम्भ का पूजन करे, इस प्रकार विधिवत् ईश्वर का पूजन करे।१५। नदी, गोष्ठ, सागर या पर्वत के किनारे, देवालय, गृह अथवा किसी मनोहर स्थान में ।१६। मण्डय आदि के बिना सब पूर्वोक्त विधान करके अग्नि मण्डल और स्थण्डिल करे।१७। प्रसन्न मुख से गुरु पूजा वाले गृह में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण मंगलों से युक्त होकर नित्य विधि से करे।१८। मण्डल के मध्य में शिवजी का महान् अर्चन करके शिवकुम्भ में शिवाह्वान एवं पूजन करे।१९। यज्ञ-रक्षा वाले ईश्वर के पश्चिम मुख से ध्यान करके ईश्वर के दक्षिण ओर अस्त्र वर्द्धनी की पूजा करे।२०। मन्त्रज्ञाता कुम्भ में मंत्र को स्थापित करे तथा सब मुद्रादि करके मंत्रयोग करे ।२१।

ततः शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः ।
प्रधानुकुंडे परितो जुहुयुश्चापरे द्विजाः ।२२
आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयते ।
प्रधानकुंड एवाय जुहुयाद्देशिकोत्तमः ।२३
स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्त्रोत्रं मंगलवाचनम् ।
जप च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः ।२४
नृत्यं गीतं च वाद्य च मंगलान्यपराणि च ।
पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधानतः ।२५
पुण्याह कारयित्वाऽथ पुनः सपूज्य शंकरम् ।
प्रार्थयेद्देशिको देव शिष्यानुग्रहकाम्यया ।२६
प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम् ।
विमोचयैनं विश्वेशंघृणया च घृणानिधे ।२७

अथ चैवं करोमीति लब्धाणुज्ञस्तु देशिकः ।
आनीयोपोषित शिष्यं हविष्याशिनमेव वा ।२८
एकाशना वा विरतं स्नातं प्रातः कृतक्रियम् ।
जपंतं प्रणव देवं ध्यायंतं कृतमंगलम् ।२९

फिर प्रधान आचार्य शिवाग्नि में हवन करे और अन्य ब्राह्मण चारों ओर हवन करें ।२२। आचार्य से चौथाई हवन करें तथा प्रधान आचार्य प्रधान कुण्ड में हवन करें ।२३। अन्य ब्राह्मण वेदपाठ तथा मङ्गल वाचक स्तोत्र का पाठ करें ।२४। नृत्य, गायन, वाद्यादि युक्त सभा में आने वालों का विधिपूर्वक सत्कार करें ।२५। पुण्याहवाचन करके शिवजी का अर्चन करें और शिष्य के अनुग्रह के लिए आचार्य की प्रार्थना करें ।२६। हे देवदेव ! आप प्रसन्न होकर मेरे शरीर में प्रविष्ट हों, हे कृपानिधे ! मुझे दुःख से मुक्त कराइये ।२७। इस अनुज्ञा को पाकर आचार्य शिष्य को बुलाकर उस प्रातःकालीन स्नान वाले व्रती को ।२८-२९।

द्वारस्य पश्चिमस्याग्रमंडले दक्षिणस्य वा ।
दर्भासने समीसीनं विधायोदङ्मुखं शिशुम् ।३०
स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्नूर्ध्वकायं कृतांजलिम् ।
सप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैर्मूर्द्ध न्यस्त्रेण मुद्रया ।३१
पुष्पक्षेपेण संताडय बध्नीयाल्लोचनं गुरुः ।
दुकूलार्द्धेन वस्त्रेण क्षौत्रितेन नवेन च ।३२
ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुर्द्धारेण मंगलम् ।
सोऽपि तेनेरितः शंभोराचरेत्त्रिः प्रदक्षिणाम् ।३३
ततः सुवर्णसंमिश्रं श्रुत्वा पुष्पांजलिं प्रभोः ।
प्राङ्मुखश्चोदङमुखो वा प्रणमेत्दडवत्क्षितौ ।३४
ततः संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत् ।
संताड्य देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबन्धनम् ।३५

पश्चिम द्वार के आगे, दक्षिण मंडल की ओर कुशासन पर उस शिष्य को उत्तराभिमुख बैठाये ।३०। स्वयं पूर्वाभिमुख होकर ऊँचा शरीर करे तथा उस

हाथ जोड़े हुए शिष्य को मुद्रास्त्र से जल के द्वारा शिर प्रोक्षण करे ।३१। फूलों को मार कर ताडन करे तथा नेत्रों को नवीन अभिमात्रत दुपट्टे में बाँध कर ।३२। शिष्य को द्वार की ओर से प्रवेश करावे तथा शिष्य गुरु-प्रेरणा से शिवजी की तीन परिक्रमा करे ३३।फिर स्वर्ण मिश्रित पुष्पांजलि अर्पण कर पूर्वाभिमुख होकर प्रणाम करे तथा पृथिवी में दण्ड के समान गिर जाय।३४।फिर पूर्ववत् गुरु मूलअस्त्र से शिष्य के शिर को छिड़क कर पुष्प फेंक कर मारे और नेत्रों को खोल दे ।३५।

स दृष्ट्वा भूयः प्रणमेत्साञ्जलिः प्रभुम् ।
अथासीन शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे ।३६
उपवेश्यात्मनः सव्ये शिष्यं द्रर्भासने गुरुः ।
आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत् ।३७
शिवतेजोमयं पाणि शिवमंत्रमुदीरयेत् ।
शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्छिष्यस्य मस्तके ।३८
सर्वांगालंबनं कुर्यात्तेनैव देशिकः ।
शिष्योऽपि प्रणमेद्भूमौ देशिकाकृतिमीश्वरम् ।३९
ततः शिवानले देव समभ्यर्च्य यथाविधि ।
हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा ।४०
दर्भाग्रैः संस्पृशस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत।
नमस्कृत्य महादेवं नाडीसंधानमाचरेत् ।४१
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कृत्वा प्राणस्य निर्गमम् ।
शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृता मंत्रास्तु तर्पयेत ।४२

वह उस मण्डल को देखकर शिव की दण्डत प्रणाम करे फिर आचार्य शिष्य को दक्षिण मंडल की ओर बैठा देवे।३६।और उसे अपने दक्षिण और कुशा पर बैठे हुए शिवजी आराधना कराकर शिव हाथ से स्पर्श करे ।३७।शिव मत्रोच्चार पूर्वक, शिव अभिमान से युक्त होता हुआ शिव तेज-युक्त हाथ को शिष्य के सिर पर फेरे।३८।उसी हाथ से शिष्य के सम्पूर्ण अंगों का स्पर्श करे तथा शिष्य भी गुरु को ईश्वर मानकर प्रणाम करे।३९ फिर

शिवालय में विधिवत् पूजन कर तीन आहुति देकर शिष्य को आगे करे ।४०। और उसे दर्भ के अगले भाग से स्पर्श करते हुए आत्मा का विधान करके शिव प्रणाम कर नाड़ी संधान करे ।४१। शिवशास्त्रोक्त विधान से प्राणायाम करके शिष्य के देह में प्रविष्ट होने के लिए स्मरण करके मंत्रों से तर्पण करे ।४२।

सतर्पणाय मूलस्य तेनवाहुतयो दशः ।
देतास्तिस्रस्तथांगानाम गैरव यथाक्रमम् ।४३
ततः पूर्णाहुतिं दत्वा यायश्चित्ताय देशिकः ।
पुनर्दशाहुतीः कुर्यान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ।४४
तुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः ।
हुत्वा चौव यथान्यायं स्वजात्या वैश्यमुद्धरेत।५४
तस्यैवं जनयेत्क्षात्रमुद्वार च ततः पुनः ।
कृत्वा तथैव विप्रत्व जनयेदस्य देशिक्कः ।४६
राजन्यं चौवमुद्धृत्य कृत्वा विप्र पुनस्तयोः ।
रुद्रत्व जनयेद्विप्रे रुद्रनामैव साधयेत् ।४७
प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोः स्वात्मानमात्मनि ।
शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरंतं विस्फुलिंगवत् ।४८
नाड्या यथोक्तया वायुं रेचयेन्मन्त्रतो गुरुः ।
निर्गम्य प्रविशेन्नाडयां शिष्यस्य हृदयं तथा।४६

मूल मन्त्र की तृप्ति के लिए विनियोगपूर्वक दस आहुतियाँ दे और उसी मूल मन्त्र से अंग के देवताओं को तृप्त करे ।४३।फिर आचार्य प्राय-श्चित की पूर्णाहुति दे तथा मूल-मत्र से दस आहुति देनी चाहिए।४४।फिर आचार्य शिवजी का पूजन करे और प्रणाम आचमन कर वैश्य जाति का उद्धार करे।४५।इसी प्रकार क्षत्रिय का उद्धार कर ब्राह्मणत्व उत्पन्न करावे और।४६।राजत्व तथा वैश्वत्व से छुड़ाकर ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर रुद्रत्व उत्पन्न करे और रुद्र का साधन करे।४७।शिष्य को प्रोक्षण औरताड़न करके अपनी आत्मा से आत्मा में स्फूर्यमाण होकर शिवात्मा को स्मरण करे।४८ मन्त्रपूर्वक गुरु-नाड़ी द्वारा वायु को निकाले तथा सुषुम्ना से निकाल कर कुम्भक से प्रवेश करावे और शिष्य के हृदय में ।४९।

प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दुनिभं स्मरन् ।
स्वतेजसाऽपास्तमल ज्वलंतमनुचितयेत् ।५०
तमादाय तथा नाड्या मंत्री सहारमुद्रया ।
पूरकेण निवेश्यैनमेकी भावार्थमात्मनः ।५१
कुंभकेन तथा नाड्या रेचकेन यथा पुरा ।
तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये त निवेशयेम् ।५२
तमालभ्य शिवाल्लब्ध तस्मै दत्वोपवीत्रकम्।
हुत्वाऽऽहुतित्रय पश्चाद्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ।५३
देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्य वरासने ।
कुशपुष्पपरिस्तीर्णे बद्धांजलिरुदङ्-मुखम् ।५४
स्वास्तिकासनमारूढ विधाय प्राङ्मुखः स्वयम् ।
वरासनस्थितो मंत्रैर्महामङ्गलानिः स्वनैः ।५५
समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसादितम् ।
ध्यायमानः शिव शिवयमभिषिंचेत देशिकः ।५६

मन्त्र प्रवेश कराकर नीलबिन्दु के स्मरणपूर्वक अपने तेज से मल दूर करता हुआ प्रकाश का चिन्तन करे ।५०। इस वायु को गुरु इसी नाडी के द्वारा ग्रहण कर पूरक से निविष्ट कर आत्मा से आत्मा का एकीभाव करके ।५१। कुम्भ नाड़ी से वायु को शोध कर शिष्य के हृदय में स्थित करे।५२। फिर उस शिष्य को स्पर्श करके शिव से ग्रहण किये यज्ञोपवीत को शिष्य को प्राप्त कराकर तीन आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति दे ।५३। शिव के दक्षिण और शिष्य को उचित आसन पर बैठावे और कुशा पर बिछे हुए फूलों पर उत्तराभिमुख करबद्ध शिष्य को ।५४। स्वस्तिक आसन से बैठावे और पूर्वाभिमुख स्वयं बैठकर श्रेय मङ्गल मन्त्रों के उच्चारण-पूर्वक उत्तम आसन पर बैठाकर।५५। सिद्ध किये हुए पूर्ण घट को लाकर ध्यानरत शिष्य पर जल छिड़के ।५६।

अथापनुद्य स्नानांबु परिधाय सितांबरम् ।
आचान्तोऽलंकृतः शिष्यः प्राजलिर्मंडपंव्रजेत् ।५७
उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुर्दर्भविऽटरे ।
संपूज्य मंडले देवं करन्यासं समाचरेत् ।५८

ततस्तु भस्मना देवं ध्यायन्मनसि देशिकः ।
समालभेत पाणिभ्यां शिशुं शिवमुदीरयेत् ।५९।
अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम् ।
सकलीकरणं कृत्वा मातृकन्यासवर्त्मना ।६०।
ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः ।
तत्रावाह्य तथान्यायमर्चयेन्मनसा शिवम् ।६१।
प्रार्थयेत्प्रांजलिर्देव नित्यमत्र स्थितो भव ।
इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुरं स्मरेत् ।६२।
सपूज्याथ शिवं शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम् ।
कर्णे शिष्यस्य शनकैः शिवमन्त्रमुदीरयेत् ।६३।

और स्नान के जल को पोंछकर सफेद वस्त्र धारण कर, सुसज्जित होकर हाथ जोड़ता हुआ शिष्य मंडप में पहुँचे ।५७। तब गुरु उसे कुश के आसन पर बैठाकर मंडप में देवार्चन कराकर न्यास करे ।५८। फिर भस्म हाथ में लेकर शिव का ध्यान करके शिष्य को हाथ से पकड़ कर शिव मन्त्र का उच्चारण करावे ।५९। फिर उस शिष्य को आचार्य सकलीकरण मातृका-न्यास के मार्ग से करावे । ६० । तब शिवासन का ध्यान करके आचार्य उस शिष्य का न्यायपूर्वक आवाहन कर मन से शिव का पूजन करे ।६१। तथा करबद्ध प्रार्थना करे कि आप यहाँ नित्य निवास करने की कृपा करें, शिव के प्रति ऐसा निवेदन कर उस महातेजस्वी स्वरूप का स्मरण करे ।६२। फिर शिवजी की पूजा कर शैवी आज्ञा को पाकर गुरु शिष्य के कान में धीमे-धीमे शिव मन्त्र का उपदेश करे ।६३।

स तु बद्धाजलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः ।
शनैस्तं व्याहरेच्छिष्यः शिवाचार्यस्य शासनात् ।६४
ततः शाक्तं च संदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः ।
उच्चारयित्वा च सुखं यस्मै मङ्गलमादिशेत् ।६५
ततः समासान्मन्त्रार्थं वतच्यवाचकयोगतः ।
समादिश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ।६६

अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ ।
भक्त्यैवमभिसंधाय दीक्षावाक्यमदीरयेत् ।६।
वर प्राणपरित्यगश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।
न त्वनभ्यर्च्य भुंजीत भगवन्तं त्रिलोचनम् ।६८।
स एंव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः ।
तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः ।६९।
ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे ।
लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत् ।७०।

शिव-मन्त्र में चित्त को लगता हुआ शिष्य मन्त्र को सुनकर धीरे-धीरे ही उच्चारण करे ।६४। फिर मन्त्र कुशल गुरु मन्त्रोच्चारण कराने के उपरान्त शिष्य के लिए मंगलाचार करावे ।५५। फिर वाच्य-वाचक योग से कई मास तक मंत्रार्थ को कहकर ईश्वर रूप वर्णन और योगासन सिखावे ।६६। तब गुरु आज्ञा से शिष्य शिवाग्नि और गुरु के समीप दीक्षा वाक्य कहे ।६७। चाहे प्राणान्त हो, चाहे शीश कट जाय, परन्तु बिना शिवार्चन किये भोजन न करे ।६८। जब तक उस शिष्य का मोह दूर नहीं हो, तब तक गुरुनिष्ठ रहकर देव की आराधना करता रहे ।६९। तब वह शिवाश्रम का अधिकारी होगा, उसे सदा गुरु आज्ञा के पालनपूर्वक उसके आधीन रहना चाहिए ।७०।

अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः ।
दद्याच्छिष्पाय मूसेन रुद्राक्षं चाभिमंत्रितम् ।७१।
प्रतिमा वापि देवस्य गूढदेहमथापि वा ।
पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभवे ।७२।
सोऽपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि वहुमानतः ।
आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा ।७३।
आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः ।
रक्षयेत्पजयेच्छभुं मठे वा गृह एव वा ।७४।
अतः पर शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः ।
भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः ।७५।

यद्युक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम्।
शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत्।७६।
शिवागस्य ग्रहणं वाचनं श्रवणं तथा।
देशिकादेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्यतः।७७।
इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः समयाह्वयः।
साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणां परमसाधनम्।७८।

फिर करन्यास कर अपने हाथ से भस्म लगावे, उस भस्म को और अभिमंत्रित रुद्राक्ष को शिष्य के लिए दे।७१। अथवा लिंगात्मक प्रतिमा लेकर पूजन, हवन, जप, ध्यान तथा साधन करे।७२। आचार्य से अत्यन्त मानपूर्वक शिष्य इन वस्तुओं को ग्रहण करे और उसकी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करे।७। भक्ति सहित शीश झुकाकर आचार्य से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे और मठ अथवा गृह में शिवजी का पूजन करे।७४। फिर आचार्य उसे शिवाचार बतावे, सब कुछ भक्ति, श्रद्धा और प्रज्ञा के अनुसार करे।७५। शिवाचार्य ने जो कहा, जो आज्ञा दी अथवा और कुछ बात बताई, उस सबका पालन करे।७६।शिवशास्त्र ग्रहण, पठन, श्रवण यह सब कार्य गुरु आज्ञा से करे स्वेच्छा से या अन्य किसी के कहने से न करे।७७। यह समस्त संस्कार संक्षिप्त रूप से कहा है, यह साधन शिवपुरी प्राप्त करने वाला है।७८।

।। नित्य नैमित्तिक कर्म, सूर्यपूजा तथा पंचयज्ञ ।।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिकं तथा।१।
प्रातरुत्थाय शयनाद्ध्यात्वा देवं सहाम्बया।
विचार्य कार्यं निर्गच्छेद्गृहादभ्युदितेऽरुणे।२।
अबाधे विजने देशे कुर्यादवश्यकं ततः।
कृत्वा शौचं विधानेन दंतधावनमाचरेत्।३।
अलाभे दन्तकाष्ठानामष्टम्यादिदिनेषु च।
अपां द्वादशगंडूषैः कुर्यादस्य विशोधनम्।४।

आचम्य विधिवत्पश्चाद्वारुणं स्नानमाचरेत् ।
नद्यां वा देवखाते वा ह्रदे वाथ गृहेऽपि वा ।५
स्नानद्रव्याणि यत्तीरे स्थापयित्वा बहिर्मलम् ।
व्यपोह्य मृदमालिप्य स्नात्वा गोमयमालिपेत् ।६
स्नात्वा पुनः पुनर्वस्त्रं त्यक्त्वा वाथ विशोध्य च ।
सुस्नातो नपवद्भूयः शुद्धं वासो वसीत च ।७

श्रीकृष्ण ने कहा—अब शिवशास्त्र के अनुसार व्यह्वाल नित्य नैमित्तिक कर्म के श्रवण की मेरी इच्छा है ।१। उपमन्यु ने कहा—प्रातः काल उठकर पार्वती सहित शिव का ध्यान कर अरुणोदय होने पर घर से निकले ।२। उपद्रव रहित स्थान में शौचदि से निवृत होकर दाँतून आदि करे ।३। उसके उपरान्त आत्म शुद्धि के लिए जल बाहर कुल्ले करे । ४ । फिर विधिवत् आचमन करके वारुण स्नान करे,और मन से भगवान् विष्णु का चिन्तन करे,नदी, सरोवर या घर में ही स्नान करे । ५ । तट पर स्नान योग्य योमय आदि लगावे अथात् गोबर आदि से लीपे । ६ । बार-बार स्नान कर वस्त्र त्याग कर शुद्ध वस्त्र धारण करे । ७ ।

मलस्नानं सुगधाद्यैः स्नानं दतविशोधनम् ।
न कुर्याद्ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा ।८
सोपवीतः शिखां वद्ध्वा प्रविश्य च जलांतरम् ।
अवगाह्य समाचांतो जले न्यस्येत्त्रिमंडलम् ।९
सौम्ये मग्नःपुनर्मंत्रं जपेच्छक्त्या शिव स्मरेत् ।
उत्थायाचम्य तेनैव स्वात्मानमभिषेचयेत् ।१०
गोशंगेण सदर्भेण पालाशेन दलेन वा ।
पादमेन वाथ पाणिभ्यां पञ्चकृत्वस्त्रि रेव व ।११
उद्यानयूदौ गृहे चैव वर्द्धन्या कलशेन वा ।
अवगाहनकालेऽद्भिर्मंत्रितैरभिषेचयेत् ।१२
सद्य चेद्वारुण कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा ।
आर्द्रेण शोधययेद्देहमापादतलमस्तकम् ।१३

आग्नेयं वाथवा मात्रं कुर्यात्स्नानंशिवेन वा।
शिवचिंतापरं स्नानं युक्तस्यात्मीयमुच्यते।१४।

यज्ञोपवी धारण करे, शिखा बाँधे, जलान्तर से प्रविष्ट होकर स्नान करे और जल में तीन मण्डल जैसा आकार करे।८-९। फिर जल-मग्न होकर सामर्थ्यानुसार शिव स्मरणपूर्वक मन्त्र जपे और आचमन कर उसी से आत्मा को सींचे।१०। गोश्रृंग, कुश, ढाकपत्र, कमल या हाथ से पाँच अथवा तीन बार अभिषेक करे।११। स्नान के समय जलों को मन्त्रों से अभिषिक्त करे।१२। यदि जल का स्नान का सामर्थ्य न हो तो शुद्ध भीगे वस्त्र से अपनी संपूर्ण देह को पोंछे।१३। अथवा भस्म से, मन्त्रों से या शिव मन्त्र के प्रोक्षण से स्नान करे, यह शिवचिंतक युक्त आत्मज्ञान है।१४।

स्वसूत्रोक्तविधानेन मंत्राचमनपूर्वकम्।
आचरेद्ब्रह्मयज्ञांतं कृत्वा देवादितर्पणम्।१५।
मंडलस्थं महादेवं ध्यात्वाऽभ्यर्च्यं यथाविधि।
दद्यादर्घ्यं ततस्तस्मै शिवायादित्यरूपिणे।१६।
अथवैतत्स्वसूत्रोक्तं कृत्वा हस्तौ विशोधयेत्।
करन्यासं ततः कृत्वा सकलीकृतविग्रहः।१७।
वामहस्तगतांभोभिर्गंधसिद्धार्थकान्वितैः।
कुशपुंजेन वाऽभ्युक्ष्य मूलमंत्रसमन्वितैः।१८।
आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैः शेषमाघ्रमय वै जलम्।
वामनासापुटेनैव देवं सम्भावयेत्सितम्।१९।
अघमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च।
कृष्णवर्णेन वाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्।२०।
तर्पयेदथ देवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः।
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि।२१।

अपने सूत्र के विधान से मंत्र तथा आचमन करता हुआ देवादि का तर्पण करे और, ब्रह्मयज्ञ तक सब कर्म करे।१४। मण्डल स्थित शिव का पूजन कर ध्यान करे और आदित्य रूपी शिव को अर्घ्य प्रदान करे।१६।

फिर सूत्रोक्त विधान से हाथों की शुद्धि करन्यास और सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध करे।७१।वाम हाथ में लिये हुए जल से गंध और सरसों युक्त कुशों से मूल-मन्त्र सहित प्रोक्षण करे।१८।शेष जल को 'आपोहिष्ठादि' मन्त्रों से सूंघकर वाम नासापुट से देह का पाप ग्रहण कर कृष्ण वर्ण बाहर करके शिला पर ध्यान करे ।१९-२०। फिर देवताओं और ऋषियों का तर्पण करे तथा भूत-पितरों के लिए यथा-योग्य अर्घ्य दे ।२१।

रक्तचन्दनतोयेनं हस्तमात्रेण मंडलम् ।
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ रक्तचूर्णाद्यलंकृतम् ।२२।
तत्र सम्पूज्ययेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह ।
स्वखोल्कायेति मंत्रेत्र सांगतः सुखसिद्धये ।२३।
पुनश्च मंडल कृत्वा तदंगः परिपूज्य च ।
तत्र सम्पूज्ययेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह ।
पूरयेद्गन्धतोयेन रक्तचंदनयोगिना ।२४।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितः ।२५।
दूर्वापामार्गद्रव्यैश्च केवलेन जलेन वा ।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा नत्वा देवं च मण्डले ।२६।
कृत्वा शिरसि तत्पात्र दद्यादर्घ्यं शिवाय तत् ।
अथवांजलिना तोयं सदर्भं मलविद्यया ।२७।
उत्क्षिपेदम्बरस्थाय शिवायादित्यमूर्तये ।
कृत्वा पुनः करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ।२८।

लाल चन्दनयुक्त जल मे, उत्तम भूमि मे रत्न और चूर्ण इत्यादि से हाथ के द्वारा मण्डल बनावे ।२३। अपने आवरणों सहित यहाँ सूर्य का पूजन करे 'स्वखोल्काय' मन्त्र का पूजन में प्रयोग करे ।२३। फिर मण्डल बनाकर अंगों का पूजन करे वहां रखे हुए सुवर्णपात्र को एक सौ अट्ठाईस तोले के नाप से ।२४। गध तथा रक्त चन्दन के जल से पूर्ण करे और लाल पुष्प, तिल कुश तथा अक्षतों सहित ।२५। दूर्वा, चिरचिटा, गव्य, दुग्ध या जल से भरकर जाँघ के बल पृथिवी में बैठकर मण्डल में देव को प्रणाम

करे।२६। उस पात्र को शीश पर करके अर्घ्य दे, अथवा मूल विद्या से कुश सहित उस जल को अञ्जलि में लेकर।२७।आकाश में स्थित शिवात्मक आदित्य को अर्घ्य दे और हाथ धोकर करन्यास करे।२७।

बुद्ध्वेशानादिसद्यांत पञ्चब्रह्ममयं शिवम्।
गृहीत्वा भसित मत्रैर्विमृज्यांगानि संस्पृशेत्।२९।
या दिनांतैः शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणान्क्रमात्।
ततो मूलेन सर्वांगमालभ्य वसनान्तरम्।३०।
परिधाय द्विराचम्य प्रोक्ष्यैकादशमन्त्रितैः।
जलैराच्छाद्य वासोऽन्यद्द्विराचम्य शिवं स्मरेत्।३१।
पुनर्न्यस्तकरो मंत्री त्रिपुंड्रं भस्मना लिखेत्।
अवक्रमाय तं व्यक्तं ललाटे गन्धवारिणा।३२।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा बिन्दुमर्द्धेन्दुमेव वा।
ललाटे यादृश पुंड्रं लिखित भस्मना पुनः।३३।
तादृशं भुजयेर्मूर्ध्नि स्तनयोरंतरे लिखेत्।
सर्वांगोद्धूलनं चैव न समानं त्रिपुंड्रकैः।३४।
तस्मात्त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना।
रुद्राक्षान्धारयेन्मूर्ध्नि कंठे श्रोत्रे करे तथा।३५।

ईशान से सद्योजात तक पंचब्रह्ममय शिव को जानता हुआ मंत्रों से भस्म ग्रहण करे और अंगों को स्पर्श करे।२९।फिर विपरीत क्रम से शिर, मुख, गुह्य और पैरों में भस्म लगावे तथा सम्पूर्ण में लगा कर वस्त्र पहन ले।३०। दो बार आचमन कर ग्यारह मंत्रों से प्रोक्षण करे और वस्त्र धारण कर दूसरे वस्त्र को जल से धोकर दो आचमन कर शिवजी का स्मरण करे।३१।फिर करन्यास करके भस्म से त्रिपुण्ड्र बनावे और सुगन्धित जल से मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाकर।३। दीर्घ या चार अंगुल, बिन्दु या अर्धचन्द्राकार त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए।३३। माथे के समान ही भुजा शीश और छाती पर लगावे, सर्वांग में भस्म मले वह त्रिपुण्ड्र के समान न हो।३४। इसलिए भस्म रहित माथे में त्रिपुण्ड्र ही बनावे तथा शिर, कंठ, हाथों और कानों में रुद्राक्ष धारण करे।३५।

सुवर्णवर्णमसच्छिन्नं शुभं नान्यैर्धृतं शुभम् ।
विप्रादीनां क्रमाच्छ्रेष्ठ पीतं रक्तमथासितम् ।३६।
तदलाभे यथालाभं धारणीयमदूषितम् ।
यत्रापि नोत्तरं नीचैर्धार्यं नीचमथोत्तरैः ३७।
नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा कालेषु धारयेत् ।
इत्थं त्रिसन्ध्यमथवा द्विसन्ध्यं सुकृदेव वा ।३८
कृत्वा स्नानादिक शक्तया पूज्येत्परमेश्वरम् ।
पूजास्थानं समासाद्य बत्ध्वा रुचिरमासनम् ।३९
ध्यायेद्देव च देवी प्रांगमुखो वाप्य दङ्गमुखः ।
श्वेतादीन्नकुलीशांतांस्तच्छिष्यान्प्रणमेत्गुरुम् ।४०
पुनर्देवं शिवं नत्वा ततो नामाष्टक जतेत् ।
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।४१
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम् ।
अथवा शिवमेवैक जपित्वैकादषाधिकम् ।४२
जिह्वाग्रे तेजसो राशि ध्यात्वा व्वाध्यादिशांतये ।
प्रक्षाल्य चरणौ कृत्वा करौ चंदनचर्चितौ ।
प्रकुर्वीत करन्यास करशोधनपूर्वकम् ।४३।

वस्त्र सुवर्ण वर्ण के समान पहिने, श्वेत, पीला, लाल और काला यह रङ्ग क्रमपूर्वक ब्राह्मणादि को धारण करना चाहिये ।३६। वैसा वस्त्र न मिले तो जैसा उपलब्ध हो वही पहिने, उसमें भी कोई एक दूसरे के वस्त्र धारण न करे ।३७। अशौच मेरुद्राक्ष धारण न करे, पूजन आदि के समय में धारण करे, इस प्रकार त्रिकाल संध्या, दोनों काल अथवा एक ही संध्या में ।३८। शक्ति अनुसार रचना अनुसार रचनापूर्वक ईश्वर का पूजन करे, पूजा स्थान में श्रेष्ठ आसन लगाकर ।३९। शिव-शिवा का ध्यान उत्तर या पूर्वमुख बैठकर करे तथा श्वेतादि से नकुलीश पर्यन्त शिष्यों सहित गुरु को प्रणाम करे ।४०। फिर अपने गुरु को प्रणाम कर शव नामाष्टक का जप करे। शिव,महेश्वर,रुद्र पितामह ।४१। संसार

वैद्य, सर्वज्ञ आठ नाम है अथवा ग्यारह बार से अधिक एक शिव नाम का ही जप करे ।४२। उस तेज राशि की जिह्वा के अग्रभाग में शान्त्यर्थस्नान करके, हाथ धोकर, चन्दनादि से चर्चित न्यास तथा करन्यास करे ।४३।

।। हवन में कुण्ड, होम द्रव्य कथन ।।

अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुंडे वा स्थंडिलेऽपि वा ।
वेद्यां वा ह्यायसे पात्रे मृन्मये वा नवे शुभे ।१
आधायाग्निं विधानेन संस्कृत्य च ततः परम् ।
तत्राराध्य महादेवं होमकर्म समाचरेत् ।२
कुण्डं द्विहस्तमानं वा हस्तमात्रतथापि वा ।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा कुर्याद्वेदिं च मण्डलम् ।३
कुण्डविस्तारवन्निम्नं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ।
चतुरंगुलमुत्सेधं तस्य द्व्यङ्गुलमेव वा ।४
वितस्तिद्विगुणोन्नत्या नाभिमन्तः प्रचक्षते ।
मध्ये च मध्यमांगल्या मध्यमोत्तमपर्वणोः ।५
अगुलैः कथ्यते सद्भिचतुर्विंशतिभिः करः ।
मेखलानां त्रयं वापि द्वयमेकमथापि वा ।६
यथाशोभप्रकुर्वीत श्लक्षणमिष्टं मृदा स्थिरम् ।
अश्वत्थपत्रद्योनिं गजाधारवदेव वा ।७

उपमन्यु ने कहा—कुंड या स्थंडिलमें किये जाने वाले अग्नि-कार्य का वर्णन करता हूँ । वेदी से बाहर लोहे के या मृत्तिका के नवीन पात्र में ।१। विधिवत् अग्नि को धारण कर संस्कारपूर्वक शिवजी का आराधन कर, हवन प्रारम्भ करे ।२। दो या एक हाथ का कुंड बनाकर गोल या चौकोर वेदी का मंडल बनावे ।३। कुंड के विस्तार के समान उसमें आठ दल का पद्म बनावे, चार या दो अङ्गुल वेदी से ऊँचा रहे ।४। दो बिलाँद ऊँची नाभि करे मध्यमा अङ्गुली के मध्य तथा प्रथम पोरुए के बराबर मध्य कहा गया है । ५ । इतने प्रमाण को अङ्गुल कहते हैं, चौबीस अङ्गुल का एक हाथ कहा है, उसमें तीन, दो या एक मेखला

करे।६।जैसी शोभा करती हो वैसी श्रेष्ठ मृत्तिका की बनावे, पीपल के पत्ते या हाथी के होठ के समान उसकी योनि बनावे, कर्म-पीठ के समान दोनों पार्श्वों में अँगुल मात्र ऊँची सब कुण्डों में बनावे, शान्तिसार में ऐसा कहा है ।७।

मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा ।
शोभनामग्नितः किंचिन्निम्नामुन्मीलिकां शनैः ।८।
अग्रेण कुंडाभिमुखी किंचिदुत्सृज्य मेखलाम् ।
नात्सेधनियमो वेद्याः सा मार्दी वाथ सैकती ।९।
मडल गोशकृत्तोयैर्मानं पात्रस्य नोदितम् ।
कुण्ड च मृन्मय वेदिमालिपेद्गोमयांबुना ।१०।
प्रक्षाल्य तापयेत्पात्रं प्रोक्षयेदन्यदंभसा ।
स्वसूत्रोक्तप्रकारेण कुंडादौ विलिखेत्ततः ।११।
संप्रोक्ष्य कल्पयेद्दर्भैः पुष्पैर्वा वह्निविष्टरन् ।
अर्चनार्थं च होमार्थं सर्वद्रव्याणि साधयेन् ।१२।
प्रक्षाल्य क्षालनीयानि प्रोक्षण्या प्रोक्ष्य शोधयेत् ।
मणिज काष्ठजं वाथ श्रोत्रियागार संभवम् ।१३।
निगत्य पावके बाह्ये लीनं बिंबाकृतिं स्मरेत् ।
आज्य संस्कारपर्यं तमन्वाधानापुरःसरम् ।१४।

मेखला के मध्य से पश्चिम और दक्षिण की ओर दो प्रान्तों से सयुक्त करे ।८। अग्र भाग से कुण्ड की ओर कुछ मेखला छोड़ कर वेदी के नियम के अनुसार मृत्तिका या रेत की करे।९।गोबर से उसका मण्डल बनावे कुण्ड और वेदी को गोबर से ही लीपे ।१०। फिर धोकर पात्र को तपावे और अपने सूत्र के अनुसार कुण्डादि खींचे।११।उसे प्रोक्षण कर कुशा और पुष्पों से अग्नि का आसन बनावे तथा पूजन-हवन के लिए सब सामग्री एकत्र करे ।१२। धोने योग्य को धोवे, प्रोक्षण योग्य को प्रोक्षण करे, मणि या काष्ठ से उत्पन्न अथवा ऋत्विक् के यहाँ से प्राप्त अग्नि को स्थापित करे।१३।अग्नि के बाहर निकलने पर विंबाकार चिन्तन करे तथा संस्कार युक्त घृत आगे रखे ।१४।

स्वसूत्रौक्तक्रमात्कुर्यान्मूलमन्त्रेण मंत्रवित् ।
शिवमूर्त्ति समभ्यर्च्य ततो दक्षिणपार्श्वतः ।१५।
न्यस्य मत्रं घृते मुद्रां दर्शयद्धेधुसज्ञिताम्ः ।१५।
स्रुक्स्रुवौ तेजसौ ग्राह्यौ न कांस्यायससंसकौ ।१६।
यज्ञदारुमयौ वापि स्मार्तौ वा शिल्पसम्मतौ ।
पर्णे वा प्रह्मबृक्षादेरच्छिद्रे मध्य उत्थिते ।१७।
संमृज्य दर्भेस्तौ वह्नौ संताप्य प्रोक्षयेत्पुनः ।
परिषिच्य स्वसूत्रोक्तक्रमेण शिवपूर्वकः ।१८।
जुहुयादष्टभिर्बीजैरग्निसस्कारसिद्धय ।
भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं क्रमेणैव पुं ड्रदमित्यतः परम् ।१९।
बीजानि सप्त सप्तानां जिह्वानामनुपूर्वशः ।
त्रिशिखा मध्यमा :जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिताः ।२०।
रक्तांग्नेयी नैर्ऋतीं च कृष्णान्या सुप्रभामता ।
अतिरिक्ता मरुजिह्वा स्वनामानुगुणप्रभा ।२१।

मंत्रज्ञाता अपने सूक्त और मूल मन्त्र से सब कृत्य करे, शिव मूर्ति की पूजा कर दक्षिण पार्श्व से ।१५। मन्त्र द्वारा न्यास करके घृत में धेनु मुद्रा प्रदर्शित करे, स्रुक और स्रुवा कांसे. लोहे या शीशे के न ले, अन्थ धातु के बना सकता है।१६।देवदारु के या जैसा शिव शास्त्र में विधान हो, ढाक पात्र में अथवा दो पत्रों के मध्य तीसरा निकल रहा है, परन्तु छिद्र आदि न हों।१७।उनको कुशों से मार्जन कर तपावे और शिव मंत्र से या अपने सूत्रोक्त मंत्र से प्रोक्षण करे ।१८। अग्नि संस्कार की सिद्धि के लिए भ्रुं स्तु ब्रुं श्रुं पुंडु द्रुं इन बीजाक्षरों से हवन करे ।१९। यह सात बीज अग्नि की सात जिह्वाओं के लिए एक-एक हैं । त्रिशिखा तीन शिखावाली है, मध्यमा बहुरूप वाली है उसकी एक शिखा दक्षिण में, एक वाम ओर एक ईशान की ओर, जिसे हिरण्य कहते हैं, पूर्व और कनक जिह्वा है।२०। आग्नेयी दिशा की लाल, नैर्ऋत्य की काली, दूसरी ओर सुप्रभा अतिरिक्त मरुजिह्वा अपने गुण के अनुरूप नाम वाली हैं ।२१।

स्वबीजानंतरं वाच्या स्वाहान्तञ्च यथाक्रमम् ।
जिह्वामंत्रैस्तु तैर्हुत्वाज्यं जिह्वास्त्वेकैकशः क्रमात्
रवह्नये ति स्याहेति मध्ये हुत्वाहुतित्रयम् ।
सर्पिषा वा समिद्भिर्वा परिषेचनमाचरेत् ।२३
एवं कृचे शिवाग्निः स्यात्स्मरेत्तत्र षिवासनम् ।
तत्राहूय यजेद्देवमर्धनारीश्वरं शिवम् ।
दीपान्त परिषिच्याथ सामद्धोमं समाचरेत् ।२४
ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशांगुलाः ।
अवक्रा न स्वय शुष्काः सत्वचो निव्रणाः समाः ।२५
दशांगुला वा विहिताः कनिष्टांगुलिसमिताः ।
प्रादेशमात्रा वाऽलाभे होतव्याः सकला अपि ।२६
दूर्वापत्रसमाकारां चतुरगुलमायताम् ।
दद्यादाज्याहुतिं पश्चादन्नमक्षप्रमाणतः ।२७
लाजांस्तथा सर्षपांश्च यवांश्चैव तिलांस्तथा ।
सर्पिषाक्तानि भक्ष्याणि लेह्यचौष्याणि सभवे ।२८

बीज के अनन्तर स्वाहा' लगावे, एक जिह्वा में मंत्रोच्चारपूर्वक क्रम से हवन करे । २२ । रु वह्नये स्वाहा' उच्चारण के मध्य में तीन आहुतियां दे घृत या समिधा करके परिषेचन करे । २३ । ऐसा करने से शिवाग्नि की प्राप्ति होती है , वहाँ शिवासन का स्मरण कर आह्वान करके अर्द्धनारीश्वर शिव का यजन करें , दीपक तक सींचकर समिधा सहित हवन करे।२४ ।वे,समिधायें पलाश की बारह अंगुल की हों, टेढ़ी न हों तथा त्वचा सहित गीली तोड़ी हुई, व्रण रहित इकसार हों ।२५ । अथवा दश अंगुल कन्नी अंगुली के समान मोटी हों इसके अभाव में एक बिलांद लम्बी ही ग्रहण करे ।२६। दूर्वादल के समान चार अंगुल लम्बी से भी हवन कर सकते हैं, फिर घृताहुति देकर सोलह उर्द या एक एक ग्रास प्रमाण अन्न ले २७ खील, सरसों, जौ, तिल घृतयुक्त भक्ष्य, लेह्य, चौष्य ।२८।

दशैवाहुतयस्तत्र पंच वा त्रितयं च वा ।

होतव्याः शक्तितो दद्यादेकमेवाथ वाहुतिम् ।२९
स्रुवेणाज्य समत्याद्या स्रुचा शेषात्करेण वा ।
तत्र दिव्येन होतव्य तीर्थेनार्षेण व तथा ।३०
द्रव्यणैकेन वाऽलाभे जुहुया छ्द्धया पुनः ।
प्रायश्चित्ताम जुहुयान्मत्रयित्वाऽऽहुतित्रयम् ।३१
ततो होमवशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम् ।
निधाय पुष्पं तस्याग्र स्रवेणाधोमुखेन ताम् ।३२
सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनांजयिनोत्थितः ।
वौषडतेन जुहुयाद्धारां तु यबसमिताम् ।३३
इत्थं पूर्णाहुति कृत्वा परिषिच्च पूर्ववत् ।
तत उद्वास्य देवेशं गोपेयेत्त् हुताशनम् ।३४
तमप्युद्वास्य वा नाभौ यजेत्सधाय निन्यशः ।
अथवा वह्निमानीय शिवशास्त्रोक्तवत्मना ।३५

पदार्थ से दस-पाँच अथवा तीन आहुति दे अथवा शक्ति न हो तो एक ही आहुति दे। २९। स्रुवे से घृत, समिधा हाथ से, देवतीर्थ से या ऋषितीर्थ से हवन करे। ३०। सब द्रव्य न मिलें तो एक द्रव्य से ही प्रायश्चित के लिये तीन आहुति दे। ३१। फिर हवन से शेष रहे घृत से स्रुवे को भरकर उसके आगे पुष्प रखे और अधोमुख स्रुवे को।३२। कुशों से ढक कर मूलमन्त्रसे अंजलि बाँधकर खडे हो और मन्त्र के अन्त में वौषट् लगा कर देवेश को विदा कर अग्नि की रक्षा करे।३४। अथवा शिव शास्त्रोक्त प्रकार से अग्नि लाकर।३५।

वागीशीगर्भसभूतं संस्कृत्य विधिवद्यजेत् ।
अन्वाधानं पुनः कृत्वा परिधीन् परिधाय च ।३६
पात्राणि द्वंद्वरूपेण निक्षिप्येष्ट्वा शिवं ततः ।
सशोध्य प्रोक्षणीपात्रं प्रोक्ष्य तानि तदम्भसा । ३७
प्रणीतापात्रमैषान्यां विन्यस्यापूरितं जलैः ।
आज्यसस्कारपर्यतं कृत्वा संशोध्य स्रुक्स्रु वौ ।३८

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयन ततः ।
कृत्वा पृथक्पृथग्धुत्वा ताजमग्नि विचिंतयेत् ।३९।
त्रिपाद सप्तहस्तं च चतुःशृंग द्विशीर्षकम् ।
मधुपिंग त्रिनयनं सकपर्देन्दुशेखरम् ।४०।
रक्तं रक्ताम्बरालेप माल्यभूषणभूषितम् ।
सर्वलक्षणसपन्न सोपवीतं त्रिमेखलम् ।४१।
शक्तिमन्त भ्रुक्स्रुवौ च दधानं दक्षिणे करे ।
तोमरे वालवृंतं च घृतपात्र तथेतरैः ।४२।

वागीश्वरों के गर्भ में उत्पन्न अग्नि को विधिवत् संस्कृत कर यज्ञ करे और अग्नि का आधान करके परिधियों को धारण कर ।३६। दो-दो पात्रों को रखकर शिव का पूजन करे और प्रोक्षणी पात्र को अथवा अन्य पात्रों को शुद्ध करे ।३७।फिर जलपूर्ण पात्र ईशान दिशा में रखे तथा घृत संस्कार तक स्रुवे का शोधन करे ।३८। फिर गर्भाधान, पुंसवन सीमन्तोन्नयन करके अग्नि उत्पन्न करे ।३९। जिस अग्नि के तीन चरण,सात हाथ चार सींग, दो शीश तीन नेत्र, जटाजूट, मस्तक पर चन्द्रमा ।४०। लाल वस्त्र, माला धारण किये, यज्ञोपवीत और मेखला युक्त ।४१। स्रुक और स्रुवे को दाहिने हाथ में लिए तथा तोमर, पंखा और घृत पात्र वाम हाथ में धारण किये ।४२।

जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत् ।
नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम् ।४३।
शिवाग्निरुचिनामास्य कृत्वाहुति पुरः सरम् ।
पित्रोर्विसजनं कृत्वा चौलोपनयनादिकम् ।४४।
आप्तोर्यामावसानांतं कृत्वा संस्कारमस्य तु ।
आज्यधारादिहोमं च कृत्वा स्विष्टकृत ततः ।४५।
रमित्तनेन बीजेन परिषिंचेत्ततः परम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवेशानां लोकेशानां तथैव च ।४६।
तदस्त्राणां च परितः कृत्वा पूजां यथाक्रमम् ।
धूपदीपादिसिद्ध्यर्थं वह्निमुद्धृत्य कृत्यवित् ।४७।

साधयित्वाज्यपूर्वाणि द्रव्याणि पुनरेव च।
कल्पयित्वाऽऽसनं वह्नौ तत्रावाह्य यथापुरा।४८।
सपूज्य देव देवीं च ततः पूर्णान्तमाचरेत्।
अथवा स्वाश्रमोक्तं तु वह्निकर्म शिवार्पणम्।४९।

तथा अन्य पदर्थ धारण किये, अग्नि के जात-कर्म में ध्यान करे तथा नाल को छेदकर सूतक में शुद्ध हो।४३। रुचि नाम की शिवाग्नि को आहुति से शोधकर माता-पिता को विदा करे और चोल तथा उपनयन संस्कार आदि करे।४४। आप्तोयमि तक संस्कार करके स्विष्टकृत मन्त्रों से हवन करके।४५। चार बीज से संस्कार कर सिंचन करे तथा ब्रह्मा, विष्णु शिव के ईश्वर और लोकेश्वर।४६। तथा उनके अस्त्रों का यथाक्रम पूजन कर,धूपादि की सिद्धि के लिए कृत्यज्ञाता अग्नि का उद्धार करे।४७। और घृत के सहित सब पात्रों को शोध कर अग्नि में आसन की कल्पना कर पहिले के समान आह्वान करे।४८। शिव-शिवा का पूजन कर पूर्णान्त कार्य करे अथवा अग्नि कर्म को शिवार्पण करे।४९।

बुद्ध्वा शिवाश्रमी कुर्यान्न च तत्रापरो विधिः।
शिवाग्नेर्भस्भ सग्राह्यमग्निहोत्रोद्भव तु वा।५०।
वैवाहाग्निभवं वापि पक्व शुचि सुगन्धि च।
कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीत गगने पतत्।५१।
न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गधं न शोषितम्।
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि।५२।
पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमत्रतः।
अपक्वमतिपक्व च सत्यथ्य भसितं सितम्।५३।
आदाय वा समालोड्य भस्माधारे विनिःक्षिपेत।
तैजस दारव वापि मृन्मय शैलमेव च।५४।
अन्यद्वा शोभन शुद्धं भस्माधार प्रकल्पयेत्।
समे देशे शुद्धे धनवद्भस्म निःक्षिपेत्।५५।

न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचितले क्षिपेत् ।
न संस्पृशेच्च नीचांगैर्नोपेक्षेत न लङ्घयेत् ।५६

शिवभक्त यह सब जानकर करे, अग्निहोत्र की शिवाग्नि से उत्पन्न भस्म ग्रहण करे ।५०। वैवाहिक अग्नि की भस्म भी श्रेष्ठ है, कपिला गऊ का गोबर जो पृथिवीमें गिरने से पूर्व ही हाथ में ले लिया जाय, वह श्रेष्ठ है ।५१। वह गोबर बहुत पतला, दुर्गन्धयुक्त या बहुत सूखा न हो, पृथिवी में गिरे हुए गोबरको बीच से ग्रहण करे ।५२। उस गोबरकी पिंडी बनाकर मूल मन्त्र से शिवाग्निमें डाल दे, न बहुत पके, न कच्चा रहे, उसके श्वेत हो जाने पर ।५३। पवित्र सुगन्धियुक्त ग्रहण कर वस्त्र में तोड़कर भस्मा-धार में रखे, उस भस्म को मैत्रादि से युक्त पात्र में रखे तथा चाँदी आदि धातु या मिट्टी, पत्थर, काठ ।५४। अथवा किसी अन्य प्रकार के पात्र में धन के समान पवित्र स्थान में रखे ।५५। यदि कहीं जाय तो स्वयम् अथवा अनुचर के साथ भस्म लेकर चले, अपवित्र हाथ से न छूवे ।५६।

तस्माद्भासितमादाय विनियुञ्जीत मन्त्रतः ।
कालेषूक्तेष नान्यत्र नायोग्येभ्यः प्रदापयेत् ।५७
भस्मसंग्रहण कुर्याद्देवेऽनुद्वासिते सति ।
उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते ।५८
अग्निकार्ये कृते पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ।
स्वसूत्रोक्तप्रकाराद्वा बलिकर्म समाचरेत् ।५९
अथ विद्यासनं न्यस्य सुप्रलिप्ते तु मण्डले ।
विद्याकोशं प्रतिष्ठाप्य यजेत्पुष्पादिभिः क्रमात् ।६०
विद्यायाः पुरतः कृत्वा गुरोरपि च मण्डलम् ।
तत्रासनवरं कृत्वा पुष्पाद्यैर्गुरुमर्चयेत् ।६१
ततोऽनुपूजयेत्पूज्यान् भोजयेच्च बुभुक्षितान् ।
ततः स्वयं च भुंजीत शुद्धमन्नं यथासुखम् ।६२
निवेदितं च वा देवे तच्छेषं चात्मशुद्धये ।
श्रद्दधानो न लोभेन चण्डाय च समर्पितम् ।६३

फिर उस अनुचर के हाथ से भस्म लेकर मंत्रयुक्त करे और अयोग्य को न दे।५७। देव को विदा करके भस्म संग्रह करे उसके विसर्जन करने से चड भस्म होती है।५८। शिवशास्त्रोक्त विधि से अग्नि-कार्य के पश्चात् बलि-कर्म करे।५९।फिर विद्यासनसे न्यास करके मंडल को लोप करे और शिवकोश प्रतिष्ठापित कर पुष्प आदि से अर्चन करे।६०।गुरु को भी उसी प्रकार पुष्पादि से अनेक प्रकार से पूजे।६१।फिर पूजनीयों का पूजन करे, भूखों को भोजन करावे और फिर शुद्ध अन्न का भोजन स्वयं करे।६२। सब कार्य आत्मशुद्धि के लिए श्रद्धापूर्वक करे।६३।

गन्धमाल्यादि यच्चान्यत्तत्राप्येष समो विधिः।
न तु तत्र शिवोऽस्मीति बुद्धि कुर्याद्विचक्षणः।३४
भुक्त्वाचम्य शिवं ध्यात्वा हृदये मूलमुच्चरेत्।
कालशेष नयेद्योग्यैः शिवशास्त्रकथादिभिः।६५
रात्रौ व्यतीते पूर्वांश कृत्वा पूजां मनोहराम्।
शिवयोः शयनं त्वेकं कल्पयेदतिशोभनम्।६६
भक्ष्यभोज्यांबरालेपपुष्पमालादिकं तथा।
मनसा कर्मणा वापि कृत्वा सर्वं मनोहरम्।६७
ततो देवस्य देव्याश्च पादमूले शुचिः स्वपेत्।
गृहस्थो भार्यया सार्द्धं तदन्येऽपि तु केवलाः।६८
प्रत्यूषसमयं बुद्ध्वा मात्रामाद्यामुदीरयेत्।
प्रणस्य मनसा देवं सांब सगणमव्ययम्।६९
देशकालोचितं कृत्वा शौचाद्यमपि शक्तितः।
शखादिनिनर्ददिर्व्वर्देव देवीं च बोधयेत्।७०
ततस्तत्सयोन्निद्रैः पुष्पैरतिसुगंधिभिः।
निर्वर्त्य शिवयोः पूजां प्रारभेत पुरोदितम्।७१

गन्ध, माला आदि अर्पण करे तथा सभी कार्यो में अपने को शिव मानकर।६४। भोजन कर आचमन करे और शिवजी का ध्यान कर हृदय में मूल मंत्र जप कर शिवशास्त्र कहता, सुनता समय बितावे।६५।

रात्रि व्यतीत होने पर पूर्वाशमें पूजन कर शिव-शिवा के शयन की कल्पना करे।६६।भक्ष्य भोज्य,आलेपन,गंध,मालादि मन सेश्रेष्ठ ले।६७।फिर पवित्र होकर शिव-शिवा के चरणों की ओर सोवे, गृहस्थ हो तो पत्नी को भी वही शयन करावे।६८।प्रातःकाल का आभास होने पर आदि-मंत्र उच्चारण कर देव-देवी को प्रणाम करे ।६९।ओर शौचादि नित्य कर्म से निवृत्त होकर देव-देवी को जगावे ।७०। फिर प्रफुल्लित श्रेष्ठ पुष्पों से पूजन कर पूर्वोक्त वधान करे ।७१।

।। योग-मार्ग और उसके विघ्न ।।

ज्ञाने क्रियायां चर्याया सारमुद्धृत्य संग्रहात्।
उक्तं भगवता सर्वं श्रुतं श्रुतिमं मया ।१
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योग परमदुर्लभम ।
साधिकार च सांग च सविधि सप्रयोजनन् ।२
यद्यस्ति मरणं पूर्वं योगाद्यनुपर्दतः ।
सद्यः साधयितुं शक्यं येन स्यान्नात्महा नर।३
तच्च तत्कारण चैव तत्कालकरणानि च ।
तद्भेतारतम्यं च वक्तुमर्हसि तत्वतः ।४
स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण सर्वप्रश्नार्थवेदिना ।
ततः क्रमेण तत्सर्वं वक्ष्ये श्रृणु समाहितः ।५
निरुद्धवृत्यतरस्य शिवे चित्तस्य निश्चला ।
या वृत्तिः सा समासेन योद्वः स खल पंचधा।६
मंत्रयोगः स्पर्शयोगो भावतोगस्यथापरः ।
अभावयोगः सर्वेभ्यो महायोगः परो मतः ।७

श्रीकृष्ण ने कहा—भगवन् ! ज्ञान, क्रिया और अर्चना का जो वेदानुकूल सारांश आपने सद्-ग्रन्थों से लेकर मुझे बतलाया, उसे मैंने समझ लिया।१।अब आप उस सांग-योग के विषय में विधि सहित सुनाने की कृपा करें जो परम दुर्लभ है।२। जो योगाभ्यास के त्याग द्वारा विधिपूर्वक मृत्यु होती है, उसी से योग साधन भी सामर्थ्यपूर्वक होता है । इस प्रकार

मनुष्य आत्म-घाती नहीं माना जाता।३।इसलिए आप कृपा करके उस योग का समय और विधि विवरण सहित मुझे सुनावेंगे।४।उपमन्युजी बोले—हे कृष्ण ! आप इन सब प्रश्नों के रहस्य को समझने वाले है और आपका यह प्रश्न परमोपयोगी है अब सावधान होकर उसके विषय में सुनो।५।श्री शिवजी में अपने अन्तःकरण की समस्त वृत्तियों को निश्चल रूप से लगा देने का नाम ही योग है और वह पाँच प्रकार का होता है-मन्त्रयोग,स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग।६-७।

मन्त्राभ्यासवशेनैव मन्त्रावाच्यार्थगोचारः ।
अव्याक्षेपा मनोवृत्तिर्मंत्रयोगः उदाहृतः ।८
प्राणायाममुखा सैव स्पर्शयोगोऽभिधीयते ।
स मन्त्रस्पर्शनिर्मुक्तो भावयोगः प्रकीर्तितः ।९
विलीनावयव श्चिव रूपं सभाव्यते यतः ।
अभावयोगः संप्रोक्तोऽनाभासाद्वस्तुनः सतः ।१०
शिवस्वभाव एवैकश्चिंत्यते निरुपाधिकः ।
यथा शवमनोवृत्तिर्महायोग इहोच्यते ।११
दृष्टे तथानुश्रविके विरक्त विषये मनः ।
यस्य तस्याधिकारोऽस्ति योगे नान्यस्य कस्यचित् ।१२
विषदद्वयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च ।
दर्शनादेव सततं विरक्तं जायते मनः ।१३
अष्टांगो वा षडंगोवा सर्वयोगः समासतनम।
यमश्च नियमश्चैव स्वस्तिकाद्य तथानम् ।१४
प्राणायामः प्रयाहारो धारणाध्यानमेव च ।
समाधिरिति योगांगान्यष्टावुक्तानि सूरिभिः ।१५

मन्त्रों के अभ्यास द्वारा जब मनुष्य की मनोवृत्ति वाचार्थ के गोचर टिक जाती है तो वह 'मन्त्रयोग' कहा जाता है।८। जब इसी क्रिया को प्राणायाम के साथ किया जाता है तब उसे 'स्पर्शयोग' कहते है और यदि मन्त्र-स्पर्श से रहित किया जाय तो वह 'भावयोग' हो जाता है।

और जब इस अभ्यासमें समस्त विश्व तिरोहित हो जाता है तो उसका नाम 'अभावयोग' होता है। उसमें आस-पास की वस्तु का आभास भी नहीं रहता।९-१०।जब सब उपाधियों को त्याग कर एक मात्र शिव-स्वरूप का ही ध्यान किया जाता है तो उसे 'महायोग' कहा गया है।११।देखे जाने और सुने जाने वाले कामनायुक्त विषयों से जिसका मन पूर्णतः विरक्त है वही योग का अधिकारी होता है।१२।जब मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों के सुखों को नाशवान समझ लेता है तो उसका मन शीघ्र विरक्त हो जाता है।१३। योग के आठ और छै अङ्ग बतलाये गये हैं। आठ इस प्रकार है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।१४-१५।

आसमं प्राणसंरोधः प्रत्याहारोथ धारणा।
ध्यानं समाधिर्योगस्य षडंगानि समासतः।१६
पृथग्लक्षणमेतेषां शिवशास्त्रे समीरितम्।
शिवागमेषु चान्येष विशेषात्कामिकादिषु।१७
योगशास्त्रेष्वपि तथा पुराणेष्वपि केषु च।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः।
यम इत्युच्यते सद्भिः पंचावयवयोर्गतः।१८
शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपः प्रणिधिरेव च।
इति पचप्रभेदः स्यान्नियमः स्वांशभेदतः।१९
स्वस्तिकं पद्ममध्यर्नेदुः वीरं योगं प्रसाधितम्।
पर्यंकं च यथेष्टं च प्रोक्तमासननष्टधा।२०
प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यामो निरोधनम्।
तद्रेचकं पूरक च कुंभकं च त्रिधोच्यते।२१

जो छै अङ्ग बतलाते हैं—वे आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को ही कहते हैं।१६। शैव शास्त्रों में इनके लक्षण विभिन्न बतलाये हैं कुछ ग्रन्थों में कामिकादि कर्मों का वर्णन किया गया है। अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच का नाम 'यम' कहा गया है। शौच, तुष्टि, जप, तप, ईश्वर प्राणिधान का नाम योग शास्त्र और पुराणों

में नियम बतलाया गया है।१७-१९। आसनों के आठ भेद स्वस्तिक, पद्म, अर्धेन्दु,वीरासन योग,प्रसाधित, पर्यङ्क ओर यथेष्ट हैं। प्राणायात का आशय है अपने श्वांस-प्रश्वांस की गति का निरोध करना-वह पूरक, रेचक और कुम्भक क्रिया के रूप में तीन प्रकार का होता हैं।२०-२१।

नासिकापुटमंगुल्या पीड्यैकमपरेण तु ।
औदर रेचयेद्वायु तथाय रेचकः स्मृतः ।२२
वाह्येन मरुता देहं दृतिवत्परिपूरयेत् ।
नास पुटेनापरेण पूरणात्पूरकं मतम् ।२३
न मुंचति न गृह्णाति वायुमंतर्बहिः स्थितम् ।
सपूर्ण कुमवत्तिष्ठेदचलः स तु कुंभकः ।२४
रेचकाद्यं त्रयमिदं न द्रुतं न विलम्बितम् ।
तद्यतः क्रमयोगेन त्वभ्यसेद्योगसाधकः ।२५
रेचकादिषु योऽभ्यासो नाडीशोधनपूर्वकः ।
स्वे छोत्क्रमणपर्यंतः प्रोक्तो योगानुशासने ।२६
कन्यादिक्रममशात्प्राणायामनिरोधनम् ।
तच्चतुर्द्धोपदिष्ट स्यान्मात्रागुणाविभागतः ।२७
कन्यकस्तु चतुर्द्धा स्यात्स च द्वादशमात्रकः ।
मध्यमस्तु द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रकः ।२८

प्राणायाम के लिए पहले बाँये नासिका पुट को बन्द करके दाहिने से वायु को बाहर निकालना रेचक कहा जाता है और फिर दूसरे से श्वास को भीतर खींचना पूरक कहा जाता है।२२-२३। जब बाहर और भीतर की वायु को जहाँ का तहाँ रोक दिया जाता है उसको कुम्भक कहा जाता है।२४। यह अभ्यास करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिए श्वाँस को निकालने, खीचने और रोकने में क्रमबद्ध रूप से काम करना चाहिए।२५ योग-शास्त्र में इसे नाड़ी शोधन करने वाला कहा है और शक्ति तथा रुचि के अनुसार ही करना उचित बताया है।२६।इसका अभ्यास मात्रा के अनुसार क्रमशः बढ़ाकर करना चाहिए, इसके चार स्तर रखे गये हैं।२७। इस क्रम में पहला दर्जा बारह मात्रा का होता है औप दूसरा चौबीस मात्रा का।२८।

उत्तमस्तु त्रिरुद्घातः षड्विंशन्मात्रकः परः ।
स्वेदकंपादिजनकः प्राणायामस्तदुत्तरः ।२९
आनंदोद्भवरोमांचनेत्राश्रूणां विमोचनम् ।
जल्पभ्रमणमूर्छाद्यं जायते योगिनः परम् ।३०
जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलंबितम् ।
अंगुलीस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रेति प्रकीर्तिता ।३१
मात्रा क्रमेण विज्ञेयाश्चोद्घातक्रमयोगतः ।
नाड़ीविशुद्धिपूर्वं तु प्राणायामं समाचरेत् ।३२
अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः ।
जपं ध्यानं विना गर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ।३३
अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः ।
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयमम् ।३४

तीसरा छब्बीस मात्रा का होता है जिसे उत्तम प्राणायाम कहा जाता है । चौथे प्राणायाम में स्वेद, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।२९। इससे योगाभ्यासी को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है । रोमांच,अश्रु प्रवाह,जल्प भ्रमण, मूर्छा आदि भी होने लगते हैं।३०।प्राणयाम के लिये जो मात्रा बतलाई गई है उसका परिमाण एक चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उसी से है । चुटकी न अधिक शीघ्र बजाई जाय न बहुत मन्द गति से । ऐसी मात्रा के अनुसार प्राणायाम का समय बढ़ाना चाहिए।३१-३२।प्राणायाम के दो भेद और भी है अगर्भ और सगर्भ । जप सहित सगर्भ और इसके बिना अगर्भ कहा जाता है।३३।अगर्भ की अपेक्षा सगर्भ को सौ गुना प्रभावशाली बतालाया है, इससे योगी वैसा ही करते हैं ।३४।

प्राणस्य विजयादेव जीयंते देहवायवः ।
प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानो व्यान एव च ।३५
नागः कूर्मश्च कृकरो देवरो देवदत्तो धनंजयः ।
प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणोऽभिधीयते ।३६
अवाङ्नयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते ।
व्यानो व्यानशयत्यंगान्यशेषाणि विवर्धयन् ।३७

उद्वेजयति मर्माणीत्युदानो वायुरीरितः ।
सम यति सर्वांगं समानस्तेन गीयते ।३८
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्थितः ।
कृकर क्षवथौ ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।३९
न जहाति मृत वापि सर्वव्यापि धनंजयः ।
क्रमेणाभ्यस्यमानोऽयं प्राणायामः प्रमाणवान् ।४०
निर्दहत्यखिल दोष कर्तुर्देहं च रक्षति ।
प्राणे तु विजते सम्यक् तच्चिह्नान्युपलक्षयेत् ।४१
विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते ।
बहुभोजनसामर्थ्यं चिरादुच्छ्वासनं तथा ।४२

प्राणायाम में सफल होकर ही शरीरस्थ इस प्रकार की निम्न प्राण-वायुओं को जीता जाता है-प्राण, अपान समान, उदान व्यान-नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय । प्रयाण करने के कारण ही प्राण वायु का नाम प्राण है।३५-३६। भोजनके रूपमें ग्रहण किये आहार को जो नीचे ले जाता है उसे अपान कहते हैं । व्यान का कार्य शरीर के समस्त अंगों में व्याप्त होना है।३७। शरीरांगों को उद्वेजित करने वाले वायु को उदान तथा सब अंगों में समभाव रखने वाले को समान कहते हैं। मुख से जँभाई आदि निकालने वाला वायु नाग,नेत्रों के उन्मीलन वाला कूर्म,खाँसी आदि वाला वायु देवदत्त कहा जाता है।३८-३९।धनञ्जय का कार्य समस्त अंगों का पोषण करना है, यह मृतकावस्था में भी शरीर का त्याग नहीं करता। इस तरह विधिपूर्वक प्रायायाम के अभ्यास से सम्पूर्ण शारीरिक दोष नष्ट हो जाते हैं और देह की सुरक्षा होती है । इसके लिए सावधानी के साथ शरीर में उत्पन्न चिह्नों को देख लें ।४०-४१। प्राणायाम की सफलता से विष्ठा, मूत्र और श्लेष्मा का परिमाण कम हो जाता है, अधिक भोजन पचाने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है और श्वाँसों की संख्या घट जाती है ।४२।

लघुत्वं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् ।
सर्वरोगक्षयश्चैव बलं तेजः सुरूपता ।४३

धृतिर्मेधा युवत्वं च स्थिरता च प्रसन्नता ।
तपांसि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः ।४४
प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि यथास्व विषयेष्विह ।५५
आहृत्य यन्निगृह्णाति स प्रत्याहारउच्यते ।
नमःपूर्वाणीन्द्रियाणि स्वर्ग नरकमेव च ।४६
निगृहीतानिसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ।
तस्मात्सुखार्थी मातिमान्ज्ञानवराग्यमास्थित ।४७
इन्द्रियाश्वान्निगृह्याशु स्वात्मनात्मानमुद्धरेत् ।
धारणा नाम चित्तस्य स्थानबन्ध समासतः ।४८
स्थान च शिव एवैकोमयन्यद्दोषत्रयं यतः ।
काल कं चावधीकृत्य स्थानेऽवस्थापितं मनः ।४९

शरीर में हल्कापन, शीघ्रगामिता, उत्साह, स्वर-सौष्ठव, सब तरह के रोगों का नाश, बल, तेज, सुन्दरता, धारणाशक्ति, बुद्धिमत्ता, तरुणाई, स्थिरता, प्रसन्नता, तप, पापों का क्षय आदि गुण बढ़ते हैं। यज्ञ, जप, दान व्रत आदि का महत्व प्राणायाम की अपेक्षा अत्यन्त न्यून हैं ।४३-४५। प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रियों को उनके रुचिकारक विषयों से हटाकर आत्म-ध्यान में लगाना। मन और इन्द्रियाँ ही स्वच्छन्द होने पर नर्कका कारण बनती हैं और सयमित की हुई स्वर्गदायक बन जाती हैं ।४६-४७। इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में रखकर ही आत्म कल्याण सम्भव है। धारणा का आशय हैं चित्त को एक स्थान पर भलीं प्रकार स्थित कर लेना। 'स्थान' का आशय 'शिव' के अतिरिक्त और किसी से नहीं हो सकता। अन्यलक्ष्य दोष युक्त होते हैं। शिव के लक्ष्य पर ही समय की अवधि करके चित्तको ठहराना चाहिए ।४८-४९।

न तु प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणा स्यान्न चान्यथा ।
मनसः प्रथमं स्थैर्य धारणातः प्रजायते ।५०
तस्माद्धीरं मनः कुर्याद्धारणाभ्यासयोगतः ।
ध्यै चिंताया स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहु ।५१

अव्याक्षिप्तेन मनसां ध्यानं नाम तदुच्यते ।
ध्येयावस्थितचित्तस्त सदृशः प्रत्ययश्च यः ।५२
प्र यवान्तनिर्मुक्तप्रवाहो ध्यानमुच्यते ।
सर्व मन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकर ।५३
परो ध्येयोऽधिदेवेशः साप्ताऽथर्वणी श्रुतिः ।
तथा शिवा परा ध्येया पर्वभूतगतौ शिवो ।
तौ श्रुतौ स्मृतशास्त्रेभ्यः सर्वदोदितौ ।५४
सर्वज्ञौ सतत येयौ नानारूपविभेदतः ।५५

धारणा करते समय अपने मन को लक्ष्य में लगाये रहे, उससे च्युत कदापि न होने दें। इसके विना चित्त की स्थिरता हो सकना असम्भव है ।५०।इसलिये धारणा द्वारा मन को रोकना आवश्यक है। "ध्यै चिन्ता-याम" धातु से 'ध्यान' शब्द बनता है, जिसका आशय निरन्तर शिव का चिन्तन करते रहना है। जब वृत्ति शिव में एकाकार हो जाय तब उसे ध्यान समझना चाहिए। योगसूत्र के अनुसार चित्त के प्रत्ययान्तर प्रवाह का नाम ही ध्यान है। इसलिए समस्त लक्ष्यों का त्याग कर एक मात्र शिव का ही ध्यान करना चाहिये।५१-५३।वेद में भी 'पर शिवोध्येयः' का उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का कारण स्वरूप शिव का ध्यान करना भी आवश्यक है।५४।श्रुति,स्मृति और समस्त शास्त्रों में शिव और शिवा को ही नाना रूप और भेदों से ध्यान करने योग्य बतलाया है।५५।

विमुक्तिः प्रत्ययः पूर्व प्रत्ययश्चाणिमादिकम्।
इत्यतद्द्विविध ज्ञेय ध्यानस्यास्य प्रजोजनम्।५६
ध्याता ध्यानं तथा ध्येय यच्च ध्यानप्रयजोनम् ।
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योग युञ्जीत योगवित्।५७
ज्ञानवैराग संपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ।
निर्ममश्च सदोत्साही ध्यानतत्थं पुरुषःस्मृत ।५८
जपाच्छ्रांत पुनर्ध्यायेद्धयानाच्छांतः पुनर्जपेत्।
जपध्यानाभियूक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिध्यति।५९

धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणम् ।
ध्यानद्वादशकं तावत्समाधिरभिधीयते ।६०
समाधिर्नाम योगांगमन्तिमं परिकीर्तितम् ।
समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्त्तते ।६१
यदर्थमात्रानिर्भासस्तिमितोदधिवत्स्थिरम् ।
स्वरूपशून्यवद्भानं समाधिरभिधीयते ।६२

ध्यान के दो उद्देश्य बतलाये गये हैं। प्रथम आत्मा की मुक्ति और दूसरा अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति। योगी का कर्तव्य है कि वह ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान के प्रयोजन को समझ कर ध्यान-योग को करे ।५६-५७। ध्याता वह है जो ज्ञान-वैराग्य से युक्त, ममता रहित और सदैव उत्साहयुक्त अवस्था में रहे।५८। जब जप करते हुए थक जाय तो ध्यान करे और ध्यान से थक जाय तो जप करे, यही योग में शीघ्र सफल होने का मार्ग है।५९। बारह प्राणायाम करने को एक धारणा और बारह बार धारण करने पर एक ध्यान समझना चाहिये। बारह ध्यान होने पर समाधि हो जाती है जो योग का अन्तिम अङ्ग है और जिससे साधक प्रज्ञा-लोक को प्राप्त होता है ।६०-६१। जिस अवस्था में निश्चय सागर की तरह केवल अर्थ का ही प्रकाश हो और स्वरूप का शून्य की तरह भान हो, वह समाधि कही जाती है ।६२।

ध्येये मनः समावेश्य पश्येदपि च सुस्थिरम् ।
निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रगीयते ।६३
न शृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति ।
न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मन ।६४
न चाभिमन्यते किंचिद्बध्यते न च काष्ठवत् ।
एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते ।६५
यथा दीपो निवातस्थः स्पंदते न कदाचन ।
तथा समाधिष्ठोऽपि तस्मान्न विचलेत्सुधीः ।६६
एवमभ्यसतश्चारं योगिनो योगमुत्तमम् ।
तदंतरावा नश्यंति विघ्नाः सर्वे शनैः शनैः ।६७

अपने मन को ध्येय में लगाकर सुस्थिर होकर देखता रहने से योगी निर्वाण -अग्नि के समान सो जाता है।६३।समाधि अवस्था का तात्पर्य यह है कि साधक न सुने, न सूँघे, न बोले, न देखे, न स्पर्श का अनुभव करे न मन में कोई संकल्प उठे। इसमें वह कुछ भी न जानता हुआ काठ की तरह अचल हो जाता है और अपनी आत्मा को पूर्णतः शिव में लीन कर देता है।६४-६५। जैसे वायु रहित स्थान में दीपक जरा भी स्पन्दित नहीं होता उसी तरह समाधि-अवस्था में योगी तनिक भी चलायमान नहीं होता।६६। इस प्रकार अभ्यास द्वारा योगी श्रेष्ठ योग को प्राप्त होता है और तब उसके भीतर के समस्त विघ्न स्वयम् ही धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।६७।

।। योगमार्ग के अन्य विघ्न ।।

आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमाद स्थानसंशय ।
अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रांतिदर्शनम् ।१
दुःखानि दौर्मनस्यं च विषयेषु च लोलता ।
दशते युंजतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः ।२
आलस्यमलसत्व तु योगिनां देहचेतसौः ।
धातुवैषम्यजा दोषा व्याधय कर्मदोषजा ।३
प्रमादो नाम योगस्य साधना नाम भावना ।
एद वेत्युभयाक्रांत विज्ञान स्थानसंशय ।४
अप्रतिष्ठा हि मनसस्त्वनवस्थितिरुच्यते ।
अश्रद्धा भावरहिता वृत्तिर्वै योगवत्मनि ।५
विपर्यस्ता मतिर्या सा भ्रांतिरित्यभिधियते ।
दुःखमज्ञानज पुंसां चित्तस्याघ्यात्मिक विदुः।६
आधिभौतिकमगोत्थं यच्च दुःखं पुराकृते ।
आधिदेविकमाख्यातमशन्तविषादिकम् ।७

आलस, व्याधि स्थान के सम्बन्ध में संशय, चित्त की अस्थिरता अश्रद्धा की भावना भ्रांति दर्शन, दुःख मन में बुरे भाव उठना, विशयों में चंचलता—ये योग-मार्ग केदस विघ्न है।१-२।आलस्य और शिथिलता देह

और चित्त सम्बन्धी दोष हैं। व्याधि की उत्पत्ति धातुओं की विषमतातथा दूषित कर्मों से होती है। योग-साधना में भावना न होना प्रमाद कहा जाता है और ध्येय सम्बधी दुविधा का नाम 'संशय' होता है।३-४। तन की अस्थिरता को 'अनवस्थित' कहते हैं और योग के सम्बन्ध में सद्भाव न होना अश्रद्धा है। उल्टी वुद्धि से उत्पन्न अवस्था का नाम भ्रान्ति है और अज्ञान के कारण अध्यात्मिक दुःखों की उत्पत्ति होती है।५-६। जो दुःख पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं वे आधिभौतिक कहे जाते हैं और शस्त्र, विष आदि से उत्पन्न दुःख को आधिदैविक कहते हैं।७।

इच्छाविघातजं भोभं दौर्मनस्यं प्रचक्षते ।
द्विषयेषु विचित्रेषु विभ्रमस्तत्र लोलता ।८
शांतेष्वेषु विघ्नेषु योगांसक्तस्य योगिनः ।
उपसर्गाः प्रवतते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः ।९
प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः ।
उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धय ।१०
सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकुष्ट त्वनागते ।
प्रतिभा कथ्यते योऽर्थे प्रतिभासो यथातथम् ।११
श्रवण सर्वशब्दानां श्रवणे चाप्रयत्नतः ।
वार्ता वार्तासु विज्ञानं सर्वेषामेव देहिनाम् ।१२
दर्शनं नाम दिव्यानां दर्शनं चाप्रयत्नतः ।
तथास्वादश्च दिव्येषु पसेष्वास्वाद उच्यते ।१३
स्पर्शनाधिगमस्तद्वद्वेदना नाम विश्रुता ।
गन्धादीनां च दिव्यानामाब्रह्मभुवनाधिपाः ।१४

इच्छा की पूर्ति में व्याघात पड़ने से दुर्मनता उत्पन्न होती है और विभिन्न प्रकार के विषयों से चञ्चलता को विभ्रम कहा जाता है।८। योगमार्ग में संलग्न योगी के जब ये सब विघ्न शान्त हो जाते हैं तब सिद्धि की सूचना देने वाले दिव्य उपसर्ग अनुभव होने लगते हैं।९।ये उपसर्ग छः प्रकार के होते हैं-प्रतिमा, श्रवण, वार्ता, सब वस्तु का दर्शन, स्वाद और

वेदना । ये सब प्रकार के उपसर्ग योग से प्राप्त को शक्ति को नष्ट करने वाले होते हैं।१०। सूक्ष्म के व्यतीत हो जाने पर विप्रकृष्ट अवस्था का आगमन होता है तो उसे 'प्रतिभा' कहते हैं। इससे सब विषयों का अर्थ स्वयमेव प्रकट होने लगता है।११। सब तरह के शब्दों को सुनने लगना 'श्रवण' है और समस्त देह-धारियों की बातों का जान लेना 'वार्ता' है।१२।बिना प्रयत्न किये सब दृश्यों का नेत्रों के सम्मुख आते रहना 'दर्शन' है और दिव्य रसों का अनुभव होने लगना 'स्वाद' है।१३। सब प्रकार के स्पर्शों और गन्धों को जानने लगना 'वेदना' है।१४।

सतिष्टते च रत्नानि प्रयच्छंति बहुनि च ।
स्वछंदमधुरः वाणी विविधाऽस्यात्प्रवर्तते ।१५
अथ प्रयोगं योगस्य वक्ष्ये शृणु समाहित ।
शुभे काले शुभे देशे शिवक्षेत्रादिके पुनः ।
विजने जंतुरहिते निःशब्दे बाधवर्जिते ।१६
सुप्रलिप्ते स्थले सौम्ये गधधूपापिवासिते ।
मुक्तपुष्पसमाकीर्णे वितानादिविचित्रिते ।१७
कुशपुष्पसमित्तोयधलमूलसमन्विते ।
नाग्न्यभ्याशे जलाभ्याशे शुष्कपर्णचयेऽपिवा।१८
न दंशमशकाकीर्णे सर्पश्वापदसंकुले ।
न च दुष्टमृगाकीर्णे न भये दुर्जपावृते ।१९
श्मशाने चैत्यवल्मीके जीर्णागारे चतुष्पथे ।
नदीनदसमुद्राणां तीरे रथ्यांतरेऽपि वा ।२०
न जीर्णोद्यानगोष्टादौ नानिष्टे न च निन्दिते ।
नाजीर्णाम्लरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते ।२१
न छर्द्यामतिसारे वा नातिभुक्तौ श्रमान्विते ।
न चातिचिंताकुलितो न चातिक्षुत्पिपासित ।२२

ऐसे साधन को उच्च लोकों के अधिपति अनेक रत्न देते हैं और उनके मुख से भाँति-भाँति की श्रेष्ठ और मधुर वाणी बहिर्गत होने लगतीहै।१५।

इस प्रकार योगाभ्यास करने के लिये मनुष्य को सबसे पहले ऐसा स्थान ढ़ूढ़ना चाहिए जो शिवजीका तीर्थ हो और एकान्त,जीव-जन्तुओंके कोलाहल से अलग और बाधा रहित हो।१६। वह स्थान अच्छी तरह लिपा-पुता,गन्ध तथा धूप आदि से सुगन्धित तथा फूलों, बेलों आदि से आकर्षक हो ।१६। वहाँ कुश, पुष्प, जल, कन्द-मूल, फल अग्नि, जल की बाढ़ तथा शुष्क पत्तों से बचा हुआ मच्छर डाँस,हिंसक पशु के भय तथा अन्य जंगली पशुओं के उपद्रव से बचा हुआ हो, दुर्जनों के भय से मुक्त हो ।१८ अपना स्थान श्मशान चौराहा, सर्प का बिल, जीर्ण स्थान, प्राचीन मन्दिर. नदी, नद, समुद्र का किनारा अथवा किसी गली के निकटन रखे । इसी प्रकार पुराना बगीचा, गायों के गोष्ठ, अनिष्ट, निन्दित, अजीर्ण, अम्लरस की डकार, विष्ठा-मूत्र से अशुद्ध, जुकाम, खाँसी, अतिसार, अति भोजन श्रम से युक्त, चिन्ता व्याकुल भूख और प्यास से व्यक्ति अथवा गुरु के कार्य में व्यस्त व्यक्ति योगाभ्यास न करें।२०-२२।

नापि स्वगुरुकर्मादौ प्रसक्तो योगमाचरेत् ।
युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टश्च कर्मसु ।२३
युक्तनिद्रप्रबोधश्च सर्वायासनिर्वर्जितः ।
आसनं मृदुलं रम्यं विपुलं सुसमं शुचि ।२४
पद्मकस्वस्तिकादीनामभ्यतेदासनेषु च ।
अभिवंद्य स्वगुर्वतानभिवाद्याननुक्रमात् ।२५
ऋजुग्रीवशिरोवक्षा नातिष्ठेच्छिन्नलोचनः ।
किंचिदुन्न मितशिरा दंतैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ।२६
दंताग्रसंस्थितां जिह्वामचलां सन्निवेश्य च ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षांस्तथा प्रजनन पुनः ।२७
ऊर्वोपरि संस्थाप्य बाहु तिर्यगयत्नतः ।
दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यस्य वामतलोपरि ।२८
उन्नाम्य शनकैः पृष्ठमुरो विष्ठभ्य चाग्रतः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्व दिशश्चानवलोकयन् ।२९

योगी के लिए आवश्यक है कि वह अपना आहार-विहार, सोना, जागना तथा अन्य सभी कर्म युक्त रूप में करे। समान और पवित्र भूभाग पर कोमल वस्त्र धारण करते हुए, बिना अधिक श्रम किये सुन्दर, शुभ आसन पर पद्म, स्वास्तिक आदि योगासनों का अभ्यास करे। उस अवसर पर अपने गुरु आदि का क्रम से अभिवादन करे।२३-२५। गर्दन तथा सिर को सीधा रखे ओठ नेत्र को ठीक स्थिति में रखते हुए, दाँतों को दाँतों से न छूते हुए, दाँतों के अग्रभाग में जिह्वा को स्थिर रखते हुए, पार्ष्णि से अण्डकोषादि की रक्षा करते हुए, जाँघ पर भुजा को तिरछा रखकर, दाहिने हाथ का पिछला हिस्सा वाम तल पर रखकर, पीठ को थोड़ा उठाकरा छाती को भी कुछ बाहर की तरफ निकाल कर किसी तरह न देखते हुए केवल अपनी नासिका के अग्रभाग को देखे।२६-२९।

सभृतप्राथसंचारः पाषाण इव निश्चलः ।
स्वदेहायतनस्यांतर्विचिंत्य शिवमंबया ।३०
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत् ।
मूले नासाग्रतो नाभौ कंठे वा तालुरंध्रयोः ।३१
भ्रूमध्ये द्वारदेशे वा ललाटे मूर्ध्नि वा स्मरेत् ।
परिकल्प्य यथान्याय शिवयोः परमासनम् ।३२
तत्र सावरणं वापि निवावरणमेव वा ।
दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे शिवं स्मरेत् ।
भ्रुवोरंतरतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम् ।३४
भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे ।
विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके ।३५
षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि वै।
पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः ।३६
ककारादिटकारांता वर्णाः पर्णान्यनुक्रमात् ।
भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद्धृदयान्तरे ।३७

ऐसी स्थिति में साँस को रोककर बिल्कुल न हिलते डुलते हुए अपने देह के भीतर पार्वती सहित शिव का ध्यान करे।३०।हृदय कमल के उपर ध्यान-यज्ञ के द्वारा शिवजी की पूजा करे । नासिका के अग्रभाग से नाभि, कण्ठ व तालु के छेद में, भौंहों के बीच मूसलाधार ललाट में व शिर में मूल-मन्त्र द्वारा भगवान् शिव का ध्यान करे । वहाँ शिव और पार्वती के लिये परमासन की कल्पना करके उसमें सावरण अथवा निरावरण दो, सोलह या बारह दलों की कल्पना करे ।३१-३३। उन बारह छँ या चार शिव का स्मरण करे । भौं के स्थान में दो दल के कमल की कल्पना करे जो बिजली के समान प्रकाशमान है । भौं के बीच वाले कमल के दक्षिण-उत्तर की ओर बिजली के समान वर्ण वाले पत्तों के सोलह अरों में ककार से लेकर टकार तक के अक्षरों की कल्पना करे और सूर्य के समान उस कमल में चारों और युक्त उन अक्षरों का हृदय के भीतर ध्यान करे ।३४ ३७।

गौक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्तायथाक्रमम् ।
अधो दलास्याम्बुजस्य एतस्य च दलानिषट्।३८
विधूमांगारवर्णस्य वर्णा बाद्याश्च लान्तिमा ।
मूलाधारारविन्दस्य हेमाभस्य यथाक्रमम् ।
वकारादिसकारान्ता वर्था: पर्णमया.स्थिता ।३९
एतेष्वथारब्रिन्देषु यत्रैवाभिरत मन ।
तत्रैव दैवं देवीं च चिंतयेद्धीरया धिया ।४०
अंगुष्ठमात्रममल दीप्यमानं समंतत ।
शुद्धदीपशिखाकरं स्वशक्त्या पूणमण्डितम्।४१
इन्दुदेखासमाकारं ताराखूपमथापि वा ।
वीवारशूकमदृशं बिसासूत्राभमेव वा ।४२

उन अक्षरों को कमल के पत्तों के रूपमें कल्पित करना चाहिए । नाभि ऊपर की ओर दूध के समान उज्ज्वल वर्ण के डकार से फकार तक के अक्षरों को ययाक्रम रखे । नीचे की ओर कमल में छः पत्ते कल्पित करके उनमें अङ्गार के से वर्ण वाले बकार से लकार तक के अक्षरों की

कल्पना करे। मूलाधार वाले कमल का वर्ण सुवर्ण की तरह है उसके पत्ते वकार से लेकर सकार तक के अक्षरों से युक्त हैं।३८-३९। इन कमलों में जहाँ मन रमण करे वहीं पर धीर बुद्धि से शिव तथा पार्वती का चिन्तन करे।४०।उस रूप की ऐसी कल्पना करे-वे अंगुष्ठमात्र दीप्तमान तथा निर्मल है, चारों ओर से शुद्ध दीपशिखा के समान अपनी शक्ति से पूर्णतः मण्डित।४१।वे चन्द्ररेखा के समान आकार वाले, तारा रूप नीवार शूक के समान अथवा कमल-नाल के समान हैं।४२।

कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम् ।
क्षित्यादितत्वविजयं ध्याता यद्यपि वाञ्छति।४३
तत्तातत्वाधिपामेव मूर्ति स्थूलां विचिंतयेत् ।
सदाशिवांता ब्रह्माद्या भवद्याश्चाष्ट मूर्तयः।४४
शिवस्य मूर्तयः स्थूलाः शिवशास्त्रे विनिश्चिता ।
घोरा मिश्राः प्रशान्ताश्च मूर्तयस्ता मुनीश्वरैः
फलाभिलाषसहितैश्चिन्त्यान्ताविशारदैः ।
घोराश्चेच्चिंतिताः कुर्युः पापरोगपरिक्षयम्।
चिरेण मिश्रे सौम्ये तु न सद्यो न चिरादपि।
सौम्ये मुक्तिर्विशेषेण शांतिः प्रज्ञा प्रसिद्धयति।४७
सिद्धयन्ति सिद्धयश्चात्र क्रमशो नात्र संशयः।४८

अथवा वे कदम्ब के गोले की तरह अथवा तुषार की कणिका की तरह हैं। उस समय पृथ्वी आदि पंच तत्वों में से जिस तत्व को विजत करने की साधक इच्छा करे उसी तत्व के अधिपति की मूर्ति का चिन्तन करे। इससे लिए ब्रह्मा आदि से लेकर सदाशिव तक और भवादिक आठ मूर्तियाँ हैं शिव शास्त्रों के मतानुसार वे सब शिव की ही स्थूल मूर्तियां हैं। मनीषियों ने उनको तीन नामों की बतलाया है-घोर, मिश्रा और प्रशान्त।४३-४५।जो साधक फल की कामना सहित ध्यान करे तो उन्हें इनमूर्तियें चिन्तन करना चाहिये। घोर मूर्ति के ध्यान से पाप, रोग का क्षय होता है। सब सिद्धि देने वाली मिश्रा मूर्ति अधिक समय में सिद्धि प्रदान करना

है तथा प्रशान्त मूर्ति शीघ्र ही मनो-कामना पूर्ण करती है। विशेषत: मिश्रा मूर्ति का ध्यान करने से मुक्ति का लाभ होता है और प्रशान्त द्वारा बुद्धि को शान्ति मिलती है। इसमें कुछ भी संशय नहीं कि इनके द्वारा ये सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ४६-४८।

।। शिवध्यान-योग और उसका स्वरूप ।।

श्री कंठनाथं स्मरतां सद्यः सर्वार्थसिद्धयः ।
प्रसिद्धयन्तीतिमत्वैके त वै ध्यायंति योगिनः।१
स्थित्यर्थं मनसः केचित्स्थूलध्यानं प्रकुर्वते ।
स्थूले तु निश्चलं चेतो भवेत्सूक्ष्मे तु तत्स्यिरम् ।२
शिवे तु चिंतिते साक्षात्सर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धय।३
लक्षयेन्मनसः स्थैर्यं तत्तद्ध्यायेत्पुनः पुनः ।
ध्यानमादौ सविषय ततो निर्विषयं जगु ।४
तत्र निर्विषयं ध्यान नास्तीयेव सतां मतम् ।
बुद्धेहि सन्ततिः काचद्ध्यानमित्वभिधीयते ।५
तेन निर्विषया बुद्धिः केवलेह प्रवर्तते ।
तस्मात्सविषयं ध्यानं बालार्ककिरणाश्रयम् ।६
सूक्ष्माश्रयं निर्विषयं नापर परमार्थतः ।
यद्वा सविषयं ध्यान तत्साकारसमाश्रयम् ।७

उपमन्यु ने कहा—श्रीकण्ठनाथ के स्मरण करने से सब प्रकार की अभिलाषाएँ शीघ्र ही पूरी होती हैं, समस्त सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। अतः योगी उन्हीं का ध्यान करते हैं।१। अन्य लोगों की सम्मति है मन को स्थिर करने के लिये पहले स्थूल लक्ष्य का ध्यान करना चाहिए। उसके पश्चात् सूक्ष्म पर होना सहज होता है।२।इसके लिये शिव का चिन्तन करना सर्वश्रेष्ठ है, जिससे सिद्धियाँ स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए मन की स्थिरता के लिये आन्तरिक रुचि और भावपूर्वक शिव का चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। मन की स्थिरता की चेष्टा करते हुए पहले सगुण और फिर निर्गुण रूप से ध्यान करे।३-४। अनेक विद्वानों का मत है कि

निर्विषय निर्गुण) कोई ध्यान ही नहीं है यह मनुष्य की बुद्धि को कल्पना ही होती है।५।जो बुद्धि निर्विषय वाली होती है वही इस ओर प्रवृत्त होती हैं। इसके मुकाबले सविषय सगुण ध्यान सूर्य की किरणों के समान प्रत्यक्ष फलदायक है।६।निर्विषय सूक्ष्म आश्रय वाला होता है और सविषय साकार आश्रय युक्त है।७।

निराकारात्मसंवित्तिर्ध्यानं निर्विषयं मतम् ।
निर्बीजं च सबीजं च तदेव ध्यानमुच्यते ।८
निराकराश्रयत्वेन सकाराश्रयतस्तथा ।
तस्मात्सविषयं ध्यानमादौ कृत्वा सबीजकम्।९
अन्ते निर्विषयं कुर्यान्निर्बीज सर्वसिद्धये ।
प्राणायामेन सिध्यंति दिव्याः शांत्यादयः क्रमात् ।१०
शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च ततः परम् ।
शमः सर्वापदां चैव शांतिरित्यभिधीयते ।११
तमसोऽन्तर्बहिर्नाशः प्रशान्तिः परिगीयते ।
बहिरन्त प्रकाशो यो दीप्तिरित्यभिधीयते ।१२
स्वस्थता या तु बुद्धेःप्रसादः परिकातितः ।
कारणानि च सर्वाणि सबाह्याभ्यंतराणि च।१३
बुद्धेः प्रसादतः क्षिप्र प्रसन्नानि भवंत्युत ।
ध्याता ध्यान तथा ध्येयं यद्वा ध्यानप्रयोजनम् ।१४

निराकार आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही निर्विषय ध्यान कहा जाता है, वह दो प्रकार का होता है—एक निर्बीज, दूसरा सबीज ।८। ये निर्बीज और सबीज दोनों भेद निराकार तथा साकार के आश्रय भेद के कारण ही निश्चय किये गये हैं। इसलिए ये दोनों ही आवश्यक है और साधक पहिले सविषय(सबीज)ध्यान करके फिर निर्बीज का अभ्यास करे। इस विधि से उद्देश्य पूर्णतः सिद्ध हो जाता है। इसके लिये प्राणायाम के अभ्यास द्वारा शान्ति आदिक देवियों को प्राप्त करना उचित है।९-१०।इस शान्ति रूपी देवी के चार दर्जे हैं शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद।

सब आपत्तियों के शमन का नाम शान्ति है। भीतर तथा बाहर के अज्ञानान्धकार के मिटने का प्रशान्ति है। बाहर और भीतर प्रकाश हो जाने को दीप्ति कहा गया है।११-१२। बुद्धि स्थिर होकर स्वस्थ हो जाय वहां प्रसाद है। बुद्धि की ऐसी स्थिरता से ही बाहरी और भीतरी लक्ष्य प्राप्त होते है। ध्यान को करने के लिए पहले ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का उद्देश्य भी समझ लेना आवश्यक है।१३-१४।

एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समाचरेत् ।
ज्ञानवैराग्यसपन्नो नित्यमव्यग्रमानसः ।१५
श्रद्दधानः प्रसन्नात्मा ध्याता सद्भिरुदाहृत ।
ध्यै चितायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहु ।
योगाभ्यासस्यथाल्पोऽपि यथा पापं विनाशयेत् ।
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम् ।१७
अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्याननित्यभिधीयते ।१८
बुद्धिप्रवाहरूपस्य ध्यानस्यास्यवलंबनम् ।
ध्येतमित्युच्यते सद्भिस्तच्च सांव स्वयं शिव।१९
विमुक्तिप्रत्यय पूर्णमैश्वर्य चाणिमादिकम् ।
शिवध्यानस्य पूर्णस्य साक्षादुक्तं प्रयोजनम् ।२०
यस्मात्सौख्यं च मोक्ष च ध्यानादुभयमाप्नुयात् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य ध्यानयुक्तो भवेन्नर ।२१

ध्याता सत्पुरु ज्ञान वैराग्य से युक्त, व्यग्रता से शून्य तन वाले, श्रद्धायुक्त, प्रसन्न आत्मा कहे गये हैं।१५। ध्यान का शब्दार्थ "ध्यै चिन्तायाम" धातु के अनुसार किसी विषय का निरन्तर चिन्तन करते रहना उचित है। इस लिये साधक को सदैव शिव का चिन्तन करते रहना उचित है। जिस प्रकार थोड़ा-सा योगाभ्यास भी पापों को नष्ट कर देता है,इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक थोड़ी देर तक भी परमेश्वर का ध्यान करने से पाप दूर हो जाते हैं।१६-१७। मन की विक्षेप रहित अवस्था का नाम ध्यान कहा है। यह बुद्धि का प्रवाह रूपी ध्यान जिस अवलम्बन पर रहता है वही ध्येय कह

जाता है। ज्ञानियों के मतानुसार इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ अवलम्ब शिव और अम्बिका ही हैं।१८-१९। इस प्रकार शिव ध्यान के प्रयोजन ये हैं मुक्ति, प्रत्यययुक्त ऐश्वर्य और अणिमादि आठों सिद्धियाँ।२०। ध्यान से ही मनुष्य मोक्ष और साँसारिक सुख दोनों को प्राप्त कर सकता है, इससे सब उपायों की अपेक्षा ध्यान को ही अङ्गीकार करना चाहिये।२१।

नास्ति ध्यानं विना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिन।
ध्यानं ज्ञान च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः।२२
ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्जितम्।
योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिद्ध्यति।२३
प्रक्षीणाशेषपापानां ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः।
पापोपहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा।२४
यथा वह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्।
तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात्।२५
अत्यल्पोऽपि यथा दीपः सुमहन्नाशयत्तमः।
योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापविनाशयेत्।
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धा परमेश्वरम्।
यद्भवेत्सुमहच्छ्रेयस्तस्यांतो नैव विद्यते।२७
नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तप।
नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत्।२८

ध्यान ही ज्ञान का मुख्य साधन है और योग के बिना ध्यान सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए योग द्वारा ध्यान का प्राप्ति करना सर्वोपरि कर्तव्य है। जो ज्ञान और ध्यान दोनों को प्राप्त कर लेता है वह इस संसार चक्र से निश्चय ही मुक्त हो जाता है।२२-२३।जिनके पाप क्षीण हो जाते हैं उन्हीं की रुचि ज्ञान और ध्यान की ओर जाती है अन्यथा पापी लोगों को तो इस तरह की बातें भी अच्छी नही लगती।२४।जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि गीले सूखे सब पदार्थों को भस्म कर देती है उसी प्रकार ध्यान की अग्नि भी अच्छे बुरे सब तरह के कर्मों को शीघ्र ही नष्ट कर देती है।२५। जिस प्रकार

साधारण दीपक बहुत बड़े अन्धेरे को दूर कर देता है उसी प्रकार थोड़ा-सा योग साधन भी बड़े-बड़े पापों को दूर कर देता है।२६।श्रद्धापूर्वक परमेश्वर का थोड़ी देर भी ध्यान करने से अनन्त कल्याण की प्राप्ति होती है।२७।तीर्थ,तप यज्ञ आदि भी ध्यान की समानता नहीं कर सकते, इसलिये ध्यान करना ही परम कर्तव्य है ।२८।

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृन्मयान् ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ।२९
योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम् ।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ।३०
यथेहांतश्चरा नाज्ञः प्रिया स्युर्न बहिश्चरा ।
तथांतर्ध्याननिरताः प्रियाः शंभोर्न कर्मिणः ।३१
बहिष्करा यथा लोके नातीव फलभोगिन ।
दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः ।३२
यद्यतरा विपद्येत ज्ञानयोगार्थमुद्यतः ।
योगस्योद्योगमात्रेण रुद्रलोकं गमिष्याति ।३३
अनुभूय सुख तत्र स जातो योगिनः कुले ।
ज्ञानयोगं पुनर्लब्ध्वा ससारमतिवर्तते ।३४
जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते नरः ।
न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखैः ।३५
वज्रतंदुलवज्ज्ञेय तथा पापेन योगिनः ।
न लिप्यते च पापौघैः पद्मपत्रं यथांभसा ।३६
यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं शियोगरतो मुनिः ।
सोऽपि देशो भवेत्पूतः स पूत इति किं पुनः ।३७
तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृतमन्यद्विचक्षणः ।
सर्वदुःखप्रहाणाय शिवयोग समभ्यसेत् ।३८

जल युक्त तीर्थों और मिट्टी अथवा पाषाण की मूर्ति की पूजा उपसना योगी लोग इसीलिये नहीं करते क्योंकि उनको आत्मा का ज्ञान हो जाता है

।२९। योगी लोग सूक्ष्म देह द्वारा ईश्वर में मिल जाते हैं। मिट्टी, काष्ठ आदि की मूर्तियाँ उन्हीं लोगों के लिए रची गई हैं जो योग से अनजान हैं ।३०।जिस प्रकार राजा को बाहरी काम करने वालों की अपेक्षा भीतरी काम करने वाले अधिक महत्व के जान पड़ते हैं उसी प्रकार भगवान्‌शिव को भी अन्तर में ध्यान करने वाले योगी विशेष प्रिय होते हैं,बाहरी कर्म-काण्ड वाले नहीं होते। जिस प्रकार हाथ फैलाकर माँगने वाले बहुत थोड़ा फल प्राप्त करते हैं, पर राजा के खास आदमी पूरा फल पा जाते है, वैसा ही यहाँ भी होता है ।३१-३२। जो आन्तरिक भाव से ज्ञान-योग के लिए उद्यम करते हैं वे चाहे बीच में विपत्तिग्रस्त होते हैं पर अन्त में रुद्रलोक को प्राप्त कर लेते हैं।३३। वे लोग संसार में सब प्रकार के सुख पाकर योगियों के कुल में जन्म लेते हैं और वहाँ ज्ञानयोग को सिद्ध करके मुक्त हो जाते हैं।३४। साधारण योग साधक भी जिस महान् गति का प्राप्त कर लेता है वह बड़े-बड़े यज्ञों से भी प्राप्त नहीं हो सकती ।३५। जैसे वज्र को चावल द्वारा नहीं तोड़ा जा सकता, जैसे कमल का पत्ता जल से प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार योगी पर किसी पाप या ताप का प्रभाव नहीं होता ।३६। शिव-योग का अभ्यास करने वाला जिस देश में रहता है, वह देश पवित्र हो जाता है, तो वह योगी तो महा पवित्र होगा ही ।३७। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले को सदैव अन्य साधनों की अपेक्षा शिव-योग का आश्रय ही लेना कर्तव्य है ।३८।

एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात् ।
पठितव्यं श्रोतव्यं च तथैव हि ।३९
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ।
अभक्ताय महेश तथा धर्मध्वजाय च ।४०
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवार भवेत्पापं हि भस्मसात् ।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसवृद्धिभाक् ।४१
पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुते पुनः ।
तस्मात्पुनः पुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षभिः ।४२

पचवृत्तिः प्रकर्तव्य पुराणास्यास्य सद्धिया ।
परं फल समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः ।४३
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमा।
सप्तकृत्वस्तदावृत्याऽलभंत शिवदशनम् ।४४
श्रोष्यत्यथापि यश्चेद मानवो भक्तितत्पर ।
इह भुक्त्वाऽखिलान्भोगानंते मुक्ति लभेच्च सः ।४५
एतच्छिवपुराण हि शिवस्यातिप्रियं परम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रद ब्रह्मसमितं भक्तिवर्द्धनम् ।२५
एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा ।
समणः ससुतः साबः शं करोतु स शकरः ।४७

व्यासजी ने कहा इस शिवपुराण को प्रयत्नपूर्वक पढ़ना और आदर पूर्वक आद्यन्त सुनना चाहिए ।३९। जो कोई नास्तिक भावापन्न, श्रद्धारहित, शठ, शिवजी का अभक्त तथा धर्म का ढोंग करने वाला जान हड़े उसके सामने इसे न कहे ।४०। इसके एक बार सुन सेलेने से ही समस्त पाप भस्म हो जाते हैं अभक्त व्यक्ति भक्त बन जाता है । वे समृद्धिवान बनते हैं ।४१। दूसरी बार सुनने से श्रेष्ठ भक्ति प्राप्त होती है और फिर सुनने से मुक्ति मिलती है । इसलिए मोक्षाभिलाषियों को बारम्बार सुनना चाहिये ।४२। जो कोई सद्-बुद्धि से इसे पाँच बार पढ़ लेता है उसे परमगति प्राप्त होने में कुछ भी सन्देह नहीं रहता।४४।प्राचीनकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि इसकी सात बार पाठ करके शिव का दर्शन प्राप्त कर चुके है।४५।जो मनुष्य इसे भक्तिभावपूर्वक सुनते हैं,वे इस लोक में समस्य भोगों को प्राप्त करके अन्त में मुक्ति लाभ करके है ।४६। यह शिवपुराण शिवजी को अत्यन्त प्रिय है, यह भुक्ति मुक्ति का देने वाला,ब्रह्म सम्मत और भक्ति की वृद्धि करने वाला है।४६।इस शिवपुराण के वक्ता और श्रोता का गणपति, कार्त्तिकेय तथा पार्वतीजी सहित शकर भगवान कल्याण करें ।४७।

॥ श्री शिवपुराण समाप्त ॥